स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 22 ISSUE-4(2) (OCTOBER 2025) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल' एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल. (समाजशास्त्र, हिन्दी), एम. लिट., एल.एल.बी., (ऑनर्स)
डिप्लोमा, पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी-एच.डी. (हिन्दी)
डी. लिट्. (मानद उपाधि), काठमांडू नेपाल
विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक (हिन्दी विभाग)
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES
RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
कमरा नं. 175, लघु सचिवालय,
भिवानी–127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

उपकार्यालय :
सहदेव शास्त्री
शिवपुरी, नरवाना रोड़,
जीन्द (हरियाणा)
मो. 09416253826

Special Issue Editor :

Dr. Neeraj Ruwali
D. Litt.
Department of History
M.B. Govt. P.G. College, Haldwani, Nainital, Uttrakhand

Mohit Kumar Sharma
Guest Faculty, Department of History
NCWEB Centre, University of Delhi, New Delhi

Jyotsana Bhatt
ICHR. - Junior Research Fellow
M.B. Govt. P. G. College,
Haldwani, Nainital, Uttarakhand

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

—: मानद संरक्षक :—

प्रो. राधेमोहन राय
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान

डॉ. राजेन्द्र गोदारा
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर

—: विषय विशेषज्ञ, परामर्शदात्री / शोधपत्र निरीक्षण समिति :—

माई मनीषा महंत
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिं प्रचार सभा धारवाड़

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. विनोद कुमार
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

डॉ. कुसुम कुंज मालाकार
हिन्दी विभाग,कॉटन विश्व–
विद्यालय गुवाहाटी, असम

डॉ. कैलाशचन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व जि.शि.अधिकारी, च. दादरी

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. राजपाल
राजकीय पी.जी. महाविद्यालय
हिसार

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. राजकुमारी शर्मा
नेपाल

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली, उ.प्र.

डॉ.रामप्रवेश रजक
कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्रीशंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञजूषा परिवार अवैतनिक है।

शोध–पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रित इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव–10, कृतिदेव–21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :– उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र; टेलीफोन, मोबाईल नं., ई–मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

☐ शोध पत्र 2000 शब्दों (4–5 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

☐ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

☐ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी, हरियाणा होगा।

☐ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

नोट : सहयोग/सदस्यता राशि 1100/– का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ सम्पादकीय कार्यालय को भेजकर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/– रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें।

बैंक का नाम	:	पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा)
खाता धारक का नाम	:	गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी
बैंक खाता संख्या	:	1182000109078119
IFSC Code	:	PUNB0118200
MICR CODE	:	127024003

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय / लेखक	पृष्ठ
	Editorial	9
1.	Reconstruction and Deconstruction of Identity: Swami Acchutanand and the Debate on Harijan Terminology **Anand Kumar**	11
2.	Ethnic Identity and Foreign Policy: Tamil Nadu's Influence on India's Sri Lanka Policy **Anwith G Kumar**	15
3.	The Cradle of Faith: Exploring Devotional Continuity and Cultural Significance of Alopi Devi Temple in Prayagraj **Ayushi Yadav, Dr. Isha Bhatt**	20
4.	Sovereignty, Succession, and Suppression of the Bhar Tribe: Power Dynamics and Socio-Political Decline under Chandela, and Turkic Hegemonies in Allahabad & Bundelkhand Region (c. 900–1500 CE) **Aashish Kumar**	25
5.	Women's Lives, Beliefs and Practices as Reflected in the Gupta Sculptures and Inscriptions **Mitha Lal Meena, Dr. Prashant Gaurav**	30
6.	Human Emotions in Animal Narration : A study of Sudha Murthy's Gopi Diaries **Heera Lal Chopra, Dr. Priyanka Mishra**	36
7.	Trademark Law and Artificial Intelligence (AI): Convergences and Repercussions **Dr. Indra Daman Tiwari**	41
8.	Knowledge, Technology, and Societal Norms: Epigraphy as a Dialogue between Past and Digital Futures **Ayesha Khatoon**	45
9.	From gift to burden: Evolution of dowry system in India **Shefali**	51
10.	Gender Discrimination amongst Health Care Providers in rural areas of Lucknow district **Snehlata Jaiswal**	56
11.	History, Traditions and Modern Perspectives: A Multidisciplinary Dialogues Through Knowledge, Technology and Societal Norms **Dr. Dev Brat Mishra**	62
12.	Old Roots, New Routes: ICT, Youth Aspirations and the Generational Gap in Rural Areas of Bihar **Nirmal Kumar Nirmohi , Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh**	65
13.	Impact of Deen Dayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana (DDU-GKY) on Socio-Economic Development of Rural Youth in Himachal Pradesh **Dr. Rakesh Singh, Hemant Sharma**	73
14.	Sustainable Valorisation Of Rice Straw Into Textile-grade Fibres For Fashion And Textiles **Kajal Singh, Kavita Choudary, M.S Parmar**	79

15. Relevance of Purusharthas in Understanding Values and Motivations of Professionals in Today's World 84
Prof.(Dr). Ranjana Rawat
16. Royal Heritage of Karnataka: Women in Power 88
Abhijna
17. A History of Harshavardhana: The Last Great Monarch of Ancient India 91
Aniket Singh
18. Promoting skills of the females of Jharkhand on social media 96
Sangeeta Sharma
19. Satellite remote sensing for ecosystem and habitat monitoring. 101
Dr. Durga S. Patkar
20. The Historical Development of Sanjhi Art: From Devotional Tradition to Contemporary Craft 111
Sushmita Singh, Dr. Shikha Verma
21. Timeless Devotion: Sculptural Heritage and Ongoing Worship In Antichak, Bhagalpur 117
Tanu Astha
22. Comprehending The Shifting Dynamics from Social to Neo-Social Movements: A Theoretical discourse 120
Bijay Kumar Behera
23. Unsung Warriors of Anglo Manipur War at Kala Pani 124
Ankur Majumdar
24. From Text to Art: The Artistic Representation Of The Jâtaka Stories in Early Indian Architecture. Case Study of Bharhut, Sanchi and Amaravati 132
Naveen
25. Recalibrating India's Global Posture: A Study of Foreign Policy Transformation under the Modi Era (2014–Present) 140
Mansi Sharma
26. Weaving Pride: Ahilya Bai Holkar's Empowerment of Women through Maheshwar Sarees 145
Shrishti S. Bhadoria
27. सारनाथ का ऐतिहासिक महत्त्व और बौद्ध धर्म के विकास में इसकी भूमिका 150
अनूप कुमार जायसवाल
28. पूर्व मुगलकालीन बिहार में समाज एवं संस्कृति 155
अविनाश कुमार पासवान / डॉ. मो. इस्माईल
29. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में प्रगतिवादी चेतना 158
अंशु देवी / डॉ0 शशिप्रभा
30. ग्रामीण जीवन के अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति 162
डॉ. बिहारी लाल द्विवेदी
31. बौद्ध और जैन धर्म का शूद्रों पर प्रभाव : एक अवलोकन 167
समीना नाज
32. प्राचीन कौशाम्बी : एक महानगर के रूप में आर्थिक समृद्धि और व्यापारिक गतिविधियों का अध्ययन 171
प्रज्ञा तिवारी
33. अंधेर नगरी : तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक व्यवस्था का दर्पण 176
डॉ. रजिंदर कौर
34. भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं धर्म-दर्शन 180
ज्योति श्री / प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला
35. भगवान बुद्ध का अस्थि स्तूप एवं धातुनिधान, राजगृह (एक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिचय) 184
ललन कुमार सिंह

36. पट्कू बुनाई भारतीय परिधान संस्कृति की पहचान और लोकपरंपरा का एक विशिष्ट अध्ययन 189
सोनिया सैनी / डॉ. कविता चौधरी
37. 20वीं शताब्दी में राष्ट्र सेविका समिति का सामाजिक योगदान 193
पूर्वा दीक्षित / प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला
38. प्राचीन भारत में धर्म के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका 197
पूजा पोरस / प्रो. सुगम आनन्द
39. मध्यकालीन भारत में चौहान शासक और धार्मिक सहिष्णुता 203
सतेन्द्र कुमार
40. मध्यकालीन भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का संक्षिप्त अध्ययन 207
सत्यम सिंह राजावत
41. भारतीय दर्शन संस्कृति और शिक्षा 212
बबीता देवी
42. ताड़पत्र से भोजपत्र तक : चिकित्सा ज्ञान परंपरा के लेखन एवं संरक्षण का भौतिक आयाम 215
मयंक त्रिपाठी / डॉ. प्रीतम कुमार
43. प्रकृति का साहित्यिक चित्रण : वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में 219
मंजू सुयाल
44. शिक्षा से सम्बंधित सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का अनुसूचित जाति की छात्राओं पर पड़ने वाले प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन 223
कु. विनीता / डॉ. कल्पनाथ सिंह यादव
45. भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा 234
डॉ. सोहद्रा दीवान
46. पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद : समकालीन भारत के लिए एक वैकल्पिक विकास मॉडल 238
सोहन लाल / नारायण सिंह
47. वैदिक काल में स्त्री की भूमिका 242
प्रीति भारती
48. एकात्म मानव दर्शन और डिजिटल युग में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण : पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का बहुआयामी विश्लेषण 246
डॉ. शोभा मिश्रा / यदुनंदन
49. आदिवासी साहित्य का समाज दर्शन 251
अविनाश बनर्जी
50. उत्तराखंड की राजनीति में महिलाओं की भूमिका (विधान सभा निर्वाचन के सन्दर्भ में) 256
शिवानी
51. सामाजिक-सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर के रूप में मां हाट कालिका शक्ति पीठ 261
अमन कुमार
52. काली आंधी उपन्यास में पारिवारिक विघटन 268
डॉ. सविता
53. कुषाण साम्राज्य, रेशम मार्ग और सांस्कृतिक परिदृश्य 274
शुभम कुमार
54. चंदकालीन ऐतिहासिक धरोहर : बालेश्वर मंदिर 279
बबीता बोहरा
55. प्रेमचंद के साहित्य में तात्कालिक समाज का समाजशास्त्रीय एवं साहित्यिक अवलोकन 283
मुकुंद शर्मा / डॉ. कोमल देवी

56. प्रौद्योगिकी का कल्याणकारी योजनाओं पर प्रभाव 288
आस्था तिवारी
57. भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा 291
दिनेश कुमार पटेल
58. गांधार तथा मथुरा मूर्तिकला पर महायान बौद्ध दर्शन का प्रभाव 295
लवकुश कुमार मिश्रा
59. भारत एवं नेपाल की साझी संस्कृति को संजोता चैतोला मेला 300
सत्यवीर खनका
60. भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय का विचार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 308
देवेन्द्र कुमार
62. भारतीय परम्पराओं की वर्तमान प्रासंगिकता : एक दार्शनिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण 312
डॉ. दीक्षिता अजवानी
62. प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष परम्परा : एक अध्ययन 316
कु. आदिती जायसवाल
63. समाज में जेंडर संबंधी रुढ़िवादी अन्तर्द्वन्द्व के खिलाफ बढ़ते कदम 319
आरती रावत / संदीप सैनी
64. सुशीला टाकभौरे के उपन्यास 'वह लड़की' में अभिव्यक्त घरेलू हिंसा का स्वरूप 328
वंदना माथुर / अश्वनी कुमार
65. दिल्ली में क्लब संस्कृति का इतिहास : औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक पहचान तक 333
हर्ष वार्ष्णेय
66. तकनीक डिजिटल युग और मानव मूल्य 336
कु. अंजली राजकुमार गुप्ता
67. मुगलकालीन संगीत का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य 340
डॉ. लक्ष्मी कुमारी
68. मराठा राजनीति में ताराबाई की राजनीतिक उपलब्धियों का अध्ययन 343
डॉ. शमा अंजुम
69. बुंदेलखंड के स्वराज नायक : महाराजा छत्रसाल बुंदेला 350
शिवानी साहू
70. राष्ट्रवाद के संवाहक के रूप में संस्कृति, भाषा और साहित्य : भारत के संदर्भ में 353
दुर्गेश नंदिनी / डॉ. सुधा निकेतन रंजनी
71. औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ नागपूर जिल्हा) 357
देवानंद एन. कांबळे / डॉ. किशोर ऊ. राऊत

EDITORIAL

Dear Readers,

The present age is a witness to the rapid transformation of knowledge, technology, and social norms. It is not merely a scientific age, but an era of dialogue and re-evaluation — where technological advancement has deeply influenced the structure of society, its relationships, and value systems. At the center of this changing discourse, this special issue *"Knowledge, Technology and Societal Norms"* stands as a strong intellectual intervention.

This issue reaffirms the fact that knowledge and technology become meaningful only when they establish harmony with human values and social balance. The research papers published in this special issue unravel new layers of this relationship across disciplines such as society, literature, history, environment, politics, philosophy, culture, women's studies, and science.

The Hindi section of this issue reflects the expansion of India's cultural consciousness, traditions, and social spirit. Some researchers have revisited the educational heritage of Nalanda and Takshashila within the Indian philosophical framework, while others have analyzed the challenges of the technological era in the context of folk culture, social movements, and feminist discourse. The articles focusing on *eco-feminism*, the *Chipko movement*, *tribal knowledge traditions*, and the *social role of women* demonstrate that in Indian society, technology is not merely a tool of progress but also a symbol of sensitivity and balance.

The English section of this issue extends this discourse into the global perspective. Some scholars have discussed the social implications of *AI ethics* and *artificial intelligence*, while others have presented studies on *gender discrimination in healthcare*, *ICT and youth aspirations*, and *epigraphy as a dialogue between past and digital future*. One paper examines the sociological implications of *dowry system evolution*, while another analyzes the outcomes of the *rural socio-economic transformation under DDU–GKY scheme*. These papers clearly reflect that technology is no longer limited to industrial or scientific discourse — it has now become an essential link between sociology, psychology, and ethics.

The Marathi paper titled *"A Sociological Study of the Transformation of Rural Communities under Industrialization"* adds regional sensitivity and a grounded perspective to this special issue. It reflects how India's linguistic and cultural diversity together create a shared space of intellectual reflection, where technology signifies not just 'modernization' but *'people's development and social transformation'*.

The greatest strength of this issue lies in the fact that it embodies the true spirit of *multidisciplinary dialogue*. Here, the historian questions the ethics of technology, the scientist adopts the language of sociology, and the litterateur explores human emotions within the realm of technology. This very synthesis makes this special issue distinctive.

The Indian worldview has always held that the ultimate goal of knowledge is to realize the ideal of *'Vasudhaiva Kutumbakam'* — the world as one family. Technology succeeds only when it connects humans with each other and expands compassion, equality, and morality within society. The papers in this issue embody this very ideology — making knowledge value-oriented, technology humane, and society sensitive.

Today's age is not only an era of technological progress but also of the rebalancing of knowledge and ethics. Amidst the explosion of information, the role of research becomes even more crucial, for it determines the direction in which knowledge will be applied — for human welfare or merely for production. This special issue presents a balanced reflection on this very dilemma.

Finally, I extend my heartfelt gratitude to all the scholars and authors who contributed their intellectual energy and vision to enrich this special issue. I especially express my sincere thanks to *Dr. Neeraj Ruwali* Sir and *Dr. Naresh Kumar Sihag Sir*, whose foresight, creative leadership, and editorial proficiency helped this issue achieve thematic depth and academic quality. I also thank my research colleague and friend *Jyotsna Bhatt*, whose creative cooperation and thoughtful participation have been instrumental in shaping this issue into a rich and meaningful form. My thanks also go to the entire editorial board, without whose support this issue would not have been possible.

I hope this special issue will enrich readers' thinking and inspire them to understand their cultural roots through a modern perspective. This issue reaffirms the idea that —

"The ultimate purpose of knowledge is to serve humanity, and technology is its means."

— Mohit Kumar Sharma

Special Issue Editor

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

RECONSTRUCTION AND DECONSTRUCTION OF IDENTITY: SWAMI ACCHUTANAND AND THE DEBATE ON HARIJAN TERMINOLOGY

Anand Kumar
Research Scholar
Department of History, Panjab University Chandigarh

Abstract

The term Harijan was popularized by Gandhi for the untouchables, which simply means the children of God. However, the bigger aspect of the word, which deals with serving God and becoming an honest human being who does not practice untouchability, was somehow misunderstood. Later, this term became another name for the former untouchable caste. Besides this, the effect of the Poona Pact and the identity reconstruction among former untouchables, which was already going on, mainly the Adi Hindu movement by Swami Acchutanand, resulted in various interpretations of this word. This paper will try to understand the debate on the term Harijan and will try to understand some episodes and harsh replies on that, so that the misinterpretation of this word can be understood.

Keywords :- *Harijan, Identity reconstruction, Adi Hindu.*

Introduction

On the issue of the caste system, Gandhi's idea can be categorized into three aspects; the first one is related to the issue of untouchability, and for this, he is very strict and straightforward, considering the biggest sin of Hindu society. The second aspect is related to the representation and political empowerment of former untouchables; in this matter, he had various arguments with Dr. Ambedkar. The third aspect of Gandhian thought on the caste system deals with the identification of former untouchables, for which he provides the term Harijan to untouchables. This identification and its responses are the main theme of this paper.

Gandhi, after the Poona Pact, started giving most of his attention to the abolition of untouchability and to the serving of former untouchables. During that time, he started using the term Harijan for former untouchables, although it was not coined by him; but Gandhi made it so popular that it became a new identity for former untouchables. But the response to that word received from various leaders raised many questions. This question does not underestimate the intention of Gandhi but focuses on the bigger perspective of this historical event. In fact, the bigger aspect of this term lies in the timing and events of that particular time. The Poona Pact gave bitter experiences to the former untouchables, and the success of it lies only in the hope that the upper caste would make some changes regarding treating the former untouchables. Gandhi proposed the term Harijan as a wider concept that is to develop the sense of morality among the upper caste, but the response and misinterpretation of this word created such a mess

that the real intention was overshadowed. It is also important to understand that at that time, former untouchables already indulged in a reform movement related to their rights and identity reconstruction. Starting from Jyotiba Phule to Ambedkar, these caste groups have already prepared a new type of intellectual wealth for themselves. Mythologies, Vedic terms, rituals, and many more things related to the caste system were going to be analyzed through new ideas and theories by leaders and reformers of former untouchable castes. The identification of these groups as Harijan was also analyzed by these thinkers. Swami Achutanand (1879-1933), who founded the organisation Adi Hindu, was a prominent leader from the former untouchables of that time. Swami Achutanand also responded to the term Harijan from his perspective. This response represents the contemporary reaction of a former untouchable to the identification of himself as Harijan. The present paper is focused on understanding the debate of the Harijan term and the response by Swami Achutanand.

Reconstruction of Identity Among Former Untouchables

The former untouchable castes of India have always been in a struggle for a better identity. Their history of rising from inhuman to human life in all spheres needs special acknowledgment. Many figures can be seen in the history of the struggle of former untouchable castes in modern India (Like Jyotiba Phule, E.V. Ramaswamy Naicker, Ayyankali, and DR. Bhimrao Ambedkar), who worked on various ideas for making these castes proud members of society. These efforts created a specific kind of revolution.

In the colonial era, thinkers like Jyotiba Phule and Ambedkar redefined the Identity of marginalized castes. Phule attempted to construct a unified identity for all lower castes. The idea of his Identity construction is based on rewriting the history of Chhatrapati Shivaji Maharaj and connecting him to the lower caste groups of Maharashtra. (Hanlon 135) Ambedkar, on the other hand, worked towards the social changes and annihilation of the caste system. DR. Ambedkar established the whole idea of dealing with the caste system by advocating that the caste system is a boon for the whole Hindu society and not just for marginalized castes. DR. Ambedkar emphasizes that caste has killed the sense of trust, charity, and sympathy, and there is no sympathy for the deserving. There is no appreciation of the meritorious. There is no charity for the needy. Suffering as such calls for no response. There is charity, but it begins with the caste and ends with the caste. There is sympathy, but not for men of other castes. (Ambedkar 23)

DR. Ambedkar later contributed to identity reconstruction for marginalized castes in two specific ways: one is through the constitution of India, in which practicing untouchability was abolished, and the former untouchable castes got the constitutional rights and dignified identity of equal to others. (The Constitution of India, As on May, 2022) The second way of identity reconstruction can be found in the event of conversion to Buddhism. he finds Buddhism as a proper path for all his ideas on morality, fraternity, and equality. Ambedkar's conversion raised a different question regarding the success and failure of this kind of identity reconstruction. (Baradia 745) .

Gandhi and the use of the word Harijan

In his early days of social and political activism, Gandhi mostly used two terms for the former untouchable castes, depending on his spoken or written language. When he wrote or spoke in Gujarati, he used the term *Antyaj* (Last born); in English writings, he used the term suppressed classes. It was after the Poona Pact of 1932 that Gandhi popularized and almost coined the term Harijan for former untouchables. This was also the time when he added the abolition of untouchability to his priorities in social reforms and dedicated his life to this noble cause. He also edited the name of his weekly newspaper from Young India to Harijan. (Guha) This started the broad use of this term by Congress leaders, activists, and media houses, and it became a matter of debate and argument.

The word Harijan was first used by the medieval poet and saint Narsinh Mehta, whom Gandhi Inspired (Guha). For Gandhi, the meaning of this term was profound and spiritual. According to him, the first sense of this term was children of God (Hari=God, Jan=man or children). Gandhi wanted to drive out the

inferiority complex from the untouchables and give them a dignified name. For him, the explanation of the word Harijan was "All the religions of the world describe God prominently as the friend of the friendless, helper of the helpless, and protector of the weak. The rest of the world apart, in India, who can be more friendless, helpless, or weaker than forty million or more Hindus of India who are classified as untouchables? If, therefore, anybody can be described as a man of God, they are surely these helpless, friendless people." (Rattan) . Besides that, Gandhi also described that the term Harijan was a test of the moral caliber of caste Hindus. The one who contributes to serving society with true intention, does not follow any sins that break the brotherhood, and respects the individual who is serving God and near to God, thus can be called a Harijan in the true sense. (Guru) He described that God is omnipresent and resides in every being, whether *Brahmin* or *Bhangi*, priest or sweeper, thus no one is higher or lower, all are equal, and all are children of God. (Gandhi, Ashprashyata ke liye sthan nahi)

By this means, Gandhi wanted to sponsor the idea that every individual needs to put all his effort into serving God and to be a Harijan. This explores the unhighlighted aspect of this word that Harijan could not be used in stable terms for a particular group, but it was a respectful achievement that which untouchable caste had already achieved, and the upper caste needs to achieve to be near God or to be Harijan in the future. He also described the ways to achieve this: by demolishing all the barriers among humans and serving and loving the world. (Gandhi, Ashprashyata Nivaran).

The objections from Former Untouchables

It is a well-known fact that the term Harijan did not get the expected positive response among former untouchables. Dr. Ambedkar, who was the torchbearer of fighting for former untouchables, did not support or favor the term, Harijan. He argued that saints (like Narsingh Mehta) never carried on a campaign against caste and untouchability. The saints of the Bhakti sect were not concerned with the struggle between man and man. They were concerned with the relationship between man and God (Kumber) so, for Ambedkar, the term Harijan was not satisfying in solving the issues related to men and other men.

Swami Acchutanand and the response to the Harijan word

When Dr. Ambedkar worked on his ideas, at the same time in north India, another movement was underway, led by marginalized caste leaders. That was the Adi Hindu movement by Swami Acchutanand (1879-1933). Swamiji was the pioneer of Dalit literature in history. Swamiji was also the first Dalit journalist, editor, and owner of a printing press in North India. He opposed the caste system and constructed the idea of Adi Hindu identity. He thinks that the untouchable castes are the true natives of this land, so they were called Adi Hindus by him. (Bahadur)

It is essential to recognize that in North India, Swami Acchutanand was a prominent Dalit leader, and the Adi Hindu movement was at its peak. He wrote various writings in forms of *Gazal, Bhajan,* and Songs on the issues of untouchability, caste discrimination, inequality, and religion. When Gandhi started using the term Harijan, he responded to it with a self-composed poem titled 'Harijan'. The words are:

Kiyū hārijan pād humein prādān.
Atyānj, patit, bahishkrit, pādaj, pancham Shudra mahān.
SaEkar varan aur varnadham pād achut upmān.
They pād rache bhūt [ichiyan ne, hume hit ghari dhyān.
Phir hārijan pād diyu humein kyū, hey Gāndhī Bhagwān.
Hum to kahte hum Ādi Nivāsī, Ādi vans santān.
Bhārat bhūyiā mātā humrī, jinkau lāl nishān.
Hum nisarg se Bhārat swāmī, yahu hamro uddān.
'Hārijan' kahi 'Harihar' hamrau tum, kahe karat apmān. (Jigyasu)

Through this poem, he wanted to ask Gandhi why he gave us the new name, which related to Vedic terminology, and we already have various disrespectful identifications by your people. He argued that we already have various saints who provided us with positive names. He further added that the identity of the untouchable is very different from the Aryan identity; he claimed to be an aboriginal inhabitant of this land and to have a separate God known as *Bhuyia* Mata. At last, he claimed to be the ruler of this land, which is opposed to the idea of being a servant. It is quite possible that in later days, more ideas were added to this concept.

It is important to understand that although this poem represents harsh replies, it was the very first of its kind response to the Harijan term that impacted the former untouchable for a long time.

Conclusion

Ramchandra Guha pointed out that in later days, Gandhi also became defensive of the term Harijan. Gandhi claimed that this term was suggested by an untouchable to him. (Guha)

Although Gandhi was not bothered by that issue that much. His focus was on working for former untouchables instead of a particular term. The sense of identity constructed by others and the self creates a huge impact. The former untouchable castes were already creating various identities, and Gandhi had to prove his worth among them, which in later days he did partially. No doubt the intentions were pure and aimed towards realizing the upper caste their sins, but the misinterpretation of this term leads to the unending debate. One of the problems regarding this misconception was that Gandhian activists and scholars have sought to attribute the term Harijan exclusively to the untouchables. (Deliège) Although it should be the ultimate term for all individuals, Gandhi wanted to interpret. Swami Acchutanand was one of the earliest reformers who established the one of its kind of intellectual wealth for untouchables. He was already working towards identity reconstruction among former untouchables, and the reaction of his to the Harijan term needs to be acknowledged, after all, he was the representative of the people for whom this term was coined.

References

Ambedkar, DR. Bhimrao. "The Annihilation of Caste." *The Annihilation of Caste*. 12 December 1935.

Bahadur, Raj. "Swami Acchutanand: Progenitor of North India's Dalit Movement." 2016. 15 June 2022. < https://www.forwardpress.in/2016/09/swami-achhootanand-progenitor-of-north-indias-dalit-movement/. >.

Baradia, Meena. "DR. B.R. Ambedkar and His Idea About Religion and Conversion to Buddhism." *The Indian Journal of Political Science* 70 (2009): 737-749. 8 July 2022. <https://www.jstor.org/stable/42742756>.

Deliège, Robert. "The Myths of Origin of the Indian Untouchables." *Royal Anthropological Institute of Great Britain and Ireland* (1993): 533-549. <https://www.jstor.org/stable/2804238>.

Gandhi, M.K. "Ashprashyata ke liye sthan nahi." Gandhi, M.K. *Sarvodaya*. Ed. Bharatan Kumarrappa. Ahmdabad: Navjeevan Prakashan Mandir, 2015. 61.

Gandhi, M.K. "Ashprashyata Nivaran." Gandhi, M.K. *Sarvodaya*. Ed. Bharatan Kumarrappa. Ahmdabad: Nvjeevan Prakashan Mandir, 2015. 21.

Guha, Ram Chandra. "The Rise and Fall of the Term Harijan." 17 June 2017. <https://ramachandraguha.in/archives/the-rise-and-fall-of-the-term-harijan-the-telegraph.html>.

Guru, Gopal. "Gandhi's Conception of Harijan." *Economic & Political Weekly* 54 (2019). 22 September 2024. <https://www.epw.in/journal/2019/40/alternative-standpoint/gandhis-conception-harijan.html>.

Hanlon, Rosalind O. *Caste Conflict and Ideology: Mahatma Jotirao Phule and Low Caste Protest in Ninteenth Century Western India*. Cambridge: Cambridge University Press, 2002.

Jigyasu, Chandrika Prasad. *Adi Hindu Andolan ke Pravartak Sri 108 Swami Acchutanand Ji Harihar*. Lucknow: Hindu Samaj Sudhar Karyalay, 1960.

Kumber, W.N. *Dr. Ambedkar: A Critical Study*. New Delhi: People's Publishing House, 1979.

"Legislative Department." 2022. *Ministry of Law and Justice, Government of India.* <https://legislative.gov.in/constitution-of-india/>.

Rattan, Ram. "Gandhiji and 'Touch-Me-Not-ism'." *Gandhi, Ambedkar and The Dalit Emancipation*. Ed. N. Radhakrishnan. New Delhi: Gandhi Smriti and Darshan Samiti, 2001. `14.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ETHNIC IDENTITY AND FOREIGN POLICY: TAMIL NADU'S INFLUENCE ON INDIA'S SRI LANKA POLICY

Anwith G Kumar
Research Scholar
Department of Postgraduate Studies and Research in Political Science
Mangalore University, Mangalagangothri, Konaje

Abstract

This study examines the complex interplay between ethnic identity and foreign policy formation in the Indian context, with a specific focus on Tamil Nadu's influence on India's policy toward Sri Lanka. The research examines how transnational Tamil connections, linguistic nationalism, and the Dravidian movement have influenced India-Sri Lanka relations from independence to the present day. Through qualitative analysis of policy decisions, political statements, and bilateral relations, this study demonstrates that subnational ethnic identities significantly impact national foreign policy, particularly during coalition governments. The findings reveal that Tamil Nadu's political parties, especially the DMK and AIDMK, have successfully leveraged their position to influence India's Sri Lanka policy, though this influence has diminished under majority governments post-2014.

Keywords :- Ethnic identity, foreign policy, Tamil Nadu, Sri Lanka, linguistic nationalism, Dravidian movement, federalism, coalition politics

1. Introduction

The relationship between ethnic identity and foreign policy represents a critical dimension of international relations, particularly in diverse federal democracies like India. The complex dynamics between India and Sri Lanka offer a compelling case study of how subnational ethnic identities can influence national foreign policy decisions. Tamil Nadu, as a linguistically distinct state with strong cultural ties to Sri Lankan Tamils, has consistently sought to shape India's policy toward its island neighbor, creating tension between state-level ethnic solidarity and national strategic interests.

The Sri Lankan civil war (1983-2009) and its aftermath have provided a natural laboratory for examining these dynamics. The conflict's ethnic dimensions, pitting the Sinhalese-majority government against Tamil separatists, created strong resonance within Tamil Nadu's political landscape. This transnational ethnic connection has manifested in various forms of political pressure, from support for Tamil militant groups in the 1980s to contemporary advocacy for Sri Lankan Tamil rights and rehabilitation.

This study investigates how Tamil Nadu's ethnic identity politics have influenced India's Sri Lanka policy across different government configurations, from coalition governments to majority rule under the Bharatiya Janata Party (2014-2024). The analysis reveals significant variations in influence based on the central government's dependency on regional allies and the evolving nature of India-Sri Lanka bilateral relations.

2. Methodology

This study employs a qualitative research methodology combining historical analysis, policy examination, and comparative case study approaches. Primary sources include government statements, parliamentary debates, party manifestos, and bilateral agreements. Secondary sources encompass academic literature on federalism and foreign policy, Indian Ocean geopolitics, and ethnic conflict studies. The temporal scope covers India's independence (1947) through 2024, with particular emphasis on the post-civil war period (2009-2024). The analysis uses process tracing to establish causal links between Tamil Nadu's political actions and changes in India's Sri Lanka policy.

3. Historical Context and Theoretical Framework :-

3.1 Transnational Tamil Connections:-

The foundation of Tamil Nadu's influence on India's Sri Lanka policy lies in deep historical and cultural connections between Tamil populations across the Palk Strait. These transnational ties predate modern nation-states, rooted in centuries of trade, migration, and cultural exchange. The colonial period intensified these connections through indentured labor migration, creating a substantial Tamil population in Sri Lanka's northern and eastern provinces.

Post-independence India initially approached Sri Lanka relations through non-alignment and regional cooperation. However, ethnic tensions in Sri Lanka during the 1970s began activating transnational Tamil solidarity networks. The 1983 anti-Tamil riots marked a turning point, transforming cultural connections into political mobilization within Tamil Nadu.

3.2 The Dravidian Movement and Political Institutionalization :-

The Dravidian movement, emerging in the 1940s under E.V. Ramasamy (Periyar), fundamentally transformed Tamil political consciousness. The movement's emphasis on Tamil identity, cultural distinctiveness, and resistance to perceived northern hegemony created ideological foundations for transnational Tamil solidarity. The Dravida Munnetra Kazhagam (DMK), founded in 1949, and later the All-India Anna Dravida Munnetra Kazhagam (AIDMK), formed in 1972, institutionalized these ideas within Tamil Nadu's political system.

Both parties developed sophisticated networks connecting Tamil Nadu politics with Sri Lankan Tamil concerns. Leaders like M. Karunanidhi (DMK) and J. Jayalalithaa (AIDMK) regularly incorporated Sri Lankan Tamil issues into their political platforms, using these positions to demonstrate Tamil nationalist credentials and differentiate themselves from national parties.

4. Tamil Nadu's Influence Across Government Types :-

4.1 Coalition Era Influence :-

During the Coalition government in center, Tamil Nadu's political parties wielded significant influence over India's Sri Lanka policy. The DMK's participation in UPA-I and UPA-II governments (2004-2013) provided direct channels for influencing policy. Key ministers from Tamil Nadu, including those holding external affairs portfolios, ensured that Tamil concerns remained prominent in India-Sri Lanka relations.

The DMK formally pulled out of the UPA government in March 2013 because New Delhi refused to add amendments to a UNHRC resolution against Sri Lanka that would have subjected Colombo to an international investigation into alleged killings of Tamil civilians in 2009. This withdrawal demonstrated the extent of Tamil Nadu's influence and willingness to prioritize ethnic solidarity over coalition stability.

Similarly, the AIDMK, while not formally part of the UPA, provided crucial external support for Tamilian cause and used this leverage to advocate for Tamil positions. The party's threats to withdraw support during critical policy junctures forced the central government to accommodate Tamil Nadu's

demands, including votes against Sri Lanka in international forums and support for UN Human Rights Council resolutions.

4.2 Majority Government Era (2014-2024) :-

The Bharatiya Janata Party's (BJP) electoral victories in 2014 and 2019, providing comfortable parliamentary majorities, fundamentally altered Tamil Nadu's influence on foreign policy. Without dependence on regional allies for government stability, the BJP could pursue foreign policy priorities with reduced accommodation of state-level pressures.

The Prime minister's office (PMO) and India's external affairs ministry began deciding on Sri Lanka policy independently, not Tamil parties. This shift enabled a more strategic approach to India-Sri Lanka relations, prioritizing geopolitical considerations over ethnic solidarity. The Modi government's emphasis on economic diplomacy, connectivity projects, and strategic partnerships reduced the salience of Tamil Nadu's traditional demands.

However, Tamil Nadu's influence did not disappear entirely. The state's political parties continued advocating for Tamil rights, organizing protests, and passing resolutions. The difference lay in the central government's reduced responsiveness to these pressures, reflecting the changed arithmetic of coalition politics.

5. Central Government and Sri Lankan Responses with regard to Tamil Nadu influence on Tamil issue :-

5.1 India's Balancing Act :-

India's central government has historically balanced multiple considerations in its Sri Lanka policy: strategic interests in the Indian Ocean, concerns about Chinese influence, economic cooperation opportunities, and domestic political pressures from Tamil Nadu. Post-2009, the central government emphasized reconciliation, reconstruction, and gradual progress on Tamil rights rather than punitive measures demanded by Tamil Nadu.

The central government's strategy involved quiet diplomacy, developmental assistance, and gradual pressure for political settlement. Projects like the Indian Housing Project for war-affected areas and connectivity initiatives aimed to demonstrate India's commitment to Sri Lankan Tamil welfare while maintaining cooperative relations with Colombo.

5.2 Sri Lankan Government Adaptations :-

Sri Lanka's responses to Tamil Nadu's political interventions have varied across different governments and time periods. During the civil war, Colombo often viewed Tamil Nadu's support for Tamil militant groups as interference in internal affairs. The post-war period saw more nuanced approaches, with Sri Lankan governments attempting to balance relations with both the Indian central government and Tamil Nadu.

President Mahinda Rajapaksa's administration (2005-2015) initially adopted a defiant stance toward international pressure. However, growing Chinese involvement in Sri Lankan infrastructure projects and India's strategic concerns eventually prompted more accommodative approaches. Subsequent governments showed greater willingness to engage with Tamil concerns while maintaining sovereignty over internal affairs.

6. Comparative Analysis and Contemporary Relevance :-

Tamil Nadu's influence on India's Sri Lanka policy is not unique in the Indian context. India-Pakistan relations affect multiple states with ethnic connections (specially before 1971); India-Nepal relations impact several northern and eastern states; India-China relations influence Himalayan states. However, the Tamil Nadu case is distinctive due to the intensity and consistency of political mobilization, the existence of organized militant groups during the 1980s, and Tamil Nadu's electoral significance in

national politics.

The contemporary "Tamil Nadu factor" operates within a transformed political landscape. While Tamil Nadu's major parties continue advocating for Sri Lankan Tamil rights, their influence on central government policy has significantly diminished. The BJP's parliamentary majorities have reduced dependence on regional allies, while evolving strategic priorities have elevated geopolitical considerations over ethnic solidarity.

However, the Tamil Nadu factor remains relevant. The state's political parties continue monitoring Sri Lanka's treatment of Tamils, electoral considerations still influence central government calculations, and people-to-people contacts continue fostering bilateral cooperation.

7. Future Pathways and Conclusions :-

7.1 Recommendations for Constructive Engagement :-

Constructive engagement with the Tamil Nadu factor requires sophisticated policy approaches that acknowledge legitimate ethnic concerns while advancing national interests.

Enhanced Developmental Cooperation:- Expanding people-to-people connectivity through development projects, educational exchanges, and cultural programs could strengthen positive linkages while addressing Tamil Nadu's concerns about Sri Lankan Tamil welfare.

Multilateral Frameworks:- Working through regional organizations like SAARC and BIMSTEC to address ethnic minority rights and post-conflict reconciliation could provide face-saving mechanisms for all parties.

Economic Integration:- Deepening economic ties through trade agreements, investment partnerships, and industrial cooperation could create stakeholder constituencies for positive bilateral relations.

Institutional Mechanisms:- Establishing formal consultation mechanisms between the central government, Tamil Nadu leadership, and Sri Lankan representatives could channel ethnic concerns into constructive dialogue.

7.2 Broader Implications :-

The Tamil Nadu factor in India's Sri Lanka policy illustrates both opportunities and challenges of managing ethnic identity politics within federal foreign policy frameworks. While Tamil Nadu's transnational connections and political mobilization have sometimes complicated India-Sri Lanka relations, they have also provided important advocacy for minority rights and post-conflict justice.

The evolution from coalition-era influence to majority government autonomy demonstrates how domestic political configurations affect ethnic groups' capacity to shape foreign policy. However, the underlying ethnic connections and political dynamics remain relevant, requiring ongoing attention from policymakers.

Future India-Sri Lanka relations must acknowledge these ethnic dimensions while working constructively to advance mutual interests. Success requires moving beyond zero-sum calculations toward inclusive approaches that address Tamil aspirations within broader frameworks of bilateral cooperation and regional stability.

The Tamil Nadu case provides broader lessons for managing ethnic diversity in foreign policy. Federal democracies must develop sophisticated mechanisms for incorporating subnational concerns while maintaining policy coherence. The challenge lies not in eliminating ethnic influences but in channeling them constructively toward outcomes that serve both ethnic communities and national interests.

As India's role in the Indo-Pacific expands and Sri Lanka's strategic importance grows, managing the Tamil Nadu factor will remain crucial for regional stability and bilateral cooperation. The experience suggests that sustainable foreign policy must be grounded in domestic consensus-building that acknowledges ethnic diversity while promoting shared strategic objectives.

References :-

1. Bose, S. (1994). *States, Nations, Sovereignty: Sri Lanka, India and the Tamil Eelam Movement*. Sage Publications.
2. Ganguly, S. (1994). Ethnic policies and political quiescence in Malaysia and Singapore. In M. E. Brown (Ed.), *Ethnic Conflict and International Security* (pp. 233-272). Princeton University Press.
3. Hardgrave, R. L. (1965). *The Dravidian Movement*. Popular Prakashan.
4. Keethaponcalan, S. I. (2014). Conflict resolution and peacebuilding in Sri Lanka: Caught between foreign and domestic politics. *Conflict Resolution Quarterly*, 32(2), 145-171.
5. Manor, J. (1990). How and why liberal and democratic politics emerged in India. *Political Studies*, 38(1), 20-38.
6. Ranjan, A., & Chattoraj, D. (2022). The Tamil issue in India–Sri Lanka relationships: Priorities and interests. *India Quarterly*, 78(1), 58-75.
7. Sengupta, A. (2016). Federalism and foreign policy: The role of constituent units in India's external relations. *India Review*, 15(2), 214-239.
8. Subramanian, N. (1999). *Ethnicity and Populist Mobilization: Political Parties, Citizens and Democracy in South India*. Oxford University Press.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THE CRADLE OF FAITH: EXPLORING DEVOTIONAL CONTINUITY AND CULTURAL SIGNIFICANCE OF ALOPI DEVI TEMPLE IN PRAYAGRAJ

Ayushi Yadav
Research Scholar, Textile Design
Banasthali Vidyapeeth
Dr. Isha Bhatt
Assistant Professor, Design Department
Banasthali Vidyapeeth

Abstract

The Prayagraj's Alopi Devi Temple is extraordinary in Hindu tradition because the goddess is admired not by an idol but by a wooden cradle (doli), representing "absence as sacred presence." Founded upon myths of Sati and popular local lore, the temple represents devotional continuity and cultural memory over generations. It continues to be at the main of festivals like Navratri, Magh Mela, and Kumbh, and also functions in social capacities like marriage blessings and collective worship. Alopi Devi is distinct from other goddess traditions like Kamakhya and Vaishno Devi in its idol-less nature. Now, it exists as a religious centre as well as a cultural heritage of Prayagraj.

Keywords :- Alopi Devi Temple, Prayagraj, Idol-less Worship, Folklore, Cultural Heritage

1. Introduction :-

1.1 Prayagraj: the sacred confluence of culture and faith :-

Prayagraj, earlier known as Allahabad, is a momentous site in India's sacred geography. It is mentioned to as Tirtharaj (the "King of Pilgrimage Sites), and is renowned in the Mahabharata and the Puranas (Shastri, 1965). The city's spiritual heart is Triveni Sangam, where the rivers Ganga, Yamuna, and the underground Saraswati converge. Bathing here at this Sangam is said to release the devotees from the chain of birth and rebirth (Lochtefeld, 2010). This belief is observed in the most manifest forms during the Kumbh and Magh Melas, when millions of pilgrims converge, making the city a world hub of devotion, culture, and collective identity (Kumar, 2017). Aside from religion, Prayagraj has also been a stage for significant political and cultural movements in the Mughal and British eras (Freitag, 2013). The sacred geography of Prayagraj is therefore not just its land, it is an active symbol of faith, ritual, and united memory.

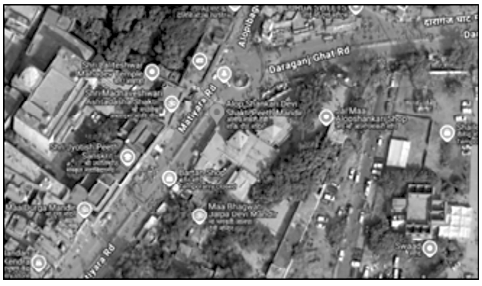


Figure 1. Map of Prayagraj

1.2 Significance of Alopi Devi Temple in religious-cultural geography :-

Alopi Devi Temple on the sacred earth of Prayagraj holds a very exclusive religious-cultural importance as one of the few places where the goddess is admired without any idol. In this place, the symbol of the goddess is a wooden swing or doli, which is devoted to as "Alopi Mata". It is said to be the spot where the body of Sati disappeared, and from this story, came its name (Lorenzen, 2004). Historically, this temple was constructed by Maratha commander Mahadji Shinde in 1772 AD and was later recreated by Maharani Baijabai Shinde. This is an unfamiliar representation of converting "absence" to "sacred presence" that maintains the religion of the believers alive. Therefore, Alopi Devi Temple is a significant site of cultural memory and community religion of Prayagraj.



Figure 2. Alopin Temple

Table 1: Historical Evolution of Alopi Devi Temple, Prayagraj

Sr. No.	Timeline / Period	Event / Development
1.	Mythological Era	Associated with the tale of Sati-Shiva; it is said that the right hand of Sati fell here and Alopi Devi, an appearance of Shakti, was worshipped (Lorenzen, 2004).
2.	18th century (1772)	Temple building and the shape of the building by Maratha commander Mahadji Shinde (Misra, 2015)
3.	19th century	Renovation and preservation of the temple and the ghats of the Sangam region by Queen Bayajabai Shindia (Misra, 2015)
4.	20th century	The temple was renovated and restored occasionally with the support of local supporters and society (Singh, 2020)
5.	Contemporary period	The temple is recognized as a symbol of "idol-less" faith; the wooden cradle is observed as the shape of the goddess (Singh, 2020)

1.3 Objective :-

- ❖ To explore the mythological and historical beginning of the Alopi Devi Temple in the sacred land of Prayagraj.
- ❖ To examine the individual religious practices of worship without an idol and their cultural status.
- ❖ To observe the continuity of religious faith and traditions revolving around the temple in historical as well as modern-day.
- ❖ To explore the role of the temple in preserving cultural identity and community worship in Prayagraj.

2. The special worship practice: The cradle as sacred icon :-

2.1 Absence of Idol, Presence of the Swing (Doli) :-

The most significant aspect of the Alopi Devi Temple is that there is no idol of the goddess present, but a wooden cradle (jhula/doli) is the icon of the goddess. Idol-less worship practice is very rare in Indian goddess worship, and is interpreted as "absence as sacred presence" (Kinsley, 1986).



Figure 3. Cradle (jhula/doli) of the goddess

Source- https://www.hubprayagraj.in/2024/09/alopi-devi-temple-prayagraj.html

2.2 Rituals and Festive Celebrations :-

On the festival of Navratri, the temple has special worship and rituals. A good number of devotees visit to worship the mother, and the cradle is ornamented with flowers (Singh, 2020). In the same way, lakhs of devotees confidently visit this temple during Magh Mela and Kumbh Mela (Lochtefeld, 2010).

3. Devotional continuity across generations :-

3.1 Folk tales and mysteries :-

There is a folktale linked with the temple, which goes like this: once a wedding parade was attacked by dacoits, and when the palanquin of the bride was opened, it had disappeared. Alopi Mata began to be worshiped here since then. Devotees discourse that the swing contains the living form of the goddess and numerous times it has been noticed to be swinging ominously. There exists a small pond below the swing on the temple grounds which is constantly filled with water and the Shri Yantra fixed in it is a symbol of the power of the goddess. This folklore is not mere myth but provides the foundation for

cultural distinctiveness and religious continuity (Hiltebeitel, 1999).

3.2 Pilgrimage Practices and Devotees' Personal Experiences :-

The devotees take this temple as a compulsory pilgrimage center, particularly when they go there to bathe in the Triveni Sangam. Visitors on large numbers believe, by personal experience, that Mata Alopi guards them in an "invisible way" (Lochtefeld, 2010). The journey is, therefore, not just a religious ceremony but also the connection of individual religious experience and shared belief.

4. Cultural significance of Alopi Devi Temple in Prayagraj :-

4.1 Relation with Sangam, Kumbh & Broader Sacred Geography :-

The sacred geography of Prayagraj consists of Triveni Sangam, Akshayvat, and other Shakti Peethas, where Alopi Devi Temple holds an eminent position. Particular during Kumbh and Magh Mela, this temple becomes the site of faith for millions of pilgrims, thus it is a component element of the broader religious map (sacred map) (Lochtefeld, 2010).

4.2 Social Activities (Marriage Pledges, Raksha Sutra, Blessings) :-

Alopi Devi Temple is not just a religious monument, but also a social center. Once married, the bridegroom and the bride come to obtain blessings from the lotus feet of Mata, who is observed as a symbol of family prosperity and good luck. In the same way, devotees take Raksha Sutra and offer prayers for relief from lack. These social activities have placed the temple in the heart of community life, where religious belief and social activities are closely interlaced (Shastri, 1965).

Table 2: Comparison of Different Goddess Traditions and their Form of Divine Representation

Sr.No.	Goddess Tradition	Location	Form of Presence/ Absence	Significance
1.	Alopi Devi	Prayagraj (U.P.)	is not the goddess' incarnation	The palanquin/doli puja absence of sanctity; Folk recollection and mythological narrative
2.	Kamakhya Devi	Guwahati (Assam)	Yoni stone	Symbol of creation and power (shakti-pitha)
3.	Vaishno Devi	Jammu	Natural Cave and Three Pindis	Faith in mother power and deliverance from arduous journey
4.	Meenakshi Devi	Madurai (Tamil Nadu)	Statue and massive temple	Patron deity of the city and site of cultural wealth

Sources: Kinsley (1986), Erndl (1993), Urban (2001), Freitag (2013).

5. Contemporary perspectives and relevance :-

5.1 Representation in Media, Blogs, and Travel Accounts :-

At the present time, the identity of Alopi Devi Temple is not just folk tales. Numerous blogs, YouTube documentaries, and lectures represent this temple as a "must visit religious place" of Prayagraj. This has provided a new perspective to its identity for youth and visitors (Chopra, 2019).

5.2 Administrative Management :-

Millions of pilgrims come here during Kumbh and Magh Melas. Hence, the management of the temple and local management has given special importance to security, water facilities and line system. This has set the temple not just as a religious site but also as an organized pilgrimage center (UP Tourism, 2020).

5.3 Temple as a Cultural Heritage Site in Urban Prayagraj :-

Even in the fast-growing process of urbanization, this temple is originated as a cultural heritage. This element is very holy geography of Prayagraj is highly significant for religious tourism as well as local identity (Eck, 2012).

6. Research methodology :-

This research employs a qualitative and interpretive methodology, utilizing Puranas, traditional folklore, archival material, and secondary literature (e.g., Freitag, 2013; Eck, 2012) and digital materials of contemporary times. It uses a historical-analytic approach to explore mythic and historical roots, and comparative perspective to place Alopi Devi within larger goddess traditions. Temple visits, photo documentation, and formless interviews with priests and believers provided insights into everyday practices. The study is contextualized within ideas of sacred absence (theology) and cultural memory (sociology), and their suggestions of how the absence itself becomes a divine presence.

7. Conclusion :-

The research clearly establishes that the Alopi Devi temple is not only a religious monument but an unexpected representation of religion, tradition and cultural continuity. Here the "lack of idol" is replaced by the presence of divinity itself, which gives us a original aspect of Indian religious experience. History, folklore and social memory preserve this tradition to the present, while in contemporary life digital media, religious tourism and the Kumbh/Magh Mela sustain it. Therefore, this tradition proves how sacredness is not confined to the idol or physical object but maintained through communal faith and cultural memory.

Reference's :-

- Chopra, P. (2019). *Sacred journeys in modern India*. Routledge.
- Eck, D. L. (2012). *India: A sacred geography*. Harmony Books.
- Erndl, K. M. (1993). *Victory to the Mother: The Hindu goddess of Northwest India in myth, ritual, and symbol*. Oxford University Press.
- Freitag, S. B. (2013). *Culture and power in Banaras: Community, performance, and environment, 1800–1980*. University of California Press.
- Kinsley, D. (1986). *Hindu goddesses: Visions of the divine feminine in the Hindu religious tradition*. University of California Press.
- Urban, H. B. (2001). *Songs of ecstasy: Tantric and devotional songs from colonial Bengal*. Oxford University Press.
- Uttar Pradesh Tourism. (2020). *Tourism and pilgrimage sites in Uttar Pradesh*. Department of Tourism, Government of Uttar Pradesh. Retrieved from https://uptourism.gov.in

Website's :-

https://www.hubprayagraj.in/2024/09/alopi-devi-temple-prayagraj.html
https://www.tirthayatra.org/alopi-devi-temple/
https://www.poojn.in/post/19762/alopi-devi-mandir-prayagraj-a-complete-guide

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SOVEREIGNTY, SUCCESSION, AND SUPPRESSION OF THE BHAR TRIBE: POWER DYNAMICS AND SOCIO-POLITICAL DECLINE UNDER CHANDELA, AND TURKIC HEGEMONIES IN ALLAHABAD & BUNDELKHAND REGION (C. 900–1500 CE)

Aashish Kumar
Research Scholar, Department of Medieval and Modern History
University of Lucknow

Abstract :-

This study examines the ethno-political disintegration of the Bhar tribe (also known as Rajbhar) in the Bundelkhand and Gangetic Doab regions (c. 900–1500 CE) under successive hegemonic shifts, challenging the prevailing historiographical categorization of the Bhars as a mere 'aboriginal' population. Drawing upon epigraphic, gazetteer, and antiquarian evidence, the research traces the Bhar trajectory from ancient regional sovereignty—potentially linked to the powerful Naga/Bharshiva lineages who allied with dynasties like the Vakatakas (3rd–5th centuries CE)—to their eventual social and economic marginalization. The decline is analyzed through three distinct phases of political pressure. First, the Chandela Rajput ascendancy (c. 900–1300 CE) marked a shift toward hierarchical suppression and the appropriation of indigenous cultural and infrastructural assets (e.g., the Maniya Deo cult, *Bhar-dîh* sites). Second, the Turkic incursions of the Delhi Sultanate (13th century onward) introduced a policy of violent political obliteration and military suppression, exemplified by reported massacres, to secure valuable agricultural lands. Third, protracted local Rajput/Lodhi clearances finalized the community's defeat.The ultimate consequence of this sustained hegemonic violence was not just political defeat but economic annihilation, evidenced by the systematic loss of all landed proprietary rights and descent into chronic social stagnation, subjecting the community to "extreme rigour and scorn." The study argues that the enduring material culture—including extensive water systems and fortifications—necessitates further archaeological investigation to reframe the Bhars as state-builders whose sovereignty was systematically dismantled through economic mechanisms and political violence, thus offering a crucial counter-narrative to traditional medieval Indian history.

Keywords :- Bhar Tribe, Rajbhar, Bundelkhand, Turkic Incursions, Chandela Dynasty, Naga, Political Obliteration, Indigenous Sovereignty, Economic Marginalization.

Conceptualizing the Bhar Political Landscape and Historiography :-

The political history of the Bhar tribe in Central and Northern India unfolds as a layered narrative of indigenous statehood, strategic alliances, fierce resistance, and eventual marginalization (Rewah State Gazetteer, 1907). This study examines the Bhar trajectory within Bundelkhand (ancient Jejakabhukti) and the adjacent Gangetic Doab, spanning the late ancient era through the Delhi Sultanate's consolidation and into the regional fragmentations of the early modern period. Drawing on epigraphic, gazetteer, and

antiquarian surveys, it focuses on how Bhar sovereignty evolved amid successive hegemonic shifts.

A. Defining the Bhar Identity and Geographical Scope (Bundelkhand and the Doab) :-

The Bhar community (also Râbhar, Bharat, Bharpatwa, or Rajbhar), an ancient ruling tribe, wielded significant political power across Northern and Central India, from Gorakhpur to Saugor in the Central Provinces (Crooke, 1896). They dominated the region between Benares and Allahabad (now Prayagraj), especially in Khairagarh pargana, and extended into Bundelkhand, Oudh, and Allahabad district (Crooke, 1896). Remnants include Bhar-dîh forts and vast tanks demonstrating advanced hydraulic engineering and centralized governance (Conybeare, 1873; Crooke, 1896). In Allahabad's Ganges-Yamuna interfluve, numerous Bhar forts persist; Khairagarh features a massive stone fort, while Banda's "Cyclopean" hill fortifications highlight state-level organization for defense and irrigation (Crooke, 1896; Conybeare, 1873; Cunningham, 1885). Such infrastructure marks them as sovereign polities, not mere tribes (Smith, 1877; 1907).

Their distribution suggests westward-to-eastward migration, with origins in western Bundelkhand (west of the Dhasan River, including modern Hamirpur and Jhansi districts) rather than eastern areas where they were later displaced (Smith, 1877). The 1872 census recorded 256,943 Bhars solely in eastern Benares and Oudh divisions, none in western Bundelkhand—yet antiquarian evidence and traditions confirm prior ubiquity westward to Allahabad and Banda (Smith, 1877).

Toponyms affirm this: Bharua (Sumerpur), Bharsawan (Maudha), Bharwara (Panwari-Jaitpur), Bharkhari/ Barkhari (Jalalpur), and Bhanraura Itheria (Rath) (Smith, 1877). Eastward, they ruled Mirzapur's Bhadohi pargana and Rewah's Rohta and Manikpur tehsils, with descendants amid ruined outposts (Rewah State Gazetteer, 1907; Conybeare, 1873). In western Bundelkhand fringes, 9th–10th-century Jain-affiliated Bharvanshi Kshatriya capitals at Asai Kheda (near Agra-Firozabad) feature temple ruins (Smith, 1907; Wright, 1881). Etawah's Bharthana and Bharewa fort tie to 14th-century displacements (Varun, 1973).Toponyms affirm this: Bharua (Sumerpur), Bharsawan (Maudha), Bharwara (Panwari-Jaitpur), Bharkhari/Barkhari (Jalalpur), and Bhanraura Itheria (Rath) (Smith, 1877). Eastward, they ruled Mirzapur's Bhadohi pargana and Rewah's Rohta and Manikpur tehsils, with descendants amid ruined outposts (Rewah State Gazetteer, 1907; Conybeare, 1873). In western Bundelkhand fringes, 9th–10th-century Jain-affiliated Bharvanshi Kshatriya capitals at Asai Kheda (near Agra-Firozabad) feature temple ruins (Smith, 1907; Wright, 1881). Etawah's Bharthana and Bharewa fort tie to 14th-century displacements (Varun, 1973).

B. The Historiographical Problem: Aboriginal Status versus Historical Sovereignty :-

Colonial historiography often dismissed Bhars as "aboriginal" and non-Aryan, akin to Gonds, Kols, and Bhils, downplaying their sophisticated statecraft and Rajbhar ("ruling Bhar") legacy (Smith, 1877; Jaffrelot & Kalaiyarasan, 2024). Biased accounts, like the Mahoba ke Rajvansh, portray Bhars as subordinate soldiers under Chandela patronage (Chauhan, 2020). Yet, evidence of the Bhar brothers, Dalaki and Malki, founding the independent Bharwara state in 1213 or 1243 CE and proclaiming themselves kings directly refutes claims of their perpetual subordination (Chauhan, 2020; Smith, 1877).

Ancient Roots and Proto-Statehood (c. 300–900 CE) :-

The Bhar political identity emerged from the indigenous Naga lineages, establishing proto-governance in Bundelkhand. The Bharshivas (Nagas), centered at Padmavati (Gwalior), held significant authority in north-central India during the 3rd–4th centuries CE, asserting regional sovereignty through ten Ashwamedh-Yagna rituals. Evidence like the Bharhut stupa (possibly Bhar-mukti) near Satna indicates their widespread influence. The Vakatakas (3rd–5th centuries CE) formed strategic matrimonial alliances with the Nagas, fostering sophisticated state formation. The enduring Maniya Dev cult at Maniyagarh Fort highlights the deep indigenous religious and political roots of the Bhars.

The Ascent of Rajput Hegemony (c. 900–1300 CE) :-

The Chandela consolidation eroded Bhar autonomy, but the process was complex, involving cultural appropriation and cohabitation (Smith, 1877).

A. The Chandela Dynasty's Rise and Indigenous Heritage :-

The rise of the Chandelas (9th–13th centuries CE) is hypothesized to involve the Hinduization of an indigenous elite, whereby it is "entirely justifiable to assume that the Chandela Rajputs were originally Hinduized Bhars" who achieved Kshatriya recognition upon gaining power (Kennedy, 1909). Antiquarian surveys suggest that the Chandelas were a small ruling clan, numbering only 656 in Hamirpur by 1872, and did not universally supplant the indigenous tribes (Bhars, Gonds, Kols) who were the original occupiers of the soil (Smith, 1877). Significantly, the Maniya Deo cult—the tutelary deity of the Chandela Rajas at Mahoba—is widely suspected to have been a former Bhar or Gond fetish (Smith, 1877). The appropriation of this indigenous cult suggests the Chandelas reinforced their legitimacy by incorporating the religious authority of the supplanted population.

B. Subjugation and Indigenous Resistance under Chandela Authority :-

Over centuries, subjugation efforts persisted, with local records noting betrayals like the Bagri Thakurs' attack on 1,000 Kols and Bhils at Kahra (Banda) in 1080 CE. Following the Ghurid conquest of Mahoba (1202–1203 CE), a brief Bhar resurgence saw Jain-Yogi brothers Ajaipal and Bhar rise to power. Raja Bhar, ruling Mahoba, fiercely resisted Muslim forces, prompting Malik Shah's intervention. This led to the tragic defeat of Raja Bhar and his fourteen sons, with his queens performing self-immolation. Linked to Jogi Raja Kirtipal Bhar, this era's Jain heritage is evidenced by colossal Jain images and inscriptions (1139–1175 CE), highlighting Jainism's prominence among the Bhar ruling class.

Conflict, Resistance, and Political Obliteration (c. 1200–1500 CE) :-

The consolidation of the Turkic Delhi Sultanate beginning in the early 13th century marked the final, decisive rupture, characterized by a policy of deliberate political obliteration (Conybeare, 1873).

A. The Long Arc of Suppression (1080–1730 CE) :-

The final subjugation of the indigenous population was protracted and intermittent, lasting from 1080 CE to 1730 CE (Smith, 1877). The Turkic conquest was characterized by a distinct use of extreme violence, leading to a "general massacre" of the Bhar tribe by the "Turks or Muhammadans" (Conybeare, 1873).

The Bhar's resurgence in the 13th century, exemplified by the **Dalaki-wa-Malki** campaign in **1247 CE** (Smith, 1877; Varun, 1973), was countered by Balban's forces. This Bhar Sardar, who ruled the territory between **Kalinjar and Kada**, was deemed "independent and highly powerful" but was eventually driven into an **"inaccessible place"** (Varun, 1973). Despite this, **Bhar Rajputs recovered the Kalinjar region and ruled over it from approximately 1252 to 1280 CE** (Varun, 1973). This continuity is affirmed by a grant dating to **1280 CE** issued by **Raja Kirat Singh Ju Bhar** (Varun, 1973).

Pockets of Bhar influence persisted into the later medieval period:

- **Mughal Resistance:** Bhars of **Islampur** (styled **Bhare Thakurs**) looted royal treasure and were punished by Islam Shah (1545–1553 CE) (Smith, 1877).
- **Feudatory Role:** The ancestors of the **Baghel dynasty**, such as **Visaladeva**, initially **served under the Bhar Sardar of Kalinjar** (Nizami, 1941; Rewah State Gazetteer, 1907), demonstrating Bhar control over local feudal structures even as external powers rose.
- **Final Destruction:** The localized Bhar *satta* was ultimately overwhelmed by the **Jaunpur**

Sultanate, with **Ibrahim Shah Sharqi** completely **destroying the Bhar *satta*** in **1440 CE** (Chauhan, 2020; Firishta, 1606/1978).

Social Stagnation and Economic Marginalization :-

The loss of political sovereignty triggered severe social stagnation and economic marginalization for the Bhar community (Conybeare, 1873). Economically, systematic land confiscation and high revenue demands (kharaj) stripped the Bhars of their proprietary status, leaving no landed proprietors in regions like Mirzapur by the later period (Conybeare, 1873). In Hamirpur, their historical contributions, including forts and tanks, were erased or attributed to others like the Chandelas and Lodhis (Smith, 1877). Socially, defeat led to stratification. The Rajbhar elite pursued Sanskritization, claiming Surajbansi Rajput descent, with some transitioning into higher-status groups like Kayasthas and Chandels (Jaffrelot & Kalaiyarasan, 2024; Kennedy, 1909). However, the broader Bhar population faced chronic scorn, often reclassified as outcasts (Conybeare, 1873). Despite this, the Bhars' legacy persists in material culture, including Sati-Sata monuments, warrior effigies, and Hanuman bas-reliefs across Hamirpur and Banda, marking their lost indigenous sovereignty (Smith, 1877).had been entirely erased or appropriated by the Chandelas and Lodhis (Smith, 1877).

A. Stratification and Assimilation as Strategies for Survival :-

The trauma of defeat led to internal stratification, with the Rajbhar elite attempting social elevation through Sanskritization, claiming descent as Surajbansi Rajputs (Jaffrelot & Kalaiyarasan, 2024). This strategy allowed some members of the ruling class to transition into other higher-status groups, such as Kayasthas, whose descendants were later recognized as Chandels (Conybeare, 1873). This process, known as the "New Hindu Age" phenomenon, allowed indigenous tribes (Gond, Bhar, Kharwar) to emerge as Chandela, Rathore, and Gaharwar Rajputs (Kennedy, 1909). Meanwhile, the common Bhar population was subjected to chronic social scorn and reclassified as 'outcasts' (Conybeare, 1873).

B. The Enduring Legacy of Infrastructure and Material Culture :-

The Bhar's legacy endures not only in place names but in material culture. Archaeological remnants include Sati-Sata monuments (upright granite slabs depicting paired male/female figures alongside the sun/moon emblems), rude effigies of warriors armed with bow and sword, and Hanuman bas-reliefs (often the only remnant marking a Bhar site) (Smith, 1877). These artifacts, found across Hamirpur and Banda, serve as silent markers of a sophisticated but lost indigenous sovereignty (Smith, 1877).

Conclusion : The Long Arc of Ethno-Political Change in Medieval Central India :-

The Bhar tribe's history in medieval Bundelkhand and Gangetic Doab traces a dramatic fall from ancient sovereignty, linked to the Naga/Bharshiva dynasties, to profound socio-political marginalization. This collapse unfolded in three stages:

1. Chandela Rajput Ascendancy (c. 900–1300 CE): Hierarchical dominance and Kshatriya formalization stripped Bhar elites of power, appropriating their forts and cults.

2. Delhi Sultanate Incursions (13th century onward): Turkic campaigns brutally targeted Hindu chiefs, prioritizing land seizure and massacres over integration.

3. Rajput/Lodhi Conflicts (to 18th century): Prolonged warfare cemented Bhar defeat, leading to total loss of land rights and enduring social stigma.

Future research must scrutinize biased conqueror and colonial records, leveraging archaeological studies of Bhar-dîh sites and water systems to reframe how political violence and economic control eroded indigenous identities in Central India.

References :-

1. Agnihotri, R. L. (1973). *Baghelkhand ke Sanskrit kavya* [Sanskrit kavyas of Baghelakhand]. Chaukhambha Vidya Bhawan.
2. Bakshi, S. R. (1990). Vakataka dynasty. In *Encyclopaedia of ancient Indian culture*. Rima Publishing House.
3. Chauhan, S. (2020). *Mahoba ke rajvansh*. Publisher Anjuman Prakshan.
4. Conybeare, H. C. (1873). *Statistical descriptive and historical account of the North-Western Provinces of India* (Vol. 8). Publisher unspecified.
5. Crooke, W. (1896). *The tribes and castes of the North-western Provinces and Oudh*.
6. Cunningham, A. (1885). *Archaeological survey of India reports: A tour in Bundelkhand and Rewa in 1883-84*. Superintendent of Government Printing.
7. *Final report on the land revenue settlements of the Chanda district in the Central Provinces, 1897–1906*. (1909). Superintendent of Government Printing.
8. Drake-Brockman, D. L. (1909). *Banda: A gazetteer being Volume XXI of the District Gazetteers of United Provinces of Agra and Oudh*.
9. Jaffrelot, C., & Kalaiyarasan, A. (2024). Bhar/Rajbhar and identity politics in Uttar Pradesh: A study of Suheldev Bhartiya Samaj Party. *GSMP Journal*.
10. Kennedy, R. (1909). The new Hindu age. *Dawn and Dawn Society Magazine, 1*(Part 1), 308. Publisher unspecified.
11. Neave, E. R. (Ed.). (1910). *Mainpuri: A gazetteer*. Superintendent of Government Printing, United Provinces.
12. Nizami, A. H. (1941). The Baghel dynasty of Rewa. *Proceedings and Transactions of the 13th All-India Oriental Conference*.
13. Patterson, A. B. (1883). *Final settlement report of the Karwi sub-division, Banda District, North-Western Provinces*. North-Western Provinces and Oudh Government Press.
14. Porter, F. W. (1878). *Final settlement report of the Allahabad District*. North-Western Provinces and Oudh Government Press.
15. Smith, V. A. (1877). Notes on the Bhars and other early inhabitants of Bundelkhand. *Journal of the Asiatic Society of Bengal, 46*(2), 227–236.
16. Wright, F. N. (1881). *Statistical, descriptive, and historical account of the Etawah District, North-Western Provinces of India* (Vol. VI). North-Western Provinces' Government Press.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

WOMEN'S LIVES, BELIEFS AND PRACTICES AS REFLECTED IN THE GUPTA SCULPTURES AND INSCRIPTIONS

Mitha Lal Meena
Research Scholar Department of History
Panjab University, Chandigarh
Dr. Prashant Gaurav
Associate Professor, History
Post Graduate Government College, Sector-46, Chandigarh

Abstract :-

This paper will examine various aspects of women in the Gupta sculptures and inscriptions to reveal their various identities, such as how their lives were depicted, what beliefs they were assigned, and what they were practising. An in-depth study of different aspects of women, such as their lives, beliefs, and practices, could be helpful in addressing women's different questions more effectively. If we look at art in multiple contexts, it may reveal different aspects of women. Main sources are sculptures and Inscriptions. Removing the androcentric view of history and making them visible on the historical stage is the main concern of the article

Keywords :- Women, Lives, Beliefs, Practices, Sculptures, Inscriptions

Introduction :-

V. S. Agrawala rightly said Indian art is a mirror of the thought, religion, philosophy, cults and, culture of India.[1] Women's lives, beliefs and, practices are reflected in the Gupta sculptures and inscriptions. Coomaraswamy says popular beliefs and cults have a profound impact over ancient Indian art.[2] Major goddesses appeared with their male counterparts in the Gupta art, such as Saraswati, Lakshmi, and Durga.[3] Seema Bawa says that there are contrast ing views between the Dharamsashtras and art forms about women. The visual arts more fairly reflects women's issues compared to ancient Indian scriptures.

Several Goddesses and royal women are reflected in the Gupta art forms as powerful and holding agency, valour, and a strong shift away from traditional women's roles. Though several lay women also reflected in archaeological sources, exercising their economic and religious agency. Women's lives are profoundly shaped by deeply ingrained beliefs and cultural practices that vary across different societies and historical periods. While many traditions have historically confined women to domestic spheres.

Women are reflected in the Gupta sculptures in different roles and representations, which have given us an important idea of their lives, beliefs and practices. Scenes of procession, dancing, singing, and Mithuna or Dampati figures or worship of different goddesses (Shakti cult) reflect important aspects of women's lives, beliefs, and practices. They also reflect the interest es and tastes of people and their fashion styles, dress and ornaments. Women appeared with different facial expressions such as smiles,

quiet, and gentle. Mithuna (Loving couples) terracotta figures making love, wearing normal jewellery, attires reflected in art.[4] All these figures reflect significant information about women's socio-cultural and religious lives.

Women in Gupta inscriptions have been reflected strongly in different roles. Inscription records Royal ladies more effectively compared to ordinary women. We have found that women's life, religious, economic, and political agency have been reflected through it. Important aspects of women's lives, beliefs, and practices reflected as religious donors, they made land grants, temple constructor, advisory role, administrative and political role, headed religious institutions, and participated in public welfare works.

Women Lives :-

Ranjana Bharadwaj examines that how women appeared in strong positions in the coins of the Gupta into different postures; such as queen sitting on couch, Durga and Lakshmi goddesses representation.[5] Worship of female deities represents the Shakti cult symbol of feminine valour and destroys negative energy. Worship of female deities: Women depicted with different attire and ornaments in the sculptures, such as sari or petticoat and bodice, and were adorned with elaborate jewellery, including armlets, necklaces, earrings, and bangles, headdresses and anklets. The women depicted in the sculptures are celebrated for their grace, beauty, and emotional expression, and charming facial expressions. Appearing in many roles as queens, goddesses, Apsaras, dancers, court attendants, and lay women, they provide a multidimensional view of women's lives in Gupta society. The sculptures highlight aesthetic and idealised female forms, often with idealised physiques, elaborate hairstyles, and rich ornamentation, and the artists meticulously captured gestures, facial expressions, and body curves.

The most notable example is Prabhavatigupta, daughter of Chandragupta II, who ruled the Vakataka kingdom as regent queen for almost 20 years. Inscription records show she made a donation, it shows her economic status. She has exercised her political and religious agency. Kumaradevi, Dhruvadevi and Parbhavatigupta administrative, and political agency, suggest they might have been received some kind of education or professional training. Kalidasa also advocates for such training for royal ladies. Sculptures showcase Gupta period fashion trends, draped and stitched garments (antariya and uttariya), elaborate hairstyles and ornaments. They are important elements to look into women's lives.

Several archaeological and numismatic, and inscriptional sources confirmed that several royal women and lay women were present in public life, women's dance party scene from Pawya, and Deogarh indicates that claims. Mithuna terracotta figures had recovered from different temple sites such as Bhumra, Bhitargaon, and Nachna. It means a loving couple embracing each others and making love publicly. Sanchi inscription records about female donors and religious beliefs. Marriage alliances with different dynasties reflect their authority and political importance.[6] several royal women in Gupta age played important roles in making the mighty empire. They had seen as bridging instrument for friendly relations between two enemies. Agrawala had said aesthetic beauty had reached at climax, drapery used to conceal nudity and ornaments and attire or coiffure styles used to beautify women in Gupta art.[7]

Due to a marriage alliance between The Guptas and Lichchavis, Chandragupta I and Kumaradevi hold lofty titles like Maharajadhiraj and Mahadevi.[8] The Gupta rulers adopted marriage alliance police as the tool to mitigate their enemies and establish friendly relations in their surrounding dynasties.

Archaeological and textual sources suggest that in the Gupta age women were passionate towards different types of ornaments and attire. Ornaments and attires tells different aspects of their lives; their social and economic status, their religious beliefs and practices, royal and elite women wore gold ornamented, sophisticated and silk attires. Ordinary women bronze silver and low-quality fabrics.

Such as Mahadevi Srimati built a religious college. She might have had enough knowledge of architecture. Probably, she was from an economically well-off family and received a good education and training. In another inscription record, a woman named Konadevi's excavated a wonderful tank for

the welfare to the people. Coins depicts Goddess Sri and Saraswati. Konadevi's famous water tank. Inscription records that glorious Koshadevi did something remarkable but due to damage of inscription, it is not clear.[9]

Salabhanjika is represented in terracottas as a fertility cult.[10] Salabhanjika was a young charming lady with beautiful or attractive physical features. She is often associated with a sal tree. It is believed that her touch to tree turned to blossom. It is considered auspicious and associated with fertility cult. In the Gupta period Goddesses cult had reached perfection. Durga, Parvati, Matrika, Laxmi, Saptamatrikas.[11] They considered the symbol of fertility, auspiciousness, feminine power and destructor.[12] Ganga and Yamuna symbols of Indian culture, placed at several temples in anthropomorphic form. Kalidasa refers to the motif of two rivers reflected in Kumarsambhava.[13] Marriage alliances were an important policy of the Gupta kings. Several royal women played an important role in it. Kubernaga princess of the Naga clan, Santana sandhi, Prabhavatigupta married to Vakataka prince, other dynasties were Kuntla, Maukhari, Kadambas.[14]

Beliefs :-

Sanchi inscription records that a woman named Hariswamini's money was granted for religious merit. Other record shows that a religious gift was made by Viharswamini.[15] She also headed religious institution.These records clearly make certain statements women visibility in public space.

The Poona plate records that Prabhavati was a regent queen; she had made a land grant to Brahmanas and her family guru. She ruled for nearly 20 years, until her elder son recognised eligible age.[16] She also holds her Gupta gotra *Dharana* as it is.[17]

The Garhwa pillar inscription is significant from historical point of view. It depicts King-Queen I seating posture, as ornamented in other part six musicians were shown; out of the one being women, in another one six women are participating in a procession and enjoying. Both royal and lay skilled women are reflected in the panel.[18]

Udayagiri caves, located in Sagar district, Madhya Pradesh a sculpture displayed Apsaras playing and dancing.[19] A number of sculptures have shown women in dancing and singing panels. They reflect their lives important aspects and practices.

Nachna's Parvati temple doorframes show different types sculptures has been placed which speaks about different aspects of the Gupta women. Important themes were amorous couple, apsaras, Ganga and Yamuna in human form.[20]

A woman offering a cup of tea sculpture to man has been located in the Indian Museum located in Kolkata.[21] In an other sculpture a man and woman are standing in a balcony and he is offering a cup of wine to her.[22] Buddhist Bhikkuni or nun, which challenged patriarchal society denounced the normal social order.[23]

Samudragupta Asvamedha type coins depict Mahishi Dattadevi performing religious sacrifice.[24] The numismatic evidence indicates queen performed religious sacrifice along with her husband. Altekar argues that women was to performed religious sacrifices along with their husband not alone. King-queen type coins shows importance of Kumaradevi.[25]

Pleasure may be located within physical and moral spaces, bazar, brothels, gardens, terraces, sites, processions, gathering, festival, music, and dance.[26] Kalidasa refers about training of man and woman in fine arts.[27] these are the essential skills to required good life. 64 arts described in Vatasyayana's Kamasutra including dancing, singing and cooking.

Singing and dancing referred by Kalidasa in Meghaduta as important skills and need to learn for better life.[28] Archaeological and textual references shows that different religious rites, beliefs, practices, and vratas performed by women.

Concept of female beauty of Kalidasa mentioned in Meghaduta reflected in Gupta art.[29] Women with

round breasts, slender waist and broader hip are considered ideal women features, they were heavily ornamented upper to lower body part right from head to ankle. Ornamentation different uses; beautify, magical practices, religious, auspicious.[30]

In the Gupta age several royal or elite women were engaged in different activities such as Chandragupta I and Kumradevi marriage alliance, Chandragupta II and Dhruvadevi depicted on clay seal, a elite woman named Damasvamini had made a religious donation, Durga Mahisasuramardini reflected in art frequently.[31]

Swayamvara of Chiitrangadas's daughter shows the importance of the right to choose in Gupta society and contradicts Dharamsastras several claims.[32] Chaste women and Pativrata like terms often used in both sources [33] Another example of Draupadi Svayamyara (right to choose).[34]

Deogarh —female dancers and female musicians engaged in leisure aspect also shows their efficient skills by through poses and postures.[35] Social manners, sports, pastimes, drinking, dancing, music.[36]

Practices :-

Archaeological sources record that women played significant roles in household rituals and religious ceremonies, festivals, and processions alongside their husbands. However, their participation was often regulated by social norms. Samudragupta's Ashwamedha coins type depicts a sacrifice performed by the queen. Female deities- the Gupta period saw the emergence of strong female deity worship, including fertility cults and the worship of goddesses like Shakti, Saraswati, and Durga, Mahisasuramardini, Parvati, Saptamatrika, Ganga, and Yamuna were among the chief deities worshipped during the Gupta phase.

Inscriptions show women, both elite and common acting as religious beneficiaries. Inscriptions records their different activities enrolment related to socio-religious activities. They donated money for religious purpose, land to get religious merit, and assets to religious institutions. Indicates towards Gupta women religious beliefs. Archaeological and textual sources records, They adorned with different style and metal ornaments are symbol of age, wealth, social status, ethnic identity, and religious affiliations.[37]

Devangana Desai focuses on magico-religious beliefs and practices in the ancient India. Hinduism beliefs and practices related to fertility and vegetation cults. Women's visibility in rain making rites confirms these claims.[38]

The Gupta art evidence indicates that the Purdah practice (a practice of female veiling) was not in practice during this period.[39] In the Gupta period several procession scenes as reflected in visual forms, show women watching events and enjoying. A wife gives gifts to Brahmanas for religious merit.[40]

First historical evidence of sati tradition (widow immolation over her husband's funeral pyre) was found in the Gupta period in Eran inscription dated 510 AD recovered from Eran (Madhya Pradesh). It has been the first historical evidence of this terrible tradition.[41]

The Ramayana and Mahabharata Epics influenced socio-cultural and religious beliefs of the people, as they popularised the ideal womanhood concept, who has been a sacrificer, chaste wife.

In the sources their are contradiction about women treatment in texts and verse art.[42]

Shalbhanjika, Yakshi, and Surasundari are charming ladies with round breasts slender waist, broad and wide hips, reflected in Gupta Sculptures. Gupta women's facial expressions changed compared to Kusanas.[43] Other features changed which are aesthetic beauty and drapery cloth used to hide extra erotic. Beauty of body reflected through charming coiffure, drapery, bust, ornament, limbs, dance, music, nudity eliminated, diaphanous drapery used to beautify images, Pawaya, Garhwa pillar, Deogarh female party and dance scene, new facial types, Kalidasa and Bana references reflects different aspects of women's practices.[44]

Chandragupta I and Kumaradevi's marriage helped to rise power of Guptas, Pawaya dance panel, music.[45] Texts claims practices such as polyandry, Svayamavara were practice in royal and elite

families. Epics reflects advisory roles of queens Satyavati, Kunti, and Draupadi.[46] Stark contrast statements had reflected between art and every day life of women status shown in text and art forms.[47] Pativratadharma, chaste wife, good wife practice was prevalent in Puranas and Dharmashastras and Inscriptions.[48] Mother with child and mother goddesses figures associated with fertility cult and ritualistic practices. The cult of fertility have a direct bearing on the depiction of Mithuna in religious art.[49] Women exercise agency in religious donations as ritual authority, performers and consumers.[50] Royal women and ordinary women reflected in ancient India. royal as regent mothers queen, queen consorts, matrimonial alliance, donors.[51] However, we had more sources and example compared to lay women to trace their lives, beliefs and practices.In ancient India, terracotta figures depicting mithuna (loving couples) were a popular and auspicious motif symbolising fertility, prosperity, and the harmonious union of male and female principles.

Mandasor inscription was one of the most important epigraphic evidence which has put significant light on Gupta women's lives, beliefs and practices. Inscription records women as "women fire of love".[52] reddish like lips of charming women. The inscription reflects women desires and inherent feelings. Mandasor inscription records free movements of women in public park along with different activities.[53] It has been a significant source to unearthed women in the Gupta period. The Inscription confirms that women were visible in public space. They were enjoying their lives singing, dancing. Mandasor inscription records different activities such as they plucking mango, women angry with their lovers.[54] Several sculptural dance panels from Pawaya and Deogarh also confirms these claims. Archaeological and textual sources claim that women were fond of jewellery, attires and coiffure styles. Ancient people had different beliefs behind ornament wearing; for beautification, religious purpose and beliefs, magical power (amulets used) to signify marriage.[55] Women and girls had different vratas for their betterment or to get a better husband or other benefits.

Poona Cooper plate of Prabhavatigupta records she was born to Kubernaga (princess of the Naga clan) and Chandragupta II. It further records she was an extreme devotee of Bhagavat (Vishnu). She also holds the Gupta gotra "*Dharana"*.[56] It also suggests Prabhavatigupta spread the Bhagavat in southern India.

Conclusion :-

Gupta sculptures and inscriptions are an important source to make women visible on the historical stage. Through these sources, women's lives, beliefs and practice reflected of the Gupta period. This point of the Mandasor inscription is extremely important that depicts different activities of women. Apart from them sculptures of the Devi cult, Mithuna, and Salabhanjika had put important lives. Earlier, these sources were unexplored in comprehensive or this way.

References :-

1 V.S. Agrawala, Indian Art (Prithivi Prakashan, Varanasi, 1965), p. 1.
2 A.K. Coomaraswamy, History of Indian and Indonesian Art (New Delhi, 1972), pp. 75-9.
3 E.B. Havell, The Ideals of Indian Art (Delhi, 1972), p. 28.
4 Shonaleeka Kaul (Ed.), Cultural History of Early South Asia (Orient Blackswan, New Delhi, 2014), pp. 157-61.
5 Ranjana Bharadwaj, Gupta Coins: A Cultural Study (Regal Publications, New Delhi, 2017), pp. 59-66.
6 A. L. Basham, The Wonder That Was India (Picador India, New Delhi, 2022), pp. 55-57.
7 V. S. Agrawala, The Indian Art (Prithivi Prakashan, Varanasi, 1965), p. 199.
8 Preeti Prabhat, Matrimonial Alliances and Ancient Indian Polity (D.K. Print world, New Delhi, 2007), p. 167.
9 Fleet, Inscriptions of the Early Gupta Kings, pp. 208-12.
10 G.S. Bhadouria, Women in Indian Art (Delhi: Agam Kala Prakashan, 1995), p. 105.
11 Nilima Chitgopekar, (2021) Shakti: An Exploration of the Devine Feminine (Penguin, Delhi, 2021), p. 25.
12 Shree Bhagwan Singh, Hindu Iconography of The Gupta Period (Ramanand Vidha Bhawan, Delhi), p. 63.
13 Sudhakar Pandey, Ganga and Yamuna in Indian Art and Literature (Indra Prakashan, Chandigarh,1984), p. 56.

14 Tripat Sharma, Women In Ancient India, (Ess Ess Publications, New Delhi, 1987), pp. 32-56.
15 Fleet, Inscriptions of the Early Gupta Kings, pp. 262-63.
16 EI, Volume-14, 1982, p. 26
17 EI, Volume-15 (1982), pp. 40-43.
18 ASI, Tours in Bundelkhand and Malwa Region, 1966, p. 37
19 ASI, Tours in Bundelkhand and Malwa Region, 1966, p. 17
20 ASI, Tour in Bundelkhand, Malwa, Rewa and Gwalior Region (Volume -2, Part 1 & 2, 1884-85), p. 31
21 ASI, Annual Reports (1912-13), p. 16
22 ASI, Annual Reports (1912-13, Part 2), p. 26
23 H. Chakraborti, India as Reflected in the Inscriptions of Gupta Period (Delhi: Munshiram Manoharlal Publishers, 1978), p. 170.
24 D.C. Sircar (Ed.), (1942), Select Inscriptions: Bearing on Indian History And Civilisation (University of Calcutta, 1942), p. 268.
25 D.C. Sircar (Ed.), (1942), Select Inscriptions: Bearing on Indian History And Civilisation (University of Calcutta, 1942), p. 254.
26 Seema Bawa (Ed.), Locating Pleasure in Indian History: Prescribed and Proscribed Desires in Visual and Literary Cultures (Bloomsbury India, New Delhi, 2021), p. 21.
27 V. S. Agrawala, The Charming Role of Gupta Art (Rooplekha,Volume-3, 1946), p. 40.
28 G.B. Deglurkar, Portrayal of the Women (Publication Scheme, Jaipur, 2004), p. 10.
29 G.B. Deglurkar, Portrayal of the Women, p. 84.
30 G.B. Deglurkar, Portrayal of the Women, pp. 151-180.
31 T.K. Biswas & B. Jha, Gupta Sculptures: Bharat Kala Bhawan (Books & Books, New Delhi, 1986). Pp. 11-3.
32 M.N. Dutt (Trns.), Mahabharata, Volume-VII (Parimal Publisactions, Delhi, 2004), p. 9.
33 M.N. Dutt (Trns.), Mahabharata, Volume-II (Parimal Publisactions,Delhi, 2004), p. 597.
34 M.N. Dutt (Trns.), Mahabharata, Volume-I (Parimal Publisactions, Delhi, 2004), p. 511.
35 Lalit Kumar, A Dance Scene from the Devgarh Temple (Lalitkala, 1997, Delhi) p. 28,
36 S.C. Upadgyaya, Kamasutra of Vatsyayana (Taraporevala, Bombay, 1974), pp. 26-39.
37 Shonaleeka Kaul (Ed.), Cultural History of Early South Asia (Orient Blackswan, New Delhi, 2014), p. 89
38 Devangana Desai, Erotic Sculpture of India: A Socio-Cultural Study (Munshiram Manoharlal, New Delhi, 1985), p. 98.
39 Anvita Anand, Gupta Kal Main Nariyon Ki Isthati
(New Delhi: Radha Publications, 1990), pp. 17-25.
40 Fleet, Inscriptions of the Early Gupta Kings, p. 39.
41 Fleet, Inscriptions of the Early Gupta Kings, p. 93.
42 Upinder Singh, Ancient India: Culture of Contradictions (Aleph Book Company, Delhi, 2021), pp. 83-99.
43 G.S. Bhadouria, Women in Indian Art (Agam Kala Prakashan, Delhi, 2019), pp 99-128.
44 V.S. Agrawala, Gupta Art (Prithvi Prakashan, Varanasi, 1977), pp. 1-42.
45 J.G. Williams, The Art of Gupta India: Empire and Province (Princeton University Press, New Jersey, 1982) pp. 22-36.
46 Shalini Shah, The Making of Womanhood: Gender Relations in the Mahâbhârata (Manohar, Delhi, 1995), p. 151.
47 Heinz Mode, The Women in Indian Art (Allied Publisher, New Delhi,1970), p. 9.
48 Monika Saxena, Women and the Purânic Tradition in India (Taylor & Francis, New Delhi, 2018), pp. 1-19.
49 T. N. Mishra, Impact of Tantra on Religion and Art (D.K. Printworld, New Delhi), p. 67.
50 T. Pintchman (Ed.), Women's Lives, Women's Rituals in the Hindu Tradition (Oxford University Press, New York, 2007), p. 10.
51 Vijaya Laxmi Singh, Women and Gender in Ancient India: A study of Text and Inscriptions (Aryan Books International, New Delhi, 2015), pp. 1-18.
52 EI,Volume-XXVII (1956), p 17.
53 EI, V-14 (1982), p. 46.
54 Fleet, Inscriptions of the Early Gupta Kings, pp. 156-58.
55 Sulochana Ayyar, Costumes and Ornaments as Depicted in the Sculptures of Gwalior Museum. Delhi: (Mittal Publications, Delhi, 1987), p. 13.
56 EI,Volume -XX (1929-30)(pub. 1983), p. 240.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

HUMAN EMOTIONS IN ANIMAL NARRATION : A STUDY OF SUDHA MURTHY'S GOPI DIARIES

Heera Lal Chopra
Research scholar, English Department
Apex University, Jaipur
Dr. Priyanka Mishra
Assistant professor
Apex University, Jaipur

Abstract :-

The *Gopi Diaries* was written by post modern writer Sudha Murthy . Sudha Murthy's Gopi Diaries is a unique narrative that presents the world from the perspective of a pet dog named Gopi . The title is simple but it is a sensitive storytelling .The Gopi Diaries explores the depth of human emotions . These emotions are love , care , attachment , separation , and companionship . The story reflects the warmth of family bonding , where the pet animal Gopi becomes a medium to highlight human feelings in their purest form . It is a series of three books . The *Gopi Diaries* is a description of a pet animal . It is a heartwarming trilogy . The author shows a deep compassion and sympathy towards pet animal . The story shows love between humans and animals . The novel presents innocent love , honesty , emotion , human values towards pet animal . The Gopi shares his journey of being welcomed into a new home . It shares occasional loneliness in a new family . The writer explores human life , relationships , and emotions through the eyes of a Labrador dog named Gopi . This series is narrated in the first person . It is a trilogy—Coming Home , Finding Love , and Growing Up . This book is written in inimitable style . It is a very simple story which is told from a dog's perspective shows us just why pets are so precious . The writer narrates about happiness , sadness , and loyalty . It shows how pets become part of our lives and love between humans and animals . It highlights the bond of family care , kindness , happiness , joy , sadness and loyalty .The book teaches respect for emotions .It shows that pets give happiness and comfort . The novel presents a refreshing and innocent lens on everyday experiences . This paper critically examines the narrative style , thematic depth , and emotional undertones of the series . While this book is primarily written for children , the books engage with universal issues such as love , companionship , aging , and mortality . This trilogy tells about moral value and importance of pet animal. Sudha Murthy's simple yet profound storytelling effectively combines entertainment with moral education . The work highlights the bond between humans and animals , and serves as a subtle commentary on values like empathy, kindness, and emotional intelligence . The trilogy stands as a significant contribution to Indian children's literature, blending warmth, wisdom, and cultural context in a unique and accessible way. The narrative conveys how loyalty and unconditional affection can strengthen relationships and heal loneliness . By giving voice to an animal , Murthy successfully portrays the emotional needs of humans , reminding readers that kindness and empathy transcend species . The novel not only entertains but also inspires readers to recognize the importance in huma life .

Key words :- emotions , perspective , bond , loyalty , comfort , universal , companionship , mortality , entertainment , blending , wisdom , accessible , portrays , unique.

Introduction :-

Animal narration is a special way of storytelling . The writer gives voice to animals . The animal becomes the narrator and tells the story . Through this narration , human life and human emotions are shown in a new and touching manner . Animals do not speak in real life , but in literature they are given a voice . When they speak , they describe human life with innocence and honesty . This method makes emotions clear and pure . The feelings of love ,care ,loyalty ,sadness ,and joy are seen in a natural way .The Gopi Diaries is a heartwarming trilogy written by renowned Indian author and philanthropist Sudha Murthy. The novel explores themes of love , trust , care , and companionship within the framework of family life . Sudha Mrthy's Gopi Diaries is a good example of animal narration . By presenting human relationships from an animal's perspective , the author emphasizes values such as empathy . loyalty , and unconditional affection . The story reflects the innocence of childhood , the warmth of parental bonds ,and the comfort of togetherness . The series presents a unique perspective as it is narrated from the point of view of a Labrador dog named Gopi. Through his innocent eyes and pure heart, readers—especially children—get a glimpse into the world of humans, relationships, emotions, and values.

The three books in the series—Coming Home, Finding Love, and Growing Up —trace Gopi's life from puppyhood to old age. Each part of the story is filled with moments of joy, love, learning, and loss, making it more than just a pet's story. It becomes a reflection of life itself . Written in simple and affectionate language, The Gopi Diaries carries Sudha Murthy's trademark style—rooted in empathy, moral lessons, and cultural sensitivity. The books are not only entertaining but also serve as gentle moral guides for young readers, teaching values like compassion, respect, family bonding, and care for animals.

Narrative Techniques Use in The Gopi Diaries by Sudha Murthy :-

Author gives voice to animal to present human life and emotions . Animal perspective makes emotions look pure and honest . Sudha Murthy uses several distinct and effective narrative techniques in The Gopi Diaries trilogy (Coming Home, Finding Love, and Growing Up), making the series engaging, emotionally resonant, and suitable for young readers. These techniques help convey deeper themes such as love, empathy, and the passage of time through a gentle and relatable voice.

Love and Affection :-

The pet animal Gopi ,the dog narrates how he feels love from his owners .He senses the warmth in their voice and touch . The Gopi says in the first part '' I' m Home '' ,'' A sudden jerk made me open my eyes . I seemed to be inside something . I looked around and saw that I was in a big brown basket .I saw the young man who had picked me up earlier .He caressed my head and I relaxed . I was not in danger. I licked his wrist'' .Love is not expressed in words only , it is felt through actions . Sudha Murthy shows that animals can recognize love in small gestures . The emotion of love makes a deep bond between humans and pats .

Care and protection :-

Gopi feels safe with his family . In the first part '' I'm Home ,'' takes a pet animal in authors home ,the Gopi says '' They said , 'welcome , little boy , we welcome you with Aarti and blessings to your new home. You are a member of our family now '' these statements shows that all family members of authors family like and care him .He notices how they care him with food , medicine ,and comfort . Through Gopi , the story shows that care is a universal emotion . Animals too understand when someone protects them .

Happiness and Joy :-

Gopi narrates his joy in playing ,running ,and being with the family. The wagging of his tail becomes a symbol of joy . In the first part of this book ,chapter ‘’The Naming Ceremony ‘’ Gopi says , ‘’I was happily rolling on the carpet , when I heard a loud ringing noise . I had never heard such a sound before ‘’. Human family members also become happy when Gopi shows excitement .

Loneliness and Sadness :-

sometimes Gopi feels lonely when family members go out . He expresses sadness through silence , lying down , or not eating .These actions reflect the same emotions that humans feel in loneliness . The author highlights that animals too need company and attention . In the first part of the book chapter ‘’ Meeting the Girls ‘’ The Gopi says , ‘’ Ajji pated me and said , Gopi , you must share your things with others . That poor birds has a nest on top of the tree . She is going to give birth to small birds. You should not scare her away ‘’.

Jealous, Trust and Insecurity :-

Gopi feels insecure when attention goes to someone else . He shows jealous when other people or animals come near his family. This emotion is similar to human feelings of competition . Through Gopi , Sudha Murthy shows that jealous is natural . In the first part of the book ,chapter ‘’Meeting the Girls ‘’ Gopi says , ‘’My Ajji said , you are going to have a few special guests today . Then she introduced me to a beautiful young lady , this is Shrutee – your Didi. She has a lot of experience in handling people like you, and has come today specially to see you . I saw her eyes – they were full of affection . I sniffed the air around her – I smelt biscuits and I instantly knew that she was a caring person’’. Gopi trusts his owners completely. He follows them and depends on their love .Faithfulness becomes a strong theme in the novel .The author shows how dogs remain loyal in every situation .This trust reflects the pure bond between humans and animals.

First-Person Animal Narration :-

The entire series is told from the first-person point of view of Gopi, a Labrador dog . This unique perspective creates empathy and allows readers to see human behavior from a non-human, emotionally honest lens . The technique bridges the gap between animals and humans, giving Gopi a voice full of curiosity, loyalty, and innocence.

Simplicity and Clarity :-

Murthy uses clear, simple language suitable for children and early readers. The short sentences and straightforward vocabulary ensure accessibility while still offering emotional depth . This simplicity enhances the storytelling, focusing attention on emotions and life lessons rather than complex plots.

Realism with Emotional Depth :-

The events in Gopi’s life are grounded in realistic domestic settings—an urban Indian household, parks, vets, and family routines .Everyday experiences like being adopted, forming bonds, visiting the vet, or dealing with loss are narrated through a dog’s perspective, lending emotional warmth and relatability. Murthy masterfully portrays feelings such as joy, confusion, jealousy, and grief in ways children can understand.

Chronological Narrative Structure :-

The trilogy follows Gopi’s life in a linear timeline: from being a puppy in Coming Home, a growing companion in Finding Love, to old age in Happy Ending .This progression mirrors human life

stages—childhood, youth, aging—and helps young readers understand growth and change over time.

Dialogues and Internal Monologue :-

While animals don't speak in real life, Gopi's inner thoughts and emotions are articulated clearly. Conversations between human characters are included, but Gopi's interpretations and reflections are central .These internal monologues often include subtle humor and insightful commentary on human behavior.

Didactic Tone (Moral Teaching without Preaching :-

Murthy's style is gently didactic. She doesn't preach, but the stories naturally convey values such as: kindness to animals ,respect for elders and helpers ,sharing and empathy. These lessons are embedded in the story rather than imposed, making them more impactful.

Illustration-Enhanced Storytelling (in printed editions :-

The printed editions of The Gopi Diaries contain illustrations that complement the narrative. These visuals enhance comprehension, especially for younger readers, and add a playful dimension to the story. Sudha Murthy's narrative techniques in The Gopi Diaries blend simplicity with emotional wisdom, making the books accessible yet profound. By choosing a dog as the narrator, she invites readers to look at life through a lens of loyalty, love, and innocence. Her storytelling is not just entertaining but also morally and emotionally enriching, making the trilogy a standout example in Indian children's literature.

Writing Style of Sudha Murthy in The Gopi Diaries :-

Sudha Murthy's writing in The Gopi Diaries reflects her signature qualities of simplicity, clarity, warmth, and moral depth. While intended for children, the series speaks to all age groups due to its emotional sincerity and universal themes. Her writing style is carefully crafted to communicate effectively with young readers without compromising on meaning or message.

Simple and Lucid Language :-

Murthy uses easy-to-understand vocabulary and short, clear sentences, making the books accessible to children, beginners, and even those unfamiliar with English .There is no literary complexity or ornamental language, which supports early reading development.

Empathetic and Emotional Tone :-

Her tone throughout the series is gentle, loving, and empathetic, reflecting the emotions of a dog living in a human family. Whether it's joy, confusion, fear, or grief, the emotional expressions are honest and relatable.

Child-Centered Narrative Approach :-

The writing is structured to suit the child's worldview, with frequent emotional cues, explanations, and moral lessons . Themes are introduced naturally through events, not forced or over-explained.

Anthropomorphic Voice :-

Gopi, the dog, speaks in first person, expressing his thoughts, feelings, and observations in a human-like way. Murthy balances this anthropomorphism carefully—Gopi never becomes too human, retaining his animal instincts and innocence.

Observational and Reflective Style :-

Murthy often allows Gopi to observe human behavior and reflect on it in simple, thought-provoking ways. These reflections carry subtle criticism or praise of human values, behavior, and relationships—without ever being judgmental.

Didactic yet Gentle :-

As in many of her works, Murthy imparts moral lessons in a non-preachy manner. Lessons on kindness, honesty, empathy, and acceptance are embedded within the story, not imposed from outside.

Conclusion :-

Animal narration is not only for children . It carries strong messages for adults also . It teaches readers that emotions like compassion , empathy .and care are universal . Whether it is human or animal , these emotions bind all living beings together . The Gopi Diaries by Sudha Murthy is culturally rooted in Indian values and socially relevant for today's children. The Gopi Diaries is not just about a dog , it is about relationships , emotions and values . It shows love makes a home complete . Through Gopi's eyes , readers see life in a fresh way . The novel is very simple but deeply touching . This trilogy reminds us that love and care are the foundations of happiness . It combines storytelling with life lessons, offering a gentle introduction to emotional maturity, ethical behavior, and cultural identity. The trilogy is a valuable educational resource and a mirror of everyday Indian life, making it ideal for use in homes, schools, and libraries . It is a reflection of love , family , companionship , and values that guide everyday life . Through the innocent eyes of Gopi , Sudha Murthy teaches readers about responsibility , loyalty , simplicity , and the importance of relationships . The themes are universal and touch the hearts of both children and adults . The book gives deep messages about how to live with love , care , and joy . Animal narration is an effective literary device to reflect human emotions in a touching and memorable way .The reader relates deeply because emotions are simple and heartfelt . The animal narration teaches adults about humanity and emotional values .

Bibliography :-

1. Murthy, Sudha. The Gopi Diaries: Coming Home. HarperCollins, 2019.
2. Murthy, Sudha. The Gopi Diaries: Finding Love. HarperCollins, 2021.
3. Murthy, Sudha. The Gopi Diaries: Growing Up. HarperCollins, 2022.
4. Murthy, Sudha. The Magic Drum and Other Favourite Stories. Penguin, 2006.
5. Murthy, Sudha. The Bird with the Golden Wings: Stories of Wit and Magic. Penguin, 2014.
6. Murthy, Sudha. Grandma's Bag of Stories. Penguin, 2015.
7. Chandra, N.D.R. Contemporary Indian English Literature: Theory and Practice. Authors Press, 2013.– Has sections on modern Indian women writers including Sudha Murthy.
8. Priyadarshini, R. "Moral and Cultural Values in Sudha Murthy's Children's Stories." International Journal of English Literature and Social Sciences (IJELS), Vol. 5, No. 4, 2020.
9. Sharma, Ritu. "Themes and Narrative Techniques in Sudha Murthy's Writings for Children." Journal of Literature and Aesthetics, Vol. 12, No. 2, 2021.
10. Review articles and interviews with Sudha Murthy in The Hindu, Times of India, and Indian Express often provide insights into her philosophy of writing for children.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

TRADEMARK LAW AND ARTIFICIAL INTELLIGENCE (AI): CONVERGENCES AND REPERCUSSIONS

Dr. Indra Daman Tiwari
Assistant Professor, School of Law
Raffles University

Abstract :-

The largest technological companies globally, like Google, Microsoft, IBM, Facebook, and others, have been relentlessly integrating artificial intelligence (AI) into the world of online marketing, online retailing, and even product manufacturing. For instance, after you post a photo to Facebook, the prompt to "tag" the people in the photo appears.

Even the likely friend of the person you wish to tag is recommended when you click on a particular place. In essence, it "traces" the beginnings through the idea of machine learning, which has played a significant role in the advancement of AI.

Companies like Amazon have acknowledged[1] that using machine learning and other aspects of AI is essential for them to do in order to increase their market. In fact, Amazon just unveiled "Project Zero" which will use AI to identify and categorise various counterfeit goods.[2] Although this effort is still in its infancy and is only being implemented locally, it will soon be implemented globally. Therefore, it is safe to conclude that the development of artificial intelligence is having an impact on product branding and marketing. Trademark law is one of the most important components of legal jurisprudence that is used when it comes to product branding and marketing. I hope to explore and outline the potential ramifications in this work.

What does artificial intelligence (AI) entail?

The term "artificial intelligence" first used in 1956 by John McCarthy, has been inconsistent and has changed over time. McCarthy's vision of "thinking machines" was what he meant when he first used the phrase "aartificial intelligence." As the discipline developed gradually, the concept grew and changed to include the idea of technology capable of "imitating human brain." The same is described as "the theory and development of computer systems able to perform tasks" by the Oxford Dictionary.

Normally requiring human intelligence includes tasks like decision-making, language translation, and visual perception, speech recognition.[3] Simply defined, this term's definition encompasses a variety of concepts and divisions, with one of the key divisions being between "Strong AI" (significant mimicry of human functions and multitasking) and "Weak AI" (limited to straightforward unilateral tasks).[4]

Emerging aspects of trademark law :-

It would be erroneous to think that AI's instability is the only constant feature of this intersection. With time, the way goods are purchased and sold has undergone revolutionary changes, which have also

had an impact on the development of trademark law. Every significant shift in how people shop has resulted in change, and each such shift has required adjustments to the jurisprudence around trademark law. This body of law was established during a time when the philosophy of shopping required assistance from store clerks, who were seen to be better, qualified to direct customers to the products that best meet their needs. It was extremely unlikely that these assistants could have made a mistake in differentiating the trademarks of various products being offered at their shops because they had received training in this skill and knew the minuscule details of the product, its use, and the reliability of the brand producing it. After that, the era of self-service stores began with the opening of a location in the US. The "Piggly Wiggly" network of stores revolutionized how consumers made purchases by introducing the concept of "self determined choice"[5] when it first launched in the Memphis area of the United States. Additionally, it implied that the perception of a producer's brand worth among consumers is no longer shaped by the advice of middlemen or the like of sales assistants.

As a result, trademarks became progressively more important. However, it also increased the likelihood that a potential customer would be confused between two brands of a particular product. In the 1990s, as internet platforms became a feasible platform for presenting goods, producers were forced to get familiar with new ideas like "domain names," "initial interest ambiguity," "meta tags," "metadata," and so forth. Similar to this, the emergence of social media platforms in the 2000s led to a rethinking of human decision-making. Social media had a significant impact on consumers' product choices.

Trending became a new standard, and prominent brand endorsements on social media acted as the biggest trend, driving force behind a product's market expansion.

Convergence of Unfavorable Phenomena :-

Now, it seems sense to claim that Artificial Intelligence is the next development in this line of market revolutions, and as a result, in trademark law. Algorithmic systems based on AI are being used by online businesses to provide potential customer recommendations. They read and create data based on our search history, preferences, purchasing histories, and numerous other minute particulars while doing this. It is crucial to remember that by using AI-based solutions, Trademark's core functionality is being rendered obsolete. AI might be considered a realistic instrument to rob clients of their freedom to select the things they want.

It is both fascinating and upsetting to observe that even if the client believes he is seeing the products of his choosing or is in charge of his decision-making process, the majority of customers are ignorant of this restriction placed on their options. Mr. Ajay Agarwal examined this market structure in his book, "Prediction Machines: The Simple Economics of Artificial Intelligence." He explains why it is a plausible possibility that AI will replace people's ability to make decisions.

Using this technology, market retailers will change the current strategy of "shopping to shipping" to shipping to shopping."[6] With the development of AI, online retailers will ship the product to you based on your preferences decoded by these algorithmic systems, and you will finalise the payment after trying the product based on your liking. This is opposed to the current approach where a person shops for a particular commodity which is then subsequently shipped to them. Customers might believe that it is primarily their decision, yet this method still places restrictions on their freedom of choice. Once formed, this AI-based prediction system won't require the shops to make any sizable investments, and the money saved will be put to use improving the efficiency of the delivery system through the use of closer points of contact, drone deliveries, and other methods.

We have seen an increase in the number of AI aid solutions on the market as a result of these quick improvements. The parent companies of Google Home, Amazon Echo, Apple Home Pod, Samsung bots, and other smart home devices have been releasing newer, more intelligent models with an increasing skill at mimicking human thoughts and preferences. But it's important to think through the implications of using these goods while making decisions in real life.

What determines the liability of such decisions, for instance, if a person uses one of these AI-

based systems to order a certain product and the algorithm selects the best alternative based on the data gathered from monitoring the user's choices and preferences? Are tech behemoths like Google or Amazon responsible for such infringements if the purchased item turns out to be fake or if the amount or quality of the thing ordered differs significantly from what was desired? If the product manufacturer's intellectual property rights were first violated and his goodwill reputation for his product was abused, would they be held liable?

More importantly, this new use of AI ignores fundamental aspects of trademark law including "likelihood of ambiguity," "unwary customer," "imperfect recollection," etc. For the confluence of AI and trademark law to be justified, these important questions must be addressed.

The newly developed technology by Amazon, known as the "Amazon Dash Replenishment Service" (DRS)[7], is another example of AI gnawing at the foundations of trademarks. In the case that the stock of that product is running short, this method enables you to automatically acquire supplies from Amazon. The DRS system sets the order and completes the payment (default added method) once the consumer chooses the products and chooses the automatic delivery system.

The DRS system puts the order and completes the payment (using the default added method) when the consumer chooses the products and elects for automated delivery. There are two potential issues with this. It unintentionally restricts the consumer's ability to try several product brands. Many times, we don't want to change our usual milk or sugar provider, but we wind up doing so when we find a better one. Additionally, as this system develops, it might also have the choice of selecting the brand at its discretion. This might sound like a reach, but it becomes plausible when one considers the use of AI chatbots by various e-commerce platforms, which serve as the digital equivalent of personalised service.

Take the "Kik" bot from H&M or the "Shop bot" from eBay, for example. People are more ready to give their personal information to these bot software's if they believe they will receive better and more individualised recommendations, according to a survey performed by PSFK IQ, a trends research platform for strategy.[8] A successful AI chatbot has the power to affect a customer's loyalty.

But won't an AI-based bot be able to provide recommendations that are biased? Machine learning- based algorithmic systems are able to create new codes as they process inputs.

A modification to the law :-

The aforementioned situations suggest that the fundamental principles of trademark law require change. The necessity to update phrases like "imperfect recollection," "secondary infringement," "average consumer," "likelihood of confusion," etc. is highlighted by this.

These concepts are the cornerstone of trademark law, and in light of the quick development of technology, they need to be reviewed. All of them take into account that people have the ability to select items at their discretion and effectively "trace" the history of the goods they are interested in.

Let's examine one of these phrases to learn about the potential Ramifications. The Supreme Court of India clarified "average consumer" in the case of Cadilla Healthcare Ltd. v. Cadilla Pharmaceuticals Ltd.[9] possible consumer behaviours if a person has a generally average IQ and a predisposition towards "imperfect recollection," they are considered typical consumers. This perspective is totally at odds with the core of the application of AI that was previously covered. An AI-based bot does not have average intelligence and is not capable of having faulty memory. There will be a small degree of confusion. Perhaps there would now be a lower bar for trademark infringement?

Furthermore, it will be a contentious issue how exactly the term "average consumer" and other fundamental principles of trademark law will be applied to AI. As a result, it will be harder to determine the liabilities and related violations.

AI and Trademark enforcement :-

It makes sense that artificial intelligence will certainly have an impact on trademark enforcement

as well. AI is more suitable for trademark examination than humans, according to Charlie Hill, who oversees the product section of "Trademark Now," a global IP resource organization. A number of reasons hinder the effectiveness of human examination of trademark applications. Multiple trademark registrations, disjointed trademark offices, inaccurate human-eye analysis, etc.

AI and Trademark contentions in courts :-

The courts have not yet noted a trend in the prominence of concerns about trademark liability and artificial intelligence. Despite this, there haven't been many cases, particularly in the last ten years that have combined trademark liability and AI. More crucially, wealthy nations like the European Union have dominated discussion on it. For instance, the Court did not find Google guilty in the well-known Google France case[10] where the issue was around the keyword advertisement.

Conclusion :-

In conclusion, it is clear that the rise of artificial intelligence will have an impact on every aspect of the legal profession, and trademark law won't be an exception. Therefore, there is a continuing need for legal structure investigation and revision to ensure that trademark law does not simply become a collection of legal omissions that cannot support trademark claims. As of now, there are no specific recommendations that can be made regarding how the law should be shaped or organized, particularly in the Indian context to incorporate the quickly developing Artificial intelligence into the very core of Trademark law. But it is nonetheless imperative to be open in this aspect, and keep in mind the basis ideals of preventing counterfeiting and exploitation of the goodwill of brands. Reducing monopoly, increasing competition and ensuring quality products for the consumer are the ideals that serve as the purpose of Trademark law. Technological advancements should not be hindrance to the same, but in fact should serve as tools to facilitate the process. The UK court's decision17 in the Lush case serves as a healthy precedent that elucidates a possible imitational exercise. It is high time that Indian jurisprudence too takes into account the relevance of such dynamic interpretations.

Reference :-

1 Amazon, Machine Learning, AWS (Jan. 25, 2021) https://aws.amazon.com/machine-learning/what-is-ai/.

2 Shubham Borkar & Nitish Daniel, India: A Comprehensive Review of Amazon Project Zero, Analysis in Detail of the Policy Issues, Takedown Mechanism and its Applicability in India, MONDAQ (Jan. 25, 2021) https://www.mondaq.com/india/trademark/788860/a-comprehensive-review-of-amazon-project-zeroanticounterfeiting-initiative-analysis-in-detail-of-the-policy-issues-takedownmechanism-and-its-applicabilityinindia.

3 OXFORD, OXFORD ENGLISH DICTIONARY (Oxford University Press, 3rd ed., 2010).

4 Chetan Kumar GN, Artificial Intelligence: Definition, Types, Examples, Technologies, MEDIUM (Jan. 25, 2021) https://medium.com/@chethankumargn/artificial-intelligence-definition-types-examples technologies962ea75c7b9b.

5 Kat Eschner, The Bizarre Story of Piggly Wiggly, the First Self-Service Grocery Store, SMITHSONIAN MAGAZINE (Jan. 27, 2021) https://www.smithsonianmag.com/smart-news/bizarre-story-piggly-wiggly-firstself- servicegrocery-

6 Ajay Agrawal, Joshua Gans And Avi Goldfarb, Prediction Machines: The Simple Economics Of Artificial Intelligence (Harvard Business Review Press, 2018).

7 Amazon Alexa Team, Amazon Dash Replenishment, AMAZON DEVELOPERS (Jan. 26, 2021) https://developer.amazon.com/en-US/alexa/dash-services.

8 PSFK, The Future of Retail, PSFK (Jan. 27, 2021) https://www.psfk.com/2018/04/chat-ai-shoppingassistantsconversational-commerce.html.

9 Cadilla Healthcare Ltd. v. Cadilla Pharmaceuticals Ltd, 2001 (2) PTC 541 SC.

10 Google Franc SARL & Google Inc. v Louis Vuitton Malletier SA, ECLI: EU: C: 2010:159.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

KNOWLEDGE, TECHNOLOGY, AND SOCIETAL NORMS: EPIGRAPHY AS A DIALOGUE BETWEEN PAST AND DIGITAL FUTURES

Ayesha Khatoon
Visva Bharati University

Abstract :-

Epigraphy has long served as one of the most powerful tools in reconstructing the history of the Indian subcontinent. Inscriptions inscribed on rocks, pillars, temples, and copper plates embody not only royal authority but also the voices of communities, merchants, monks, and patrons. Traditionally studied with philological precision, epigraphy today stands at the threshold of a digital revolution. The integration of 3D scanning, multispectral imaging, artificial intelligence, and geographic information systems is reshaping how we read, interpret, and preserve inscriptions. This paper examines epigraphy through a multidisciplinary lens, tracing its evolution from the Mauryan age to the Vijayanagara Empire while situating it in today's digital age. By placing technology in dialogue with society and historical knowledge, the study highlights how inscriptions not only narrate dynastic events but also embody values, cultural norms, and ethical considerations. The digital turn in epigraphy represents not merely a methodological shift but also a profound rethinking of heritage, access, and scholarly collaboration.

Keywords:- Epigraphy, Digital Humanities, Inscriptions, Indian History, Heritage Preservation, Multidisciplinary Dialogue

Introduction :-

Inscriptions are more than texts etched into stone or metal—they are voices of antiquity, resonating across centuries. They tell us who ruled, what was valued, how communities interacted, and how knowledge itself was conceived. Indian epigraphy, with its vast chronological span and linguistic diversity, offers a unique archive that links politics, religion, economy, and culture.

In recent decades, the discipline has undergone a quiet yet profound transformation. No longer limited to decipherment and philological study, epigraphy now intersects with technology, cultural studies, and even ethics. The digital era offers unprecedented tools—high-resolution imaging, artificial intelligence (AI)-assisted decipherment, and global databases—that allow us to preserve and reinterpret inscriptions in ways unimaginable to earlier scholars such as James Prinsep, G. Bühler, and D.C. Sircar.

This paper situates Indian epigraphy at the intersection of knowledge, technology, and societal norms. It explores the classical tradition of inscriptional study, showcases case studies from different dynasties, and reflects on how digital tools are reshaping both scholarly practice and our relationship with the past.

Inscriptions as Knowledge Systems :-

Every inscription is more than the sum of its words. It is a knowledge system—a carefully encoded message that reflects the political, social, and religious values of its time. The Gupta Prayāga Prashasti, inscribed on a sandstone pillar at Allahabad, not only glorifies Samudragupta's conquests but also legitimizes kingship itself as divinely sanctioned.The copper plates of the Bhaumakaras in Odisha record grants of villages to Buddhist monasteries and Brahmanical institutions, revealing a complex negotiation of religious patronage.

Such inscriptions preserve administrative systems, land distribution mechanisms, tax structures, and local hierarchies. They also embody intangible values—continuity, legitimacy, sanctity. In a way, they were the "official archives" of their time, carved not on fragile palm leaves but on materials intended to endure. And yet, despite their durability, many inscriptions are today vulnerable—faded by weather, scarred by human neglect, and silenced by centuries of erosion.

To engage with them, therefore, is not merely to decode language. It is to recover fragments of human life, echoes of choices made by kings and communities alike. Each syllable chiseled into stone is a declaration of memory against oblivion.

Inscriptions were not only political. They recorded land grants, temple endowments, guild activities, and even personal aspirations. They reflect language shifts (from Prakrit to Sanskrit, from Sanskrit to regional vernaculars), script developments (Brahmi to Nāgarī, Grantha, Telugu-Kannada, Odia, and beyond), and ideological movements (Buddhism, Jainism, VaicGavism, Śaivism, Śāktism).

Thus, epigraphy is inherently multidisciplinary—touching history, linguistics, art history, archaeology, environmental studies, and ethics.

Case Studies Across Dynasties :-

Mauryan Period :-

The Aśokan edicts (3rd century BCE) form the first subcontinental network of inscriptional communication. Rock Edict XIII at Girnar, for instance, conveys remorse after the Kalinga war and a vision of universal compassion.



Figure 1:- Aśokan Rock Edict, Girnar, Gujarat (circa 250 BCE) Source: gujarattourism.com

Gupta Age :-

The Allahabad Pillar Inscription of Samudragupta (4th century CE) written by his court poet and minister , Harisena, is both panegyric and historical record, celebrating military conquests while also projecting ideals of kingship. It illustrates how epigraphy shaped political legitimacy.



Figure 2:- Allahabad Pillar Inscription of Samudragupta, Allahabad, Uttar Pradesh,circa.4th century CE (circa 335-380 AD) Source : Indica/today

Pallavas and Chalukyas :-

The Pallava inscriptions at Kanchipuram and Mahabalipuram (7th–8th century CE) record temple foundations and endowments, while the Aihole inscription of Pulakesin II (634 CE) weaves dynastic pride into poetic Sanskrit verse.



Figure 3: Aihole Inscription of Pulakeśin II , Chalukya dynasty, Aihole, Karnataka, circa.634-635 CE Source : Peepul Tree stories

Cholas :-

Chola copper-plate grants (10th–12th century CE) detail elaborate endowments to temples, offering rich economic and social insights. These records go beyond royal glory, capturing the micro-histories of villages, merchants, and artisans.



Figure 4: Chola Copper Plate Grant, Leiden Collection of Rājendra Chola I (c. 1012-1042), presently preserved at Leiden University, Netherlands Source: Leidenspecialcollectionsblog.nl

Eastern India – Odisha Dynasties :-

The Bhaumakara and SomavaAśī inscriptions (8th–11th centuries CE) illuminate the regional dynamics of Odisha. Land grants, temple patronage, and religious pluralism appear side by side. The Bhaumakaras, for instance, issued copper-plate charters that empowered Buddhist, Jain, and Brahmanical institutions alike.



Figure 5: Patlinga Copper Plate Grant Inscription of Dandi Mahadevi, circa. Bhauma year 190 corresponding to 926 A.D Source: Orissa Review June, 2006

Vijayanagara Empire :-

Epigraphy under the Vijayanagara rulers (14th–16th centuries CE) reached monumental scales. Inscriptions from Hampi, spread across temples and marketplaces, record not just political might but also commercial regulation and social organization.

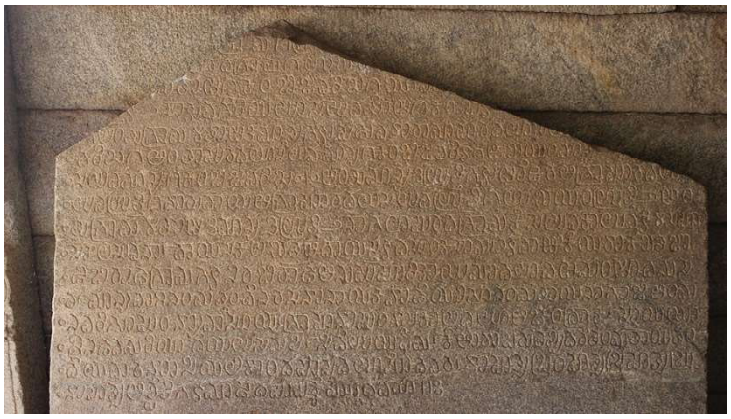


Figure 6**: Kannada inscription of Krishnadeva Raya (1509 AD) at the underground Shiva (Prasanna Virupaksha) temple in Hampi Source: Wikimedia commons**

The Digital Turn in Epigraphy :-

The 21st century has brought about a paradigm shift in how inscriptions are studied and preserved. Some of which includes:

***3D Laser Scanning & Photogrammetry:-** High-Resolution Imaging and 3D Scanning allow inscriptions to be captured in exquisite detail, often revealing letters invisible to the naked eye. Broken or eroded

texts can be virtually reconstructed, offering new chances for decipherment.

***Multispectral Imaging:-** It uses different wavelengths of light to bring out inscriptions that have faded or been overwritten, restoring what seemed lost forever.

***Artificial Intelligence & Machine Learning:-** It assists in script recognition, character prediction, and even linguistic reconstruction which in turn help scholars identify letter forms and even propose dating through comparative paleography.

***GIS Mapping:-** It enables spatial visualization of inscription networks—showing how trade routes, religious centers, and political frontiers intersected. It also situates inscriptions within broader landscapes, linking copper-plate grants to the villages they once described, or stone edicts to trade routes and pilgrimage paths.

***Digital Archives:-** It democratize access, placing once-remote inscriptions onto open platforms where students across the world can consult them freely. Platforms like South Asia Inscriptions Database and projects under the Archaeological Survey of India are democratizing access.

Through these tools, epigraphy is no longer confined to specialists in archives but is accessible to global audiences—students, researchers, and the general public alike.

A Multidisciplinary Dialogue :-

Epigraphy embodies the journal's theme of knowledge, technology, and societal norms in ways like:

Knowledge:- Inscriptions record dynastic chronologies, religious philosophies, and social contracts which helps us frame our understanding of dynastic histories that has etched the glory of the Ancient Indian world itself.

Technology:- From the chisel of the Mauryan mason to today's laser scanner, technology mediates the inscription's survival and accessibility. With the use of various tools in epigraphical studies ,scholars have been able to go beyond the basic understanding of why?.

Societal Norms:- Inscriptions mirror social hierarchies, gender roles, caste practices, and economic structures. It embodies not just social structures but also helps scholar examine the administrative structures of the time as many inscriptions included names of the ministers who worked under the rulers. For example: Damodarpur Copperplate charters of Kumāragupta I include the names of the ministers and the area they governed in the Bengal regions under the mentioned king.

The modern digital turn fosters dialogue between historians, computer scientists, conservationists, linguists, and ethicists. For example, digitizing a Chola copper plate is not only a technical act—it also requires historians to interpret land tenure systems, linguists to analyze Tamil formulae, and ethicists to ask who owns digital heritage.

Challenges and Ethical Reflections:-

While digital technologies expand access, they also raise questions:

Context vs. Data: An inscription removed from its landscape risks becoming a floating artifact which in turn can harm the systemic context of the artifact itself losing its original homeland.

Cultural Ownership: Should local communities have a say in how their epigraphic heritage is digitized and circulated?

Over-Reliance on Technology: An overemphasis on technology risks reducing inscriptions to mere "data," stripping them of the sacredness they still hold for local communities. Over-reliance on machine-assisted interpretation risks flattening nuance. Furthermore, the digital divide is real: while metropolitan universities may embrace 3D imaging and AI tools, rural institutions—often closest to the inscriptions themselves—remain excluded. AI can assist with scripts, but the interpretative nuance remains a human responsibility.

Thus, there is a moral responsibility here. Inscriptions are not cold artifacts; they are living testimonies of ancestors. To digitize them is to extend their life, but it must be done with humility and cultural sensitivity. A copper plate preserved in a database is valuable, but its resonance is fullest only when communities, scholars, and students all feel connected to it. Digital epigraphy must balance innovation with sensitivity to historical context and cultural ethics.

Conclusion :-

Epigraphy in India has always been a dialogue—between rulers and subjects, donors and deities, past and present. Today, this dialogue extends into the digital realm, where technology amplifies voices long silenced by weather and time. By weaving together classical philology, archaeology, history, digital technology, and ethical reflection, we rediscover inscriptions not as relics of the past but as living testimonies to the evolving interplay of knowledge, technology, and societal norms.

References:-

1. Bühler, G. (1896). Indian Paleography. Oxford: Clarendon Press.
2. Fleet, J. F. (1888). Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. 3: Inscriptions of the Early Gupta Kings. Calcutta: Government of India.
3. Salomon, R. (1998). Indian Epigraphy: A Guide to the Study of Inscriptions in Sanskrit, Prakrit, and the Other Indo-Aryan Languages. New York: Oxford University Press.
4. Sircar, D. C. (1965). Select Inscriptions Bearing on Indian History and Civilization (Vol. I & II). Calcutta: University of Calcutta.
5. Subrahmanyam, S. (2001). Vijayanagara: Splendour in Ruins. New Delhi: Oxford University Press.
6. Tripathi, R. (2012). "Digital Epigraphy in South Asia: New Tools and Challenges." Journal of South Asian Studies, 28(3), 145–168.
7. Willis, M. (2009). Inscriptions of Early Medieval India. London: British Museum Press.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

FROM GIFT TO BURDEN: EVOLUTION OF DOWRY SYSTEM IN INDIA

Shefali
Research Scholar, Department of Western History
University of Lucknow

Abstract :-

Despite decades of legal reforms, India continues to witness high rates of dowry-related crimes such as suicides, murder, and domestic violence, making the analytical study of the historical unfolding of the dowry system a critical issue. The dowry system not only endangers women's safety, but it is also against women's dignity and is responsible for gender inequality. While many of the analysis have often paid attention on the consequences of the dowry system, only a few have explored its gradual historical evolution from its ancient concept of Stridhan as gift to coerced dowry form in modern period. So, the objective here is to trace that historical evolution and identify the factors behind its legitimization and institutionalization while analyzing its socio-economic impact on women. This study utilized scientific-historical analysis of primary and secondary sources. The key finding of the article shows that the dowry has evolved from being an empowering tool for women to a coercive social practice. These findings highlight the need for culturally informed reforms and awareness to foster gender equality in Indian society.

Keywords :- Dowry system, stridhan, colonial India, women's property right, gender inequality, Indian marriage custom, social reform.

Introduction :-

When it comes to women and their rights, Indian society, culture and customs have been always questioned by mainstream feminist discourse both domestically and globally. Women have mostly represented as inferior to men in many patriarchal societies, including India, although historical and textual evidence reveals some instances of female autonomy and influence. However, Indian traditions and cultures have frequently been subjected to critical scrutiny, influenced by colonial and orientalist perspectives, often more than Western societies.

Every society is a complex mix of various socio-religious-cultural practices that encompass both negative and positive aspects. Indian society is no exception. Dowry is one such practice that we see today, which is the root cause of murder, suicides, and domestic violence against women. Generally, if it is asked to any person about this system of dowry, mostly people will start criticizing the "Hindu tradition" or Hinduism itself. This is the general perception among people. However, was it really present in ancient India as it is today in modern times? Or is it the result of deviation due to socio-economic changes. To what extent should British colonizers be blamed for this evil practice, which they exacerbated by giving it legal sanction? While many of the historical studies either root the dowry system in ancient

traditions or place the full blame on British colonizers, only a few have tried to see this as a process of gradual evolution. This study hypothesizes that although the dowry system began to acquire the character of social compulsion due to its association with the status symbol during the medieval era, it was the British colonial legal intervention that universalized this dowry practice across India. This paper contends that the present dowry system is the product of socio-economic changes during the medieval era and colonial legal intervention rather than the simple survival of an ancient custom or solely a colonial invention.

What is dowry? :-

According to the Oxford Dictionary, "a dowry is money and/or property that, in some societies, a wife or her family must pay to her husband when they get married". In Sanskrit, dowry means *'dahej', '* which signifies gifts or donations, that is, property both movable and immovable that a girl brings with her on occasion of her marriage (Choudhoury, 2021). In Urdu, it is called 'Jahez,' in which whatever is given by the bride's family to the groom's family comes under the dowry. We find many references in ancient texts and scriptures to prove that this dowry system was prevalent in ancient India, but not in the format that is prevalent today.

At present, dowry is defined as any property or valuable security given or agreed to be given either directly or indirectly by one party in a marriage to the other party in marriage, by parents of either party to a marriage, or by any other person to either party before or after marriage as consideration for the marriage (Dowry Prohibition Act, 1961). It must be noted that marriage is pre-conditioned on the basis of dowry.

Dowry in Ancient India :-

In ancient texts, we find mention of such terms as 'Stridhan', 'Kanyadana', and Vara-dakshina'. The Manusmriti (2nd century BCE-3rd century CE) defines 'Stridhan' as "what is given before the fire, what is given at the time of departure, what is given in token of love, and what is received from the brother, the mother, and the father, has been declared to be 'Stridhan' (the exclusive property of the woman) (Manusmriti verse 9.194). 'Yajnavalkya' (3rd century CE) also mentions such gifts, known as 'Yautraka', to indicate that couple are now joined in matrimony alliance. Epics like Mahabharata art also reference the Indian dowry system. Section 197/shlokas 15-18 mentions the dowry presented by King Drupad at the marriage of his daughter Draupadi (Choudhoury, 2021). These gifts include money, jewelry, clothes, and other items to which women have exclusive rights.

The Katyayana smriti (200CE-500CE) affirms that a father can give any movable or immovable property to his daughter, and that property would remain her exclusive right even after marriage (as elaborated in the Apararka commentary, 12th century CE). Gifts exchanged used to happen during weddings, but it was voluntary in nature, not compulsory, and it was meant to provide financial security in case of the husband's death or separation. For example, Manusmriti mentions eight types of marriages that are, Brahma, Daiva, Arsha, Prajapatya, Asura, Gandarva, Rakshasa, and Paishacha (Manusmriri 3.21). The initial four of the eight marriages were considered superior, and the last four were considered inferior and permissible only for lower castes. However, none of them specifically mentioned the dowry as compulsory. Brahma marriage was considered more auspicious, and as Arthasastra says, "When the girl is adorned and given away, it is Brahma form of marriage" (Manusmriti with the commentary of Medhatithi).

According to Megasthenes and Arrian, in the 3rd century BCE, ancient Indian people in the process of searching for a bride paid less attention to whether the bride had a dowry or a handsome fortune and only looked at her inner or outer beauty. The Asvalayana Grihya sutra, a post-Vedic text, does not give any reference of any kind of material demands that could have been forced on the bride's family. Therefore, it is evident that ancient ideal of marriage was sacred and non-commercial in nature. Dowries, as seen today, did not exist at that time; instead, gifts were given to women for their financial

security. Along with this, women could own and manage their property but had fewer rights than men did.

Dowry in Medieval India :-

During the medieval era, women used to have lesser rights of property, and marriage was considered sacred and not a medium for commercial exchange. Al-Biruni (11th century) observed that Hindu marriages were grounded in dharma and social duty, not material exchange or monetary negotiations. To quote him, "The implements of the wedding rejoicing are brought forward. No gift (dower or dowry) is settled between them. The man gives only a present to the wife as he thinks fit and a marriage gift in advance, which he has no right to claim back, but the wife may give it back to him of her own will" (Al-Biruni, chapter on Matrimony in India, about 1035 CE). He has also written that that he found no evidence of a structured dowry system as existed in the Islamic or Christian worlds of his time. In Islam, *mahr* (dower given by the groom to the bride) is obligatory. It is a well-documented historical fact that Bombay was transferred from Portugal to Britain as a dowry in 1661. Dowries were prevalent in Britain during the middle Ages. In contrast, Al-Biruni found that Indian women often had property rights and control over their wealth.

Chola and Vijayanagara inscriptions also prove that women possessed some property rights. For example, an inscription from the reign of Parantaka Chola I records a woman named Aditta Pitari gifting a lamp and signing documents, which represents that Chola women had economic and legal agency at that time (Senthamarai, 2024). Thus, this inscription highlights that during the Chola period, upper-class women had property rights and some autonomy in making economic decisions.

Senthamarai also talks about the '*Sridhanam*' during the medieval Tamil period, which was given during the time of marriage and could also include land. She also mentions that during the Chola period, daughters of rich and royal families had a share in their ancestral property as Stridhana. Along with the share, married women used to enjoy absolute rights over their Stridhana.

However, this practice was more prevalent among the wealthy classes and not among the poor. However, the medieval era came with a lot of socio-economic changes, such as the growth of feudal leaning, reallocation and disintegration of land, coming of new religion, and the new style of ruling system, which forced the communities to become more protective. This intensified the control over women to protect the dignity of their families and communities. As mentioned in Mitakshara (12th century), women had no coparcener (where family members by birth right have access to ancestral property) rights, but if some property or land was given to them or acquired by them, then they could use it with certain conditions; for example, a widow could use it to pay the debt of her husband, to take care of her in-laws, and in her daughter's marriage. Therefore, there was no absolute law to define women's property rights across classes or regions, but one thing is clear: women had rights over Stridhana.

Choudhury explains that these changes were responsible for the rise of the dowry system, particularly in royal and aristocratic families. Stridhan became a tool to get better groom and the purpose was not just limited to matrimonial relations but it had political purpose also. So, it also got associated with the status of the families. Gradually, it began to take on the shape of a socially compulsory custom. Al though India is a country of diverse customs and rituals, marriage customs vary from region to region within the country, and the dowry was not mandatory for all. For example, Asur marriages were also prevalent among lower castes, where bride-price was taken. Hence it can be said that though dowry was getting institutionalized in the medieval era, but it was still not compulsory or we can say that it was not universalize till now in this period.

Dowry in Colonial Era :-

The arrival of the Britishers was not just the beginning of a new era of imperialism and colonialism in India; it also introduced changes whose consequences we face today. One such change was the

introduction of the land revenue system, in which the concept of private property was introduced, which was unknown in India at the time (Chatterjee, 2023). For example, the permanent settlement system in Bengal granted land ownership rights to zamindars. Now, the property had to be registered in the name of the male owner. Certainly, this system took away women's property rights altogether. They had no property rights left for them. Therefore, stridhan was the only wealth left to compensate the daughters. However, since they lost property rights, the right to Stridhan was also not unconfined. Earlier, women had right to manage their dowry, which was given to them for their financial security and independence, but after the British came and their policies were implemented, they were no longer the managers of their own stridhan. As Oldenburg has also written that, this system was mainly run by women and for women before colonial period. However, dowries, which were gifts given to the bride by the family, are now given to the groom.

Since the British were new to India and wanted to gain cultural legitimacy for more acceptances, they started interpreting Hindu laws selectively to get the support of the people from a particular class or community. They began to emphasize certain practices, such as the caste hierarchy and rigid endogamy, to strengthen their authority and social stability. Can we observe the beginning of the divide and rule at the societal level? Thus, it was the selective interpretation of British authority about Hindu customs that gave birth to the modern dowry system in which dowry is a precondition to marriage, which was later prohibited by law after independence in 1961. The question is how they did so. Ranjana sheel has said that by universalizing one kind of marriage form, that is Brahma marriage, British legitimized only one type of marriage. In the case of Chuni v Suraj (April 5, 1909), the court noted that it is doubtless that every marriage under Hindu law is in conformity with the Brahma form of marriage. The court rejected the Asura marriage because the bride-price was received. However, it did not reject the idea of a one-way transaction of gifts or dowries from the bride's side, along with the gift of a daughter (Sheel 1997).

Thus, in a way, it legitimizes the dowry as inherent part of Brahma Vivah. Simultaneously, economic changes were taking place. Artisans and inferior merchant groups such asteli, gandhabanik, and mairabe began to acquire wealth and status by the middle of the 18th century. They took advantage of newly emerging opportunities and became landholders in different parts of Bengal (Sheel, 1997). Therefore, new sub-castes emerged within the caste system. They began to follow the traditions of upper-caste Brahmins to demonstrate their social advancement. The shift from Asura to Brahma marriages is evident. This legitimization of certain customs extended their reach beyond the elite class to a wider spectrum of society (South Asia Study Centre).

Another characteristic of the colonial system was the diminishing role of women in production (Sheel, 1997). As the domestic industry was replaced by factory industries, women were confined to household work. This increased women's economic dependence on men. Women were now considered liabilities rather than assets. The link between women's economic decline and the rise of the dowry system in India was noted (Stri Darpan, 1915). New job opportunities also emerged during the colonial period. Therefore, having a son-in-law with such a job meant partnership with a powerful family. This perception also increased dowry demands from grooms (Dhar, 2022).

Thus, the colonial era transformed this gift into a burden for the indigenous people. Only in independent India was a law made to prohibit the system. However, this remains a concern. According to NCRB data, dowry-related crimes saw a 14% increase in 2023, and over 6,100 deaths reported throughout the year (The Hindu, 2024, January 4).

Conclusion :-

A genuine knowledge of India's tradition shows that the stridhan was legally, morally, and socially recognized as women's exclusive property. The idea was to make women economically independent to take care of themselves so that they don't have to depend on their in-laws or husbands. It was intended to uplift women and provide them with dignity and respect. Sadly, this distortion of tradition has reduced women to a burden and made them a liability to their parents, which is the real reason why female

infanticide, child marriages, and domestic violence are prevalent. While ancient traditions cannot be solely blamed for this, colorizers legal intervention intensified the problem, but this was a gradual and complex evolution. Although this study attempted to address questions related to the evolution of the dowry system, it did not cover regional variations or different case studies to fully understand its contemporary forms. Therefore, future studies should focus on region-specific research to gain a broader perspective on this practice. Ultimately, this system can only be eradicated through informed public awareness, legal reforms, and changing societal mindsets. People must be made aware of the real traditions and culture. Only by reclaiming the empowering spirit of our ancient customs can we hope to overcome the injustices of today.

Reference :-

1. Al- Biruni. (1035 CE). *Chapter on Matrimony in India Dowry system in India - Wikipedia.*
2. Bandhu, Pranjali, 'The *dowry phenomenon'*. Retrieved from South Asia Study Centre - The Dowry phenomenon.
3. Chatterjee, S. (2023). *Concept and evolution of dowry.* International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI).
4. Chauhan, A., Kumar, S., & Bind, A. (2022). *Historical and legislative development of the property rights of Hindu females: An analytical study*. JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR), 10 (1).
5. Choudhury, K. (2021). *Origin of dowry system and section 304-B of the India n Penal Code, 1860*. International journal of Legal science and Innovation, Volume 2, Issue 3, 2020.
6. Dhar, R. (2022). *Stridhan to dowry: A journey of Hindu woman's lost rights*. https://www.researchgate.net/publication/343280074_Stridhan_to_Dowry_A_Journey_of_Hindu_Woman's_Lost_Rights.
7. India Code: *Dowry Prohibition Act, 1961*. Retrieved from India Code: Dowry Prohibition Act, 1961
8. Jha, Ganganath, '*Manusmriti with the Commentary of Medhatithi*', Wisdom Library Manusmriti with the Commentary of Medhatithi
9. Oldenburg, V. T. (2002). *Dowry murder: The imperial origins of a cultural crime*. New York: Oxford University Press.
10. Pushpam, K. N. (2022). *Dowry system in India*. International Journal for Innovative Research in Technology (IJIRT), 10 (1).
11. Ranjana Sheel. (1997). *Institutionalisation and Expansion of Dowry System in Colonial North India*. Economic and Political Weekly, 32(28), 1709–1718. Institutionalisation and Expansion of Dowry System in Colonial North India on JSTOR
12. Ranjanadani, 'The *lost legacy of Hindu women's rights- Dowry, stridhan and colonialism'*. Retrieved from The lost legacy of Hindu Women's rights
13. Razdan, S., & Sharma, S. (2023), '*Property rights of Hindu women: A feminist review of succession laws of ancient, medieval and modern India'*, International Journal of Social Impact, Volume 7, Issue 1, 2023.
14. Saikia, W. *What are the Salient Features of " Stridhan"?* -Hindu Law.
15. Senthamarai, C. (2024). *Role of women during Cholaperiod*. International Jo urnal for Innovative Research in Technology (IJIRT), 11 (1).
16. The Hindu. (2024, January 4). *Dowry cases rise by 14% in 2023; over 6,100 women killed: NCRB*. Retrieved from Dowry cases rise by 14% in 2023; over 6,100 women killed: NCRB - The Hindu

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

GENDER DISCRIMINATION AMONGST HEALTH CARE PROVIDERS IN RURAL AREAS OF LUCKNOW DISTRICT

Snehlata Jaiswal
Research Scholar, Department of Social Work
University of Lucknow

Abstract :-

Gender bias in healthcare remains a deep-rooted concern in rural India, shaped by patriarchal norms, limited female healthcare workforce, and systemic inequities. While studies document skewed treatment-seeking behaviors—especially among children and newborns—and maternal mistreatment, focused research at the intersection of **provider behavior** and gender bias in **rural Lucknow district** remains very limited. This study utilizes a **mixed-methods approach; Quantitative analysis** using district-level NFHS/DLHS data to track gender-based differences in health-seeking behavior, maternal care uptake, and provider access in rural Lucknow; Q**ualitative interviews** with 50 frontline health workers (ASHAs/ANMs) in four blocks of Lucknow district namely; Mohanlalganj, Kakori, Gosaiganj and Sarojininagar blocks; to explore attitudes, experiences of bias, and institutional challenges.

Major findings indicate towards child health seeking disparities between boys and girls wherein households tend to seek private, qualified care for boys, while girls more often receive cheaper or informal care, reinforcing gendered inequity in access.

Newborn care also showed discrimination wherein lower perceived severity and spending for female newborns was noted compared to males. During childbirth, poor women face disrespect and abuse in healthcare settings; gender and social status compound this. The social mindset worsens in households where girl child have been born in previous deliveries. Neonatal Investment Gap, Institutional Bias and Mistreatment, Healthcare workforce and structural constraints are other major barriers. However, rich data on **provider attitudes and behavior** toward female patients in these settings is limited. This study addresses a critical research gap by blending secondary data analysis with on-the-ground narratives to illuminate how provider-side discrimination influences outcomes for women and girls.

Keywords :- Health care providers, gender discrimination, health outcomes, and health infrastructure

Introduction :-

Gender discrimination in healthcare is a serious issue where individuals receive different treatment based on their gender, leading to disparities in diagnosis, treatment, and overall health outcomes. This discrimination can be manifested in various forms like disparities in diagnosis and treatment, dismissal of concerns, stereotyping and bias, impact on health outcomes: discrimination within the healthcare workforce. From the **Lucknow District Fact Sheet**, rural versus urban comparisons offer relevant gendered insight into maternal healthcare utilization:

- **Antenatal care (ANC) (at least 4 visits)**: Urban–rural gap—urban: 56.1%, rural: 44.9%
- **Full antenatal care** (includes overall ANC quality): urban: 15.6%, rural: 9.1%—underscoring poorer maternal service uptake in rural areas
- **Postnatal care within 2 days**: urban: 58.6%, rural: 55.9% **NFHS 5 (2019–21) State-Level Trends & Access Barriers**

While district-level breakdowns for Lucknow aren't public for all indicators, the broader NFHS 5 data for Uttar Pradesh highlights systemic challenges:

- **Problems accessing medical care**: Nearly 60% of **women nationally** reported at least one barrier to access, including Lack of female healthcare providers (31.2%), Insufficient health personnel, distance, cost, lack of drugs, needing permission or accompaniment
- **Anaemia prevalence (UP-wide)**: Around 50% of women were anaemic, indicating broader gaps in nutrition-related care
- **Late detection of cancers**: Only 1.7% of rural women (30–49 years) had undergone cervical cancer screening—a indicator of limited preventive services reach

Data on Lady Medical Officer (LMO) availability at PHCs provides a proxy for gender-sensitive provider access. A national study using DLHS 4 data found that districts with e"50% of PHCs staffed by female doctors (LMOs) tend to have better uptake of RMCH services, suggesting provider gender matters for service utilization PMC+1. A 2019 survey found that over 50% of women believe gender discrimination in patient care is a serious problem, with 20% reporting feeling ignored or dismissed.

Contributing Factors :-

Deep-rooted gender norms and stereotypes influence healthcare-seeking behavior and access, often prioritizing men's health needs over women's. The healthcare system itself can perpetuate gender inequality through discriminatory practices, inadequate resource allocation, and lack of culturally sensitive services.

Consequences :-

Gender inequality in healthcare contributes to higher morbidity and mortality rates among women, particularly in maternal and child health. Poor health outcomes among women can lead to reduced productivity, lower labor force participation, and economic losses for individuals and society. Gender inequality in healthcare has far-reaching consequences for overall social and economic development, hindering progress towards sustainable development goals.

1. The "Mighty Girl Effect"

- Research shows that **fathers with firstborn daughters** tend to develop **less traditional, more egalitarian gender-role attitudes**—this is known as the *Mighty Girl Effect*. However, this effect applies only to **firstborn daughters**, not simply having "more female children," and it reflects **attitudes**, not discriminatory behavior in clinical settings.

2. Family Size, Resource Allocation, and Gender Bias

- In contexts like Bihar, India, studies reveal that **girls in larger families**—especially where families have more children overall—receive **fewer resources and less medical care**.
- Though this indicates parental bias in care-seeking, it reflects **household and parental behavior**, not discrimination by **healthcare providers** themselves.

3. Gender Bias among Healthcare Professionals

- Existing studies show pervasive **gender bias** within healthcare settings—such as differential care based on patient gender, or diagnostic and treatment discrepancies.

- These biases stem from systemic, cultural, and professional norms rather than healthcare workers' personal family dynamics.

Goal :-

The study aims at understanding the nature and prevalence of gender discrimination amongst the health care providers in the rural areas of Lucknow district and how the discriminations faced by them in their personal lives affects their behavior during the health care services delivery.

Objectives :-

- To **assess the prevalence and characteristics of gender discrimination** by healthcare providers toward female patients in rural Lucknow.
- **Identify underlying causes and contributing factors**, including provider attitudes, cultural norms, systemic biases, and institutional constraints.
- **Evaluate the impacts** of such discrimination on health-seeking behavior, access to services, and health outcomes for women.
- **Propose actionable strategies** for mitigating gender bias—through policy, training, infrastructure, and community engagement—to enhance equitable healthcare delivery.

Significance of the Study :-

Gender discrimination in healthcare delivery is a critical yet underexplored issue, especially in rural regions of India. This study aims to shed light on implicit and explicit gender biases held by medical personnel, which may lead to differential treatment, neglect, or mistreatment of female patients. By documenting these patterns, the research contributes to making invisible inequalities more visible. Discrimination by healthcare providers exacerbates these barriers faced by rural women, potentially leading to delayed care, misdiagnosis, under-treatment, or avoidance of medical services altogether. Addressing gender bias can directly contribute to improved maternal and reproductive health outcomes and overall well-being.

Research Methodology :-

This study utilizes a **mixed-methods approach; Quantitative analysis u**sing district-level NFHS/DLHS data to track gender-based differences in health-seeking behavior, maternal care uptake, and provider access in rural Lucknow; Q**ualitative interviews** with frontline health workers (ASHAs/ ANMs) in four blocks of Lucknow district namely; Mohanlalganj, Kakori, Gosaiganj and Sarojininagar blocks; to explore attitudes, experiences of bias, and institutional challenges.

Sample :-

A total of 50 health care providers in the rural areas of four blocks; Mohanlalganj, Kakori, Gosaiganj and Sarojininagar blocks; of Lucknow district were covered as sample for this research paper.

Results and Discussion :-

Research study covered 26 ASHAs and 24 ANMs in the rural areas of different blocks of Lucknow district as mentioned above. This study is based on both primary and secondary data collected from primary sources and secondary sources. In order to collect the primary data, a questionnaire was developed to get an understanding of social, economic and psychological conditions of the health care providers and their outlook while delivering their services as care providers.

Gender inequality in healthcare in India is a persistent problem with significant disparities in

access, utilization, and outcomes for women compared to men. This inequality is fueled by social norms, cultural practices, and economic factors that limit women's access to quality healthcare services and decision-making power. Women face barriers such as limited mobility, lack of financial resources, and inadequate access to transportation, further restricting their ability to seek timely care. While maternal and child health has seen improvements, gender disparities persist, with higher mortality rates among female children and limited access to quality healthcare during pregnancy and childbirth.

They opined that gender discrimination is a dangerous thing, it not only affect the women but also men in general. The whole family undergoes a discriminatory atmosphere in the family affecting the conducive growth; social psychological and emotional strength of the women. Their individual biases for a son preference to look after them in the old age, evolving as earning member in the family etc. Being a female member in the household, they have to do the household chores wherein the in laws and male counterparts expect them to finish all the task before leaving for work and again come back and do it. Following are some of the major observations during the field visit:

Healthcare Workers' Personal Experiences Influencing Behavior :-

Patients deterrence towards accessing health care services :-

Some of the women during the field visit informed that the rude behavior of the health care service providers deters them from accessing services during pregnancy. This was further discussed with the HCPs of the same village wherein it was found that their personal experiences and biases during their own pregnancy phase and afterwards lead to their rude behavior and attitude.

Stress from Objectification & Role Stereotyping :-

Female HCWs shared how comments about their not being able to deliver a baby boy —such as delivering more girls —made them feel devalued, especially in the context of reduced support for caregivers: **"People were very fixated during my pregnancy … it makes me feel that it is a curse to give birth to a baby girl. I am grateful that in the third chance, God gifted me with a baby boy"** This objectification and emotional toll may influence professional demeanor toward patients.

Reflection of Gendered Stress in Patient Interactions :-

A front-line female worker recounted how societal discrimination spilled into patient care: ***"I feel so bad and insulted that when I reach the Basic Health Unit I misbehave with my patients." (LHV, age 24)*** This quote illustrates how external harassment or emotional burnout can impair providers' conduct toward patients.

Broader Patterns of Implicit Bias & Gendered Expectations :-

Implicit Bias across Contexts :-

A systematic review demonstrated that healthcare professionals exhibit implicit biases—including gender-based ones—which negatively correlate with care quality.

Gendered Clinical Judgments and Stereotypes :-

Qualitative simulations revealed entrenched stereotypes—for example, women perceived as more emotional, men as potentially violent—which can distort patient assessment and decision-making.

Pain Perception Disparities :-

Women's pain is often dismissed as emotional or psychological, leading to under-treatment and delayed interventions. Such biases may be reinforced by providers' personal narratives and experiences.

Intersectional and Structural Contexts Shaping Behaviors :-

Providers' behaviors are shaped by systemic pressures—discrimination, workplace hostility, and role expectations—that influence how they treat patients.

Workplace Discrimination & Performance :-

Gender discrimination and poor administrative support caused hostility among staff, undermining their job performance and possibly reducing patience or empathy in patient interactions.

Gender Role Expectations among Providers :-

Healthcare professionals noted that female providers are socially viewed as emotional and weak, while men are seen as logical and strong—viewpoints that can trickle into patient interactions. It is an expectation that they will provide their services without any prejudice or biases but during interaction about 20 % (10 out of 50 respondents) admitted the change in behavior due to their personal experiences.

Conclusion :-

Findings from this study can inform local health departments, NGOs, and government bodies such as the National Health Mission (NHM) and Uttar Pradesh Health Department. These findings will inform local healthcare policy, training initiatives, and community engagement to combat gendered discrimination in rural health services. By centering provider behavior alongside systemic factors, the study offers actionable insights for designing gender-responsive interventions in Lucknow and similar rural districts.

Evidence-based recommendations may guide the design of gender-sensitivity training programs for healthcare workers, recruitment of more female providers, and implementation of protocols ensuring gender-equitable care. This study also supports the broader agenda of gender equity and justice by advocating for systems that treat all patients—regardless of gender—with respect and fairness.

Recommendations :-

- Implicit bias training can help healthcare providers recognize and address their own biases, according to Quality Interactions.
- Patients should be empowered to voice their concerns and advocate for their own health needs irrespective of their gender biases by openly discussing gender bias and its impact on health for creating a more equitable healthcare system.
- Strengthen healthcare systems by investing in healthcare infrastructure, improving resource allocation, and ensuring equitable access to quality healthcare services for all is essential.
- Address cultural norms by challenging harmful gender norms and stereotypes through community awareness campaigns and educational initiatives is vital.
- Empowering women to make informed decisions about their health and well-being is essential for achieving gender equality in healthcare.
- Collecting and analyzing gender-disaggregated data on health outcomes, healthcare utilization, and resource allocation can help identify specific areas of inequality and inform targeted interventions.
- Implementing policies and programs that promote gender equality in healthcare is crucial, including increased access to education, economic opportunities, and decision-making power for women.

References :-

1. **Gender difference in health seeking behaviour among mothers of under five children in rural Lucknow,** Rahul Katiyar, Naim Ahmed, Jai Veer Singh, Vijay Kumar Singh (King George's Medical University and Hind Institute of Medical Sciences) **Published** in *International Journal of Community Medicine and Public Health*, January 2018 (Vol. 5 No. 1)

2. Women's status and experiences of mistreatment during childbirth in Uttar Pradesh: a mixed methods study using cultural health capital theory May Sudhinaraset1*, Emily Treleaven2 , Jason Melo3 , Kanksha Singh 4 and Nadia Diamond-Smith1; Researchgate Publication DOI 10.1186/s12884-016-1124-4
3. The gendered experience with respect to health-seeking behavior in an urban slum of Kolkata, India Moumita Das1,2* , Federica Angeli3 , Anja J. S. M. Krumeich4 and Onno C. P. van Schayck5
4. A study of gender discrimination in health in Uttar Pradesh , March 2025 by Sunil Kumar Tripathi and Rekha Gupta
5. Intrusion of bias into clinical care (systematic review): implicit bias evidence and impact.
6. Simulated interactions illustrating stereotypes—male vs. female patients.
Healthcare worker first-person narratives in Pakistan and during COVID creating discriminatory behaviors.
7. Pain bias and diagnostic inequity affecting women. Role-based stress and discrimination leading to inefficiencies and hostility.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

HISTORY, TRADITIONS AND MODERN PERSPECTIVES: A MULTIDISCIPLINARY DIALOGUES THROUGH KNOWLEDGE, TECHNOLOGY AND SOCIETAL NORMS

Dr. Dev Brat Mishra
Assistant Professor
Gramyanchal Vidhi Mahavidyalay, Haidergarh, Barabanki

Abstract :-

Human civilization witnessed the intersection of history, tradition and modern perspectives which represent three interwoven strands of human history in modern times. The intersection of the above three domains form a foundation for understanding the evolution of societies within the framework of knowledge, technology and societal norms. By tracing historical trajectories, engaging with traditions, and scrutinizing the effect of technological development, this paper explores how societies negotiate continuity and change. It examines the mechanisms through which historical experiences and traditions shape collective identities, while modern perspectives, informed by globalization, technological innovation and multidisciplinary dialogues challenge and redefine societal norms. This paper explores the role of knowledge systems, technological advancements and shifting norms in easing dialogue between past legacies and contemporary visions. The conclusion gives emphasis on the significance of multidisciplinary dialogue as a sustainable mechanism for coordinating the tensions between history, tradition and modernity.

Keywords:- intersection, human history, history, tradition, modern perspectives, globalization, dialogue

History is the study of the past, and examining it through traditions provide insight into a societal values, beliefs and practices by observing their evolution, continuity and change over time. It refers to how cultural history, memory and identity are shaped and transmitted over time through tradition. Instead of focusing solely on written records of major historical events, this perspective examines the practices, beliefs and stories that a group passes down through generations to connect with its past. History is commonly used to prove the long duration through which traditions acquire legitimacy by linking them to an authoritative past. Traditions are often imagined as ancient and unchanging, but some historians have shown that many traditions are inventions designed to serve modern political needs. The practice of framing certain rituals as 'timeless' has historically been a mechanism for legitimizing authority and social cohesion. The continuity of rituals, customs and beliefs has this been less a matter of peace and more a matter of adoption. This suggests that tradition is not the opposite of modernity but one of its conditions of possibility.

Knowledge serves as the keystone connection and historical traditions with modern perspective. Historical traditions are dynamic systems of knowledge and cultural practices passed down through generations that shapes a community's identity, value and worldview. Some thinkers argued that knowledge is not merely about truth but about regimes of power that decide what counts as truth. Traditions uncompress epistemic frameworks that operate through embodies practices, oral histories and communal

memory. Unlike the rigorous and systematic methods of modern historical science, knowledge rooted in traditions often synthesizes mythology, ritual and memory. Modern perspectives, particularly those rooted in scientific rationality, often themselves as universal, objective, and superior when one knowledge system encounters another, the encounter is never neutral but implanted in hierarchies of power. Colonial histories are exemplifying, where local systems of medicine, agriculture or astronomy were often dismissed as superstitions while western science was endorsed as universal. However, in contemporary context, there is growing recognition of the value of traditional knowledge.

The contemporary world, marked by globalization and digital transformation, necessitates multidisciplinary engagement to reinterpret history, preserve traditions, and negotiate modernity. Such engagement not only informs academic inquiry but also shapes practical solutions in governance, education, cultural preservation, and social justice. This paper investigates the interplay of history, traditions, and modern perspectives within the framework of multidisciplinary dialogue, highlighting the mediating roles of knowledge, technology, and societal norms. History provides the foundation for understanding human development. It is not merely chronical of events but a source of wisdom, caution and inspiration. The concept of historical consciousness emphasises awareness of temporal change and continuity. without historical consciousness, multidisciplinary dialogue risks becoming a historical and superficial. History is central to collective identity. Nations, communities and civilization rely on historical narratives to justify the political authority, cultural belonging, moral values. However, historical narratives can also be manipulated to serve ideological ends. The deterministic use of history, as in colonial historiography or nationalist propaganda reduces dialogue in unilateral imposition. Traditions embody, cultural memory, rituals, values, and practices transmitted across generations. They serve as bridge between history and lived experience.

Traditions strengthen community bonds by providing shared symbols, festivals and moral quotes for instance traditional festivals like Diwali or Thanksgiving are not only religious or cultural but also social mechanism of cohesion. While traditions promote community, they are also contested critics often view traditions as obstacles to progress, particularly, when they reinforce inequality, patriarchy or exclusion. Traditions are not static relics, they evolve. The transformation of yoga from an ancient spiritual discipline to a global wellness industry illustrates how traditions adopt to modern context.

Technology is the application of the scientific knowledge to practical objectives and has evolved significantly throughout human history. This evolution can be understood through the lens of history, traditional knowledge, and modern perspectives, which highlight how humanity has moved from simple tools to complex digital systems. Technology introduces a critical dimension to the dialogues between tradition and modernity. It is tempting to see technology as inherently modern and disruptive, yet technologies themselves are historical artifacts with social lives. Technologies mediate the survival, transformation and even reinvention of traditions. The digitization of cultural archives allows oral traditions, manuscripts, and performances to circulate globally, extending their reach for beyond their original communities. A ritual recorded and uploaded to a platform on social media is not the same as the ritual performed within its cultural context. A multidisciplinary dialogue through technology involves diverse experts sharing and exchanging knowledge and collaboration through digital platforms, fostering innovation by combining different fields like engineering, arts and science to solve complex problems.

Through multidisciplinary dialogue, knowledge is integrated and accelerated by technology, leading to rapid shifts and renegotiations of societal norms. This process transforms how people communicate, form identity, structure and significant challenges. The societal norms that regulate communities act as the regulatory framework within which knowledge and technology interact with traditions. Norms embody values and expectations about what is considered acceptable, lawful or desirable within a given society. Legal pluralism demonstrates that multiple normative order can coincide - state law, religious norms, customary practices and professional codes may overlap and sometimes clash. Modern states often attempt to synchronize traditions through law. Though law itself is a modern construct that may incompetently capture the volatility of cultural practices. Norms also evolve through contact with new technologies. Social media platforms have altered the way traditions are performed and transmitted.

The main theme of "knowledge, technology and societal norms: A mechanism for multidisciplinary dialogue" highlights the complex and interconnected ways in which societies evolve through time. Under their umbrella, the exploration of history, traditions and modern perspectives becomes essential for appreciating how collective identities are shaped and reshaped. This paper addresses these three dimensions through a comprehensive analysis, situating them within the broader framework of technological advancements and shifting societal norms. A multidisciplinary dialogue that incorporates knowledge, technology and societal norms is crucial for addressing complex issues and requires mechanisms that facilitate collaboration, consider social values, and leverage digital tools. The core challenge is bridging gaps between diverse discipline, technological capabilities and evolving societal expectations. Basically, these three are deeply interconnected and mutually influential forces. Technology and the spread of information after societal norms, while existing societal values and beliefs shape how technology is adopted, developed, and used. A multidisciplinary dialogue is a critical mechanism for navigating this relationship responsibly scientific and intellectual advancements provide the foundation for technological innovation. Digital communication and the internet have democratized information access, shifting norms around knowledge and authority. For example, e-learning and open-access resources are transforming education. The rise of social media and communications apps has fundamentally changed how people establish dialogue with each other, and form social connections.

Cultural values, expectations and institutional dynamics act as brakes or accelerations on technology adoption. A community's social cohesion and peer influence can be more critical to a new technology's acceptance than its feature alone. The rapid pace of technological change often outstrips society's ability to develop ethical guardrails. Because of this complex and interconnected relationship, a narrow, slowed approach together diverse perspectives to ensure that technological progress aligns with human values and societal well being.

Reference :-

1- Ranger T., Hobsbown, E., The invention of Tradition, Cambridge University Press.
2- Kalay, Y.E., Kvan T, and Affleck, J. New Heritags : New Media and Cultural Heritage, Roufledge, 2008.
3- Latour, B. We have never been modern, Harvard University press, 1991.
4- Tufekci, Z., Twitter and Tear Gas : The Power and Fragility of Networked Protest, Yale University Press, 2015.
5- Anderson, B, imagined communities: Reflections on the origin and spread of Nationalism, Verso, 2006.
6- Carr, E.H., What is History? Cambridge University Press, 1961.
7- Eisenstadt, S.N., " Multiple Modernities", Daedalus, 129 (1), 1-29, 2000.
8- Giddens, A, Modernity and self identity, Stanford University Press, 1991.
9- Narayan, U., Dislocating cultures: Identifies, traditions and third world feminism, Routledge, 1997.
10- UNESCO, World Heritage and Digital Technologies, Retrieved from http://whe.unesco.org
11- Castells, M., The Rise of the Network Society, Blackwell, 1996.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

OLD ROOTS, NEW ROUTES: ICT, YOUTH ASPIRATIONS AND THE GENERATIONAL GAP IN RURAL AREAS OF BIHAR

Nirmal Kumar Nirmohi
Junior Research Fellow
Department of Sociology
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar
Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh
Principal & H.O.D.
Rohtas Mahila College
Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

Abstract :-

The intergenerational gap refers to the differences in values, attitudes, behaviours, lifestyles and communication styles between younger and older members of society, shaped by historical, social, cultural, economic and technological changes. In India, this gap has been increasingly influenced by the penetration of Information and Communication Technologies (ICTs) in rural areas, affecting social interactions, economic practices, education, cultural norms and political participation. Younger generations are rapidly adopting digital tools, utilizing smartphones, social media and online platforms for communication, education and economic opportunities, while older generations often remain reliant on traditional practices and face-to-face interactions. This divergence creates pronounced differences in aspirations, mobility, digital literacy and exposure to global knowledge, contributing to intergenerational tensions and a reconfiguration of social and cultural norms. Using sociological perspectives including functionalist, conflict, interactionist, generational and postmodern approaches, this study highlights how ICTs mediate both the widening and negotiation of generational differences in rural India, fostering innovation and social transformation while challenging traditional authority structures.

Keywords :- Intergenerational gap, ICTs, Rural India, Digital Literacy, Cultural Change, Social Transformation, Youth, Elders

Objectives :-

Objectives of this article are to define intergenerational gap, understand the sociological perspectives on intergenerational gap. Its objective also includes delineating intergenerational parameters in India and finding out the Impact of ICTs on intergenerational gap in rural areas of India.

Research Methodology :-

Research Methodology includes here qualitative research based on secondary sources. Sources include Books, journals, Magazines, Reports etc. It contains literature from across the globe. Data have been mined from all the above written study materials.

Review of Literature :-

Karl Mannheim's *The Problem of Generations* (1928) introduces the idea that a generation is not simply a group of people born around the same time, but a socially constructed cohort shaped by historical, cultural and social experiences.[1] He emphasizes that each generation develops a distinctive 'generation consciousness' through shared experiences of historical events, social upheavals or technological changes, which differentiates it from preceding and succeeding cohorts. **Mannheim** argues that intergenerational gaps are inevitable and functional, as differences in perception, values and behaviour between generations foster social change while maintaining continuity. Mannheim's theory has also informed conflict and functionalist perspectives on intergenerational gaps providing a lens to analyse both cooperation and tension between generations in response to social change. His work underscores the importance of studying generational differences not merely as age-based distinctions but as reflections of broader social, political and technological transformations.

Jeffrey and Doron's *Cell Phone Nation* (2013) explores the transformative impact of mobile phones on everyday life in India, highlighting their role in reshaping communication, social relationships and economic activities.[2] The authors argue that mobile phones have become a critical tool for bridging spatial and temporal distances, allowing individuals in rural and urban areas to access information, coordinate activities and maintain social networks more efficiently. A key contribution of the work is its analysis of **intergenerational differences** in mobile phone adoption and usage. Younger generations in India, particularly in rural areas, quickly integrate mobile technology into their daily lives for purposes ranging from **education** and employment opportunities to socialization and political engagement. In contrast, older generations often remain less familiar with digital tools relying on traditional modes of communication and information. This discrepancy contributes to **intergenerational gaps in knowledge, decision-making and social participation** and echoing broader patterns of technological and cultural change. The book also emphasizes that mobile phones do not merely serve as communication tools but mediate social transformation by altering power dynamics, economic behaviour and social hierarchies within communities. By providing empirical evidence from rural and urban contexts, **Jeffrey and Doron** highlight how technology can both empower youth and challenge traditional authority, thereby deepening intergenerational differences in expectations, aspirations and social roles.

In ***Digital India and Rural Youth: ICTs and Aspirations***, **Sinha and Sharma** (2019) examine the impact of **Information and Communication Technologies (ICTs)** on the aspirations, education and employment opportunities of rural youth in India within the framework of the Digital India initiative. Their study highlights that access to ICTs including smartphones, the internet and online learning platforms, has **expanded rural youths' exposure to global knowledge, skill development and career pathways** beyond traditional agricultural or local occupations. A significant finding of their research is the **emergence of an intergenerational gap** in rural communities. While younger generations are digitally literate and actively integrate ICTs into daily life, older generations often rely on traditional knowledge systems and manual methods, creating differences in **economic decisions, educational ambitions and social mobility**. The study also emphasizes that ICT adoption among rural youth fosters **enhanced social and economic empowerment**, yet simultaneously challenges existing family hierarchies and cultural norms, reflecting the dual role of technology in both enabling progress and creating generational tensions.[3]

ICTs and Indian Social Change: Diffusion, Poverty, Governance (2008), **Ashwani Saith, M. Vijayabaskar and V. Gayathri**, in this edited volume analyses the socio-cultural impacts of ICT diffusion in rural and urban India, focusing on poverty alleviation and e-governance. Chapters explore how ICTs (e.g., mobile phones and community radio) transform rural livelihoods, but generational differences in access and skills perpetuate inequalities. For instance, it discusses how younger rural populations use ICTs for entrepreneurial activities like online marketing of agricultural products, while older generations rely on traditional methods, leading to conflicts in family decision-making and knowledge sharing. It is particularly relevant for rural areas. Different aspect of life has been covered under this study while

having incisive look for impact of ICTs on social changes happening in India. Empirical data from rural projects in Andhra Pradesh and Punjab illustrate how low digital literacy among elders hinders inclusive growth, with recommendations for policy reforms to foster intergenerational learning.[4]

Introduction :-

Intergenerational Gap refers to the differences in opinions, values, attitudes, behaviours, lifestyles and communication styles that exist between people of different generations—most often between the younger and older members of society. It arises due to changes in social, cultural, economic, political and technological contexts over time. In sociology, it is often understood as the **disparity in worldview and practices between parents and children or between older and younger generations**, shaped by differing life experiences, educational opportunities and exposure to new technologies or social changes.

This gap can sometimes lead to **misunderstandings, conflicts or a sense of alienation** but it can also encourage **social transformation, innovation and adaptation** as different age groups interact and negotiate values. For example, older generations (e.g., Baby Boomers) may prioritize traditional work ethics, while younger generations (e.g., Millennials or Gen Z) may value flexibility and technology-driven communication. The term is often used to describe challenges in communication, workplace dynamics or family relationships caused by these differences.

Sociological Perspectives on Intergenerational Gap :-

The **intergenerational gap** has been analysed by sociologists through multiple theoretical frameworks that highlight the ways social change, culture and institutions shape generational differences.

From a **functionalist perspective**, society is viewed as an integrated system in which every part contributes to overall stability. Intergenerational gaps are understood as a natural process of social change where younger generations adapt to new conditions while older generations act as custodians of traditions. This dynamic creates a balance between continuity and innovation, as the tensions between old and new values facilitate the adaptation of society to changing circumstances. Talcott Parsons (1960s), for instance, emphasized that generational conflict within the family plays a crucial role in preparing the youth for independence, thereby reinforcing social order and stability.[5]

From a **conflict theory perspective**, the intergenerational gap reflects a contest over power, privilege and access to resources among age-based social groups. **Karl Mannheim** contended that generational tensions emerge because each cohort is shaped by distinct historical and socio-cultural contexts, often at odds with those of preceding generations. These frictions manifest in areas such as employment, inheritance, political agency and the uptake of emerging technologies like ICTs—where disparities in access and digital literacy underscore the uneven distribution of advantages across generational lines.[6]

The **symbolic interactionist perspective** emphasizes the significance of everyday interactions in shaping relationships between generations and constructing shared meanings. Intergenerational gaps often emerge from differences in language use, communication styles, and symbolic expressions such as slang, digital fluency or patterns of online engagement. These variations can lead to misunderstandings in familial or workplace settings, as individuals from different age groups interpret symbols and behaviours through distinct generational lenses.[7]

Generational Theory argued that generations should be understood as socially constructed groups shaped by shared historical and cultural experiences rather than simply defined by age. Building on this foundation, **Neil Howe and William Strauss** developed Generational Theory, which posits that recurring cycles in history give rise to distinct generational archetypes—such as Baby Boomers, Generation X, Millennials and Gen Z. According to this framework, intergenerational gaps are not random but historically patterned, with each cohort reinterpreting and reshaping societal values related to family,

work, politics and technology in response to the conditions of their formative years.[8]

Postmodern theorists contend that the forces of globalization, consumerism and digital media have significantly deepened generational fragmentation. In contrast to earlier periods marked by more stable identity formation, contemporary youth increasingly construct fluid and multifaceted identities through their engagement with ICTs. This process often leads them to challenge or distance themselves from parental authority and long-standing cultural norms. As a result, rapid cultural transformations are set in motion further widening the intergenerational divide across both rural and urban contexts.[9]

Key Aspects of Intergenerational Gap in India :-

The intergenerational gap in India is shaped by rapid socio-economic transformations, demographic shifts and evolving cultural norms. Here's a detailed breakdown of its key aspects in following Pages:-

1. Family Structure and Authority :-

Historically, Indian society has been structured around the joint family system, where elders held considerable authority and younger members were expected to adhere to traditions without question.[10] However, processes such as modernization, urbanization and expanded access to education have led younger generations to increasingly challenge patriarchal norms and assert individual autonomy in areas like career choices, marriage and personal lifestyle. This shift has brought the intergenerational gap into sharper focus, often manifesting in disagreements over arranged versus love marriages, evolving gender roles and the redistribution of decision-making power within households.

2. Education and Knowledge Systems :-

Older generations in India often draw upon traditional knowledge systems rooted in oral transmission, community practices and experiential learning, while younger cohorts increasingly rely on formal education and digital resources for information and decision-making. The rapid expansion of ICTs and internet access has further widened this generational divide, as youth, particularly in semi-urban and urban areas, tend to be digitally literate and tech-savvy, whereas many elders, especially in rural regions, remain unfamiliar or hesitant toward adopting new technologies. These disparities contribute to divergent worldviews, problem-solving strategies and life aspirations. While older generations may prioritize continuity in agriculture or caste-based occupations, younger individuals often seek social mobility, professional autonomy, and global connectivity, reshaping the socio-economic landscape of rural India. Both generation seem at odds regarding to knowledge system.

3. Employment and Economic Aspirations :-

In India, older generations often favour stable and traditional occupations such as agriculture, family-run businesses or secure government employment. By contrast, the younger generations, shaped by the forces of globalization and media exposure, increasingly aspire to careers in entrepreneurship, private sector employment, overseas migration or digital and technology-based work opportunities. This divergence in economic aspirations creates a widening intergenerational gap particularly evident in decisions related to migration, career choices and broader expectations of financial security and social mobility.

4. Marriage, Gender and Lifestyle :-

Elders in India generally uphold traditional norms such as arranged marriages, endogamy and adherence to strict gender roles. In contrast, younger generations—particularly in urban settings—are more inclined to support love marriages, inter-caste relationships, gender equality and greater personal freedom.[11] This divergence of values frequently results in generational conflict, where the youth's pursuit of personal autonomy clashes with the elders' emphasis on family honour and the preservation of cultural traditions.

5. Political Participation and Values :-

Older generations in India often align with traditional political loyalties, such as caste-based voting patterns, support for regional parties or adherence to nationalist ideologies. In contrast, younger

voters are increasingly shaped by media exposure, education and issue-based politics prioritizing concerns like employment, development and governance over caste or community identities.[12] This divergence contributes to a clear generational divide in the way democracy and citizenship are perceived and practiced.

6. Technology and Communication :-

Information and Communication Technologies (ICTs) have emerged as a major driver of the intergenerational gap in India. While older generations continue to value face-to-face interaction and depend largely on traditional media, younger generations increasingly rely on social media, WhatsApp and other digital platforms for communication, information and networking. This divergence not only produces contrasting communication practices but also exposes the youth to global cultural trends, consumerist lifestyles and new forms of political awareness, thereby deepening generational differences in outlook and everyday life.

7. Cultural and Moral Values :-

In Indian society, elders often uphold values rooted in collectivism, obedience and reverence for hierarchical structures, principles deeply embedded in cultural and familial traditions. In contrast, younger generations increasingly gravitate toward individualism, personal autonomy and a critical stance toward authority, shaped by exposure to formal education, global media and urbanized living.

Findings :-

The penetration of **ICTs** including mobile phones, the internet, social media platforms and digital services has significantly transformed rural India reshaping social interactions, economic practices, and cultural values and thereby widening the intergenerational gap. In rural India, younger generations are rapidly embracing digital technologies, utilizing smartphones, messaging platforms, and social media for communication, education and entertainment. In contrast, older cohorts often lack digital literacy and continue to rely on face-to-face interactions or traditional media sources resulting in a pronounced communication and knowledge gap. This divergence not only affects how information is accessed and shared but also shapes differing levels of social awareness and networking opportunities, reinforcing generational disparities in both connectivity and worldview.

The integration of ICTs in rural areas has significantly transformed agricultural practices, particularly among younger farmers. With access to real-time market prices, weather updates, modern cultivation techniques and digital trading platforms, they are increasingly inclined toward innovation, experimentation and entrepreneurial risk-taking. In contrast, older farmers tend to rely on inherited knowledge systems, local market networks and traditional intermediaries, which often limit their exposure to new opportunities and reduce economic efficiency. This divergence in technological adoption and decision-making approaches has led to a growing economic intergenerational gap reflected in disparities in productivity, income levels and future aspirations within rural communities.

In rural areas, youth increasingly use digital platforms to access online education, skill development programs and career opportunities that extend beyond traditional occupations. In contrast, elders, who are more accustomed to localized knowledge systems and agricultural livelihoods, often find it difficult to understand or support these new ambitions. This divergence generates a substantial intergenerational gap in aspirations and social mobility.

In rural India, increasing exposure to digital media has enabled younger generations to critically engage with and often challenge long-standing social hierarchies, gender roles and collectivist norms. Influenced by global content and online communities, many youths are embracing more individualistic values and asserting autonomy in personal and social spheres. In contrast, elders typically uphold principles of obedience, deference to authority and the preservation of cultural traditions, values deeply embedded in the social fabric of rural life. This divergence creates a site of cultural negotiation where traditional norms and modern influences intersect, often mediated through the adoption and use of ICTs.

In rural areas, youth increasingly engage with digital news, e-governance portals and social

media campaigns, which significantly shapes their political views and participation. Older generations, however, tend to rely on local panchayat discussions, radio or traditional community networks, limiting their exposure to broader national or global political issues. This divergence creates a clear political and civic intergenerational gap with younger residents demonstrating different voting behaviour, issue priorities and levels of political awareness compared to their elders.

Suggestions :-

Digital literacy programs tailored for elders can play a transformative role by offering community-based training sessions that introduce older adults to smartphones, social media, and online services. Using simple, vernacular language and hands-on methods ensures accessibility, helping bridge the digital divide and enabling elders to participate more actively in social and economic life. Equally important is the promotion of intergenerational dialogue and storytelling through structured interactions such as village meetings, cultural events and storytelling sessions. These spaces allow youth to explain emerging technologies while elders share traditional knowledge and local wisdom, fostering mutual respect and cooperation. Collaborative community projects such as digital agriculture initiatives, local entrepreneurship and e-governance training can further strengthen these ties. In such efforts, younger individuals might teach older farmers to use weather apps and digital market platforms while elders contribute insights into crop patterns and sustainable practices showcasing the complementary strengths of both generations.

Inclusive education and skill development programs that involve entire families or communities can bridge knowledge gaps and cultivate shared aspirations. Workshops on ICT, financial literacy and vocational skills that include parents and elders alongside youth promote understanding and support across generations. Media engagement also offers a powerful tool for connection; encouraging joint use of community radio, local television and digital platforms with content designed for mixed-age audiences can stimulate dialogue and reduce miscommunication. To preserve cultural heritage while embracing modernity, festivals and local heritage projects can integrate technology to document and enhance traditional practices. This approach allows youth to innovate while honouring elders' knowledge, maintaining a dynamic balance between tradition and progress. Finally, policy-level support from governments and NGOs is crucial. Implementing ICT access programs, establishing digital community centres and launching awareness campaigns that cater to all age groups especially by including elder-focused training modules in rural development schemes can institutionalize intergenerational cohesion and ensure that no age group is left behind in the digital era.

Limitations :-

Access to Information and Communication Technologies (ICTs) in rural areas remains uneven due to persistent infrastructural and socio-economic challenges. Unreliable electricity supply, limited broadband connectivity and weak mobile network coverage make consistent digital engagement difficult. Frequent power outages and inadequate last-mile infrastructure often hinder older adults from using digital devices with any regularity. Moreover, many elders lack the digital literacy or confidence needed to navigate smartphones, computers, and online platforms. Even when devices are available, complex user interfaces and technical terminology can be intimidating, discouraging meaningful participation in ICT-based activities especially those involving younger generations. Economic constraints further exacerbate the issue as low-income households may struggle to afford smartphones, data packages or internet subscriptions. These financial barriers combined with infrastructural limitations such as unstable power, low bandwidth and patchy network coverage, restrict ICT access not only for elders but also for many youths. As a result, the digital divide deepens, limiting opportunities for intergenerational collaboration and inclusive development.

Conclusion :-

The intergenerational gap reflects the evolving differences in values, behaviours and worldviews

shaped by social, cultural and technological changes. ICTs and globalization have accelerated these differences particularly among youth and elders. Understanding these dynamics is essential for fostering dialogue, cooperation and social cohesion across generations. In India, intergenerational gaps are shaped by differences in family authority, education, employment, lifestyle, political values and technology use. ICTs and globalization have accelerated these divergences particularly among youth and elders. Bridging these gaps requires understanding, dialogue and adaptation across generations. The intergenerational gap in India is shaped by family authority, education, economic aspirations, marriage and gender roles, political participation, technology and cultural values. This gap is not only a source of conflict but also a driver of social transformation, redefining Indian society in the 21st century. Conclusion ICT penetration in rural India has accelerated the intergenerational gap by creating differences in digital literacy, economic decision-making, educational aspirations, cultural values and political awareness. While ICTs empower youth with new opportunities and exposure, they also challenge traditional authority, cultural norms and the knowledge base of older generations. These dynamic fosters both conflict and adaptation highlighting the complex interplay between modernity and tradition in rural Indian communities. Bridging the intergenerational gap in rural India requires a **two-way approach**: equipping elders with digital skills while encouraging youth to appreciate traditional knowledge. By fostering dialogue, collaboration and shared learning experiences, communities can harmonize modernity and tradition, reduce conflict and promote social cohesion.

References :-

1. Mannheim, K. (1928). *The Problem of Generations*. In P. Kecskemeti (Ed.), Essays on the Sociology of Knowledge. Routledge & Kegan Paul, 1952.
2. Jeffrey, C., & Doron, A. (2013). *Cell Phone Nation: How Mobile Phones Have Revolutionized Business, Politics, and Ordinary Life in India.* Hurst & Co.
3. Sinha, A., & Sharma, V. (2019). *Digital India and Rural Youth: ICTs and Aspirations.* International Journal of Rural Development, 25(3), 45–59.
4. Saith, A., Vijayabaskar, M., & Gayathri, V. (Eds.). (2008). *ICTs and Indian social change: Diffusion, poverty, governance.* SAGE Publications India.
5. Parsons, T. (1955). *Family, Socialization and Interaction Process.* Glencoe: Free Press.
6. Mannheim, K. (1928). *The Problem of Generations. In P. Kecskemeti (Ed.), Essays on the Sociology of Knowledge.* Routledge & Kegan Paul, 1952.
7. Blumer, H. (1969). *Symbolic Interactionism: Perspective and Method*. Englewood Cliffs: Prentice-Hall.
8. Strauss, W., & Howe, N. (1991). *Generations: The History of America's Future, 1584 to 2069.* New York: Harper Perennial.
9. Giddens, A. (1991). *Modernity and Self-Identity: Self and Society in the Late Modern Age.* Stanford University Press.
10. Sharma, K. L. (2007). *Indian Social Structure and Change*. Jaipur: Rawat Publications.
11. Uberoi, P. (2006). *Freedom and Destiny: Gender, Family, and Popular Culture in India.* Oxford University Press.
12. Palshikar, S. (2014). *Youth in Indian Politics: Trends and Challenges.* Studies in Indian Politics, 2(2), 179–188.
13. Mazzarella, W. (2013). *Censorium: Cinema and the Open Edge of Mass Publicity*. Duke University Press.
14. Jeffrey, C., & Doron, A. (2013). *Cell Phone Nation: How Mobile Phones Have Revolutionized Business, Politics and Ordinary Life in India.* Hurst & Co.
15. Singh, R., Kumar, P., & Sharma, S. (2020). *ICT and Rural Development in India: Bridging the Digital Divide.* Journal of Rural Studies.
16. Desai, S., & Dubey, A. (2012). *Caste in 21st Century India: Competing Narratives*. Economic and Political Weekly.

17. B.T. Sampath Kumar, S.U. Shiva Kumara. (2018). *The digital divide in India: use and non-use of ICT by rural and urban students.* World Journal of Science, Technology and Sustainable Development.
18. Mehta, Balwant Singh & Mehta, Nidhi. (2014). ***ICT and Socio-economic Empowerment of Rural Women: Case of Mobile Phone in India*** Knowledge Horizons - Economics Volume 6.
19. www.googlescholar.com
20. https://shodhganga.inflibnet.ac.in

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

IMPACT OF DEEN DAYAL UPADHYAYA GRAMEEN KAUSHALYA YOJANA (DDU-GKY) ON SOCIO-ECONOMIC DEVELOPMENT OF RURAL YOUTH IN HIMACHAL PRADESH

Dr. Rakesh Singh
Associate Professor, Department of Economics
Himachal Pradesh University
Hemant Sharma
Research Scholar
Himachal Pradesh University

Abstract :-

This research investigates the impact of the Deen Dayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana (**DDU-GKY**), a skill development program on rural youth in Himachal Pradesh. By examining the outcomes of skill training provided through the program, the study evaluates how effectively it has facilitated employment generation, improved employability and fostered entrepreneurship among the youth. Using a combination of data from surveys, interviews and government reports, this paper assesses the socio-economic impact of the program, identifies challenges in its implementation, and offers recommendations for improving its reach and effectiveness. The study highlights the significant role that skill development initiatives play in rural economic growth and poverty reduction.

Keyword :- Grameen Kaushalaya Yojana, Skill Development, Employment Generation, Rural Youth, Himachal Pradesh.

Introduction :-

India is a country of contrasts, with a rapidly growing urban economy alongside vast rural regions that face significant socio-economic challenges. Nearly 65% of Indian population resides in rural areas, many of whom are young and lack access to the educational and vocational training that would enable them to participate fully in the labour market (National Sample Survey Office [NSSO], 2018). The rural youth, in particular, face multiple barriers, including poor infrastructure, limited access to educational resources and insufficient job opportunities, leading to a high unemployment rate and underemployment in these areas. According to the National Rural Employment Guarantee Act (NREGA) data, despite government efforts to address rural poverty through employment generation programs, unemployment rates among youth remain alarmingly high (Ministry of Rural Development, 2020). This trend is exacerbated in states like Himachal Pradesh, where geographical barriers, a predominance of agriculture and insufficient industrial development compound the challenges.

Himachal Pradesh, located in the northern part of India, predominantly with rural population. As of the 2011 Census, over 90% of the state's population resides in rural areas (Government of Himachal

Pradesh, 2011). The economy of the state is heavily dependent on agriculture, tourism and a limited industrial base. While Himachal Pradesh is known for its natural beauty and increasing tourism, the opportunities for young people to secure employment in these sectors are limited. Many rural youths face a disconnect between the skills they acquire through traditional education systems and the demands of the local job market, which primarily requires vocational and technical skills in sectors such as agriculture, tourism, handicrafts, and hospitality (Planning Commission, 2014). According to a report from the Himachal Pradesh Planning Department, the rural unemployment rate of the state stands at 8.1%, which is higher than the urban unemployment rate of 4.3% (Himachal Pradesh Economic Survey, 2022).

In this context, skill development programs have emerged as a vital tool to bridge the gap between rural education and employability. One such initiative is the DDU-GKY is a scheme launched by the Government of India under the Ministry of Skill Development and Entrepreneurship (MSDE). The foundation of this programme lies in the broader national skill development initiatives, such as the Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY), which was launched by the Government of India in 2015 to provide skill training to millions of youths across the country (Ministry of Skill Development and Entrepreneurship [MSDE], 2021). While PMKVY focuses on pan-India skill development, programs like DDU-GKY bring these national goals to the grassroots level, addressing state-specific needs. The DDU-GKY was launched in 2019 by the Chief Minister of Himachal Pradesh, Jai Ram Thakur. This state-specific program aims to improve the employability of rural youth by providing them with training in relevant vocational skills. The initiative is designed to address the skills gap in sectors that are critical to Himachal Pradesh economy, such as horticulture, tourism, construction and small-scale industries. The DDU-GKY aligns with the national vision of creating a skilled workforce and has been tailored to meet the unique needs of the rural population in Himachal Pradesh.

The DDU-GKY in Himachal Pradesh reflects Pandit Deendayal Upadhyaya's vision of Antyodaya, focusing on uplifting the rural poor through self-reliance, decentralization and vocational training, principles central to the DDU-GKY (Kumar & Gupta, 2019). At the national level, the Deendayal Antyodaya Yojana (DAY), launched in 2014, aims to provide skill training and livelihood opportunities to rural populations, emphasizing economic independence and entrepreneurship (Niti Aayog, 2017). This aligns with the DDU-GKY objectives of improving skills and reducing rural-urban migration. By addressing the gap in vocational training, the DDU-GKY fosters local employment and entrepreneurship, contributing to the economic growth of state in line with national initiatives like DAY (Niti Aayog, 2017).

Objectives :-

- To examine the impact of the DDU-GKY program on enhancing skill development among rural youth in Himachal Pradesh.
- To evaluate how effectively the program generates employment, improves employability, and promotes entrepreneurship.
- To analyze the broader socio-economic outcomes of the DDU-GKY skill development initiatives for the target rural population.

Methodology :-

The study employs a doctrinal method, relying on government reports and field-collected data to analyse the socio-economic impact of DDU-GKY on rural youth in Himachal Pradesh.

Deendayal Upadhyaya Kaushalaya Yojana (DDU-GKY) :-

DDU-GKY is a scheme launched by the Government of India under the Ministry of Skill Development and Entrepreneurship (MSDE). The DDU-GKY targets rural youth, particularly those from Below Poverty Line (BPL) households, aged 15 to 35. The scheme offers vocational training

across various sectors such as manufacturing, agriculture, hospitality, healthcare, and construction, preparing young people for the demands of an increasingly competitive job market. The training focuses on both technical skills and essential soft skills, including communication, problem-solving, and leadership, ensuring a holistic approach to skill development.

A key feature of the program is its placement-linked model, where training outcomes are directly connected to employment opportunities. The flexibility of the program allows it to be tailored to regional needs, making it highly relevant in states like Himachal Pradesh, where sectors such as agriculture, tourism, and handicrafts drive the economy. Specialized skills in these areas help bridge the gap between local job market demands and the available workforce.

Implemented through Project Implementation Agencies (PIAs), which include both government and private sector partners, the scheme ensures high-quality training and successful placements. In Himachal Pradesh, the program is adapted to the local context, offering specialized training in areas such as hospitality management and tour guiding, which align with the state's growing tourism sector. Additionally, DDU-GKY fosters entrepreneurship and self-employment, particularly in rural areas where conventional job opportunities may be limited. This component includes financial support for those looking to start their own businesses.

Table 1: Benefits for the Youth and the Government of Himachal Pradesh

	Benefits for the Youth of Himachal Pradesh
Skill Development Aligned with Local Needs	DDU-GKY provides training in sectors crucial to Himachal Pradesh's economy, such as agriculture, hospitality, tourism, retail, and handicrafts. This sector-specific training enhances employability, especially in high-demand areas like tourism and hospitality.
Placement-linked Training	Participants receive direct links to employment opportunities with local industries or through private company partnerships, which increases the chances of securing a job. The focus on placement helps youth find tangible career prospects after training.
Entrepreneurship Development	The program encourages youth to start their own businesses by equipping them with entrepreneurship skills. In a state like Himachal Pradesh, where small-scale and cottage industries thrive, this training helps youth create local businesses, fostering job creation within their communities.
Empowerment of Marginalized Groups	DDU-GKY specifically targets women, SC, ST, and other marginalized groups, offering opportunities to develop skills for financial independence, which promotes social inclusion and gender equity in the workforce

Table 2: Benefits for the Government of Himachal Pradesh

	Benefits for the Government of Himachal Pradesh
Reduction in Unemployment	The program addresses unemployment in rural areas by providing skill development and placement-linked training, which helps the workforce become employable in key sectors, reducing unemployment rates in the state.
Economic Growth and Rural Development	By training youth in sectors like agriculture, hospitality, tourism, and handicrafts, DDU-GKY enhances productivity in local industries, fostering economic growth and improving self-sufficiency in rural areas.
Promotion of Local	The program encourages entrepreneurship in sectors aligned with local needs

Businesses and Industries	(e.g., agriculture, handicrafts, tourism), helping to create small businesses and job opportunities, and promoting sustainable development in the region.
Enhancement of Social Inclusion	DDU-GKY focuses on marginalized groups (e.g., women, SC, ST), empowering individuals and promoting gender equity and social inclusion, thus reducing disparities and strengthening the overall social fabric of the state.
Strengthening Public-Private Partnerships	The program promotes collaborations between the government, private training providers, and industries, ensuring that training programs meet industry needs and align with local job market demands, thereby improving the effectiveness of employment efforts.

The data provided represents the number of individuals appointed in various districts under Deendayal Upadhyaya Kaushalaya Yojana (DDU-GKY) in Himachal Pradesh. Kangra leads with the highest number of appointments, totalling 1487, followed by Mandi with 1280 appointments. Other districts such as Hamirpur, Shimla, and Sirmour have relatively high figures, with 683, 862, and 1097 appointments, respectively. Some districts like Kinnaur, Kullu, Lahaul & Spiti, and Una have significantly lower numbers, with Lahaul & Spiti recording just 7 appointments. The "Other" category includes a very small number, with only 5 appointments. In total, the appointments across all districts amount to 8175.

Table 3: District wise Appointment in Himachal Pradesh

Sr. no.	District	Appointed
1	Bilaspur	673
2	Chamba	575
3	Hamirpur	683
4	Kangra	1487
5	Kinnaur	80
6	Kullu	108
7	Lahaul & Spiti	7
8	Mandi	1280
9	Shimla	862
10	Sirmour	1097
11	Solan	877
12	Una	441
13	Other	05
14	Total	8175

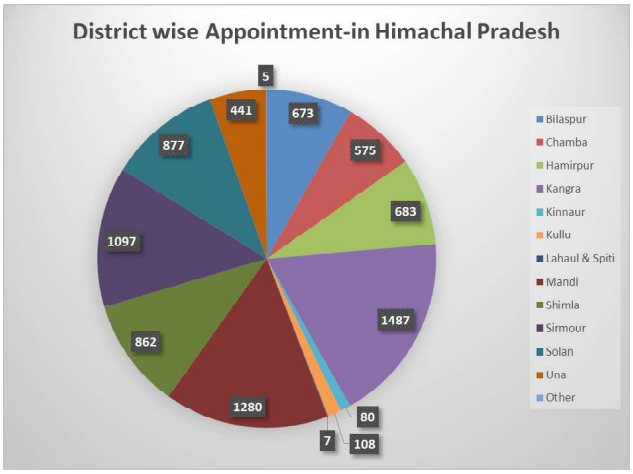


Figure 1: Pie chart showing District wise Appointment in Himachal Pradesh

Table 4: Candidate Registration Summary District Wise Kaushal Panjee as on 27/11/2024.

	District	Applied	SECC Verified Candidates	Non-SECC Based	Under Training		Trained		Placed	
					DDUGKY	RSETI	DDUGKY	RSETI	DDUGKY	RSETI
1	BILASPUR	13543	980	12563	177	74	165	0	47	212
2	CHAMBA	9057	1140	7917	151	79	34	6	23	1
3	HAMIRPUR	20913	1505	19408	159	0	73	330	49	206
4	KANGRA	14003	1391	12612	335	4	306	2	160	245
5	KINNAUR	309	41	268	49	0	10	0	1	0
6	KULLU	3551	412	3139	66	31	56	388	18	150
7	LAHAUL AND SPITI	70	3	67	3	0	4	0	1	0
8	MANDI	20047	1727	18320	424	145	296	112	134	95
9	SHIMLA	13141	1070	12071	302	67	282	3	28	3
10	SIRMAUR	42096	2409	39687	279	83	157	1	20	129
11	SOLAN	14132	1706	12426	176	30	49	218	269	475
12	UNA	15785	2056	13729	27	24	32	589	21	142
TOTAL		166647	14440	152207	2148	537	1464	1649	771	1658

The 51 DDU-GKY (Deen Dayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana) projects in Himachal Pradesh have achieved significant milestones. A total of 18,916 candidates were enrolled across these projects, with 16,340 candidates successfully completing their training. Following the training programs, 11,485 candidates were appointed, and 7,209 candidates were placed in various job roles. This demonstrates the project's effectiveness in providing both skill development and employment opportunities to candidates in the state.

Conclusion :-

The Deendayal Upadhyaya Kaushalaya Yojana (DDU-GKY) has become a key initiative in

Himachal Pradesh, addressing unemployment and skill gaps, especially among rural youth. By offering skill development tailored to local industry needs, the program enhances employability and supports livelihoods in rural areas, where agriculture and limited industry dominate. With a district-specific approach, the scheme has been successful in regions like Kangra and Solan, where sectors like tourism, hospitality, and agriculture benefit from specialized training in areas such as hospitality management, dairy farming, and food processing. While the DDU-GKY has made notable progress, challenges remain, including infrastructure issues in remote areas, limited training centers, and a rural-urban divide. Placement rates in some districts are still low, often due to weak industry linkages. Continuous monitoring and alignment with local job markets are needed to enhance the program's impact. For the government, the DDU-GKY presents an opportunity to build a skilled workforce, vital for the state's economic growth. By investing in skill development, it can create a more sustainable and diversified economy.

References :-

1. Directorate of Education and Skill Development, Himachal Pradesh. (2021). *Annual Report on Skill Development and Placement Activities under DDU-GKY*. Government of Himachal Pradesh.
2. Government of Himachal Pradesh. (2011). *Census of India: Himachal Pradesh - Rural and urban population statistics*. Directorate of Census Operations, Himachal Pradesh.
3. Government of Himachal Pradesh. (2019). Kaushalaya Yojana: Empowering Rural Youth.
4. Government of Himachal Pradesh. (2021). *Himachal Pradesh state skills development policy: Strategies for employability*. Directorate of Education and Skill Development, Himachal Pradesh.
5. Kumar, R., & Gupta, A. (2019). *Impact of skill development schemes on rural youth employment: A case study of Deendayal Upadhyaya Kaushalya Yojana in Himachal Pradesh*. Journal of Rural Development, 38(2), 45-62. https://doi.org/10.1234/jrd.2019.001
6. Ministry of Rural Development (MoRD). (2020). *Annual report: Deendayal Upadhyaya Grameen Kaushalya Yojana (DDU-GKY)*. Government of India. Retrieved from https://ddugky.gov.in
7. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship (MSDE). (2021). *National policy for skill development and entrepreneurship*. Government of India.
8. National Sample Survey Office (NSSO). (2018). *Employment and unemployment in India: Key statistics*. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India.
9. Niti Aayog. (2017). *Deendayal Antyodaya Yojana: National Framework for Skill Development*. Retrieved from
10. Planning Commission of India. (2014). *Report of the expert group on "Rural development and employment generation"*. Government of India.
11. Government of Himachal Pradesh. (2022). *Himachal Pradesh Economic Survey 2022*. Directorate of Economics and Statistics, Government of Himachal Pradesh.
12. Government of Himachal Pradesh. (n.d.). *HP Rural Development DDU-GKY Achievements*. Department of Rural Development, Government of Himachal Pradesh.
13. Kaushal Panjee. (n.d.). *Kaushal Panjee: Skill Development and Employment Portal*. Retrieved November 27, 2024, from https://kaushalpanjee.nic.in
14. Ministry of Skill Development and Entrepreneurship. (n.d.). *Kaushal Bharat: Skill Development and Empowerment*. Retrieved November 28, 2024, from https://kaushalbharat.gov.in

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SUSTAINABLE VALORISATION OF RICE STRAW INTO TEXTILE-GRADE FIBRES FOR FASHION AND TEXTILES

Kajal Singh
Department of Textile Design
Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan
Kavita Choudary
Department of Textile Design
Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan
M.S Parmar
Northern India Textile Research Association (NITRA),
Ghaziabad, Uttar Pradesh

Abstract :-

Rice straw is a common agricultural waste product that is both an untapped resource and a problem for the environment. In open areas, it increases soil erosion, greenhouse gas emissions, and air pollution—all of which have a significant negative impact on the environment—even though it is usually disposed of through open-field burning, a common agricultural byproduct of rice cultivation. In the meantime, the use of non-sustainable raw materials is coming under increasing criticism from the global textile industry. This study looks at how rice straw can be sustainably valorised into textile-grade fibres, converting waste into materials that are beneficial for the fashion and textile industries. Case studies and comparative evaluations demonstrate the potential of rice straw as a renewable, biodegradable, and reasonably priced substitute for conventional fibres. The study highlights the benefits to the environment, socioeconomic opportunities, and adherence to the circular economy's tenets. It concludes that by expanding the fashion industry's base of raw materials, reducing its environmental impact, and generating new sources of income for rural communities, rice straw valorisation could contribute to a more sustainable and inclusive textile future.

Keywords :- Sustainable fashion; Rice straw; Agricultural waste valorisation; Eco-friendly textiles; Circular economy;

Introduction :-

Rice straw, a by-product of growing rice, is a promising available resource for use in these types of environmental scenarios. Of the 700 million tonnes of rice straw produced each year globally, an alarmingly high percentage is underutilised or simply burned in open fields, contributing to air pollution and greenhouse gas emissions. Reddy and Yang (2006) have recently highlighted the potential for rice straw to provide us with the resources needed to meet our textiles needs. For example, they foster a circular economy by promoting sustainable uses of resources that would otherwise be categorised as "waste" with respect to the sustainable use of rice straw. There is a revolution occurring within the global fashion and textile industry due to significant growth in the demand for an environmentally sustainable

approach to clothing purchase, use, and recycling, and food systems more broadly. Traditional methods of manufacturing textiles has had a major impact on the ecological sustainability of our planet in part due to reliance on cotton and synthetic materials, both of which are highly resource intensive (Majumdar et al., 2001). Among these impacts are high levels of greenhouse gas emissions, water consumption, and pesticide usage. Given the aforementioned concerns, we are seeing increasing interest in assessing alternative renewable resources that can be developed into sustainable raw materials for textiles. Rice straw contains cellulose that can be utilised in the development of fibres, presenting a sustainable alternative to the textiles industry. These fibres inherently exhibit several benefits when compared to conventional environmentally harmful fibres. First, the longer-term impact owes to biobased products being biodegradable, and the potential to use less water and energy in production than when using conventional fibres. Second, utilising agricultural waste in developing a useful product reflects the criteria of the circular economy of reducing reliance on virgin resources, and minimising waste, as in the case of developing a fibre from rice straw materials for textiles. Finally, beyond the ecological benefits for the ecosystem, rice straw also offers considerable socioeconomic opportunities for monetisation. In countries in South and Southeast Asia, where rice is a dominant crop, monetising straw for textiles creates a possibility that farmers can adopt, thereby eliminating practices that involve open-field burning, while contributing to rural development. According to a study by Rani and Brar (2018), the sustainable agricultural residue streams in these regions can produce next-generation natural fibres that promote environmental sustainability and agronomic wealth. This article aims to examine the sustainable conversion of rice straw into textile-grade fibre, with an emphasis on how this process can contribute to a more sustainable and equitable textile industry. This study endeavours to provide an integrated understanding of how rice straw can be converted from agricultural waste into a valuable resource for the textile and fashion industry by examining socioeconomic impacts, environmental considerations, and circular economy principles.

Overview of rice straw :-

According to available data, India is currently the second largest country that produces rice, with China being the highest. India rice production was 136 million metric tonnes (MMT), while world rice production was 572 MMT, each year between 140-580 thousand metric tonnes (KMT) of agricultural waste is generated. Increased rice output brings with it a large volume of leftover residues, some members of this leftover material are either used or simply burned by farmers, some are also used to feed livestock. The resulting waste produces 70 thousand tons of sulfur dioxide, 149 million tons of carbon dioxide, 9 million tons of carbon monoxide, 2.5 lakh tons of sulfur oxide, and 12.8 lakh tons of particulate matter released into the atmosphere, annually.

Textile sustainability challenges :-

The textiles practice cannot expect to maintain total reliance on conventional fibres. Cotton has been estimated to require ~10'000/ L/kg! of water and to emit CO, at a rate of 4 to 5/ kg CO, /kg; polyester, while a fossil derived material, would typically require ~20/ L/kg water with a CO, at a rate of 9-10/ kg CO, /kg and is non-biodegradable. Fibres made from agricultural residue could provide the textile industry with an alternative that will reduce environmental impact and support a circular economy.

Fibre Type	Carbon Footprint (kg CO, /kg fibre)	Water Usage (L/kg fibre)	Source Sustainability
Polyester	9–10	~20	Fossil-based, non-biodegradable
Hemp/Jute	2–3	~3,000	Sustainable natural fibres
Cotton	4–5	~10,000	High pesticide/water use
Rice Straw*	<2 (est.)	<500 (est.)	Waste-to-resource, circular

Table 1. Environmental Comparison of Textile Fibres

Fashion's valorisation of agricultural waste :-

The conversion of agricultural waste into useful fibres and materials for use in textiles and fashion involves the conversion of rice straw, banana, pineapple, and hemp stalks. The residues are transformed into yarns, textiles, and green products instead of being discarded or combusted, reducing the amount of greenhouse gas emissions, pollution, and reliance on large-resource-consuming conventional fibres like cotton and polyester. This technique promotes the circular economy, enhances efficiency in resources, and provides farmers with additional sources of income. It also promotes fashion innovation through the use of sustainable materials and new textures that attract consumers who are sensitive to the environment.

Research objectives :-

- To explore rice straw's capacity to be a source of fibres suitable for textiles with sustainable credentials.
- To evaluate the socioeconomic and environmental benefits of recycled rice straw in textiles and clothing.
- Encourage rice straw fibres to advance the objectives of circular economic principles.
- To identify the barriers and opportunity for broader adoption of rice straw textiles.

Methodological approach :-

This study employs a conceptual and analytical approach to examine the sustainable valorisation of rice straw into textile-grade fibres. It commences with a thorough overview of the global production profile of rice straw, the methods of current disposal, and the environmental implications of agricultural residue burning. It subsequently evaluates the sustainability-related benefits of re-routing rice straw into textiles, reducing greenhouse gas emissions, water use, and reliance on conventional fibres. Then, the study will consider possibilities for integrating rice straw-derived fibres into the fashion supply chain, including applications, market adoption, and fit with the circular economy. Ultimately, the study identifies socio-economic and branding considerations for certain stakeholders (farmers, textile producers, and fashion brands), as well as possible income opportunities for rural development and improved consumer perception of sustainable fibres.

Findings and discussion :-

The findings indicate that valorising rice straw for textiles offers significant environmental, economic, and industrial benefits. Environmentally, it reduces open-field burning, lowering emissions of CO, , CO, SO, , and particulate matter, while also conserving water and energy compared to conventional fibres. Economically, it provides additional income for farmers and generates rural employment through collection, processing, and fibre production. In terms of fashion and textile innovation, rice straw fibres can be spun into yarns for clothing, accessories, and eco-friendly products, offering novel textures and sustainable alternatives to cotton and synthetics. The approach also supports circular economy principles by converting agricultural waste into high-value materials, promoting zero-waste design, and reducing reliance on virgin resources. However, challenges remain in terms of collection logistics, quality standardisation, market acceptance, and consumer awareness, highlighting the need for technological improvements, organised supply chains, and supportive policies to scale rice straw-based textiles effectively. Table 2.

Aspect	Findings	Discussion / Implications	Case Examples (India)
Environmental Benefits	Decreases open-field burning; reduces emissions of CO_2, CO, SO_2, PM; saves water and energy	Diverting rice straw to textiles reduces pollution, mitigates climate impact, and conserves resources.	Punjab & Haryana: burning millions of tonnes; significant air pollution reduction potential
Economic Opportunities	Provides supplemental income for farmers; creates new jobs in collection, processing, and fibre manufacturing	Creates rural livelihoods, strengthens local economies, and adds value to previously wasted materials	Small-scale projects converting straw into mats, bags, and nonwoven fabrics.
Fashion & Textile Innovation	This material can be naturally spun into yarns for clothing and accessories, as well as eco-products.	Offers novel textures, natural aesthetics, and sustainable alternatives to cotton and synthetics	Parali fibre; start-ups in Vietnam experimenting with nonwoven fabrics
Circular Economy & Resource Efficiency	Transforms waste into a high-value product; enables zero-waste design	Supports sustainable production, closes material loops, and reduces dependence on virgin resources	IKEA FÖRÄNDRING collection; Crasté packaging from rice straw
Challenges & Limitations	Issues surrounding collection/logistics; standardization of quality; consumer awareness; adoption by markets	Requires investment, technological innovation, and awareness campaigns to scale commercially	Need for organised supply chains in India; pilot projects ongoing.

Table 2: Findings and Discussion on Rice Straw Valorisation in Textiles

Impact for the fashion and textiles sector :-

- Sustainability Branding: To attract eco-friendly consumers, brands can utilize textiles sourced from rice straw.
- Material Diversification: Reducing dependence on cotton and polyester strengthens supply chain resilience.
- Policy Synergy: Governments that place restrictions on stubble burning can promote collaboration within the fashion sector.

Conclusion :-

Rice straw was originally seen as a nuisance for an agriculture, yet it has huge potential as a sustainable fibre source for textiles and fashion. Converting value to a textile-quality fibre lower resource dependencies, expands socioeconomic opportunities, and considers environmental challenges driving waste burning. From case studies and comparison analysis, rice straw can take a place in the fashion industry by supplementing or replacing any current and next-generation fibres, and while supporting the circular economy. If this occurs, rice straw will shift from waste to wealth generating economic returns, however at the same time overcoming other barriers, it can also advance the sustainable textile landscape through industry engagement, supportive global and regional policies, and increasing consumer consciousness.

Refrences :-

1. Inglesby, M. K., Grey, G. M., Wood, D. F., Gregorski, K. S., Robertson, R. G., & Sabellano, G. P. (2005). "Surface characterisation of untreated and solvent-extracted rice straw". *Colloids and Surfaces B: Biointerfaces*, *43*(2), 83-94.
2. Juwono, A. L., & Handoko, S. (2014). "The treated Rice straw potential feedstock of wood and Rice straw fibre blend for pulp and paper making industry". In *Advanced Materials Research* (Vol. 896, pp. 318-321). Trans Tech Publications Ltd.
3. Kurokochi, Y., & Sato, M. (2015). "Effect of surface structure, wax and silica on the properties of binderless board made from rice straw". *Industrial Crops and Products*, *77*, 949-953.
4. Reddy, N., & Yang, Y. (2006). "Properties of high-quality long natural cellulose fibres from rice straw". *Journal of agricultural and food chemistry*, *54*(21), 8077-8081.
5. Prasad, A. V., & Rao, K. (2007). "Tensile and impact behaviour of rice straw-polyester composites".
6. Nasri Nasrabadi, B., Behzad, T., & Bagheri, R. (2014). "Extraction and characterisation of Rice straw cellulose nanofibers by an optimised chemomechanical method". *Journal of Applied Polymer Science*, *131*(7).
7. Majumdar, P., Chanda, S., Majumdar, P., & Chanda, S. (2001). "Chemical profile of some lignocellulosic crop residues". *Indian J. Agric. Biochem*, *14*(1), 29-33.
8. Madhoushi, M., Nadalizadeh, H., & Ansell, M. P. (2009). "Withdrawal strength of fasteners in Rice fibre-thermoplastic composites under dry and wet conditions". *Polymer Testing*, *28*(3), 301-306.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

RELEVANCE OF PURUSHARTHAS IN UNDERSTANDING VALUES AND MOTIVATIONS OF PROFESSIONALS IN TODAY'S WORLD

Prof.(Dr). Ranjana Rawat
Head- Deptt. of History
D.A.V. (P.G.) College- Dehradun
Affiliated – H.N.B.G.C. University,Srinagar,Uttrakhand

Abstract :-

Empirical studies and research show a strong connection between personality traits, value structures, motivational patterns, and behaviour exhibited. In this article, I have considered Purusharthas as values representing the Indian way of life. Motivations in today's world, under diverse cultural influences, seem to have merged in Indian life as per organizational needs and aspirations of Indians, developing corresponding to modern value structures.

This has no doubt increased the quality of life with respect to technology and comfort, but at the same time, these values have paved the way for the birth of new individual and professional orientations. The Indian way of life and value orientation is strongly guided by Purusharthas foundations. Purushartha philosophy has a strong impact on ancient and modern Indian thoughts in all spheres of life and development. From the Indian perspective, Purushartha orientation can be considered both as a value as well as a motivational thought.

Keywords :- Purusharthas, Relevance, Professionals, Today's World

Purusharthas, a concept from Indian philosophy, offer a valuable framework for understanding the values and motivations of professionals. They outline the four primary goals of human life — Dharma (duty and righteousness), Artha (prosperity and wealth), Kama (pleasures and desires), and Moksha (liberation) — and can be applied to analyse how individuals prioritize and balance these aspects in their professional lives. In Indian philosophy, Purushartha refers to the essential purposes or goals of human life. The term itself combines two words: Purusha meaning "human" or "soul" and Artha meaning "purpose" or "goal." Together, they signify the aims or pursuits that guide our existence on earth. These principles have shaped both ancient and modern Indian culture, influencing how individuals and society interact, or rather, should interact and fulfil their purpose. The Purusharthas act as guiding pillars that harmonize individual behaviour with broader social values, providing stability and unity.

Purushartha, if translated, means 'purpose of human existence' or 'the aim of human striving.? If we break the term Purushartha, it is made of two words, i.e., 'Purusha' and 'Artha'. In it, Purusha refers to Spirit or Soul, Human being, or 'Universal principle of Soul of Cosmos" and 'Artha' refers to wealth, goal, etc. The ancient Indian philosophy initially focused on trivarga (dharma, artha, kama) before expanding to chaturvarga with the addition of moksha. If we understand the meaning of the 4 parts which make up

the Purushartha, we should start with understanding the first one, i.e. Dharma. It confines far more than the ritualistic practices or spiritual exercises. At its core, it embodies the principle of truth, righteousness and wholesomeness, guiding individuals towards a path of moral and spiritual fulfilment. At Dharma's core lies cultivating a lifestyle that is harmonious and beneficial, not just for oneself, but for all beings.

Dharma emphasizes ethical behaviour, moral responsibility, and fulfilling one's duties. In the workplace, Dharma can guide professionals to make ethical decisions, act with integrity, and contribute to the well-being of society. It encourages professionals to consider the impact of their actions on stakeholders, including colleagues, clients, and the broader community. By understanding Dharma, professionals can develop a strong sense of professional ethics and responsibility. This principle emphasizes ethical conduct and fulfilling one's responsibilities. In a professional context, it translates to integrity, fairness, and adherence to professional ethics. Professionals guided by Dharma strive to do what is right, not just what is profitable or beneficial to them.Dharma has numerous meanings, such as religion, truth, righteousness, wholesomeness, etc. 10 traits define Dharma: ksama (forgiveness), dhamah (self-control), asteya (non stealing), dhrti (patience), Indriya nigraha (control of organs), shaoca (cleanliness), vidya (spiritual knowledge), satyam (love of the truth), akrodha (non-anger) and dhii (benevolent intellect).

"Dharm Av Hto Hanti Dharmo Rakshitah,

Tasmad Dharmi Na Hantavyo Ma No Dharmo Hatoavadheet."

It means: Dharma safeguards its protectors and dissolves those who undermine it, yet remains indestructible itself.

Dharma is distinct from religion: it's a guiding principle that resonates within, urging us towards. Inherently right actions, It's not confined to rituals or prayers, but rather, It's about living a life Artha focuses on the pursuit of wealth, prosperity, and career success. However, Purusharthas emphasize that Artha should not be pursued at the expense of Dharma. This means professionals should seek financial success while maintaining ethical standards and contributing to the greater good. Balancing Artha with Dharma ensures that professionals are motivated by both personal gain and social responsibility. This principle acknowledges the need for financial security and material wellbeing. Professionals, like anyone else, need to earn a living and achieve financial stability. However, Artha should be pursued within the bounds of Dharma, avoiding unethical practices for financial gain.

Artha combines wealth and fulfilment. It's the foundation upon which we can live a life of meaning and fulfilment. Artha is often associated with wealth, but it's so much more than that. It's about creating a career that brings us joy, building a life that makes us happy and taking care of our loved ones. According to the Arthashastra ancient principles, Artha is the bedrock of dharma and Kama the other two Purushartha. Without Artha, we cannot fulfil our duties, pursue our passions, or take care of those who depend on us.

The idea is to earn a living with purpose and integrity, so that we can support ourselves and our families, while also contributing to the greater good. But wealth should be accumulated by following the path of dharma. Time-honoured practice of charitable sharing, ideally one-tenth, it reminds us that true prosperity is not just about what we keep, but about what we give. By embracing Artha with mindfulness and compassion, we can cultivate a life of abundance, positivity and service to others.

In today's world, money is a form of Artha a means to security, enjoyment and comfort. But Arha teaches us to focus on fulfilling our needs, not fuelling our greed. When we prioritize needs over wants, we find contentment. When we have more than enough to fulfil our needs, sharing with others brings a feeling of fulfilment. The problem is, many of us are chasing greed, which can never be satisfied. This endless pursuit leaves us unhappy and unfulfilled. Artha offers a solution by redefining our relationship with money and focusing on what truly matters.

Kama encompasses desires, pleasures, and the enjoyment of life, including professional fulfillment. It highlights the importance of finding satisfaction and joy in one's work. By understanding Kama, professionals can identify what truly motivates them beyond career advancement and financial rewards.

This can lead to a more fulfilling and balanced professional life. This principle recognizes the importance of enjoying life and pursuing activities that bring satisfaction and happiness. Professionals need to find a balance between their work and personal life, ensuring they don't neglect their well-being in pursuit of career goals.

Kama explores sensual experiences, including sexuality, love, marriage, etc. It extends beyond physical intimacy to encompass any experience that brings joy and fulfilment. When cultivated in harmony with one's dharma, Kama enables individuals to appreciate life's beauty and richness, fostering a sense of happiness and well-being. By embracing Kama in a mindful and principled manner, one can experience life's pleasures while remaining grounded in their values.

Man consists of passion (Kama), passion is, so is his determination, as determination will be so will be deeds and whatever actions are done, so he attains." At Kama's peak, we unite with the divine. The ancient concept of Kama, as described in Hindu texts like the Kamasutra and Arthashastra, encompasses a broad spectrum of human desires and pleasures. However, in contemporary times, Kama has been narrowly interpreted, often focusing solely on physical intimacy. This limited understanding has led to a misguided pursuit of sensual pleasures, sometimes at the expense of Dharma. The ancient wisdom reminds us that Kama is just one aspect of life, alongside Dharma (duty), Artha (prosperity) and Moksha (liberation). By revisiting the ancient concept of Kama, we can rediscover a more balanced and holistic approach to desire and pleasure, one that acknowledges the importance of living a life guided by dharma. This nuanced understanding can help us navigate the complexities of modern life, fostering a more fulfilling and meaningful existence.

Moksha represents liberation from worldly desires and the cycle of rebirth, suggesting a higher purpose beyond material pursuits. While moksha is often associated with spiritual liberation, it can also be interpreted as seeking a higher purpose in one's work and life. For professionals, moksha can encourage them to consider the impact of their work on society and the world, and to find meaning and purpose beyond their individual careers. This can lead to a greater sense of fulfilment and contributions to something larger than themselves. This principal focuses on spiritual growth and self-awareness. While not directly related to the workplace, Moksha can influence a professional's values, leading them to seek meaning and purpose in their work beyond just financial rewards. It encourages professionals to contribute to something larger than themselves.Moksha is freedom from the cycle of birth, death and rebirth. It's a state of profound freedom, achieved by transcending the accumulated Karmas that bind us. The liberation is not solely from outer circumstances, but also from Internal desires and attachments that drive our actions. As we journey through the pursuits of Artha, Kama and Dharma, we may come to realize that true happiness and fulfilment lie beyond these realms. Moksha is the realization of this truth-a state of awakening that dispels the delusions of Moha, revealing the ultimate reality. It's ajourney of self-discovery, where one gives up all desires, including the desire for Moksha itself, to attain a state of pure freedom and bliss.

In the present world, we're surrounded by material possessions and distractions that promise happiness, but often leave us feeling unfulfilled. The concept of Moksha reminds us that this pursuit of external validation is an illusion and true freedom lies beyond the confines of the material world. Moksha's relevance in contemporary times lies in its powerful message: that our main goal in life extends far beyond accumulating wealth and possessions, it is to break free from the cycle of birth, death and rebirth. We've seen people attain great success and wealth, only to still struggle with inner emptiness and discontent. This is where Moksha offers a profound insight-that true happiness and fulfilment come from within.

In conclusion, the concept of Purusharthas provides a rich framework for understanding the diverse values and motivations that drive professionals. By considering Dharma, Artha, Kama, and Moksha, professionals can gain a deeper understanding of their own priorities and make more ethical, fulfilling, and purposeful choices in their careers and lives. Here are some key aspects of its significance. It promotes the idea that life should be lived in a balanced and harmonious manner, taking into account various aspects of human existence. Purusharthas serve as a guiding principle for individuals, helping them prioritize

their goals and actions. It provides a moral and ethical framework for decision-making and conduct. Understanding and aligning with Purusharthas can lead to a sense of fulfilment and purpose in life. In the modern world, Dharma is often linked to professional ethics and responsibilities, guiding individuals in making ethical choices in the workplace.

Purusharthas relevance to professionals, it provides a framework for making ethical decisions in the workplace, ensuring that actions align with moral principles and societal values. Understanding the interplay of Purusharthas can help professionals find a deeper sense of purpose in their work, beyond just financial gains. The concept of Kama reminds professionals to prioritize their well-being and seek a balance between work and personal life. Ethical leaders who understand and integrate Purusharthas can create a more positive and productive work environment. By considering the principles of Purusharthas, we can gain a more nuanced understanding of the values and motivations that drive professionals and how they navigate the complexities of their work lives.

The doctrine of purushartha, is the answer given to the most perennial question of human life namely, 'what is the summum-bonum of human life?' Man can live a fulfilled life provided he follows the four purusharthas meticulously. In the 21st century youngsters are seen to run after negative, false ideals. They are observed to find solace in extreme materialism, drugs, unwarranted sex and body-mind concerning lifestyles. However with all these things also he is not seen to be happy and contented. Whereby I feel if this ancient wisdom can be used and garbed in modern ways it can definitely help us to find PEACE OF MIND which is the birth right of every human being. The Purushartha's timeless wisdom resonates today, offering a profound framework for living a meaningful life. As we move away from these ancient principles, we risk losing sight of life's true purpose. By embracing Dharma, Artha, Kama and Moksha, we can rediscover our path and find fulfilment. The Purushartha's enduring relevance is a testament to its universality, providing guidance that remains as pertinent today as it was centuries ago.

Refrences :-

1. Howladar, M. (2015). Impact of Purucârthas in modern life: An observation. International
2. Journal of Sanskrit Research, 1(3), 70–73. https://www.anantaajournal.com/archives/
3. 2017/vol3issue3/PartB/3-3-8-7G0.pdf Purshartha in 21 Century Alka Mohan Kadam: Introduction | PDF | Kama | Moksha. (n.d.).
4. Scribd. Retrieved May 26, 2023, from https://www.scribd.com/document/486683618/5G
5. Purucârtha. (n.d.). Encyclopedia.pub. https://encyclopedia.pub/entry/2G371
6. Sarkar, S. (n.d.). A brief discussion on the four Purusarthas and its reflection in Sanskrit Literature. http://Www.ijims.com/. Retrieved May 26, 2023, from http://www.ijims.c Om/uploads/GGc0eac6bf803d3c4b67Gsantanu.pdf
7. Sharma, A. (1GGG). The Purucârthas: An Axiological Exploration of Hinduism. The Journal Of Religious Ethics, 27(2), 223–256. https://www.jstor.org/stable/4001822G
8. The 4 Goals of Human Life. (n.d.). Explorevedanta.com. Retrieved May 26, 2023, from. http://explorevedanta.com/vbc-the-4-goals-of-human-life/#:~:text=The%20four%20 human%20goals%20are

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ROYAL HERITAGE OF KARNATAKA: WOMEN IN POWER

Abhijna
Research Scholar, Kannada University, Hampi
Assistant Professor, Department of History
SDM College(Autonomous), Ujire

Abstract :-

This article explores the lives and legacies of Karnataka's most remarkable queens, who played pivotal roles in shaping the region's political, cultural, and spiritual history. From the fearless coastal warrior Rani Abbakka Chowta to the cultured and devout Shantala Devi, these women ruled with vision and resilience. Rani Chennabhairadevi's dominance over the spice trade and her resistance to colonial forces highlighted economic acumen matched with military strength. Queens like Keladi Chennamma and Kittur Rani Chennamma resisted Mughal and British imperialism with bold defiance. Others, like Belawadi Mallamma and Akkadevi, exemplified regional governance and martial leadership. The queens supported religious diversity, temple construction, and local economies. Their stories are preserved through forts, festivals, folklore, and art. Despite being overshadowed in mainstream narratives, they left a lasting imprint on Karnataka's identity. This article reclaims their place as powerful figures in history. Their lives offer timeless lessons in leadership, resistance, and cultural patronage.

Key Words :- Queens, Administration, Wars, Rule, Struggle

Introduction :-

The history of Karnataka is adorned not only by mighty kings and empires but also by extraordinary queens who left a lasting impact on the region's legacy. These women defied societal norms to emerge as rulers, warriors, diplomats, and patrons of art and faith. Their contributions span centuries—from the Chalukya dynasty to the resistance against British colonial rule. Queens like Rani Abbakka Chowta and Kittur Chennamma became symbols of courage in the face of foreign invasion. Others, such as Shantala Devi and Chennabhairadevi, fostered cultural and economic prosperity through temple patronage and trade. Many of these queens led armies, negotiated treaties, and governed with vision and inclusiveness. They ruled during times of war and peace, earning respect across regions and religions. Despite being overlooked in many historical accounts, their stories remain vital to understanding Karnataka's rich heritage. This article delves into the lives of these iconic women. It celebrates their valor, leadership, and enduring influence on South Indian history.

Karnataka's long and diverse history is often told through the lives of kings, empires, and invasions. However, tucked beneath these grand narratives are the stories of remarkable women—queens whose courage, intellect, and compassion carved their own chapters into the state's history. These queens were not merely consorts or ceremonial figures; they were rulers, warriors, strategists, and patrons of art and faith. This article journeys through time to explore the lives and legacies of Karnataka's iconic queens—

from the coastal valiant to cultured empresses of temple towns.

One of the earliest recorded queens of Karnataka who defied all traditional roles of women in warfare was Rani Abbakka Chowta of Ullal. Ruling in the mid-16th century, Abbakka was a fierce opponent of the Portuguese colonial forces that sought control over the coastal trade routes of South India. Despite being born into a matrilineal Jain royal family, Abbakka's politics were firmly inclusive—her court and military were composed of Hindus, Muslims, and Christians. She trained local women in combat and organized a women's regiment known for wielding curved swords and attacking invaders using guerrilla tactics. Her resistance wasn't symbolic; she fought and won several battles against Portuguese fleets in 1555, 1557, and 1567. Even when briefly captured, she returned stronger in 1570, continuing her resistance until her death. Today, statues, naval ships, and cultural performances preserve her legacy as one of India's first female freedom fighters.

Not far from the coast, another powerful ruler emerged around the same time—Rani Chennabhairadevi of the Saluva dynasty, also known as the "Pepper Queen." She ruled parts of the Western Ghats including Mirjan and Karwar between 1552 and 1606, making her one of the longest-reigning queens in Indian history. Her control over the spice trade, especially black pepper, gave her both wealth and political leverage. The Portuguese were frequent aggressors, attempting to dominate the lucrative trade, but Chennabhairadevi repelled their attacks twice—once in 1559 and again in 1570. A master of diplomacy, she formed alliances with neighboring Muslim rulers to counter Portuguese advances. Her reign also reflected religious and cultural tolerance; she supported Hindu, Jain, and Shaiva religious institutions, and commissioned temples and forts, the most notable being the Mirjan Fort, which stands today as a symbol of her architectural patronage and strategic acumen.

As centuries turned and the Mughal Empire expanded southward, Karnataka once again found a formidable woman at the helm—Keladi Chennamma. After ascending the throne of the Keladi Nayaka kingdom in 1677 following her husband's death, Chennamma ruled for nearly two decades. When the Mughal emperor Aurangzeb sent an army south after the fall of Bijapur, Chennamma stood her ground. She offered refuge to Rajaram, Shivaji's son, who was fleeing Mughal pursuit, and in doing so, directly challenged the emperor's authority. The resulting military confrontation ended with Chennamma negotiating a peace treaty, a rare diplomatic success for a woman ruler facing the might of the Mughal Empire. Besides her military foresight, she encouraged trade with the Portuguese and even permitted the establishment of churches in coastal towns—an act of religious openness ahead of her time.

By the 19th century, British colonial ambitions in the subcontinent had reached an aggressive stage, characterized by annexation policies like the Doctrine of Lapse. In the princely state of Kittur, the death of the king without a biological male heir led the British to claim the territory. But Queen Kittur Chennamma, the dowager queen, refused to surrender. In 1824, she led a military uprising, fiercely resisting British forces. Though she initially succeeded in defeating them and killing the political agent, a second assault led to her capture. She spent the rest of her life imprisoned, dying in 1829. Yet, her legacy lived on, inspiring future freedom fighters like Rani Lakshmi Bai of Jhansi. In Karnataka, Kittur Chennamma remains a household name, symbolizing early resistance to colonial rule and the fierce independence of women in power.

While these queens battled invaders and held kingdoms together in tumultuous times, others focused on the arts and spiritual pursuits. Queen Shantala Devi, consort of Hoysala king Vishnuvardhana in the 12th century, was one such figure. Though she held no military command, her influence on the cultural and religious life of Karnataka was immense. A trained dancer and accomplished musician, Shantala Devi was known for her patronage of temple arts and Jain philosophy. It is believed she played a pivotal role in the construction and endowment of temples in Belur and Shravanabelagola. Despite being married into a Vaishnavite royal family, her personal devotion to Jainism showcases a time of religious fluidity and tolerance. Her story, preserved in sculptures and literary references, paints a picture of a woman who embodied grace, intellect, and spiritual leadership.

In the 17th century, Belawadi Mallamma emerged as another warrior queen whose life paralleled that of Shivaji Maharaj in Maharashtra. Ruling the region of Belawadi near modern-day Chikmagalur,

Mallamma organized an army of 10,000 soldiers and defended her territory against multiple threats, including from Shivaji himself, according to some historical interpretations. A patron of the Veerashaiva tradition, she is credited with advancing local economies, supporting religious institutions, and fostering education. Her reign illustrates that Karnataka's history is not merely about empires, but also about powerful regional rulers who maintained sovereignty and shaped their local cultures.

Akkadevi, a Chalukya princess and governor in the 11th century, also stands as a testimony to Karnataka's early tradition of empowering women with administrative authority. She governed the province of Kishukādu and was known for her effective taxation, temple grants, and military command. Inscriptions describe her as courageous and determined, leading sieges against rebels and restoring order in the kingdom. Her contributions are often overshadowed by her male contemporaries, but she remains one of the earliest examples of a woman actively participating in statecraft in South India.

Other less-celebrated queens such as Naikidevi and Jakaladevi also deserve recognition. Naikidevi, though more closely associated with Gujarat, hailed from a Kannada-speaking Chalukyan background. In 1178, she led an army to defeat Muhammad Ghori's forces, protecting the young king and her kingdom in the process. Jakaladevi, wife of Hoysala king Vishnuvardhana, like Shantala Devi, was a known donor to Jain temples and religious institutions, helping spread cultural wealth across the region.

Even in the Deccan Sultanates, we find figures like Rani Chand Bibi of Bijapur, who later ruled Ahmednagar. Though she operated in a world dominated by Muslim male rulers, she led armies and defended her fortresses against the Mughals with strategic brilliance. While her roots were in the north, her influence spanned across the Deccan plateau, affecting politics in regions that include modern-day Karnataka.

These women, from different eras and religious backgrounds, shared a common thread: they were rulers in their own right. Whether it was in war or peace, trade or temples, diplomacy or defiance, they shaped the course of Karnataka's history. Their legacies are not just footnotes in textbooks or symbols for political pride. They are reminders that leadership, courage, and vision are not confined to gender.Today, Karnataka honors many of these queens through statues, school textbooks, cultural festivals, and cinematic portrayals. The Rani Abbakka Utsava in Ullal, the Kittur Utsava in Belagavi, and temple inscriptions in places like Shravanabelagola and Belur continue to breathe life into these legacies. Yet, much remains to be explored, researched, and revived—especially from oral traditions, folk songs, and regional archives that have preserved their stories long before modern historians took notice.

Conclusion :-

In a world increasingly eager to reclaim and reinterpret its past, the queens of Karnataka deserve center stage. Their stories not only enrich the history of South India but also offer timeless lessons in resilience, leadership, and inclusive governance. From commanding battalions to building temples, from negotiating with emperors to defying colonial agents, these queens wrote history—not as shadows of kings, but as sovereigns of their own destiny.

References :-

1. Kamath, S. U. (2001). A concise history of Karnataka: From pre-historic times to the present. Bangalore: Jupiter Books.
2. Majumdar, R. C. (Ed.). (2007). The history and culture of the Indian people: Volume VI – The Delhi Sultanate. Mumbai: Bharatiya Vidya Bhavan.
3. Devi, L. (1998). Women rulers in Indian history. Delhi: Ministry of Information and Broadcasting, Government of India.
4. Altekar, A. S. (1983). The position of women in Hindu civilization: From prehistoric times to the present day (2nd ed.). Delhi: Motilal Banarsidass.
5. Pillai, M. S. (2015). Indian women through the ages: A historical survey of the position of women and the institutions of marriage and family in India. New Delhi: Gyan Publishing House.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

A HISTORY OF HARSHAVARDHANA: THE LAST GREAT MONARCH OF ANCIENT INDIA

Aniket Singh
Research Scholar
Ancient Indian History And Archaeology
Lucknow University, Lucknow

Abstract :-

This article explores the reign of Emperor Harshavardhana (606–647 C.E.), reputed to be the final great king of ancient India. Drawing on BāGabhamma's Harcacarita, Yuan Chwang's travel accounts, and inscriptional information, the article traces Harsha's descent, early years, and succession to power following fratricidal and political disturbances. It covers his campaigns against the HūGas, Gauda's Sasanka, and his showdown with Polekesi II of the Chalukyas that signified the northern–southern political divide of seventh-century India. Harsha's decision to shift his capital from Thaneswar to Kanyakubja is analyzed as a well-planned move that reflected his imperial ambitions. The article also highlights his diplomatic relations with Kamarupa and Tang China, patronage of literature, and religion policy marked by syncretism and Buddhist inspiration. His empire may have crumbled just after his demise, yet Harsha's rule represents the summit of ancient Indian statecraft, imperial integration, and cultural amalgam.

Keywords :- Pushyabhuti, Harshavardhana, Kanyakubja, Yuan Chwang, Sasanka, Polekesi II, Buddhism, Thaneswar.

Introduction :-

Harsha's ancestry is shrouded in obscurity. Even his poetic biographer Bāna could not connect him to the two mythical progenitors of Indian royalty, the Sun and the Moon. Instead, Bāna vaguely mentions that "there arose an emperor named Pushyabhuti, who embodied the combined glory of all the ancient kings,from whom descended a lineage of illustrious rulers. However, Bāna does not give any specific names of Harsha's ancestors until he introduces Prabhakaravardhana, who was nicknamed 'Parakāmī' "Pratāpaśīla" and who was Harsha's father. Due to the meticulous efforts of modern scholars, Harsha's ancestry can now be traced back three generations from Prabhakaravardhana. Harsha's Sonpat Tamramudrā mentions Shri Rajyavardhana as Prabhakara's grandfather. Rajyavardhana's son and successor, Adityavardhana, married the princess Mahasenagupta Devi. Their union produced Prabhakarvardhana, recognised by his contemporaries as a heroic conqueror of the Hunas and remembered in history as the father of one of India's greatest emperors. Harsha's ancestors, however, were relatively minor rulers, ruling small territories around Thaneshwar. They were ardent worshippers of the Sun and remained politically insignificant in the chaotic period that followed the disintegration of the Gupta Empire. It was Prabhakarvardhana who enhanced the prestige of the family by assuming the title of

Maharajadhiraja, a title previously denied to his ancestors, who were content with the simpler title of Maharaja. According to Bāna's accounts, Prabhakarvardhana repeatedly repelled the invasions of the Hunas, who posed a constant threat due to their proximity. In addition, he subjugated the Malwa region and even launched an expedition against the distant kingdom of Gujarat, though it is uncertain whether he succeeded in conquering it. These military achievements not only brought him fame but also laid the foundation of an empire that was later expanded and strengthened by his illustrious son Harsha.

Early life, Accession to the throne, State-Building, and Familial Vengeance:-

Prabhakarvardhana married Yashovati, from whom he had two sons and a daughter. Harsha was his younger son, born five years after his elder brother Rajyavardhana. His sister, Rajyashri, was about two years younger than Harsha. Historical records mention that Harsha was born "on the twelfth day of the dark fortnight in the month of Jyeshtha, in the Pleiades lagna, shortly after dusk". The young princes were brought up in a close-knit group. Their cousin, Bhandi, the son of Yashovati's brother, was often their playmate, and was almost of the same age as Rajyavardhana. To provide suitable playmates, Prabhakarvardhana also introduced into the royal household two sons of the king of the defeated Malwa, Kumaragupta and Madhavagupta. These young men were carefully selected for their virtue, prudence, strength and charm, and these qualities made them ideal companions for the princes. Princess Rajyashri was married at the age of 12 or 13 to Grahavarman, son of Avantavarman Maukhari. The Maukharis were a distinguished family, but never exercised significant political power. They were connected by marriage to many of the major royal houses of North India and were embroiled in constant conflict with the Gupta dynasty of Magadha. As Rajyavardhana and Harsha grew up, their father Prabhakarvardhana involved them in state governance. According to tradition, the elder prince Rajyavardhana, when he was old enough, was appointed crown prince and sent with Harsha to lead the expedition against the Hunas. During his absence, Prabhakarvardhana fell seriously ill, forcing Harsha to return and take care of him until his death. After the king's death, Queen Yashovati committed sati, and Harsha temporarily managed the kingdom until Rajyavardhana returned. On his return from a victorious campaign, Rajyavardhana learnt that his brother-in-law Grahavarman had been murdered by the king of Malwa, who had also taken Rajyashri captive. Determined to avenge this humiliation, Rajyavardhana defeated the king of Malwa, but the Gauda king Sasanka treacherously murdered him under the guise of diplomacy. After Rajyavardhana's death, the Thaneshwar kingdom appeared vulnerable. However, the council led by the general Simhanada persuaded Harsha to accede to the throne. Initially reluctant, possibly due to religious beliefs or loyalty to some potential successor of Rajyavardhana, Harsha eventually accepted the throne on the advice of advisers and possibly due to divine inspiration, as mentioned by both BāGa and Yuan Chwang.

After coming to power, Harsha vowed to avenge the murder of his brother and the ill-treatment of his sister, paving the way for his rise as one of the greatest emperors of Hindustan. Harsha's main goals were twofold: to capture Kanyakubja and rescue his sister Rajyashri, who was imprisoned there, and to punish Sasanka, the king of Karnasuvarna. During his journey, Harsha met an envoy of the Kumar king Bhaskarvarman of Kamarupa. Bhaskara, the younger son of Susthiravarman, was called Kumar by Yuan Chwang because his elder brother, Supratishthitavarman, was the king there. Bhaskarvarman proposed a treaty to Harsha, possibly to remove his brother with Harsha's help or to unite against their common enemy, Sasanka. The treaty proved beneficial to Harsha, as it facilitated his campaign against Karnasuvarna, which bordered Kamarupa in the east. Bhaskarvarman, an ambitious and enlightened prince, valued Harsha's friendship, and their alliance remained strong and enduring.

Having secured this treaty, Harsha marched against Sasanka. Her cousin, Bhandi, who had accompanied Rajyavardhana during the Malwa campaign, joined him with prisoners of war and booty. Bhandi also brought news about Rajyashri, who had fled to the Vindhya hills on hearing of Rajyavardhana's death. Fearing humiliation or harm at the hands of Narendragupta, who had captured Kanyakubja, she took refuge in the hills. Harsha, extremely worried, put Bhandi in charge of the army against Sasanka

and set out in search of his sister. Harsha eventually rescued Rajyashri with the help of Nirghut, the nephew of the local tribal chieftain Bhurkampa. He met her in the Vindhyas, where she was about to commit suicide. Grateful for her rescue, Rajyashri expressed her wish to renounce worldly life and wear red robes, as she considered it inappropriate to continue living after losing her husband. Harsha probably agreed, as it is mentioned that he arranged for a famous Buddhist sage to teach her the Noble Eightfold Path.

There is very little information regarding Bhandi's campaign against Sasanka. It appears Sasanka became a subject of Harsha and was permitted to remain on the throne as a vassal. There is evidence from a mound at Rohtasgadh which refers to Sasanka as a "Mahasamanta" or vassal king. Subsequently, Sasanka is seen to have rebelled, as indicated by an inscription dated 619 C.E, where he calls himself "Maharajadhiraja Sasanka." The rebellion was short-lived, and Karnsuvarna was finally brought under control. The portion of the land was annexed to Harsha's kingdom, and another part was absorbed in Bhaskaravarman's Kamarupa. Bhaskara's patronage must have contributed importantly to this conquest, as the Nidhanpur copper-plate inscription testifies to Kamarupa's annexation of Karnsuvarna's eastern territory. With the conquest of Karnsuvarna, Harsha expanded his control over Northern India. Rajyavardhana had already vanquished Malwa, and the Huns were routed during Prabhakaravardhana's rule. After six years of ruling, Harsha became the paramount ruler, or "Parameswara," of Northern India.

In the case of Nepal, academics argue over whether Nepal was invaded and conquered by Harsha or not. An inscription by a Nepalese king, Amsuvarman, dated Sri Harsha Samvat 34, has been discovered near Kathmandu. Yuan Chwang refers to Amsuvarman as a king who wrote a book on linguistics. The Nepal Chronicles (Vamsavali) indicate that Vikramaditya invaded Nepal prior to the period of Amsuvarman. Also, the Harshacharita suggests that Harsha overran a remote Himalayan area, and leaves the question open. After his defeat of North India, Emperor Harsha is supposed to have moved the capital of his vast empire from Thaneswar (at present-day Thanesar in the Haryana state) to Kanyakubja, which is now called Kannauj. It was a decision doubtless taken on strategic grounds, reflecting Harsha's imperial ambitions as well as the historical importance of Kanyakubja as a major urban center. Kanyakubja was then a city with a rich civic tradition and was celebrated as a city of considerable standing. The Chinese pilgrim Yuan Chwang (or Xuanzang) describes the city to have measured about 20 li in length and 5 to 6 li in width. On its western side ran the holy Ganges River, and the remaining three sides were defended by a dry moat with towering towers guarding it, making it a secure settlement. Kanyakubja's reputation in the past dates back before Harsha's time, as can be gathered from different accounts.

Claudius Ptolemy, the great geographer of antiquity, referred to the city in his writings. In addition, in the 5th century, Chinese pilgrim Fa-Hien described the presence of two monasteries, or sangharamas, belonging to the Hinayana school of Buddhist tradition within the city. Religious and historical importance of Kanyakubja is also highlighted by its connection to the Buddha himself, who, according to legend, preached discourses on the subjects of impermanence and suffering within its proximity. These early allusions establish the fact that Kanyakubja was a city of no small fame even prior to Harsha's accession. Still, it was in Harsha's reign that Kanyakubja reached unprecedented heights, as great as the glory of such ancient capitals as Pataliputra during the Mauryan rule and Ujjain under the Guptas. Yuan Chwang's accounts give us precious glimpses into the magnificence of Kanyakubja under Harsha's reign. He wrote of a thriving city with hundreds of sangharamas and roughly 200 Hindu temples, highlighting its cultural and religious richness.

Harsha's desire to position Kanyakubja as a legendary capital in line with the surrounding tradition is not an unusual one among Indian kings. Throughout history, great rulers have founded or refurbished cities in order to rival the magnificence of the capitals of their predecessors. From the Pandava king Yudhishthira to Emperor Akbar, Indian monarchs endeavored to build architectural and administrative wonders as lasting testimonies of their rule. The remains of Fatehpur Sikri, for example, testify to Akbar's

genius and the timelessness of this practice. Harsha probably devoted a great deal of effort and resources to making Kanyakubja a capital worthy of his huge empire. The city remained successful long after his passing, maintaining its importance until the 12th century when it was still a thriving urban hub under the invasions of Muhammad Ghori. The choice of Harsha to relocate the capital was not random but based on pragmatic reasons.

Thaneswar, which was the original seat of Harsha's ancestors, was the main city of a comparably modest kingdom. As Harsha extended his rule to cover extensive territories down to Assam in the east and other regions of North India, it was crucial to create a more centrally placed administrative center. Kanyakubja, located in the center of northern India, provided a strategic benefit in controlling such a vast empire. Moreover, Thaneswar's location presented security issues. Situated close to the northwestern border, it was open to outside aggression, especially that of the Hunas (Huns), who, despite being temporarily subdued, still posed a potential threat. By shifting his capital to the comparatively safe and centrally strategic site of Kanyakubja, Harsha avoided the dangers of a vulnerable capital and increased administrative efficiency. Having unified his power over northern India, Harsha wanted to follow in the footsteps of previous great emperors, especially Samudragupta of the Gupta dynasty, whose deeds are etched in the Allahabad Pillar Inscription. Harsha had in his mind the prospect of unifying all of Bharatavarsha (India) under his rule. With this desire, he set out on a campaign into the Deccan to expand his reign southward.

Conflict with Polekesi II :-

Polekesi II was among the greatest Deccan rulers. His successes, as are mentioned in the Aihole inscription of 634 C.E., are that he defeated the Malwas, Gurjaras, and Kalingas, among several other kingdoms. Harsha, marching southward, met the resistance of Polekesi II, leading to a historic confrontation. Though the exact date of this encounter cannot be confirmed, it is suggested to have been around 636 CE. Vincent Smith, in his historical writings, erroneously dated the encounter to 620 C.E. However, this date is contradicted by the Aihole inscription, which omits any mention of this significant victory, despite celebrating Polekesi's lesser conquests. Subsequent inscriptions from 636 C.E. Onwards frequently refer to Polekesi as "Harsha Vicheda Hetu," meaning the conqueror of Harsha, and poetically describe him as the one who caused Harsha's joy to dissipate through fear. This meeting of two powerful kings brings out the division of sovereignty in India in the 7th century. Harsha controlled the north plains and Polekesi II controlled the Deccan and the south. Harsha, though defeated, was a practical king and did not attempt a second bid to conquer the Deccan. He instead turned his focus towards establishing his dominance over Aryavarta (northern India) and securing the borders of his empire.

Harsha's other military expeditions :-

Harsha's relationship with the other kingdoms was one of diplomacy as well as war. In 636 C.E., he defeated Dhruvasena II Baladitya, the king of Vallabhi. Even in this victory, Harsha reinstated Dhruvasena on the throne, cementing an alliance by marrying his daughter to the king of Valabhi. This act of magnanimity was a reflection of Harsha's genius, in that the marriage secured his southern border for his campaign against Polekesi II. Polekesi II proceeded to solidify his hold, even establishing diplomatic ties with Khusrav II, the Sassanian emperor of Persia. Arab historian Al-Tabari records an embassy sent by Polekesi to the Persian court in 626 C.E., testimony to the Chalukyan monarch's position in the world at the time. Artistic depictions in the Ajanta caves also testify to these interactions, showing the court scenes of Persian ambassadors in the Chalukya court. Harsha's second half of reign saw relative peace and stability.

Era of Peace, Economic Growth, and Diplomatic Engagements :-

Despite his early military expeditions, he became a ruler heavily influenced by Buddhist philosophies of compassion and non-violence. His encounter with the Chinese monk-scholar Yuan Chwang

greatly influenced his religious outlook. Harsha's syncretism in religion is seen through the great congregations that he convened, wherein Buddhist, Hindu, and other beliefs were observed with equal fervor. One such event, which is described in dramatic details by Yuan Chwang, involved a procession carrying an imposing image of the Buddha, escorted by 20 kings, 800 elephants, and a sizable band of followers. Even this event was marred by an assassination bid patronized by Brahminical forces opposed to Harsha's pro-Buddhistic regime. Although Brahmanism had experienced a resurgence under the Guptas, Harsha's patronage of Buddhism would have alienated parts of the conservative sections of the priestly class. Despite this event, Harsha still spread religious tolerance and harmony. The fifth, sixth, and seventh centuries C.E. are referred to as the golden age of classical Sanskrit literature. There was a great literary renaissance in the reign of Harsha, which was inferior to the splendor of the great age under Chandragupta Vikramaditya.

Harsha himself was a renowned poet and playwright, and his court was adorned with several renowned literary lights, the most renowned among them being Bana, Mayura, and Bhartrihari. Harsha is traditionally regarded as the author of three renowned plays: Nagananda, Priyadarsika, and Ratnavali. But authorship has created a fair amount of controversy, the discussion typically being generated by ill-informed suggestions. The plays of these dramas unequivocally attribute their creation to a great king named Harsha. The diplomatic overtures of Harsha extended beyond India. In 641 C.E., he dispatched an embassy to China, with a response from an embassy of the Tang emperor. This embassy exchange generated political and cultural ties between the two massive empires, reflecting Harsha's larger vision of statecraft.

The final years of Harsha's reign are veiled in obscurity due to the abrupt break-off of Yuan Chwang's and Banabhatta's accounts. But it is evident that the legend of Harsha endured many centuries following his demise in 647 C.E. His dominion went from Kamarupa in the east to Kashmir in the west, and the Vindhyas constituted the southern boundary. Although he failed to conquer the Deccan, Harsha maintained peace and order in Aryavarta and became known as a wise and capable ruler. Harsha's death left a vacuum, and northern India became politically fragmented. Centuries passed with invasions and rise of regional powers, leading up to the establishment of Islamic rule. Harsha's reign remains a testament to the enduring ideals of tolerance, cultural synthesis, and good governance in Indian history.

Primary Sources :-

1. Sonpat seal, Corpus Inscriptions Indicatum, Vol. iii, p. 231.
1. Corpus Inscriptions Indicarum. Vol. III. ; Fleet's Gupta inscriptions, p. 231 et seq.
2. Apsad stone inscription of Adityasena, C. I.I
3. Sylvain , Levi, Nepal une Royaume Hindou ; IA, Vol. xiii, p. 413 ; Keilhorn List of ISI, Inscriptions ; Epigraphica Indica, Vol. v. app. p. 75 ; Buhler's Essays on Inscriptions, Nepal
4. Aihole Inscription of Polekesi II (No.22) IA. Vol. V, p. 67 ff.; IA. Vol. VIII, p. 237 ff.; ASWI. Vol. III, p.129 ff.; El. Vol. VI, pp. 1-12 and plate, line XI.

Secondary Sources :-

1. Bana's Harsha Carita, published by the R. A. S. of London, translated by Cowell & Thomas, p. 83.
2. Devahuti D, Harsha. A Political study, Oxford, 1970.
3. Goyal SR, Harsha Shiladitya, Meerut, 1987.
4. Goyal SR, Harsha, Buddhism, Meerut, 1986.
5. Mookerjee RK, Harsha Oxford, 1926.
6. Watters: On Yuan Chwang's Travel in India, 1904.
7. Cowel and Thomas: Banas Harshacharita, London, 1987.
8. Panikar KM. Shri Harsha of Kanauj, Bombay, 1932.
9. Beal S (tr), The life of Hiuen-Tsang, London, 1888.
10. Tripathi RS. History of Kanauj, Benaras, 1937.
11. Baijnath Sharma, Harsha and his Times, Varanasi,1970.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

PROMOTING SKILLS OF THE FEMALES OF JHARKHAND ON SOCIAL MEDIA

Sangeeta Sharma
Research Scholar
Department of Home Science
Ranchi University, Ranchi

Abstract :-

The females of Jharkhand has enormous skills and innovative ideas. But their skills are limited to their homes only. Their skills need to be explored and promoted so as to make them self employed. Now-a-days people spend a lot of time on social media .Hence social media can be the best platform to promote the skills of these females .

Jharkhand is primarily rural with maximum of its population living in villages. Agriculture is the most important aspect for the livelihood of the rural population. Rice is the most widely grown crop. Other thick crops are also grown here. Millets has been used as variables in this study. In this article I am going to explore the innovations made by some of the females residing near Hundru falls in Ranchi district .They have explored brilliant ideas of using these thick crops. But unfortunately they are known to limited people only .They have very less buyers. Through social media like facebook ,Instagram, whatsapp etc their skills can be promoted .This will lead them to self-employment.

Key words :– Innovation ,promotion, self-employment

Introduction :-

Social media is a technology facilitated media that simplifies the sharing of ideas, thoughts and information to others . At the present day social media is a very important learning and sharing resource for all . It transfers information to others in a very short period of time.[1]

With the help of these social media, the skills of females of Hundru falls were easily made viral . The most important thing in our daily life is staying healthy, building positive relationships and finding purpose in what to do . People became aware of healthy benefits of thick crops and their easy and tasty recipes. The thick crops are a source of essential vitamins ,minerals, fibers and fatty acids . They provide necessary nutrients for human and animal health maintenance .

Review of Literature :-

Muftah (2021) in her study on ***"Impact of Social Media on Learning English Language during the COVID-19 Pandemic"*** explored the impact of the various social media platform on learning English Language during this pandemic. The findings of the study revealed that social media has been significantly positive impact on learning English language (learning styles, reading skills, communication

skills, grammar usage and listening) of the undergraduate students.[2]

Kolhar, Kazi & Alameen (2021) have conducted a study on ***"Effects of Social Media on Use of Learning, Social Interactions and Sleep Duration among University Students"*** examined the use of social media and their effects of learning, social interaction and sleep duration. The results of the study shows that majority of the students says that they use of social media for non academic purpose and social media adversely impact on their academic performance, social interaction and sleep duration.[3]

Chukwuere & Chukwuere (2017) have conducted a study ***on "The Impacts of Social Media on social Lifestyle: A Case Study of University Female Styles"*** to find out the impact of social media on female students life style. The findings of the study revealed that social media actually impact on female students social life styles. This study also indicates that social media promotes good and healthy societal norms and values which prove a positive sign in our society.[4]

GOK (2016) has conducted a study on ***"The Effects of Social Networking Sites on Students Studying and Habits"*** to identify the positive as well as negative effects of social networking sites on students' studying and habits. The result of the study revealed that digital technology and social networking sites have negative impact on students' studying and habits.[5]

Objective :–

- To know the impact of Social media in promoting skills of females of Jharkhand
- To know whether the rural females are using Social Media or Not.

Methodology of the Study :-

Method of the study :- The present study is descriptive type in nature. The researcher have used the descriptive type survey method in the present study.
Population of the study :- Female villagers nearby Hundru falls,Ranchi ,Jharkhand and social media users have been selected as population for the present study.
Sample of the study :- 20 females from the village near Hudru falls ,Ranchi district and 100 respondents from social media users were selected for the present study.
Sampling Technique :- The Simple Random Sampling technique was applied for the selection of sample in this study.
Tools of the Study :- Social media related Questionnaire and scheduled interview was used as a tool for collecting the data in the present study.
Technique of the Study :- The percentage and graphical representation of the data was used as a technique for the study.

Data Collection Procedure :-

As per previous planning, the tools were administrated upon the people who were using Social Media for learning and social life style. It was also used for the female villagers. Interview was schedule for them on a particular day. A set of questions were asked from them in this interview. For social media respondents , questionnaire was sent through various social media platforms like WhatsApp, Facebook, G-mail and google forms .

Analysis & Discussion :-

1. Response of Female villagers(N-20) :-

Use of Social media platforms by female villagers

Use of Social media platform	Number of respondents	percentage
Yes	2	10%
No	18	90%

Table- 1

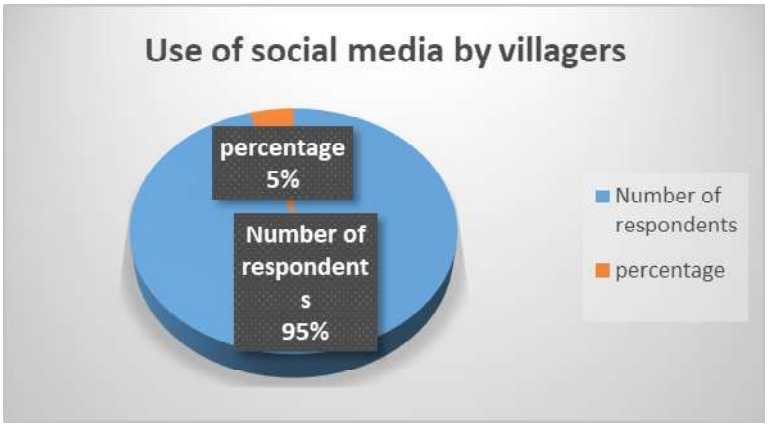


Figure -1

From the above(table-1,figure-1), it was observed that out of total of 20 female villagers,95% of them did not use social media and while just 5% used social media. Therefore, it can be said that most of the respondents did not use social media.

Reason for not using social media by female villagers (N-20)

Reason for not using social media by female villagers	Number of respondents	percentage
Lack of internet connection	**18**	**90%**
Lack of internet knowledge	**18**	**90%**
Lack of knowledge of promotion	**20**	**100%**
No knowledge about social media	**18**	**90%**

Table -2

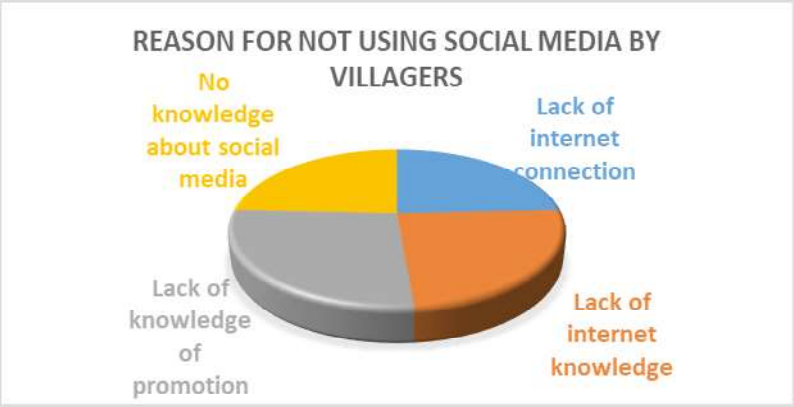


Figure-2

From the above (Table-2, figure-2) it was observed that 90 % of the respondents said that they were unaware of Social Media,90 % said that there was no internet connection in their village,90% of the respondents said that there had no knowledge about internet,90**%** of the respondents said that they had no knowledge about social media and all the 20 respondents said that they had no knowledge of

promoting their skills .

2. Response of Social Media users(N-100) :-

Use of Social media platforms

Use of Social media platform	Number of respondents	percentage
Yes	98	98%
No	2	2%

Table- 3

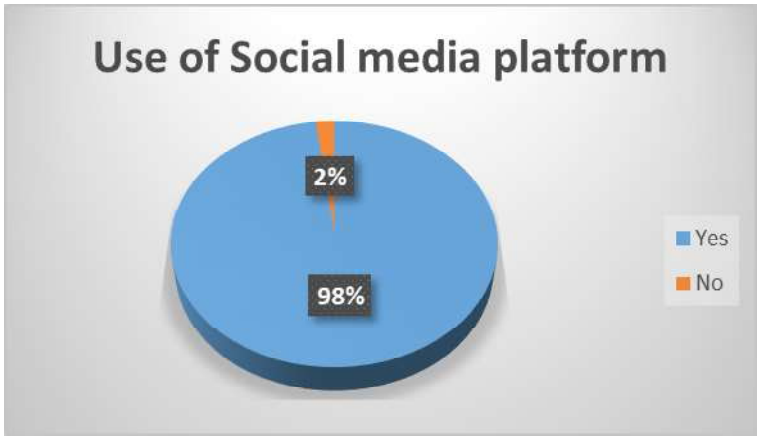


Figure -3

From the above(table-3,figure-3), it was observed that out of 100 social media users , 98% of the respondents use social media and rest 2% do not use social media. Therefore, it can be said that most of the respondents use social media.

Purpose of using social media(N-100)

Purpose of using social media	Number of respondents	percentage
To make friends	90	90%
Just for time pass	50	50%
Knowledge gain	90	90%
Advertisement	82	82%
To find employment	22	22%
Promoting skills	92	92%

Table -4

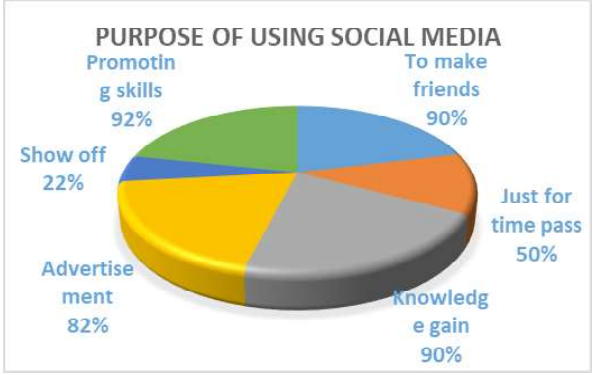


Figure -4

From the above (Table-4, figure-4) it was observed that 90 % of the respondents said that they use Social Media was for making friends, 50 % said that they use Social Media just for time pass, 90% for knowledge gain,82**%** for advertisement, 22% for finding employment, 92 % for promoting skills. Therefore, it can be said that most of the respondents used social media for promoting skills , advertisement and knowledge gain.





The above pictures were taken at Hundru falls by some of social media influencers .Some of the female villagers were seen selling these two products –Idli made of Ragi and Cookies made of Millets. It was super tasty and most healthy. But their buyers were very few. These social media influencers got so much impressed by these two products and made them viral on social media. Thus many people got information about it and started placing order.This automatically lead to self employment of the female villagers.

Suggestions :–

It is suggested that the skills of the villagers must be explored and they must be given training to use social media so that they can themselves advertise their products.

Conclusion :-

Lastly it was concluded that social media is a greatly influenced in promoting the skills of the female villagers. So, there is critical need of different government, interventions, planners and policy makers to promote skills of villagers on social media.,so that they can get different useful information and values of their skills and products.

References :-

1. Paramani , N. and Sinha ,S.(2023) Influence of Social Media on Learning and Social Lifestyle among the B.ed students in Jharkhand, International journal of creative research thoughts,11(7) ISSN: 2320-2882 .
2. Muftah, M. (2021). Impacted of Social Media on Learning English Language during the COVID-19 Pandemic, *PSU Research Review Emerald Publishing Limited*, 2399-1747.
3. Kohlar, M., Kazi, R.N.A., & Alameen, A. (2020). Effect of Social Media Use on Learning, Social Interactions and Sleep Duration among University Students, *Saudi Journal of Biological Science*, doi: https://doi.org/10.1016/j.sjbs.2021.01.010
4. Chukwuere, J., & Chukwuere, P. C. (2017). The Impact of Social Media on Social Lifestyle: A Case Study on University Female Students, *Gender and Behaviour*, 9928-9940
5. Gok, T. (2016). The Effects of Social Networking Sites on Students' Studying and Habits, *International Journal of Research in Education and Science,2* (1), 85-92.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

SATELLITE REMOTE SENSING FOR ECOSYSTEM AND HABITAT MONITORING

Dr. Durga S. Patkar
Assistant Professor
Ramnarain Ruia Autonomous College, Mumbai

Abstract :-

Remote sensing satellites, capture images of the Earth's surface and atmosphere. The data is captured at different resolutions and wavelengths like infrared, microwave, visible light etc. A higher resolution data gives a detailed image but covers a small area whereas, lower spatial resolution data give comparatively less detailed image but covers a large area. The captured data is transmitted back to the earth through radio frequency signals. Specialised software and algorithms are used to extract and process the data in the form of maps, pictures. The data gathered is used by government bodies, research institutes and private organizations for weather forecasting, city planning, habitat monitoring, defence and ecosystem monitoring etc.

Key words :- Satellites, Orbits, Food chain, Habitat monitoring, Ecosystem monitoring.

Introduction :-

Satellite remote sensing gives a new perspective to know and manage our environment and an ecosystem. It makes use of artificial satellites in orbit by gathering information about the earth. It is also helpful in collecting information related to the earth's atmosphere and surface including land areas, forests, oceans, rivers, reclaimed areas, changes in the topography after natural disasters etc. The gathered data give guidelines for environmental monitoring, disaster management, and urban planning etc.

The essential components of satellite remote sensing system are-

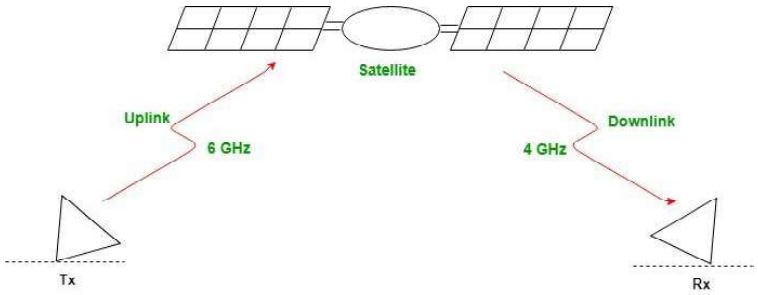
A) **Sensors :-** There are Earth observing satellites (EOS) which encircle the earth and with the sensors fitted on them. These EOS orbit at various altitudes and help the sensors to collect the data and produce high resolution images. There are two types of sensors i.e.optical sensors and microwave sensors. The optical sensors use visible and infrared wavelengths and gather the information about ecological environment, natural resources and help in disaster management. Whereas microwave sensors can penetrate through cloud cover and help in gathering relevant information. The data gathered from microwave sensors are used for radar mapping, soil moisture evaluation etc.

B) **The spectral bands and resolution :-** Resolution plays an important role in determining the amount of details related to captured images. For general applications such as climate monitoring, low resolution images are sufficient whereas for urban planning, agriculture, forestry etc. high resolution images are necessary. The smallest detectable size of an object in an image is related to

spatial resolution. The number and width of spectral bands a sensor can capture, is referred to as spectral resolution.

An artificial body which is placed in an orbit around the earth for the purpose of communication is known as a communication satellite. It consists of a system with many artificial communication satellites orbiting around the earth.

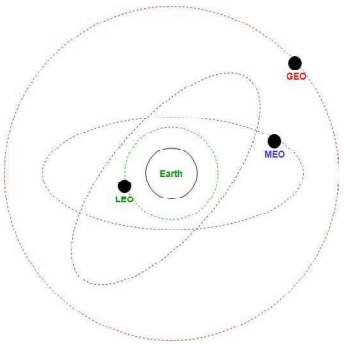
In many situations, communication from one part of the world to another is necessary for which a cellular network is required which is made up of many nodes. A node can be a satellite, a telephone, an earth station etc.



Two different bands of frequency are sent and received by each satellite. The frequencies used for satellite microwave communication are always given in gigahertz (GHz). The uplink is a transmission of frequencies which are sent from the earth to the satellite. Whereas the downlink is a transmission of frequencies sent from the satellite to the earth.

Uplink and downlink frequencies should be different to avoid mixing and interference of two frequencies. As mentioned earlier, the satellites use solar energy as their power source but the stations on the earth require more power sources than satellites. The reason behind this is, the uplinks require more energy to penetrate and pass through the environment, which results in their high attenuation.

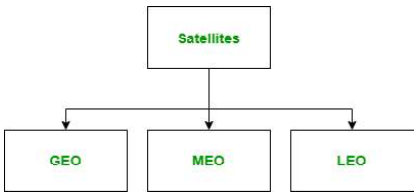
Satellite Orbits :-



A) Orbit- An artificial satellite needs to have an orbit, the path in which it travels around the Earth. The orbit can be equatorial, inclined or polar.

B) Footprint- Satellites process microwaves with bidirectional antennas. Therefore, the signal from the satellite is normally aimed at a specific area called the footprint.

C) Satellite Categories- Based on the location of the orbit, satellites can be divided into three categories as follows-



i) **GEO :-**

- GEO stands for Geostationary Earth Orbit.
- The communication satellites in this orbit operate at a distance of about 36000 km above the earth's surface and their orbital time period is about 24 hours.
- Geostationary Orbit Satellites are used for radio broadcasting.
- To ensure constant communication, the satellite must move at the same speed as the earth, so that it seems to remain fixed above a certain spot. So such satellites are called geostationary.
- One geostationary satellite cannot cover the area of the whole earth. Most of the surface of the planet remains out of sight because of the Earth's curvature. Still many stations remain in line of sight contact with a single orbital satellite. It is estimated that for complete global transmission, minimum three satellites should be equidistant from each other.

ii) MEO :-

- MEO stands for Medium Earth Orbit.
- These communication satellites, which are in orbit and are 5000-12000 km from the earth's surface.
- These satellites are present in between two Van Allen belts. When the satellite is present in this orbit, it requires about 6 to 8 hours to circle the earth.
- The US Department of defence has constructed and used this type of satellite. Which continuously functions at an altitude about 18000 km above the earth's surface.
- This satellite system is composed of 24 satellites and is designed for land,sea and air navigation which is helpful for vehicles and ships to trace an exact location.
- At any point of time, due to this, at least four satellites are visible from the earth. The orbits and locations of the satellites are designed in that synchronization. A GPS receiver gives a relative position of each satellite.
- The GPS system is based on the concept of 'Triangulation'. The concept says that 'on the moving plane, we will know our exact location, if we are aware of our distance from three locations'.

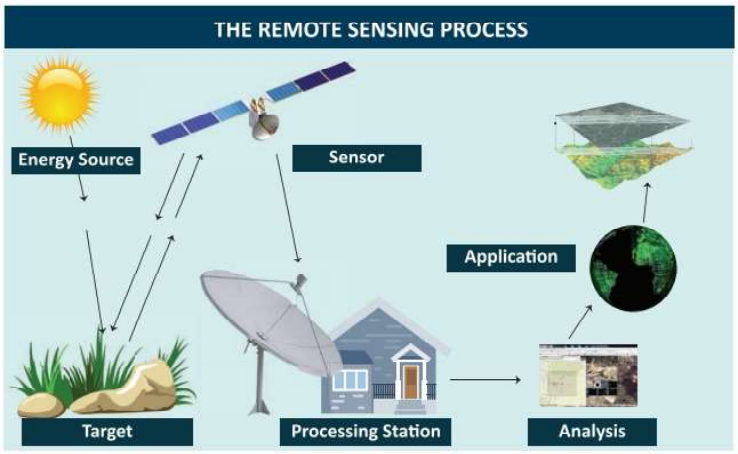
iii) LEO :-

- LEO stands for Low Earth Orbit.
- They are operated in orbit at a distance of about 500 to 1200 km above the earth's surface and their orbital time period generally ranges between 95 to 120 minutes. The Satellite has a speed of 20,000 to 25,000 km/h. A global radio coverage is possible due to low Orbit Satellites.
- A System is made of a group of satellites that work together as a network. Each satellite from the system acts as a switch. Inter-satellite links (ISLs) are present in between the satellites for their connection. A mobile system communicates with the satellite through a user mobile link(UML). A satellite can also communicate with an Earth station through a gateway link(GWL).

- They can be divided into three categories: Little LEOs, Big LEOs, and Broad Band LEOs.
- Little LEOs operate under 1GHz. They are mostly used for low-data-rate messaging.
- Big LEOs operate between 1 and 3GHz. Globalstar and Iridium systems are examples of Big LEOs.
- BroadBand LEOs provide communication similar to fibre-optic networks. The first broadband LEO system was Teledesic.

How does it function :-

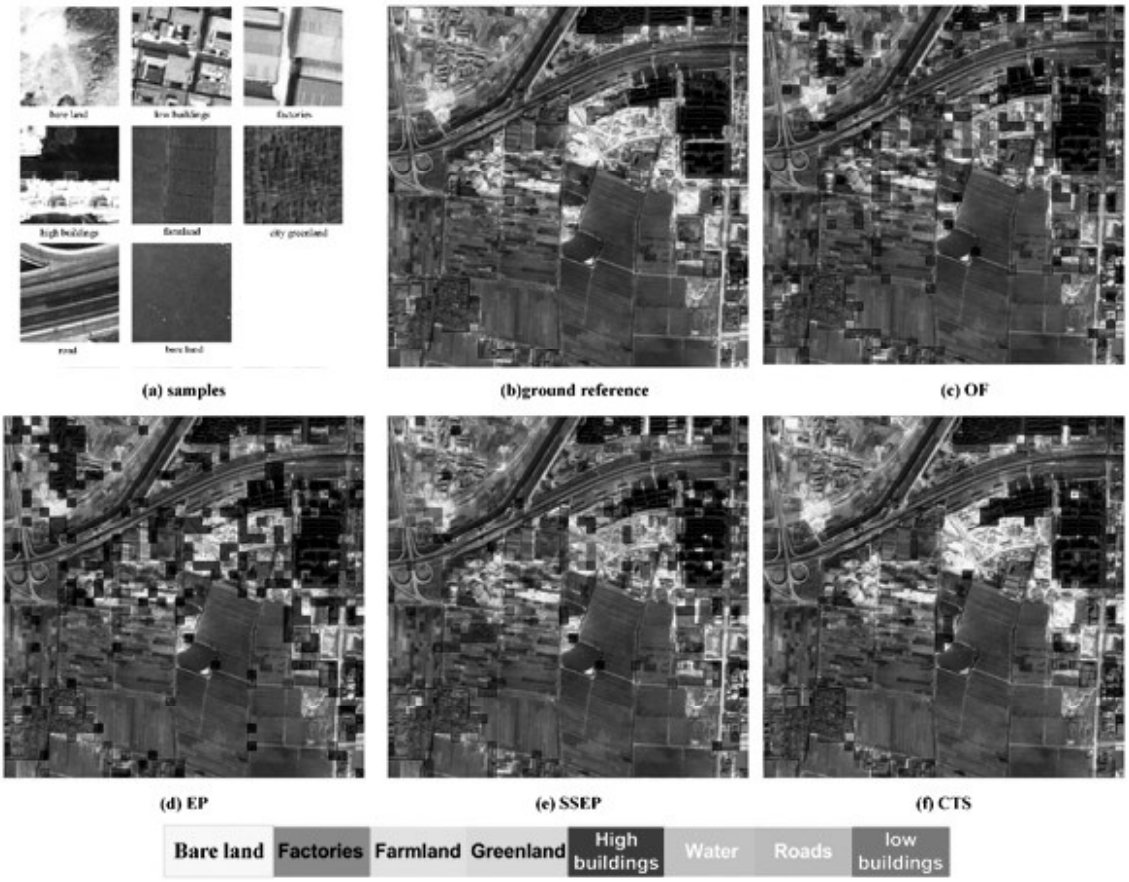
When sunlight falls on any surface, it reflects the light of different wavelengths. The sun is a natural source of energy whereas energy beams from radar are considered as an artificial source of energy. When the emitted energy waves of different size and frequency fall on any surface of an object, some are absorbed, some are reflected, while others are transmitted or emitted by the objects present on the earth. A similar effect is seen when light falls on any surface. The interaction and response of these objects with the light energy differs because of the composition of the object. The same object can give a different response to different regions of the spectrum. Depending upon the size and frequency, the energy waves are categorized into Gamma, microwave, visible, Infrared rays, radio waves, X-rays etc. Out of these, remote sensing satellites capture, the microwave, infrared and visible radiations and give multispectral images.



Different photographs of the same object are captured by the remote sensing device with different colour filters. In these photographs, different areas like the water body, forest, soil, rocks, show different colouration due to the filters used and emission of light with different wavelength from each object. The filters help to separate the different captured wavelengths, process them and produce coloured images. The atmosphere is made up of different gases, water vapours, dust particles etc. Amongst those, some gases and water vapours absorb energy from the infrared region, whereas dust particles gather blue light. As a result, this scattered light is not captured by the sensors and gets unrecorded. The advanced electronic detectors i.e. Charged-Coupled Devices (CCDs) are used by the multispectral cameras fitted on the satellites for capturing the images. An important advantage of using these CCDs is that they can easily convert the images into electronic signals.

Applications :-

A) Environment monitoring :- The technique is used for tracking and evaluating changes in the environment due to deforestation, pollution, reclamation , and natural disasters. The collected data



are useful for making decisions, strategies and future plans about conservation efforts, management of sustainable resources, and mitigating the effects of climate change for scientists and politicians.

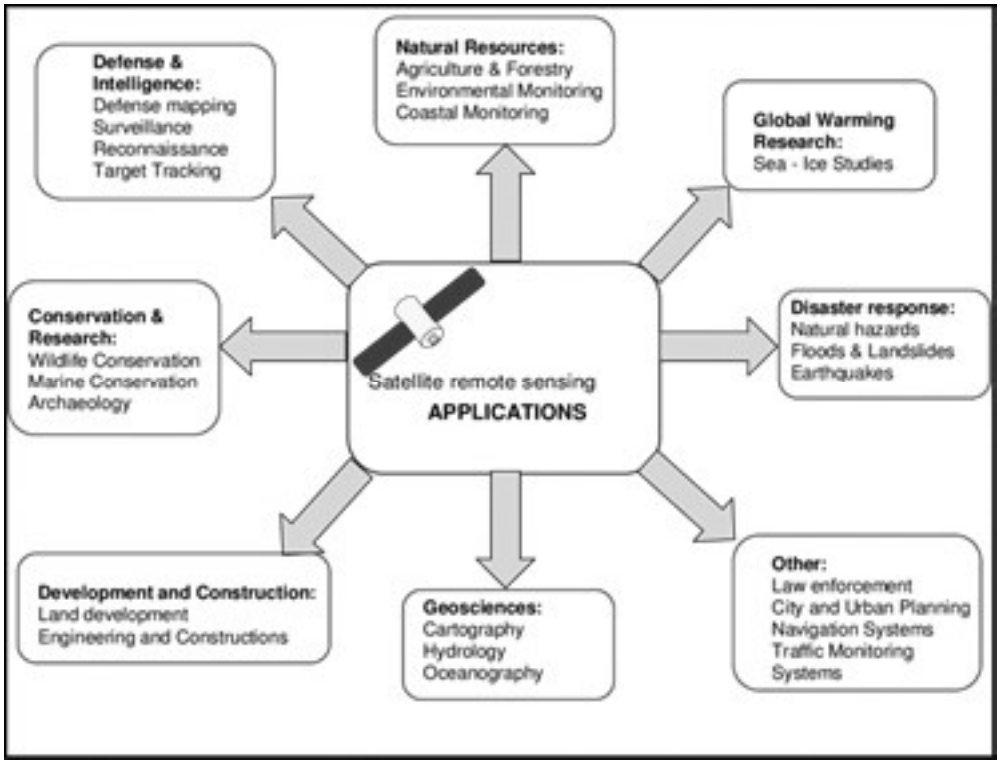
B) Agriculture and planned farming :- It becomes easy for farmers to monitor crop health, evaluate soil conditions, refine irrigation techniques by using the processed data. It also helps to identify particular regions which need insect management, continuous monitoring, fertilization etc. This practice increases crop yield and helps in optimum utilization of resources.

C) Disaster management :- Satellite imagery , integrated into Geographic Information System (GIS), is helpful for early warning of natural disasters, strategic planning of available resources, evacuation of population at risk. It also helps to evaluate damage level after the natural calamity and provides a help along with efficient and timely rescue operations.

D) Infrastructure development and city planning :- It plays a major role in planning of urban areas in ever increasing population. It also helps in assessing the effects of infrastructure development on the ecosystem and formulating future decisions related to environment sustainability, zonation and transport facilities.

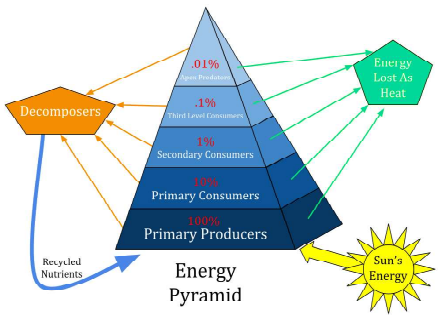
E) Weather forecasting :- It captures the data of different atmospheric conditions, weather patterns. They are useful for accurate weather forecasts and can predict severe weather conditions much in advance. So that the government can take necessary steps to protect civilians from natural disasters.

F) Defence and security of the nation :- This is an important aspect of remote sensing which plays a major role in a nation's security. It is helpful in military surveillance, gathering information, its scrutiny and intelligence gathering. By taking the help of this information, enemies' activities can be traced. During war like situations, only military locations of the enemies can be destroyed without harming civilians. This is helpful for maintaining national security.



Role of satellite remote sensing in ecosystem monitoring :-

Ecosystem is a combination of biotic and abiotic factors of that environment, their interactions with each other, different trophic levels, energy flow, effects of pollutants on food chain and food web. Abiotic constituents include, air, water, soil, minerals, solar energy and other non living elements whereas biotic factors include all living things present in that ecosystem. Trophic levels of any ecosystem are made up of producers, primary consumers, secondary consumers, tertiary consumers. Solar energy is the main energy source for almost all ecosystems. This energy is utilised by the autotrophs for production of food. These are also called primary producers. The primary consumers depend on the organic matter produced by autotrophs and the food chain goes on. After the death of any living being of the ecosystem, the decomposition is carried out by the mammals, scavenging birds, insects, fungi and microorganisms. This decomposed material in the form of nutrients is used by producers. There are many different types of food chains like marine, freshwater, and terrestrial. Their interaction in between, constitutes a food web. Following diagram depicts an energy pyramid.



Air pollution, water pollution, soil pollution, solid waste pollution and radioactive pollution, natural disasters, deforestation, reclamation, construction of new transport facilities and residential areas gradually

disturb the ecosystem of that area. To prevent this ecosystem collapse, continuous monitoring is the best option which is made easy because of satellite remote sensing. This process can evaluate the future changes and suggest alternative management strategies.

The United Nations Environment Programme (UNEP,1993) has made monitoring of ecosystem and biodiversity, mandatory. Ecosystem monitoring, getting the data for a required period with regular interval and its analysis becomes a very important key factor for environmental research, ecosystem conservation, future strategies, their effective implementation, long term effects and progress. Satellite remote sensing of an ecosystem is essential because of following reasons-

1) In the world, there are many areas which are not yet visited, maybe because of the harsh environment like Antartica or presence of specific tribes etc. and so the research is not yet carried out or could not be completed.
2) The baseline of ecosystem management of a vast area should be planned.
3) There is a need to study the effects of pollution, reclamation, construction work, natural disasters and anthropogenic activities over a long period.
4) Effects of loss or increase or decrease of any ecological factors on the ecosystem should be studied.
5) Positive and negative effects of an implementation of any progressive activity like ecotourism, SDG goals etc. should be monitored over a large time span.
6) For analysis of the effects of environmental changes on composition and distribution of flora and fauna of any ecosystem.
7) Patterns, periods of migration of birds and animals can be monitored and studied.
8) Management of available resources and sustainable development of that area should be studied.

Role of satellite remote sensing in habitat monitoring :-

A perfect habitat for animals is where food, water is easily available, no or less competition for finding a mate, reproduce and with less or no predation i.e. they and their offsprings can easily survive and remain safe. That is their home which is often guarded or marked by them. Similarly, plants can grow where there is a perfect balance of all environmental factors like air, soil, water and less competition. Animals and plants can survive and grow healthy when there is perfect balance of biotic and abiotic factors present in the environment.

Many times, too much availability of food like algal blooms, scarcity of food, natural disasters like sudden change in weather conditions, excessive rain, drought can disturb the habitat. Many times due to human interference like human encroachment or development in forest areas, pollution, these habitats get disturbed and narrowed. That disturbs the balance of an ecosystem and gives rise to man-wildlife conflict.



Satellite remote sensing for habitat monitoring is important because of following reasons-

1) A change in an ecosystem is an indicator of even a minor change in the habitat.
2) It shows the effects of pollution and other anthropogenic activities on the habitat.
3) It reveals causes of habitat change or destruction.
4) The process of degradation can be detected at a very early stage which can be taken care of to prevent further destruction.
5) It gives an idea of species found in that area, their increasing or decreasing number, probable reasons for the same.
6) It gives an idea how an animal selects its habitat, how it's marked and guarded, inter and intraspecies interactions, feeding habits of animals and birds, how they capture their prey, altruism, cooperation, grooming, selection of a mate, mating behaviour, process of protecting females, young ones and old animals.
7) Migratory animals, patterns of their migration, reasons for migration can be studied.
8) In turn, it helps to study biodiversity.
9) It is helpful for planning and implementation of effective conservation strategies for endangered species.
10) It is useful for evaluation, assessment and continuous monitoring of restoration efforts and management strategies.

Field observation is a primary and the most important method of gathering the data. The data collected from satellite remote sensing and eDNA (environmental DNA) data are used as additional and supportive data. The eDNA data is gathered from the DNA residues found in the environment to know the species composition of the area. The images from satellite remote sensing are compared and added to field data. This becomes helpful to know the entire ecosystem, habitat, species distribution, abiotic factors, effects of pollution, natural disasters, weather etc. It is helpful for the government in designing environmental policies to avoid and stop further negative impacts on the entire ecosystem including the habitat.

There are no specific standard guidelines for monitoring as it is case or project specific. When the data are gathered, after assessing the probable or expected results, the schedule of monitoring can be determined.

Challenges :-

1) The orbit and altitude of the satellite, refraction of light through an atmosphere and a scanner regulate the process of collection of data gathered by a satellite. If these factors keep on changing then the location of mapping and calculation of the distance may alter.
2) The spectral range and spatial resolution of a satellite also are responsible for the collection of data. High spectral resolution satellites may give lower resolution and vice versa because of which certain aspects of the captured images may not be clear.
3) The atmospheric conditions and pollution like sunlight, cloud cover, snowfall, haze, smog, smoke can interfere in the process of gathering the data and may give inaccurate information.
4) When the data for large areas are to be captured, then acquiring and processing of the huge data will be time consuming.
5) If there is a sudden and fast change in the environment like an eruption of a volcano, tsunami then in those cases sudden changes can not be detected as revisit time of a satellite may not be frequent.
6) When the data of large areas is to be captured, it becomes a lengthy procedure to gather and

process the data.

7) The data from different sensors which are gathered and processed, to overcome challenges of spectral and spatial resolution, is time consuming.
8) Experts are needed to process the data otherwise the data will be mis-interpreted.
9) The standardized protocol should be available which is designed by skilled researchers.
10) The complete process is very expensive and requires expertise.
11) There can be frequent and unavoidable weather conditions like cloud cover due to which the data can not be captured by satellites.
12) The radar signals can not properly penetrate into dense vegetation which may alter the data.
13) The thermal infrared remote sensing can be ineffective due to smoke, spatial resolution, cloud cover in case of fire detection.

Conclusion :-

In satellite remote sensing, the satellites are equipped with sensors and cameras. The method is used for land mapping, forestry, agriculture monitoring, mining, scientific research, environmental monitoring, disaster management, ecosystem management, monitoring changes in an ecosystem and national security. To gather the information related to vegetation cover, visible light sensors are used. For noting down the changes in Earth's environment structure, microwave sensors are used as they can penetrate through clouds. Some satellites gather the data daily, some collect the data after a particular fixed time period which is referred to as temporal resolution of a satellite.

The data processing technique includes machine learning, pattern recognition and image processing. Due to continuous research in the field, technologies related to new satellites and data analysis are discovered. Nowadays, smaller satellites like CubeSats with advanced machinery are used for data monitoring and collection. These satellites capture the data at very finer wavelengths as compared to the old method.

In short, this old and modern technology is very helpful to monitor, understand different aspects of the mother earth in the present and to design precautionary measures for the future.

Refrences :-

1) Allaw, Kamel, Jocelyne Adjizian Gerard, Makram Zouheir Chehayeb, and Nada Badaro Saliba(2021). "Population estimation using geographic information system and remote sensing for unorganized areas." *Geoplanning: Journal of Geomatics and Planning* 7, no. 2: 75–86. http://dx.doi.org/10.14710/geoplanning.7.2.75-86.
2) Aparna, N., A. V. Ramani, and R. Nagaraja. (2014). "Risk management support through India Remote Sensing Satellites." *ISPRS - International Archives of the Photogrammetry, Remote Sensing and Spatial Information Sciences* XL-8: 1–6. http://dx.doi.org/10.5194/isprsarchives-xl-8-1-2014.
3) Balakrishnan Manikiam, Kamsali Nagaraja (2017). "Climate Change Analysis using Satellite Data." *Mapana - Journal of Sciences* 14, no. 1 : 25–39. http://dx.doi.org/10.12723/mjs.32.4.
4) Babayeva, Nargiz A., Rayxa B. Amenzade, and Rustam B. Rustamov (2014). "Space Technology Advances Application in Town Planning." *Journal of Environmental Science and Engineering Technology* 2, no. 1: 9–13. http://dx.doi.org/10.12974/2311-8741.2014.02.01.2.
5) Baumgartner, Michel F., and Gabriela M. Apfl (19996). "Remote sensing and geographic information systems." *Hydrological Sciences Journal* 41, no. 4: 593–607. http://dx.doi.org/10.1080/02626669609491527.
6) Bhatta, Basudeb (2008). *Remote sensing and GIS*. Oxford University Press.
7) Blackburn, George Alan. "Remote sensing of deciduous woodlands : a tool for ecological investigations." Thesis, University of Southampton, 1993. http://ethos.bl.uk/OrderDetails.do?uin=uk.bl.ethos.239872.
8) Chandrashekar, M. G., V. Jayaraman, C. B. S. Dutt, and B. Manikiam (1990). "Earth Observation System Plans of India." *International Astronomical Union Colloquium* 123: 531. http://dx.doi.org/10.1017/s0252921100077617.

9) Cihlar, J., L. St-Laurent, M. D'Iorio, and D. Mullins (19994). *Remote sensing/geographic information system database for monitoring Canadian landmass*. Natural Resources Canada/ESS/Scientific and Technical Publishing Services. http://dx.doi.org/10.4095/193932.
10) Cole, Daniel G (2007). "Remote Sensing for GIS Managers." *Cartographic Perspectives*, no. 56: 54–56. http://dx.doi.org/10.14714/cp56.308.
11) Kumar, Suresh, and Vijay Bhagat (2019). "Remote Sensing Satellites for Land Applications: A Review." *Remote Sensing of Land* 2, no. 2 : 96–104. http://dx.doi.org/10.21523/gcj1.18020203.
12) Manikiam, Balakrishnan (2017). "Applications of IRS and INSAT Data with Specific Case Studies." *Mapana - Journal of Sciences* 13, no. 1: 85–99. http://dx.doi.org/10.12723/mjs.28.6.
13) Mohommad, Shahid, and Shambhu Prasad Joshi (2015). "ROLE OF REMOTE SENSING AND GEOGRAPHIC INFORMATION SYSTEM TO ANALYZE THE IMPACT OF CLIMATE CHANGE ON FOREST ECOSYSTEMS." *International Journal of Research -GRANTHAALAYAH* 3, no. 8: 61–68. http://dx.doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i8.2015.2959.
14) Murthy, C. S., M. V. R. Sesha Sai, V. Bhanuja Kumari, and P. S. Roy (2007). "Agricultural drought assessment at disaggregated level using AWiFS/WiFS data of Indian Remote Sensing satellites." *Geocarto International* 22, no. 2 : 127–40. http://dx.doi.org/10.1080/10106040701205039.
15) Nafieva, E. N., and A. V. Grechishchev(2020). "SPACE RADAR SYSTEMS OF EARTH MONITORING." *ECOLOGY ECONOMY INFORMATICS. GEOINFORMATION TECHNOLOGIES AND SPACE MONITORING* 2,no.5:89–95. http://dx.doi.org/10.23885/2500-123x-2020-2-5-89-95.
16) Singh, Sarnam, and Indian Institute of Remote Sensing (2000), eds. *Biodiversity & environment: Remote sensing & geographic information system perspectives*. Indian Institute of Remote Sensing, National Remote Sensing Agency.
17) Soma P (2021). "IRNSS/NavIC: Indigenous Indian Satellite Navigation Programme." *ACS Journal for Science and Engineering* 1, no. 1 : 11–16. http://dx.doi.org/10.34293/acsjse.v1i1.2.
18) Suhartono, Suhartono, Agoes Soegianto, and Achmad Amzeri (2020). *Mapping of land potentially for maize plant in Madura Island-Indonesia using remote sensing data and geographic information systems (GIS)*. EM International. http://dx.doi.org/10.21107/amzeri.2020.1.
19) Stosius, R., G. Beyerle, A. Helm, A. Hoechner, and J. Wickert (2010). "Simulation of space-borne tsunami detection using GNSS-Reflectometry applied to tsunamis in the Indian Ocean." *Natural Hazards and Earth System Sciences* 10,no.6:1359–72. http://dx.doi.org/10.5194/nhess-10-1359-2010.
20) Yavari, Gholamreza, and M. Mehdi Fazelbeygi (2011). "Development of a Small Urban Center, Using Remote Sensing and Gis." *Indian Journal of Applied Research* 4, no. 8 : 275–79. http://dx.doi.org/10.15373/2249555x/august2014/70.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

THE HISTORICAL DEVELOPMENT OF SANJHI ART: FROM DEVOTIONAL TRADITION TO CONTEMPORARY CRAFT

Sushmita Singh
Ph.D (Research Scholar), Department of Design
Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India
Dr. Shikha Verma
Assistant Professor, Department of Design
Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India

Abstract :-

Sanjhi art is a traditional paper-cutting craft that originated in the Braj region of Uttar Pradesh, originally associated with devotion to Lord Krishna and temple traditions. Originally, Sanjhi was crafted on cow dung coated walls or floors using stencils with natural colors during festivals and religious rituals. Gradually, this devotional tradition experienced significant transformation over time. During the Mughal period, the influence of geometric shapes and stylized motifs became visible in Sanjhi art, thereby expanding its scope. With the decline of temple based practices and changing socio cultural environment, it slowly shifted from a sacred ritual to a decorative craft. Today, Sanjhi is utilized in diverse domains such as gallery exhibitions, interiors, lampshades, wall decorations, picture frames, home decor, and fashion. Although this art is facing the threat of extinction, it has been given a new life in the modern context. The paper analyses the historical journey of Sanjhi art, examining its origin, development, decline, and contemporary transformation.

Key words :- Sanjhi art, Krishna devotion, Stencil, Historical evolution, Contemporary adoption

Introduction :-

In Bharat, intricate decorative motifs symbolizing prosperity are traditionally created on floors, walls, courtyards, and at the entrances of the houses and the temples. These designs are deeply rooted in cultural and spiritual practices and are crafted using natural materials such as flowers, vibrant colored powders, and rice paste. These designs, similar in essence, are known by different names across regions, such as Mandana in Rajasthan and Madhya Pradesh, Kolam in Tamil Nadu, Rangoli in Maharashtra and Gujarat, Alpona in West Bengal, Aipan in Uttarakhand (Seth & Singh, 2017). Within these diverse traditions of floor art across Bharat, Sanjhi art of Uttar Pradesh also holds an important place.

Sanjhi art, also known as Devasthanakala, is an ancient and unique folk art of the Braj region of Uttar Pradesh, traditionally practiced in Mathura and Braj Bhoomi as a ritualistic expression. The term "Sanjhi" carries many names, including Sanjhya, Sinjha, Sanjhuli, Saijha, and Sanja (Modanwal & Singh 2024). Its origin is interpreted in various ways, some link it to the Sanskrit word Sajja or Sajjavat (decoration), others to Sancha (stencil), and still others to Samaja (community). Together it reflects beauty, spirituality, and collective expression (Basu, 2020). This folk art is associated with the worship of

Lord Krishna, the main deity of Hinduism, and depicts the sacred Leelas (divine plays) of Radha Krishna, scenes of Vrindavan, and mythological events. It is a unique form of stencilling art, in which intricate designs are created by carefully cutting paper with customized scissors. This hand cutting process is highly time-consuming and requires high concentration and precision. Due to the complexity and patience needed, only a few skilled artisans continue to practice this traditional craft today. Over time, the ritualistic practice has declined, but the art started to be adopted in new forms such as decorative pieces, framed artworks, and modern adaptations, keeping its essence alive in contemporary times.

Objective :-

1. To explore the historical roots of Sanjhi art and trace its evolution as a ritualistic practice within temple tradition.
2. To examine the contemporary interpretation and adaptations of Sanjhi art in the modern context.

Origin of Sanjhi Art :-

Stencilling is an ancient art that began in China and Egypt around 2000-3000 BC. Through trade, it spread to western European counties and America and became popular between the 12th to 19th centuries (Basu, 2020). There is no clear evidence about when stencilling arrived in Bharat. However, it is widely believed that Chinese travellers introduced this craft before the Mughal period, during which it gained significant popularity (Modanwal & Singh, 2024). Artists from the Middle East and Iran were invited to India to adorn monuments like forts, mosques, and tombs. They used stencils to decorate these places (Basu, 2020).

According to local beliefs, this tradition gained recognition in Mathura and Vrindavan during the 15th and 16th centuries. As per mentioned in the puranas, Sanjhi was first created by Radha. She used natural colours, flowers, and stone to create a beautiful design to attract Krishna. Inspired by her, other Gopis also began making intricate patterns, which later became a devotional tradition in the hometown of Lord Krishna (Beniwal, 2016). During this period, Brahmin priests and devotees together created intricate and colourful geometric and symbolic designs on temple wall and floors and treated it as a refined artistic tradition and it continues as a vibrant tradition in the temples of Vrindavan.

Evolution in Mughal and later periods :-

Sanjhi art, which began in the Braj region as a devotional practice, changed a lot during the Mughal period (16th -18th century). The Mughal rulers were great patrons of the arts, and their influence introduced refinements and sophistication in many traditional practices. Their style also influenced Sanjhi as well, making it more detailed.

In the temple context, Brahmin priests continued to practice Sanjhi as a medium of worship, while Mughal influence introduced new refinements to the art. The designs become more intricate and decorative, incorporating motifs resembling jali work along with delicate floral and geometrical patterns in Sanjhi panels. Bright natural colour, flowers, coloured powders, stones, and metallic foils were also used to enhance their appeal. Over time, Sanjhi evolved from a simple rangoli style practice into a rich and professional craft. Even during the decline of the Mughal empire, Sanjhi continued to flourish in the temples of Vrindavan, particularly within the Vaishnava tradition.

Ritual practices of Sanjhi Art :-

In earlier times, Sanjhi was made in two distinct forms: first as a folk tradition, adorning household entrances and courtyards, and second as a temple tradition, where priests created designs on sacred platforms, symbolizing purity and transience (Beniwal, 2016).

- **Folk Tradition :-**



Fig 1. Folk Sanjhi

In folk tradition, Sanjhi was made by unmarried girls during the month of Ashwin to pray for a good husband and a prosperous life. It was seen as a symbol of the goddesses Lakshmi and Parvati. The art was usually made on walls of houses, coated with cow dung, and decorated with pieces of mirror, metal, Foil, and coloured stone, symbolizing beauty and auspiciousness.

Every evening in the Sanjhi temples, a new design was created to depict the stories of the goddess Sanjhi and her husband, Snajha. These designs were displayed for worship, and the next day a fresh pattern replaced the previous one. For fourteen days, especially in the temple of Radha and Krishna, the courtyards were decorated with such motifs as a part of rituals in memory of their ancestors. The designs themselves were treated as the sacred form of the goddess Sanjhi and were worshipped with devotion (Modanwal & Singh, 2024).

- **Temple Tradition :-**

The temple tradition of Sanjhi is expressed in 3 different forms: 1) Design created with coloured powders, 2) Floral arrangements, and 3) Patterns made over water (Seth & Singh, 2017).

1) Powder coloured Sanjhi is created on raised earthen platforms, called Vedi, about a meter wide, shaped like a hexagon, octagon, or polygon. The central panel usually depicts a scene from Krishna's life, surrounded by smaller related panels made with stencils and bordered with floral patterns. Making such a Sanjhi takes the artist several hours, with great skills.
2) Flower Sanjhi is a large-scale artwork, prepared on the surface of the Yamuna and Brahm Kund during special occasions. It is crafted directly with flowers, without using stencils.
3) Water/Jal Sanjhi is created on water by spreading a base of soapstone powder and adding colours through stencils. When stencils are lifted, they form delicate patterns (Seth & Singh, 2017).



Fig - 2 Types of Traditional Sanjhi Art

Materials and Techniques Employed in Traditional Sanjhi Art :-

Traditionally, Sanjhi was crafted on banana leaves, later shifting to paper as a main medium. The designs are made through layered stencilling, where each pattern is cut with special scissors to form intricate and detailed motifs, requiring great skill and patience.

Traditional Motifs of Sanjhi Art :-

Sanjhi art incorporates motifs of flowers, leaves, birds, animals, and natural elements, along With Mythological scenes of Radha and Krishna, the Gopis, Govardhan Parvat, Raas Leela, Kaliya Daman, and various episode from Krishna's life, collectively symbolizing devotion and harmony with nature.



Govardhan Parvat

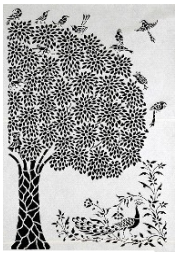


Flower Sanjhi



Radha Krishna Raasleela





Birds, Animals, Tree



Krishna





Floral design

Fig - 3 Motifs used in Traditional Sanjhi Art

Decline and Challenges of Sanjhi Art :-

The decline of Sanjhi art can be traced to reduced temple-based rituals, with only a few temples in Vrindavan still practicing the tradition. The number of skilled artisans has also dropped, as the craft is labour intensive and less attractive to the younger generation. Along with this, a lack of awareness, weak market demand, and limited government support have further added to its challenges, putting this centuries old tradition at risk of fading away.

Transformation and Contemporary Adoption of Sanjhi Art :-

The sanjhi art gradually shifted from its ritualistic roots in temple practices to more diverse and contemporary applications. Traditionally Sanjhi art was created with natural colors, but it has now found expression through modern materials such as poster color, acrylics, and even digital tools like CAD. The time consuming practice of hand cut stencils is being complemented by laser cutting and computer-aided designs, making it adaptable to new mediums. In 2010, Sanjhi art received international recognition when the Commonwealth Games held in Delhi, used its stencil style for creating pictograms of different sports (Beniwal, 2016).

In recent years, artists and designers have been experimenting with sanjhi motifs in multiple creative domains. It is now being used in paintings, installations, textiles, home decor, wall art, and lampshades, where its delicate patterns bring a unique aesthetic appeal. Furthermore, Sanjhi art has entered exhibition spaces, galleries, and workshops, allowing a wider audience to experience its beauty outside the temple rituals. Academic research also has begun to reinterpret Sanjhi as a valuable resource for innovation in design and cultural preservation, ensuring that the craft remains relevant to present and future generations.

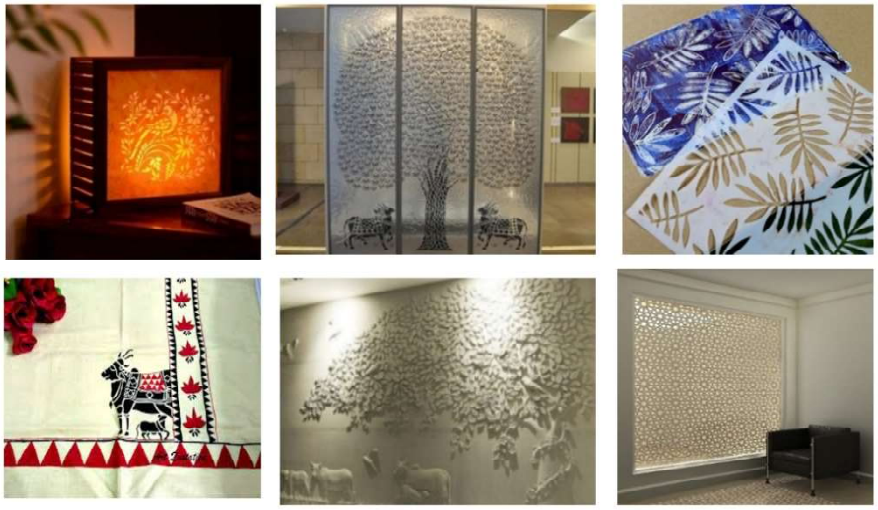


Fig - 4 Contemporary Adoption of Sanjhi Art

Table - 1 Comparison of Traditional and Modern Aspect of Sanjhi Art

Aspect	Traditional (Past)	Modern (Present)
Material	Banana leaves, Paper	Handmade paper, Plastic, metal, fabric
Tools	Customized scissors	Laser cutting
Technique	Manually	CAD
Motifs	Traditional stories, Krishna Leela, Nature inspired design	Favorable Themes
Application	Religious places and Homes Decoration	Gallery Exhibitions, Fashion, Interiors, Branding, Gift items, Lampshades, Wall Decorations, etc.
Artisan	Local family based	Organized groups, NGOs, Design schools
Technical Knowledge	Learning from oral tradition	Workshops, Online tutorials
Market	Local/regional	Local, National and International
Economic Impact	Limited income sources	Increasing income, Exports

Conclusion :-

Sanjhi is far more than a decorative art, it is a living expression of faith, devotion, and cultural identity. Once central to temple rituals and community participation, it now survives only in limited practice, primarily in selected temples and among a few dedicated artisans. Despite this decline, Sanjhi has successfully adapted to contemporary contexts, finding expression in textiles, home decor, wall art, lamp shades, galleries, and workshops. With greater awareness, documentation, and modern reinterpretation, this fading craft has the potential to flourish once again, connecting its sacred origins with contemporary designs. Preserving and promoting Sanjhi art not only safeguards a centuries old tradition but also ensures that its spiritual and cultural essence continues to inspire future generations.

References :-

1. Basu, G. (2020). Sanjhi: Folk Art of Mathura and Vrindavan.
2. BENIWAL, V. (2016). *The Charm of Indian Folk Art* (Doctoral dissertation, CHRIST UNIVERSITY).

3. Kapur, S. (2002). Encyclopaedia of Indian Heritage: Descriptive Work of Indological Research in Philosophy, Religion, Sacred Literature, Society, Thought, Traditions and Ancient Science. Cosmo publication.
4. Modanwal, P., & Singh, K. (2024). An analysis on Sanjhi art: an epitome of Indian folk art in Mathura. *Journal of population therapeutics & clinical pharmacology.* 31(06), 3301-3308.
5. Seth, J., & Singh, S. (2017, Nov 17-18). Sanjhi the Braj craft. *In International conference on recent trend and sustainability in craft and design,* IICD, Jaipur. Excel India Publishers.

Website :-

1. https://www.ezcc-india.org/pdf/book/sanjhi.pdf
2. https://sanjhiart.weebly.com/history-of-sanjhi.html
3. https://inditales.com/sanjhi-art-braj-vrindavan/
4. https://en.gaonconnection.com/our-entertainment/arts-craft/sanjhi-art-vrindavan-mathura-uttar-pradesh-hema-malini-1000-creators-project-revival-50713/
5. https://nios.ac.in/media/documents/244_Folk_art/Folk_Art_Practical_L-3.pdf

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

TIMELESS DEVOTION: SCULPTURAL HERITAGE AND ONGOING WORSHIP IN ANTICHAK, BHAGALPUR

Tanu Astha
PhD Scholar, Heritage Studies
Ambedkar University Delhi

Abstract :-

Vikramashila University was built by the Pala ruler Dharmapala. A center of ancient learning and a prominent Buddhist monastery. It was considered an important center for Tantric Buddhism (Vajrayana). The university is in the region of Antichak, Bhagalpur. In this research work, the main discussion will revolve around the sculptures found during the excavations of this site. The symbolism involved in the sculptures found within the vicinity of Vikaramashila.

Introduction :-

The important place in Antichak is the Bateshwarsthan Temple. **Bateshwar Temple** is a few kilometers away from Vikramashila University. The temple complex is situated around Antichak, Bhagalpur. The river Ganga flows bordering the temple complex, a beautiful, picturesque area around, full of natural beauty and antiquity, with the splendid view of the Ganga River from within the temple complex. Francis Buchanan was captivated by the beauty of the area. He wrote that "naturally very beautiful country, being fine swelling land, finely wooded, and several interspersed hills, and occasional views of the Ganges." (silentpagesindia.blogspot. com). Local people residing in the area consider this temple to be very sacred. Historically, the temple has great importance as the sculptures found here give it that importance, and at present also the temple is also of great significance as the historic sculptures are excavated and now worshipped by the people.

Stone Sculptural Deities within the Temple complex :-

There is a central figure standing strong and tall, with a balanced posture, holding a chakra in his right hand and a mace in his left hand. The central figure is adorned with rich jewelry, a sacred thread, bracelets, anklets, and a *makuta* on the head. Above, there are celestial apsaras on either side of the principal deity. At the bottom are four female figures, on the right, a female figure holding a Veena in one hand, symbolizing Goddess Saraswati. On the left side, the female figure is seen standing in *Anjali mudra*. (Fig. 1.)



(Fig. 1.)

Hence, according to the description above, the figure found inside the temple complex is of Lord Vishnu. And it is worshipped by people today, as evident from the sindoor applied to the deity.

(Fig.2.) About the Sculpture: There are male and female deities seen as principal figures in the image. The right hand of the male deity is seen resting on the shoulder of the female deity. When seen closely, a trisula is seen in the upper right-hand. The male deity has Jatta-type hair. The left hand of the goddess deity is seen holding a lotus with a long stalk, like the Buddhist Goddess Tara. (Prasad, 1987) . The animals are depicted at the bottom. Below, the female deity lion is depicted, and below the male deity Bull is seen. These animals act as *vahanas* of each concerned deity.



(Fig. 2)

This is studied in detail by Ram Chandra Prasad (Prasad, 1987)and reveals that this is a Siva Parvati sculpture. The Brahmanical images thus found an important place within the vicinity of these temples.



(Fig. 3)

(Fig.3.) The principal deity is shown as a Goddess figurine. Shiva Linga is seen on the top of the principal deity. And there is a total of seven serpent hoods surrounding the deity. The deity is sitting on the double-petalled lotus. The right hand of the deity rests on the right thigh. And with the left hand, the deity is grabbing a naga. The deity has a *makuta* on its head, which is completely ornamented. Along with that deity is wearing other ornaments. At the bottom, a kalash is seen in the middle, placed just below the deity, along with attendants on both sides in *Anjali mudra*. In the middle also two smaller godly figures are seen on both sides of the principal deity. On the left side of the deity, the male attendant has a naga on its head, and on the right, a man with a beard is sitting.

This piece of sculpture is very interesting and an antique piece found during excavations. Nagas are closely associated with our history from ancient times and have a special place in our mythology, too. This area of the Ganges is closely associated with the story of Chand Saudagar, Nabhindar, his wife Behula, and the worship of Goddess Manasa. Thus, the sculpture symbolizes that this figure is of a Goddess Manasa with serpent hoods on her head. The deity has two hands resting in *Varada mudra* (Prasad, 1987). A Siva linga seen at the top of the deity clearly shows that there is an authority above the goddess and the Goddess has affiliation with a principal deity, Shiva. The Kalasha placed at the bottom depicts an offering to this Goddess. This story of Bala Behula is still famous today, and it is sung during Bishahri Pooja. This is celebrated during Rakshabandhan on the banks of the Ganga River. And I saw the celebration in Kahalgaon, Bhagalpur, Bihar, prevalent still today. The story of Bala Behula is part of common folklore.

(Fig. 4.) The sculpture has a principal deity in the middle. The deity is holding a lotus petal in both left and right hands. The deity is wearing ornaments as earrings, necklaces, and bracelets. A *makuta* on the head, which is seen to be heavily ornamented. There are four flying whisks seen, two on the top and two on either side of the deities. On top are male nymphs, and on the side are two apsaras. These are often termed as heavenly deities. Other than that, there are three sculptures on the left and three on the right. Two upright male deities are holding a spear in their hands, depicting a dwarapala figure. The two female figures are also seen; on the left of the deity is a female figure holding a veena. And on the right, the female is seen in Abhay mudra. In the middle, a deity is seen, and below that Ganesha-like figure is depicted, as the trunk of the deity is visible.



(Fig. 4)

The principal deity in the middle is that of Vishnu, the description matches the 1st figure in the above-cited work. According to the description, the female figure on either side of the principal deity is that of Saraswati, on its left, and Lakshmi, on its right. Thus, the Veena in the hand of the deity on the left symbolizes the female deity to be Goddess Saraswati. The heavenly deities are shown as the God of heaven showering on the principal deity. At the bottom are seen worshippers of Vishnu. The deity shown at the bottom is shown with a trunk, i.e., it depicts Lord Ganesha. Thus, the whole sculpture symbolizes the worship of the principal deity. Thus, we learn that during the Pala Period, these deities were worshipped in the temples.

Conclusion :-

The sculptures found in the vicinity of the Bateshwarsthan temple are connected to a rich cultural heritage that remains prevalent today. Thus, temple worship is considered one of the important features of the past, and it is also evident in present times. This is evident through the sculptures found within the vicinity of the temple complex. There are several different sculptures depicting Vishnu, Shiva, Parvati, other gods and goddesses, and heavenly deities. This can be understood by studying the symbolism depicted by the sculptures.

References :-

1. Prasad, R. (1987). *Archaeology of Champa and Vikramashila.*
2. Sahai, B. (1975). Iconography of Minor Hindu and Buddhist Deities.
3. silentblogpostIndia.web
4. Raichoudhary, P.C., *Bihar District Gazeteer* (Bhagalpur) pl. ix: Sinha, K. Kartikeya in Indian Art and Literature.
5. JBPP., Vol.11, p.171, pl.XXI.6
6. Catalogue Book of Vikramashila Museum.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

COMPREHENDING THE SHIFTING DYNAMICS FROM SOCIAL TO NEO-SOCIAL MOVEMENTS: *A THEORETICAL DISCOURSE*

Bijay Kumar Behera
Ph.D. Scholar, Department of History and Archeology
F.M. University, Balasore, Odisha

Abstract :-

This essay aims to analyze the broader theory of social movements in terms of their definition, meaning, pattern of change, and social base, as well as their modes of operation, which range from collective reformation to Marxist and capitalist modes of revolution. Unlike past social movements, contemporary social movements attempted to defend the larger societal issues through collective action. Numerous social and neo social movements may be observed in India, sand in the context of Orissa, many of these movements are also clearly understood.

Introduction :-

New social movement theory (NSMT) emerged in the 1980s in Europe to analyze new social movements (NSMs) that appeared from the 1960s onward. These movements were seen as "new" in contrast to the "old" working-class movement identified by Marxist theory as the major challenger to capitalist society. By contrast, NSMs are organized around gender, race, ethnicity, youth, sexuality, spirituality, counter-cultures, environmentalism, animal rights, pacifism, human rights, and the like. Such as women's movements, peace movements, gay rights movements, environmental movements, ethnic movements etc.as it is the product of the post- industrial society, it mainly focuses on ethnic identity, human rights etc. Talking about the various examples of neo social movements in Odisha are placed in the works of Ranjana Padhis and Nigamananda Sarangi. All these NSM's are unique and captures the voices of the subalterns to narrate ground reality.

Understanding social movements :-

The works of M.S.A. Rao (1978–79) and Ghanshyam Shah (1977; 1979) were the first systematic attempts to study contemporary social movements. The two volumes edited by Rao compiled accounts of collective action by different groups: the first volume on peasants and backward classes, and the second on sects, tribal groups, and women. Along with this documentation, Rao presented a typology of social movements, a classificatory exercise that, like others of that time, sought to analyze collective action in terms of its effects on social structure. Movements were classified according to their orientation to change (whether radical or limited), and the focus of change (whether all of society or specific social groups). This four-fold schema yielded the following categories of movements: revolutionary (radical movements that sought to trans form all society, such as the Naxalite struggle); reformist (movements

for limited change for all society, such as the backward classes movement); redemptive (radical change for specific social groups, such as millenarian movements); and alternative (limited change for a specific social group, such as a sectarian movement). Shah (1977) categorized social movements as revolt, rebellion, reform, and revolution, in terms of their objectives or the nature of change in the political system they sought to achieve. Later, both Rao and Shah (2002) were to distance themselves from these structural–functionalist frameworks of analysis, with their homeostatic view of society as existing in a state of equilibrium disturbed by social movements. More dynamic conceptions of social relations, where social movements were one of several interrelated modes of political action, came to the fore in the 1980s. While these early studies of social movements were influenced by American social science theories of the 1950s and 1960s, they also engaged critically with their propositions. For instance, Ghanshyam Shah's comparative analysis of the students' movement in Gujarat and Bihar (1977; 1979) rebutted Ted Gurr's notion of social movements as catalyzed by 'relative deprivation' (Gurr 1970). However, the dominant model of social movements in the United States at that time—McCarthy and Zald's26(1977) 'resource mobilization theory' with its entrepreneurial view of success as contingent upon a movement's ability to harness resources of various kind, and its more political version as exemplified in the work of Piven and Cloward, Charles Tilly, and Doug McAdam (1982)—seems to not have had much im pact on the study of social movements in India.

Social movement theory and the challenge of 'New Social Movements' :-

Ghanshyam Shah's work on student movements also incorporated a line of analysis that was to characterize many subsequent studies of social movements, viz., how the class background of the actors shaped the movement's goals and strategies. The debate on class and collective action has a long lineage within Marxist scholarship, and many of the essays in M.S.A. Rao's edited volumes grappled with the Marxist assertion that organized movements of workers and peasants would shoulder the historical burden of bringing about radical social transformation. This perspective was also reflected in the analyses of agrarian movements by A.R. Desai, Arvind N. Das, and D.N. Dhanagare (1983). However, events around the world jolted Marxist verities and sparked off a new wave of theorizing on social movements, which was to continue into the 1990s. The emergence of a spectrum of interconnected, multi-stranded social movements in North America and Europe confounded leftist political theory with its emphasis on class struggle (Zinn 1980). The movement for civil rights for African–Americans and its more militant siblings such as Black Power and the Black Panthers; the students' movements against imperialism centred around the Vietnam War; the peace movement for nuclear disarmament and the environ mental movement against air and water pollution; the women's movements that ranged from the quest for equal opportunity to radical feminism, all sharply challenged the notion that class conflict was the central social contradiction around which social transformation would be organized. The ideological diversity of these movements and the varied social locations of their members defied conventional Marxist explanations, leading scholars such as André Gorz to bid 'farewell to the working class'(1982). While social theorists such as Rudolf Bahro (1982) sought to incorporate the new surge of movements within a reworked framework of socialist politics, others such as Jurgen Habermas and Alain Touraine (1985) argued that the 'new social movements' demonstrated that class had become redundant as an organizing form of social identity and action. New social movements were the products of a post-industrial social formation where the welfare state had made classic forms of exploitation and deprivation obsolete, but where modern society created new forms of alienation. These movements reflected and responded to this discontent: they were communitarian in that they sought to reclaim a 'life world' disenchanted by modernity, and universalist in that their politics exceeded class struggle and the 'problems of distribution, [and addressed] the very 'grammar of forms of life' (Habermas 1981: 33, emphasis in original). This meta-critique demanded a new conceptual apparatus.

Critically understanding Post Colonial movements :-

The most influential scholarly perspective on the movements of the 1970s and early 1980s is the

work of Rajni Kothari (1988). Kothari described these movements as 'non-party political formations', a new organizational form that allowed them to avoid the corruption and compulsions of electoral politics. According to Kothari, after the Emergency and the subsequent fiasco of the Janata regime that replaced the Congress at the Centre, people's faith in electoral democracy had been shaken. The Emergency had proved that the State's commitment to safeguard the democratic rights of citizens was not guaranteed. A vigil upon State action could be maintained only by civil society, mobilized through non-party political formations. Kothari's analysis resonated with observations about 'new social movements' in Europe: that their sphere of action 'is largely a space of non-institutional politics which is not provided for in the doctrines and practices of liberal democracy and the welfare state'. While Kothari's claim that social movements ranged themselves against the State in defense of democracy would certainly hold true for the human rights movement, other movements had a more complex relationship with the State. Conservationist groups within the environmental movement, for instance, while criticizing ecologically destructive state projects and policies, also successfully deployed their access to Prime Minister Indira Gandhi and other top leadership to achieve their objectives. The women's movement fit Kothari's conception even less; it succeeded in getting the State to enact progressive legislation even before there was widespread demand for or social acceptance of it (Menon 1999). Many scholars of the Marxist persuasion who studied social movements in India persisted in trying to fit the surge of collective action in the 1970s and 1980s into the framework of class conflict. In Reinventing Revolution (1993), which remains the most detailed examination of social movements in India, Omvedt argues for a more nuanced analysis of the connections between class, caste, gender, and environment. In the studies of social movements published in the early 1990s, a new methodological tendency came into prominence, viz., the use of ethnographic techniques such as participant observation. There are also other social scientists talks about various problems of these new social movements. This has been a controversial approach. Some scholars have argued that revealing the internal dynamics of progressive movements, warts and all, renders them more vulnerable to being discredited by their adversaries (Brosius 1999). Scholarly research must be self-reflexive and recognize the larger field of power/knowledge within which both academic practices and social movements are situated. When conducted with critical empathy, ethnographic research is able to show that political interests and identities are not pre-given, but are forged through the experience of mobilization and struggle. Such scholarly writing now exists alongside sophisticated accounts of social movements written by activists and supporters (Sangvai 2000), and plays an interlocutory role by clarifying and refining a movement's discursive and other strategies.

Changing social dynamics and issues for further research :-

Since the 1990s, many social movements in India have become embedded in global networks and alliances, in part as a consequence of the transnational projects and discourses with which they now have to contend. The links forged by Dalit groups with the movement against racism, the participation of sections of the environmental movement in the transnational opposition to -neoliberalism as embodied in the World Trade Organization and multilateral financial institutions, and the increasing ties between the movements for Adivasi rights and the international campaigns on indigenous peoples are some instances of a growing trend. How articulation within transnational networks changes the dynamics and discourses of a social movement have, however, not been adequately examined. . The complementarities between movement dynamics and more institutional political forms require further exploration. An extreme instance of this is when state actors begin to mimic and adopt social movements' repertoire of mobilization techniques (Heller 2005; Baviskar 2007), thereby dissolving the distance between the State and social movement that had appeared to be a given in studies of collective action. These and other issues that shed light on the place of social movements in contemporary political life await further analysis.

NSMT has been criticized on various grounds. The most common criticism is that many features of supposedly "new" movements can also be found in "old" labor or working-class movements, including collective identity, movement cultures, or symbolic grievances. The most eloquent rejoinder to these

criticisms is that NSMs are analytical constructs and not empirical objects and that NSMT was never intended to make an ontological claim. Thus, Melucci has bemoaned a misguided debate in which "both the critics of the 'newness' of the 'new movements' and the proponents of the 'newness paradigm' commit the same epistemological mistake: they consider contemporary collective phenomena to constitute unitary empirical objects … The controversy strikes one as useless.

References :-

1. Banarjee, Prathama. 2006.Culture/Politics: The Irresoluble Double-Bind of The Indian Adiva si.The Indian Historical Review 33(1): 99-126.DOI:10.1177/03798360603300106.
2. Baviskar. A. (1995) In the Belly of the River: Tribal Conflicts over Development in the Narmada Valley. New Delhi: Oxford University Press.
3. Baxi, Upendra (2008). "Development, Displacement, and Resettlement: A Human Right Perspec tive", Indian Social Development Report 2008, CSD, New Delhi, Oxford University Press.
4. Behera, MaguniCharan.Shifting perspectives in tribal studies: from an anthropological approach to interdisciplinary and consilience.Springer Nature Singapore Pvt. Ltd. 2019.singapore.pp.382.
5. Behura N, &Panigrahi N. (2001). Functioning of the fifth schedule of the constitution of India: The role of welfare agencies in the state of Orissa. Report submitted to ICSSR New Delhi. NKC Centre for Development Studies.
6. Das, Samarendra ,Padel, Felix; (2020), Out of this Earth.East India Adivasis and the Aluminium Cartel. New Delhi: Orient Blackswan.
7. Das.S and F. Padel, "Cultural genocide and the rhetoric of sustainable mining in East India," Contemporary South Asia 18, no. 3 (2010): 333–41.
8. E.P. Thompson, History From Below, Times Literary Suppliment, 7 April 1966.PP. 279-80
9. Gramsci, Antonio, The Prision Notebooks. 1971.New York
10. Guha, R. (1988). On some aspects of the historiography of colonial India.
11. Spivak ,Gayatree,subaltern studies (pp. 37–44). Oxford, England: Oxford University Press.
12. Guha, R. Elementary Aspects Of Peasant Insurgency.1982.Duke University Press.
13. Guha, Ramachandra (2007), "Adivasis, Naxalites and Indian Democracy", Economic and Politi cal Weekly, 42(32), 3305-3312.
14. Kothari, A. (a). (2014, June 27). Degrowth and Radical Ecological Democracy: A View from the South. Retrieved June 2, 2016, from Degrowth: http://www.degrowth.de/en/2014/06/degrowth and radical-ecological-democracy-a-view-from-the-south.
15. Kothari, A., & Das, P. (2016). Power in India: Radical Pathways. In N. Buxton, & D. Eade, State of Power 2016 (pp. 183-202). Amsterdam: Transnational Institute.
16. Morrison.Denton E, some notes towards theory on relative deprivation,socialmovements,and social change.1971.Michigan state university.
17. Rao, Madhugiri Shyama Ananth (ed.) (1978), Social Movements in India. New Delhi: Manohar.
18. Saha,Ghansyam (1977,1979). Social Movements in India. New Delhi: Sage Publication(1st edition).
19. Gurr,Ted Robert(1970). Why Men Rebel.Routledge .
20. McCarrthy. John D, Zald.MayerN,Resourse Mobilization And Social Movements: A Partial Theory.
21. Omvedt, Gail. 1993.Reinventing Revolution: New Social Movements and the Socialist Tradition in India. Routledge.
22. Klandermans, Bert.1984.Mobilization and Participation: social-psychological expansions of resource mobilization theory.Americal Sociological Review 49.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UNSUNG WARRIORS OF ANGLO MANIPUR WAR AT KALA PANI

Ankur Majumdar
Research Scholar, Department of East Asian studies
University of Delhi, Delhi

Abstract :-

This paper is all about the Unsung Warriors those who were imprisoned at Kala Pani in Cellular Jails in Sri Vijaypuram, Earlier known as Port Blair in Andamans and Nicobar Islands. The phrase "Unsung warriors of Kalapani" likely refers to the Indian freedom fighters who were imprisoned in the Cellular Jail, also known as Kalapani, in the Andaman and Nicobar Islands. These individuals, who fought against British colonial rule, faced harsh conditions and isolation in the prison.The Indian freedom struggle was a long and unending struggle against British rule. History has witnessed that from Kashmir to Kanyakumari, Assam to Gujarat both men and women participated in overwhelming numbers. Significantly, the story of India's freedom struggle is incomplete without discussing the contribution of the Andaman and Nicobar Islands, which was the most dangerous prison known as The Cellular Jail during the days of British rule. The land has been a witness to the brave freedom fighters who made sacrifices during the freedom struggle of India. The islands are beyond the legend of native tribes living in prehistoric conditions. In this framework, as a tribute to the martyrs of the freedom struggle, the study aim is to examine: a) What was the role of the Andaman and Nicobar Islands in the Indian freedom struggle? B) What was the experience of the freedom fighters who were imprisoned in the Cellular Jail? Therefore, this study is based on the hypothesis: a) the Andaman and Nicobar Islands played a crucial role in the Indian freedom struggle, as it served as a prison for Indian freedom fighters and a source of inspiration for others to join the fight, b) the experience of the freedom fighters imprisoned in the Cellular Jail was characterized by inhumane treatment, torture, and hardship, but they persevered and continued to fight for India's freedom, c) the documentation of the story of the Andaman and Nicobar Islands and the Cellular Jail in Indian history has been incomplete and inadequate, and the sacrifices of the freedom fighters have not been fully acknowledged.

Keywords :- Andaman and Nicobar Islands, Freedom Struggle, Britishers, Kalapani , Political Prisoners, Manipur.

Introduction :-

This paper we are going to highlight about the Unsung Warriors who were being imprisoned in Kalapani at Cellular Jail.Patriots in Kala Pani? Writing Subaltern Resistance into the NationalistMemory1The active construction of historical 'realities' can be regarded as a medium ofcollective communication about the past, the present, and the future (Straub,1998: 81). Located at the temporal and spatial crossroads of numerous oral andliterary traditions, as well as various empires, colonial and postcolonial powersand their ideologies, the historiography of India must be regarded as a

constantstruggle to revise and rewrite historical 'reality'. During the last few decades,the project of 'writing India' has gained a new momentum through the increasedproduction of popular social history, often articulating explicit or implicitpolitical claims to belonging, identity, and space (Chatterjee, 2006: 13).Twenty three people from Manipur were deported to Kalapani for waging war against the British Empire during the Anglo-Manipur War of 1891. The book attempts to bring into light the incidents and the sacrifices of these war heroes. It is recorded that Maharaja Kulachandra was among those convicts who were declared guilty.Further we will get to know more about those heroes.



Beggning of the Revolt :-

On the palace revolt of 21September, 1890 Under Senapati Tikendrajit, Gangmumei Kamei Writes, 'Mr. Grimwood (Agent at Imphal) said, "The primary cause of outbreak was without any Doubt the bad feeling between the Pucca Sena and His elder brother, the Senapati (Bir Tikendrajit) About which I have occasionally noted in my Diary."'3 Following the chain of events after the September revolt, the British declared war against Manipur, and in the war the Manipuris were Defeated with a great loss. Subsequently, there was a trial of arrested Manipuris held under the British Authorities. Accordingly, five persons were hanged ,and other twenty-three Manipuris were deported to Andaman Islands. On the first group of deported Manipuris, the Rastriya Swayamsevak Sangh, Manipur expressed that Maharaja Kulachandra, his two brothers and 12 noblemen were sent to Kalapani for life imprisonment and they reached Port Blair on 23 November, 1891 from Calcutta on board the ship S.S. Shahjahan.4 No doubt, on this event previous scholars had studied on the causes.And results of the war. But they failed to study the Reasons why were Thangal General (an eighty year Old courtier) and the Manipuri masses involved Directly in the murder of those British officials. Besides, the scholars also failed to mention the Bravery of many Manipuri martyrs who had Sacrificed their lives at Thoubal Athokpam, Katkaching and Khongjom. Keeping it in view, this Paper makes an attempt to study on the missing Areas collecting materials from different archives, Chronicles, secondary source books and oral Sources.

Exile at Kalapani :-

However, the report that sixteen people were exiled at Kapani after Manipur was defeated in the Anglo-Manipur War was a concern for the people associated with or working



in this area. It is mainly because various sources indicate that twenty-three people were exiled at Kalapani at different batches and at different points in time. [Compiled from – L. Basanti (2006). Documents of Anglo-Manipur War, Part III, Imphal, pp. 122-129; Kakchingtabam Gunachandra (2016). The Manipur War of 1891: A Media Narrative, Imphal, Manipur; Rashtriya SwayamsevakSangh (RSS), Manipur (2014). The Manipuri Heroes at Port Blair Jail (1858 AD & 1891 AD). RSS, Manipur, Imphal; Leishangthem Chandramani Singh (1970). Manipur Itihas: British ga Mare LeinarakpaSaruk(tr., History of Manipur: Manipur's relation with British Section), Imphal; Manipur State Archives. Government of Manipur (GoM), http://archivesmanipur.nic.in; Rajkumar Sanahal Singh (1973), Bir Tikendrajit Singh, Imphal; and Yumkhaibam Shyam Singh (2019). Sana ChahiAhum and the Manipuris in 1857revolt, pao.net>]. It has been reported that the first batch includes 15 Anglo-Manipur War Heroes, including Maharaja Kullachandra Dhwaja Singh, and was followed by transportation of the remaining war heroes, most likely in two phases.

Sepoy Mutiny ,Prince 'Sana Chahi Ahum' and Kalapani :-

Besides, the Anglo-Manipur War Heroes transported to life at Kalapani after the defeat of the 1891 Anglo-Manipur War, a Manipur Prince 'Sana Chahi Ahum' [Ibid.] alias Prince Narendrajit alias Prince Ranjit, son of Maharaja Chourjit Singh of Manipur (1803-13), was also transported to Kalapani in the year 1858 for leading the Sepoy Mutiny popularly known as the First War of Indian Independence at Cachar, Barak Valley of Assam. Captain Stewart (Superintendent of Cachar), who himself was actively involved in containing the mutiny led by Prince Narendrajit, in his report mentioned:

i) … … On January 12, 1858, the mutineers with Narindrajit (sic. Wrong spelling for Narendrajit) Singh, the prince of Manipur, and his followers came out of the jungle and entered into a village to the west of Binnakandi at morning immediately after their flight a heavy engagement took place ….

ii) … In the same letter, he again expressed anxiety over the possible alliance between the Mutineers and the rebel sepoys. On January 13, 1858, he intimated the actual involvement of the Manipuri prince and his followers with mutineers.

iii) Prince Narindrajit Singh, who joined with the Mutineers, was apprehended in Manipur while on

his flight towards Manipur with a severe wound after the struggle that occurred in Binnakandi. …[Subir Kar (2008). 1857 in North East India: A reconstruction from Folk and oral sources. Akansha Publishing House, N. Delhi, p. 42, 67, 68. Cited in B. Kulachandra Sharma (2011). Sana Chahi Ahum. Dushri, Keishamthong, Imphal, P.140].

March towards Chittagong :-

November 1857, the 34th Native Infantry mutinied at Chittagong and marched towards Shylet (now in Bangladesh) and Cachar. Prince Sana Chahi Ahum and other princes who were already in Cachar (in Assam) encouraged them with hopes of getting abundant supplies at Lakhipur (in the state of Assam) and of being joined by a large force of Manipuri collecting near that place for the purpose of invading Manipur. [Th. Babachandra Singh (2005). "The Manipuris in the Politics of Cachar," in Naorem Sanajaoba

(ed.). Manipur: Past and Present, Vol 4. New Delhi, p. 232]. They hoped that when Prince 'Sana Chahi Ahum' had been fairly installed, he promised either to retain the mutineers in his own service or lead them through Assam and Nepal on their own. However, they were critically engaged at Baiinakandi. In 'Takhelei' (a textbook prescribed for Class V by the Tripura Madhyashikshya Parsad, while describing the role of Sana Chahi Ahum in the mutiny, it is written: [L. Taranikanta (2005). "Sana Chahi Ahum," in L. Birmangal & L. Kumar (eds.). Takhelei. Tripura Madhyashikshya Parsad, SCERT, Tripura. P. 20].

"The prominent example of his (Sana Chahi Ahum) leadership quality was his capability of being the leader of the peoples of Cachar in the Revolt of 1857. In the revolt, he not only was the ringleader but also gave a proper guideline for shelter, food, and traditional medical care. His presence also aroused a new zeal to those rebel sepoys."

Unsung heroes of Anglo Manipur War :-

After the defeat at Anglo-Manipur War in 1891, Maharaja Kulachandra was arrested on 8th May 1891 and subsequently charged with waging war against the Queen Empress. Besides him, many other prominent persons, including Jubaraj Tikendrajit and Thangal General, were also arrested and charged for waging war against the Queen Empress of India and abatement of murder British Officers. Five of them were hanged, and 23 people, including Maharaja Kulachandra, were transported for Life at Kalapani, Andaman. The transported Manipuri Manipur War Heroes from Manipur were believed to have interned at a Bungalow at Mount Harriet. All the Manipur War Heroes were released by 1906 when the cellular Jail started functioning. It was reported that only Khamba Singh Laishramba died at Port Blair Andaman, 17 December 1894.

So altogether, there are twenty-four Manipur War Heroes of Manipur, including Prince Sana Chahoi Ahum, who were deported to Kalapani. As per the report/document published by Andaman Administration, a person named "Jodh Singh" was recorded as Manipur War Heroes transported to life in Andaman Island, which needs a throughout investigation/research.

Immediate cause of the war :-

In 1886 Maharaja Chandrakirti Singh died, and his Son Surchandra ascended the throne of Manipur. but the new king was an incompetent one and, Therefore, repeated revolts against him disturbed Manipur time and again. There were two rival factions in the court of Manipur. One was led by the New king and his brother Paka Sana, the other was under Prince Kulachandra and Prince Tikendrajit. Consequently, a palace revolt led by Tikendrajit Broke out on 21 September, 1890. Maharaja Suchandra and his party did not try to resist it and, Therefore, took shelter inside the British Residency. Thereafter, Surchandra was allowed to go outside Manipur on pilgrimage by Mr. Grimwood, the Political Agent. Kulachandra ascended the throne. But, reaching Calcutta, Surchandra appealed to the Viceroy to regain his lost throne. After due Discussion, Lord Landsdown directed the Chief Commissioner of Assam to

recognise Kulachandra As the Raja of Manipur, and at the same time to Deport Tikendrajit beyond Manipur. The provision Of Tikendrajit's deportation was against the wish of Manipuri masses as he was the most trusted and also Capable man in Manipur. Acting on the decision of The Government, Mr. Quinton, the Chief Commissioner of Assam, arrived at Imphal on 22ndMarch, 1891 to arrest Tikendrajit. Repeated Darbars (conferences) were scheduled to arrest Tikendrajit But failed. Ultimately, on the early morning of 24thMarch the British army under Lt. Brackenbary Attacked the palace at Imphal with an objective Arresting Yuvaraj Tikendrajit Singh. Thus, there Was an undeclared Anglo-Manipuri War.

Impact of Attack at Kangala :-

In the undeclared war, many civilians were killed. Purankhamba Tanka, Khumbong Subedar, Leisang Jamadar and Athokpa Dewan died fighting against the British. Lt. Brackenbary (the only British officer killed by the Manipuris in hand to hand fight) and Some sepoys of the British army lost their lives on The side of the British.

While the war of 24th March Was at its peak, the British declared ceasefire at 8 P.M. and, ultimately, fighting ended. For a Darbar To be held instantly at Kangla, 5 British Officers and a Hindustani bugler came to Kangla. When the Conference failed to pacify those angry Manipuri Masses and courtiers, they resorted to the killing of seven British officials viz. Mr.

J.W. Quinton CSI, Chief Commissioner of Assam, Lt. Colonel C. McDowell Skene, D.S.C., Commanding the 42nd(Gurkha) Regiment of Bengal Light Infantry, Mr. F.St. Clair Grimwood, ICS, Political Agent in Manipur, Lt. W.H. Simpson, 43rd (Gurkha) regiment of Bengal Light Infantry, Mr. W.H. Cossins, ICS, Asst. Secretary to the Chief ommissioner of Assam, Mr. W.B. Melville, Superintendent of Telegraph, Assam Division and The latter's assistant, Mr. O' Brien.

Battlefields at Thoubal Athokpam, Kakching and Khongjom:-

Having heard the British setbacks at Imphal, Lt. Grant of the 12th Burma Madras Infantry advanced to Manipur from Tamu and reached Thoubal Athokpam with 85 rifles on 31st March. On this day the British also declared war against Manipur. Lt. Grant's objective was to march up to Imphal and rescue the British officers. He, therefore, attacked the army of Manipur, 800 in number, at Thoubal. On this battleground, Grant narrated: "We opened volleys by sections (ten men) and then advanced, one section firing a volley while the other rushed forward thirty paces, threw themselves down on ground, and fired a volley, on which the other section did likewise."22. On this first day of declared war at Thoubal, Manipuris under Senapti Angou, Wangkheirakpa Mipak, Sana Dolaroi Hanjaba, Yaishukpal Sana Haojaomacha and Major Chongtham Angaton .(Aya Puren) lost about 20 men. Casualty on the British side was only one. In the continuing war at Thoubal Athokpam, which showed superior military skill of the British, about ten Manipuris including Sana Haojaomacha Yaiskulakpa and his eldest son Sengoisana breathedtheir last on "Monday, the 6th April, 1891."23 Sana Haojaomacha was the most senior Manipuri warrior among the Manipuris who had laid down their lives in the battlefields of the war.The historic Battle at Khongjom was fought on the Twenty-fifth April, 1891. When the war began, powerful British Guns effected fatal impacts at the fort of Manipur, But those gallant Manipuri warriors fought bravely To safeguard the territory and independence of Manipur. But they were defeated and most of them Were killed. As stated earlier, Major Paona Brajabasi, Chinglen Sana, Khumbong Major, Loitongba Jamadar, Keisa Jamadar, Heirang Khongja, Kangjam Tona Singh, Sagolsem Keiphaba are so far known Manipuri martyrs of this Battlefield. An oral history on the recovery of the Corpse of Kangjam Tona Singh from Khongjom Accounts: "It was told that after reaching Khongjom, The party saw a terrible scene of decomposed dead Bodies in the mud. With great difficulty they Identified the body of K. Tona Singh seeing the Latter's Khong-Khut (limbs of the body)."26 The Battle of Khongjom was the decisive battle of the Anglo-Manipuri war. On the 27th April, 1891, the British Forces occupied Kangla resulting in the end Of freedom of all the Manipuris.

United effort of the Manipuris in the war :-

It is really undeniable that the Manipuris living both in the hills and the plain fought the war united. traditions express that the Maharajas maintained a very sound relationship with the hill people of Manipur. Till today, everyone could see Manipuri Festivals like Lai-haraoba, and Mera Hou Chongba at which all the Manipuri communities join together and witness these festivals with great joy. Having this unbreakable bond of unity, there were many Manipuri hill people at Kangla Fort when it was Attacked on the 24th March, 1891. It has already been stated that two Tankhuls also lost their lives in hand to hand fight on that morning. At Mayangkhang, as mentioned earlier, when the british officials-Mr. Melville and Mr. O'Brian were attacked, the Nagas of that place played a great role under their chief- Chirai Naga. The Kukis and the Nagas of Southwest Manipur also showed their Great animosity resulting in repeated skirmishes When Mrs. Grimwood and the British army Retreated on the Cachar Road in March, 1891. At the Time of advancing the British column from Silchar, the Kukis of Manipur broke the suspension bridge Over the Irang river to check the British advance.27.When the Manipuris were defeated, Maharaja Kulachandra, his brothers and a great number of Manipuri followers took shelter at Chased for Some days. The then Chief Political Officer in Manipur also reported on 27th April, 1891: "The Regent, Senapati, and brothers left palace for Tangkul hills 8 p.m. 26th."28On 27 April 1891, the British forces occupied Imphal resulting in the end of freedom of all the Manipuris. Later, for waging war against British India, five Manipuri leaders viz. Bir Tikendrajit (Jubaraj), Thangal General, Niranjan Subedar, Kajao Singh Jamadar and Chirai Naga were hanged To death by the British authorities. Another 23 Manipuris-Kullachandra Dhwaja Singh (Maharaja), Prince Angousana Singh (Senapati), Lokendrajit Birjit Singh (Wangkheirakpa), Shamu Singh (Luwang Ningthou), Chongtham Nilamani Singh (Ayapurel Major), Chongtham Mia Singh (Major), Abungjao Yengkhoiba, Uru Singh Usarba, Chaobi Haidar (Machahal), Ghana Singh Khongdra, Khamba Singh Laishramba, Dhojo Singh Mayengba, Noni Singh Nepra (Machahal), Trilok Singh Nongtholba (Satwal), Dhono Singh Sagonshenba, Ghun Singh Indujamba (Jamadar), Ningthauba Singh Chingsubam (Jamadar), Thaoba Singh Phanjao (Jamadar), Tenjao Singh Mangshataba (Jamadar), Chaobatol Singh Heigrujamba (Subadar), Paradhumba Singh alias Ashangba Kut, Ghowkami Naga and Gohow Naga were transported for life to the Andaman and Nicobar Islands.



Conclusion :-

To Conclude this,we have get.to know about Unsung Warriors at Kalapani at Andaman and Nicobar Islands from the state of Manipur.Hence, the Anglo-Manipuri War was really a Historic event

of all the Hindustanis in general and The Manipuris in particular. In the war, the treatment Meted out to those Fifty-one Hindustani war Prisoners by the Government of Manipur is a very rare occasion in history. It is also a fact that the manipuris fought the war united. As they were brave and independent loving people, those unfriendly British policies and the brutal killing of civilians on 24 March 1891, made history a new turn. Therefore, after the palace attack, the aged Thangal and Manipuri masses retaliated directly to those British officers. No doubt, on this memorable Event, history text books have mainly mentioned the names of Paona Major (died in fighting), those five Hanged and twenty-three transported after different Trials, and they were also remembered every year Giving them floral tributes. But many great Manipuri warriors who made supreme sacrifices on different battlegrounds of the undeclared and declared war viz. Pukhranba Tanka (who inflicted a fatal wound on Lt. Brackenbury), Khumbong Subedar, Leisang Jamadar, Athokpa Dewan, Chinglen Sana, Khumbong Major, Loitongba Jamadar, Keisa Jamadar, Heirang Khongja, Kangjam Tona Singh and Sagolsem Keiphaba are Rarely known as history gives them scant notice.At last I could say that these unsung Warriors played significant role in Freedom Struggle of our country.

References :-

1. Sharma, B.Kulachandra & L. Sanathoi (eds.), Royal Chronicle of Manipur, 33A.D.-1984 A.D., Manipuri Sahitya Parishad, Assam, 2015, p .253.
2. The Manipur State Archives (hereafter MSA), 2006, Guide to the Records of the Anglo Manipuri War 1891, Govt. Of Manipur, Imphal, p. 44.
3. Kamei, Gangmumei, A History of Modern Manipur 1826-2000, part I, Delhi, 2016, p. 140.
4. Rastriya Swayamsevak Sangh, Manipur, The Manipuri Heroes at Port Blair Jail, RSS, Keshav Sanglen, Imphal, 2014, p. 12
5. National Archives of India (hereafter NAI), Foreign Political Letters to Court of Directors Of 16 January, 1834, No. 2.
6. Banerjee, A.C., Eastern Frontier of British India, Calcutta, 1964, p. 253.
7. Dun, E. W., Gazetteer of Manipur, Delhi, 1975, p. 43.
8. Banerjee, A. C., op. Cit., p. 261.
9. L. Ibungohal and Singh, N. Khelchandra, Cheitharol Kumbaba, Manipur Sahitya Parishad, Imphal, 1989, p. 225.
10. Mackenzie, Alexander, The North-East Frontier of India, Delhi, 2005, p.150.

Books :-

1. Banerjee, A.C., Eastern Frontier of British India, Calcutta, 1964.
2. Dun,E.W Gazetteer of Manipur, Delhi, 1975.
3. Ethel St. Clair Grim Wood, My three years Manipur, Delhi, 2012.
4. Government of Manipur, Guide to the Records Of the Anglo Manipuri War 1891, Imphal, 2006.
5. Kamei, Gangmumei, A History of Modern Manipur 1826-2000, part I, Delhi, 2016.
6. L. Iboongohal, Introduction to Manipur, Imphal, 1987.
7. L. Ibungohal and Singh, N. Khelchandra, Cheitharol Kumbaba, Manipur
8. Sahitya Parishad, Imphal, 1989.
9. Mackenzie, Alexander, The North-East Frontier of India, Delhi, 2005.
10. N. Khelchadra Singh, Battle of Khongjom, Imphal, 1983. Rastriya Swayamsevak Sangh, Manipur, The Manipuri Heroes at Port Blair Jail, RSS, Keshav , Imphal, 2014.
11. R.K. Jhalajit, A Short History of Manipur, Imphal, 1965.
12. Roy, Jyotirmoy, History of Manipur, Imphal, 1973.
13. Unsung Anglo-Manipur War Heroes At Kalapani,Shukhdeba Sharma Hanjabam & Aheibam koireng Singh, National Book Trust Website:-
    https://www.imphaltimes.com/guest-column/note-on-the-unsung-anglo-manipur-warheroes-deported-at-kalapani/amp/
    Unsung Anglo Manipur War Heroes deported to Kalapani By Shukhdeba and Koireng https://share.google/U019Zpfrw23mPrV2M

Appendix/ Images :-

1) **Figure 1:-** Image of Cellular Jail , Credits – Google
2) **Figure 2:-** Five Freedom Fighters of Anglo Manipur Wars – Bir Tikendrajit Singh, U Tirot Singh, Haipou Jadonang Gopinath Bordoloi. Mohi Riba
3) **Figure 3:-**Image of Mount Manipur Memorial – Credits-Wikipedia.

❐ ❐ ❐

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

FROM TEXT TO ART: THE ARTISTIC REPRESENTATION OF THE JÂTAKA STORIES IN EARLY INDIAN ARCHITECTURE. CASE STUDY OF BHARHUT, SANCHI AND AMARAVATI

Naveen
Guest Faculty, History
Vivekananda College, University of Delhi

Abstract :-

The Jâtaka Stories narratives talk about the previous births of the Buddha represent one of the most significant vehicles of the Buddhist moral and religious teaching, emerging within the oral and textual traditions of the early Buddhism, these tales gradually transformed into visual representations that are seen on the railings, gateways, and stupas of Ancient India which belongs to approximately 3rd Century BCE to 3rd Century CE.

This research look for the process through which Jâtaka Tales transitioned from their canonical textual existence into the narrative art of Bharhut, Sanchi and Amaravati. It examines the mechanisms of transmission, artistic adaptation, and regional stylistic developments that translated abstract moral themes into reachable visual imagery. Furthermore this paper deals with through iconographic and and comparative analysis to show that jataka reliefs were not only artistic transmission of texts but active agents in the dissemination of Buddhist doctrine and collective moral identification. The study further focus the socio- religious function of these narrative panels as tools of popular communication, moral education and the visual focus of the Buddhist path.

Keywords :- Jâtaka Tales, Pali text, Bharhut, Sanchi, Amaravati, Narrative, Buddhist Art, Communication in Art.

Introduction :-

The Transmission of Jâtaka tales from oral and textual forms into visual art marks one of the most remarkable things which we see in Early Indian history. The Jâtaka stories, were written within the pali language and seen in Pali canonical texts specifically in the Jâtakatthakathâ and Khuddaka Nikâya of the Suttapitaka record the Buddha's previous lives, illustrating moral ideals such as compassion, sacrifice, honesty and truthfulness. There are almost 550 Jâtaka Stories in pali canons. This is believed that Jâtaka tales completed in Third Buddhist Council under the patronage of the Asoka ruler of Mauryan Empire, but Jâtaka tales were first written down in Pali in Sri Lanka around 1st Century BCE. These tales were recited by monks and popular among the lay followers, serving as educative instruments to promote ethical living and values.The Transmission of texts into stone reliefs coincides with a broader shift in Indian Art during the Mauryan and post- Mauryan periods.

Vidya Dehejia in her writings discussed about that under the patronage of rulers, merchants, and

monastic communities, the Buddhist stupa became not only reliquary structure but also a visual text that communicated religious doctrine to a largely non literate public. We see at sites like Bharhut, Sanchi, and Amaravati, the Jâtaka narratives were carved into the stone railings and gateways, elaborative and transforming architecture into an open- air storybook. This paper aims to discuss this artistic transmission, explore how visual artistic, monks, and patrons incorporate to translate narrative texts into a communicative art form embedded within stupa architecture.

Earliest study shows that Jâtaka tales were found in artistic form first than its written form. We found their artistic representation on stupa reliefs, gateways of Bharhut, Sanchi and Amaravati. These stupa's were first excavated and studied by the colonial Archaeologist in the late 19th and early 20th centuries. Alexander Cunningham's excavations at Bharhut (1879-1883) , John Marshall's work at Sanchi, and Colin Mackenzie (1797), sir waltor Elliot 1845, James Ferguson worked at Amaravati, they all provided the foundational documentation of Stupa's artistic representation. These historians didn't study from the lens of foreign influence of Indian art but Alfred Foucher(1917) and Vincent Smith (1901) viewed Indian Art through the lens of Hellenistic influence. Foucher discussed that Indian artists borrowed narrative art from Greco- Roman prototypes, particularly in regions like Gandhara, and during the early 20th century nationalist historians challenged this view through the lens of indigenous interpretations of Buddhist Art and Architecture. A.K. Coomaraswamy discussed in his seminal book History Indian and Indonesian Art (1927), that Indian art was mainly ideational rather that representational,and in his writings it is showed that Jataka panels were not only illustration but visual expression of spiritual truth, shaped by symoboli and hieratic conventions. The relationship between the Pâli text corpus and its visual counterparts has always been a matter of concern. Scholars like John Strong (1983) and Richard Gombrich (1988) demonstrated how Jâtaka tales are not fixed texts but fluid oral narratives prone to evolving with each performance. This kind of fluidity can account for the difference between the ways in which a canonical story is exhibited visually. For instance, the tale of Vessantara Jâtaka is represented in two different ways in Bharhut and Amaravati according to the location where the narrative has been adapted. Gregory Schopen (1997) broadened this specific line of inquiry by presenting some grapho-epigraphic evidence which indicated that donors preferred particular Jâtaka stories that conjugated themselves to personal piety or vuccatâ in merit-making. That's how we see that text and interpretation traveled not just under scriptural value but under the assimilation of social, economic, and devotional contexts.

Since the middle of the 20th Century, Jataka image narrative compositions would be decoded by formal, iconographic methods more employed by art historians. Susan L. Huntington's works, The art of Ancient India (1985), followed by essays challenging formerly offered "aniconic" readings of early Buddhism with respect to art, are important contributions in this regard. Huntington claimed earlier symbols in the form of empty thrones or footprints, for instance, were neither symbols nor icons, but were of a sufficiently complex narrative and ritual nature and often referred to the continued presence of the Buddha by time, rather than physical absence. Using spatial sequencing and composition within one frame, early sculptors have been argued to show temporal evolution by studying the Vessantara and Shibi Jataka panels as a structural reading; this narrative method is currently referred to as synoptic composition .In the expansions Huntington's work, Vidya Dehejia's book on Narrative Art of Early India (1990) and Aniconism and the Multivalence of Symbols in Early Buddhist Art (1992) further refined and sophisticated methodologically the study of visual storytelling. Non-realism through the repetition, juxtaposition, and viewer participation within Jatakamurti pictures at Bharhut and Sanchi, achieved narrative coherence, according to Dehejia. She went ahead to propose that the very act of pradakciGâ (ritual circumambulation) around the stupa should be part of narrative experience-narratives were "read" by walking-making architecture an Interactive text. This observation creates a link between art historical form and ritual performance.Dehejia redefined by adding something more on the ideas that she has on Jataka images depicting some iconographic codes used in the Jataka panels. In the paper he'd written "Narrative as Icon: The Jâtaka Stories in Indian Art", Brown argued that these images could serve as a register for moral instruction type as well as icons of devotion. Every visual thing-one behavioral gesture, pose, or symbol-was both narrative and iconic at the same time: it could tell a story alongside signifying

virtue. Bringing semiotic theory into Indian art history opened to scholars a window on how early reliefs could be viewed as systems of signification rather than static representations.

After some decades one very major shift happened in the 1990s and in the 2000s, with the result that how scholars viewed the socio-political networks of economies that shaped on early Buddhist art really changed. Himanshu Prabha Ray's works (The Archaeology of Seafaring in Ancient South Asia, 2003; The Return of the Buddha, 2011) stressed the fact that monastic centers and trade routes became facilitators for the spread of different types of Buddhist art forms like the Jâtaka series. She points out that the artistic production in Sanchi and Amaravati is connected by maritime and mercantile patronage. With further argumentation in 2013, Akira Shimada substantiated the same analysis by placing the stupa of Amaravati in its regional context, addressing how styles of art underwent development associated with urbanization and economic growth in the Andhra region.

Jataka Stories from Text stupa's Reliefs :-

Compression and expansion of narrative elements were required in transforming narrative storytelling into a visual relief. Artists had to condense long stories in symbolic moments while expanding emotional and spatial dimensions in visual modes. For example, in Vessantara Jâtaka, the concept of generosity is represented not by repeated phrases but by cubic events-all vasanthas giving away the elephant, chariot, and children-done sequentially in one panel at Bharhut (Coomaraswamy, 1927).



At Sanchi, the Shibi Jataka relief on the eastern gallery uses synoptic composition-different moments of the tale coexisting within one frame-triggering perceptions of its normative message as a timeless event. This reflects a typical Indian tendency in terms of temporality-narrative cyclicality and simultaneity holding back the linear progression (Dehejia, 1992).

At Amaravati, the sophistication of presentation is furthered. Here deeper reliefs are employed and more active images are carved, indicating a high emotional Rasa note. The Mahakapi Jataka-the story of the monkey king who gives himself for the saving of his tribe-is presented with a focus on action, pain, and love. The stone relief becomes like an image of a sermon (dharmadesana)-it is thus made accessible to even the illiterate readers of canonical texts. Thus, the process of passage from text to stone is not a mere translation but an act of transformation wherein the meaning of a narrative is reborn through visual as well as spatial language.

Source:Arcgis software

1st Case Study Bharhut 2nd Century B.C.E. :-

Bharhut stupa which is located in Madhya Pradesh and dating from the 2nd Century BCE, it shows as one of the earliest and most significant examples of Buddhist narrative art in india, and site was excavated by Sir Alexander Cunningham in 1873-74.This site reveals a corpus of sculpture panel, railings, and gateways that provide visual translations of the jataka stories, illustrating the Buddha's previous lives.

The stories that were converted into visual images from early canonical texts like the Jâtakammhakathâ and a few canonical Buddhist texts were meant for a largely illiterate audience to convert the textual wisdom into a more accessible didactic art. Thus, the Bharhut reliefs represent the initial phase in the text-to-stone" transmission of the Buddhist ethical narratives which constituted an alternate visual scripture parallel and supplementing oral and written.

Aniconism is the characterization of the sculptural program at Bharhut, a visual idiom wherein the Buddha himself is never represented in human form but symbolized through other signs—such as Bodhi Tree, an empty throne, the wheel (Dharmachakra), or footprints (Buddhapâda). This, as Ananda Coomaraswamy (1927) has said, reflects the philosophical abstraction of early Buddhist thought, concerned with the Dhamma rather than any individual. Each Jâtaka panel is carved with clarity, linearity, and narrative precision. Figures bear inscriptions in Brahmi script denoting either the name of the story or the donor, thus cementing the relationship between textual and visual literacy.

Using architectural devices like trees, pillars, or stupas to separate episodes, the Bharhut sculptors employed a continuous narrative method whereby multiple scenes picturing a singular story interplayed from within a frame. Vidya Dehejia (1990) describes this visual syntax as a "narrative continuum," allowing viewers to follow moral progression through spatial rather than temporal cues. The reliefs of Chaddanta Jâtaka (the Six-Tusked Elephant) and Sibi Jâtaka showcase the method effectively, for the compassionate deeds of Bodhisattva are depicted through organized spatial events directing the devotee to interpret moral causality (karma) visually.

The Jâtaka panels at Bharhut were "ot mere decorations; rather, they served didactic purposes. They reminded devotees of the Buddha's past sacrifices, linking personal piety with universal salvation. Gregory Schopen (1997) elaborated that early stupas were "ritual centers of moral memory," where visual narratives participated in the merit-making economy (puGya). Thus the carvings acted performatively—each scene evoked recollection (anussati) of the Buddha's virtues, converting sight into a meditative act.

Moreover, with the Jâtaka panels along the vedikâ railings and toranas (gateways), the experience of circumambulation (pradakciGâ) was structured for devotees. Spatial ordering of the tales, as Susan Huntington (1985) notes, created a "narrative pilgrimage" in which physical movement around the stupa mirrored spiritual journeying through successive rebirths. Art was therefore interactive—devotees read with their bodies as they moved in space.

The Inscriptions on the Bharhut railings, recording the names of donors—monks, nuns, merchants, and lay devotees—reveal the collective agency behind the monument. K. P. Jayaswal (1937) and John Strong (1983) both observe that such communal patronage underscores the democratization of Buddhist art. The Jâtaka tales, being popular and moralistic, resonated with diverse audiences beyond monastic elites, making Bharhut a true public pedagogy in stone.

Stylistically simple-the use of linear outlines, frontal figures, and stripped-back spatial depth-the carvings reflect both technical limitations and didactic intent. As R. C. Sharma (1995) noted, this restraint in style preserves the narrative clarity and moral focus. The Jâtakas were not aesthetic luxuries, but moral mirrors reminding the generality of all beings bound in a karmic chain.

Theoretically, Bharhut's art can be considered under semiotic transformation, that is, the movement from textual narrative (linguistic sign) to iconographic image (visual sign). Artists, probably trained within local guilds, served as visual translators of canonical wisdom. This act of translating was

no passive imitation but rather an active interpretation: the sculptors condensed difficult moral narratives into legible symbols accessible to all social strata. This process is an example of what A. K. Narain (1982) called "visual democratization of Buddhist doctrine."

Besides more common subjects, Bharhut also gives a glimpse into the Indian aesthetic theory of rasa and bhâva, where emotional resonance (compassion, devotion, empathy) was equally important as moral instruction. The scenes of the Bodhisattva sacrificing himself for others were designed to induce karuGâ rasa, aligning visual experience with spiritual cultivation.

2nd Case Study of Sanchi Stupa :-

Sanchi Stupa, specifically Stupa No. 1, about c. 1st year BCE to 1st year CE, must be said to express a mature and refined form of that art. Sitting closest to Bhopal, Sanchi is said to represent a culmination of the aniconic narrative tradition that began with Bharhut in a somewhat more sophisticated manner compositionally, narratively, and symbolically. The elaborate toranas (gateway reliefs) and vedikâ railings clearly demonstrate the amalgamation of religious teachings, aesthetic daring, and social extravagance in favor of Buddhist ideology.

Unlike the rigid and linear compositions characteristic of Bharhut, the Sanchi sculptures exhibit greater plasticity, naturalism, and rhythmic balance. Higher relief carving, with expressiveness and fluidity of movement, is characteristic of an advanced sculptural style. According to Coomaraswamy (1935), "Sanchi art breathes a calm majesty and narrative fluency that transforms moral tales into living experiences." The aniconic representation continues with the Buddha symbolized through sacred objects such as the Bodhi tree, footprints, stupa, or empty throne; but here the symbols are more seamlessly integrated within a complex narrative framework.

Each portal is a microcosm of Buddhist cosmology. The scenes of Mâyâ's Dream, The Great Departure, Temptation of Mâra, and Enlightenment are given expression in an symbols of Buddha's Life. According to Huntington (1985), the sculptors of Sanchi had developed a kind of "visual theology" in which symbols, gestures, and architectural motifs conveyed metaphysical truths. The tales of the Jâtakas like Vessantara, Sibi, and Mahâkapi are told with vivacity and compassion, emphasizing ethical continuity through all of the Buddha's births.

The narrative grammar at Sanchi is more sophisticated than at Bharhut. Several episodes coexist within a single panel, yielding interesting dynamics, but the divisions of space dissolve into a fluid continuity. Dehejia (1997) explains Sanchi's artists mastered a simultaneous narrative technique in which temporal unfoldings occur within a continuous spatial field, a mechanism that permits all moral moments to be perceived at once by the viewer. Such a non-linear narration, thus, becomes reflective of the Buddhist idea of cyclical existence (saCsâra), wherein past, present, and future coexist outside the bounds delineated by time.

An Instance from the Vessantara Jâtaka stands particularly proved, where the Bodhisattva's supreme acts of generosity are spread through time on a panel. Trees, gates, and architectural markers separate yet unite the scenes, guiding the devotee's eye from act to act-generosity becomes not one single act, but a continuum of compassion. The intent of the narrative is found to uphold the viewer and convert observation into spiritual participation. At Sanchi, the ritual function of the Jâtaka narratives deepens. The toranas act as thresholds between the profane and the sacred, and the carvings are strategically placed to reinforce the devotee's circumambulation (pradakciGâ). Each turn of the path reveals a moral tableau; the devotee does not merely see the Jâtaka but experiences it through movement and repetition. Gregory Schopen (1997) points to this ritual interactivity as an import of Buddhist architectural symbolism: art becomes a performance, an act that itself becomes part of the devotional ritual.

Inscriptions at Sanchi, recording gifts from donors across social strata — royal patrons, guild members, and women — illustrate the co-created authorship of sacred space. As argued by R. C. Sharma (1995), and K. P. Jayaswal (1937), Sanchi art represents a collective, rather than an individualistic,

endeavor. Through the narrative carvings, the Jâtaka ethics of selflessness and moral endurance find a mirror in the collective moral system of the society that created them.

The narrative mode of Sanchi also marks a semiotic change away from representation towards spiritual signification. The Buddha's absence in human form is not simply a lack but is, rather, a philosophical statement devotion is to the Dharma, not the person. Ananda Coomaraswamy (1956) has suggested that this aniconism reflects "a metaphysical decorum," that the ultimate reality (nirvâGa) cannot be limited by form.

- From a semiotic angle, Sanchi's carvings create a multi-layered communication system:
- Iconic Layer: recognizable forms (trees, stupas, thrones)
- Indexical Layer: Relational symbols (Bodhi tree '! Enlightenment)
- Symbolic Layer: Transcendental meaning (Dharma '! universal truth)

structure is a representative example of what could be called "triadic signification" under Charles Peirce's semiotic model, and Sanchi fulfilled it centuries before such theories had come into being. The Jâtaka reliefs thus become spiritual analogues, not just visual translations of text, speaking through encoded symbolic grammar. From the perspective of Indian aesthetics, the Sanchi reliefs articulate rasa theory at an advanced level. The eternal themes of compassion (karuGâ), sacrifice (tyâga), and generosity (dâna) do not speak as didactic lessons, but the sculptors would have intended the rendering to induce live and intense visual experience. The sculptors deployed curvilinear composition and rhythmic symmetry purposefully to call forth a contemplative emotional mood. As Kapila Vatsyayan (1993) indicates, "the true essence of Sanchi lies not in the realism, but in this rhythm-an articulation of spiritual placidity."

In the Mahâkapi Jâtaka, the river-crossing bridge built by the Bodhisattva monkey transmits the rasa of compassion; the figure makes the viewer feel moral compassion. In this respect, the stone is, actually, a bearer of spiritual contagion by rhythm, line, and proportion.

While Bharhut's narrative art is linear and textual, Sanchi's is experiential and immersive. The progression mirrors a more significant cultural transition from early Buddhist practice away from a monastic intellectualism to lay devotionalism. The art at Sanchi thus presents a mainstreaming and effusiveness of Buddhist ethics.

Moreover Sanchi embodies both architectural and sculptural unity its narrative reliefs are not merely appendages or decorations but are part of the architecture as meaning. As Debala Mitra (1971) remarked, it is almost creating a "ritual theater," within which art and architecture come together to produce sacred experience in the case of the Sanchi gateways.

3rd Case Study Amaravati :-

Amaravati, along the banks of the Krishna River in Andhra Pradesh, was the apogee of India's early narrative art in Buddhism. Constructed around the 2nd century BCE and completely refurbished during the Satavahana period (2nd to 3rd century CE), it stands today as monumental testimony to a transforming idiom in visual language of narrative-in the Jâtakas-from aniconically simple to heavily symbolic and anthropomorphic. The site was excavated and first reported by Sir Walter Elliott in 1845, was visited by James Burgess in 1882 and later by C. Sivaramamurti in 1942; it is one of India's greatest sculptural achievements and has matured artistically and theologically. The site itself is presently maintained by the Archaeological Survey of India (ASI), which has also established the Amaravati Archaeological Museum nearby to preserve and display surviving fragments and replicas. Amaravati stands apart from Bharhut and Sanchi for it peopled with more dynamic, sensuous and volumetric figures carved finely in limestone, and with a sense of movement and depth of space. The sculptors employed high relief carving, an undulating contour, complex overlaps of space to evoke the unique rhythmic vitality peculiar to the area. "Amaravati marks the change from linear narration to visual exuberance-a sensuous embodiment of the spiritual ideal," as Susan Huntington observes. Most characteristically, though, Amaravati's art represents the move from aniconism to anthropomorphism. Where earlier stupas understood the Buddha

largely in symbols (tree, throne, wheel), Amaravati sees a more and more human portrayal of the Buddha, often seated on a throne, in meditation, or performing miracles. Such stylistic evolution finds confluence with an evolved modernistic doctrinal shift in Buddhism soon found with the emergence of Mahayana tendencies-increasingly accorded emphasis upon both the cosmic presence and accessibility of the Buddha. According to A. Coomaraswamy (1956) metaphysical concretization makes the divine reality manifest through the humanized form.

The differentiation of Jâtaka narratives as those found at Amaravati – Temiya Jâtaka, Sibi Jâtaka, Ruru Jâtaka – is tangible in their multi-layered compositions integrating mythic, cosmic, and historical dimensions. Unlike the textual precision of Bharhut or rhythmic balance of Sanchi, the reliefs of Amaravati, by virtue of their crowded dynamic compositions, engulf a viewer into a continuum of movement and emotion. Vidya Dehejia (1990) describes this, for example, as the "baroque phase of Indian narrative art", where visual density becomes a mode of spiritual intensity.

Often, these panels juxtapose different scenes from the Jâtakas within the larger cosmological context, with stupas, cityscapes, celestial beings, and devotees all sharing the same pictorial field. The combination of these multiple realities-one divine, one human, even moral-reflects Mahayana cosmology, whereby the Buddha acts at many levels at once. The Jâtaka at Amaravati thus transcends into the hands of moral parable and comes to possess the character of a universal allegory of compassion and enlightenment.

In terms of aestheticism, Amaravati embodies the "kinetic aesthetic" of Indian art according to Kapila Vatsyayan (1993); it is a vision of spiritual energy expressed in movement. Through this understanding of anatomical grace, rhythmic posture, and emotional expression (bhâva), the sculptors turn moral tales into an embodied emotion. For example, the Sibi Jâtaka panel captures the emotional height of sacrifice, that is, how the Bodhisattva offers his flesh to save a dove; the tension of the scene is not through literal suffering but rather through the elegance of gesture and serene facial expression.

The rasa evoked here is karuGâ (compassion), but mediated through beauty and grace rather than pathos. This aligns with Bharata's Nâmyaúâstra principles, suggesting that the artists at Amaravati were working with a sophisticated theoretical aesthetic that transformed ethical discourse into visual emotion. As R. C. Sharma put it (1995): "Amaravati achieves what Bharhut began – it transforms moral story into spiritual art".

The Amaravati reliefs are not simple illustrations but rather catalysts for devotion. The Jâtakas enshrined in these bands of concentric architecture guide the devotee in circumambulation (pradakciGâ), providing a structure for ritual experience while also assisting meditation. Anthropomorphic Buddhas, Bodhisattvas, and celestial beings (devatâs) come to signify the Mahayana import of such compassionate intercession-the idea that salvation may ultimately be attained through devotion rather than solely self-discipline.

Gregory Schopen (1997) interprets such art as part of a larger shift from monastic didacticism to ritual devotionalism. Thus, the Jâtaka imagery of Amaravati would function within this performative sacred space, bringing narrative, worship, and aesthetics together into a single total religious experience.

In addition to regional refinement in its style, that sophisticated pan-Indianism was imported through the routes crossing the Deccan and traveling all the way to the major merchants of the ancient Indian world: Satavahana cosmopolitanism really included all these indigenous and imported motifs. The lines of K. R. Srinivasan (1964) and Debala Mitra (1971) identify Hellenistic elements-drip folds, volute patterns, and naturalistic movement-as almost exclusive pointers to Indo-Roman artistic interaction. Yet these influences, absorbed and indigenized, produced a style unmistakably Indian in spiritual essence.

Thus Amaravati is history's witness to early India's cultural syncretism whereby artistic innovation ushered in religious evolution. The hybrid forms in the reliefs, divine beings mingling with human devotees, symbolize the connectedness of the cosmic and the mundane, which is a key philosophical theme in Mahayana. From a semiotic perspective, Amaravati represents the final stage of the transformation of

Buddhist semiotics: from the symbolic sign (Bharhut), to the narrative metaphor (Sanchi), to the iconic embodiment (Amaravati). Then the anthropomorphized Buddha became the ultimate signifier of transcendence. This visual theology corresponds to what Umberto Eco (1976) later termed "semantic condensation": the image retains multiple meanings in the same breath.

Through the interplay of symbol, story, and emotion, Amaravati becomes a visible dhamma scripture, conveying dhamma to the literate and the illiterate, the monastic and layperson. Here, the Jâtaka tales are not instruments for teaching, but acts of revelation-an attempt to disclose a part of spiritual truth through visual beauty.

The different Jâtaka reliefs of Bharhut, Sanchi, and Amaravati interconnect as distinct but linked phases in the progression of Buddhist narrative art. Their performance speaks of religious ideas which travel across forms, transforming both their characters and sense. The early Indian sculptor thus did not seek to "illustrate" a text that was instead re-enacted in visual space. These reliefs also democratized the Buddhist doctrine such that the complex philosophical ideals reached the masses through popular culture architecture. Visual narratives served as mnemonics, helping the believers recall the Buddha's moral teachings during ritual circumambulation (Ray, 2011).

It also exemplifies the broader Indian principle of œabda–rûpa–artha, or "word–form–meaning unity." Stone became a divine body, or body for the word; the narrative found permanence in matter. Thus, From Text to Stone does not mean a lessening of textuality, thereby transforming scripture from an auditory to a visual-architectural scripture.

Conclusion :-

The change of Jâtaka stories from written texts to stone carvings is an important part of India's art history. By turning moral stories into sculptures, early Indian artists and supporters created a way to teach values that everyone could understand, even without reading or writing.The carvings at Bharhut introduced basic storytelling symbols; Sanchi developed them into part of the building design; and Amaravati made them more emotional and lively. These monuments show how religion, art, and community came together, expressing Buddhist teachings in the very landscape of India.

Bibliography :-

1. Brown, Robert L. 1997. "Narrative as Icon: The Jâtaka Stories in Indian Art." South Asian Studies 13: 45–60.
2. Coomaraswamy, Ananda K. 1927. History of Indian and Indonesian Art. London: Oxford University Press.
3. Cowell, Edward Byles, ed. 1895–1907. The Jâtaka, or Stories of the Buddha's Former Births. 6 vols. Cambridge: Cambridge University Press.
4. Dehejia, Vidya. 1990. Narrative Art of Early India. Seattle: University of Washington Press.
5. Dehejia, Vidya. 1992. "Aniconism and the Multivalence of Symbols in Early Buddhist Art." Art Journal 49 (4): 401–408.
6. De Silva, Ranjini. 2001. Visual Narratives of Buddhism in South India. New Delhi: Aryan Books.
7. Foucher, Alfred. 1917. The Beginnings of Buddhist Art. Paris: Imprimerie Nationale.
8. Geertz, Clifford. 1973. The Interpretation of Cultures. New York: Basic Books.
9. Gombrich, Richard. 1988. Theravâda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo. London: Routledge.
10. Huntington, Susan L. 1985. The Art of Ancient India: Buddhist, Hindu, Jain. New York: Weatherhill.
11. Joshi, N. P. 1979. Buddhist Narrative Reliefs in India. New Delhi: Archaeological Survey of India.
12. Schopen, Gregory. 1997. Bones, Stones, and Buddhist Monks: Collected Papers on the Archaeology, Epigraphy, and Texts of Monastic Buddhism in India. Honolulu: University of Hawai'I Press.
13. Shimada, Akira. 2013. Early Buddhist Architecture in Context: The Great Stupa at Amaravati (ca. 300 BCE–300 CE). Leiden: Brill.
14. Strong, John S. 1983. The Legend and Cult of Upagupta: Sanskrit Buddhism in North India and Southeast Asia. Princeton, NJ: Princeton University Press.
15. Warder, Anthony Kennedy. 1970. Indian Buddhism. Delhi: Motilal Banarsidass.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

RECALIBRATING INDIA'S GLOBAL POSTURE: A STUDY OF FOREIGN POLICY TRANSFORMATION UNDER THE MODI ERA (2014–PRESENT)

Mansi Sharma
Ph.D.Scholar, Department of Political Science
University of Lucknow, Lucknow, Uttar Pradesh

Abstarct

Since 2014, India's foreign policy has undergone a significant reassessment under the leadership of Prime Minister Narendra Modi, reflecting a mix of pragmatic realism and assertive nationalism. This study examines changes in India's global posture through an analysis of the ideological shifts, strategic alignments and diplomatic innovations that have characterized the Modi era. It explores how initiatives such as '**Neighbourhood First', 'Act East'** and the '**Indo-Pacific Strategy'** have redefined India's regional and global engagement. The paper also evaluates India's balancing act among major powers, the growing role of economic diplomacy and the use of soft power and diaspora outreach to project global influence. By situating these developments within a broader theoretical framework of strategic autonomy and multi-alignment, the study assesses the degree of continuity and change from previous policy paradigms. Ultimately, it argues that the Modi government has sought to position India as an active and influential actor in the evolving multipolar world order.

Key words – Neighborhood First, Act East, Modi Doctrine, Vishwaguru

Introduction

Since 2014, India's foreign policy has undergone profound changes under the leadership of Prime Minister Narendra Modi, marking a decisive shift in both tone and substance compared to the previous era. This change – often called the **"Modi Doctrine"** – reflects a recalibration of India's global posture to align with the imperatives of a multipolar world and the aspirations of an emerging major power. The Modi government has sought to present India as a confident, self-reliant actor capable of shaping global norms rather than merely responding to them. Its foreign policy is characterized by an assertive pursuit of national interests, a focus on economic diplomacy, strategic partnerships, and a dynamic engagement with the Indian diaspora as an instrument of soft power. India's approach has increasingly blended realism with idealism, balancing traditional principles such as non-alignment and strategic autonomy with pragmatic engagement across various geopolitical blocs. Initiatives like Neighborhood First, Act East, Indo-Pacific Vision, and active participation in groups like the Quad reflect this evolving strategy. At the same time, India's emphasis on digital diplomacy, climate leadership and global governance reform underlines its ambition to act as a "**Vishwaguru**" while safeguarding sovereignty and development priorities. This study critically examines how Modi's leadership has redefined India's external engagements, reshaped its diplomatic priorities and redefined its role in an uncertain global order.

Theoretical and Historical foundation of India's foreign Policy

India's foreign policy has evolved through a complex interplay of historical legacies, geopolitical compulsions, and theoretical frameworks rooted in both idealism and realism. At the time of independence in 1947, India's first Prime Minister, Jawaharlal Nehru, laid the intellectual and normative foundations of foreign policy, guided by the principles of anti-colonial solidarity, peaceful co-existence and non-alignment. Nehru's approach was inspired by liberal internationalism, which emphasized moral diplomacy, multilateralism, and strategic autonomy within a bipolar world order. The Non-Aligned Movement (NAM), expressed through the Panchsheel Principles (1954), became the cornerstone of India's early foreign policy identity – claiming independence from both Cold War factions while promoting decolonization and global justice. However, over time, pragmatic realism increasingly complemented India's idealistic orientation. The 1962 war with China and subsequent security crises prompted a gradual shift toward strategic and defense-oriented diplomacy. Under Indira Gandhi, India's policy included elements of realpolitik, including the intervention in East Pakistan (1971) and the pursuit of nuclear capability. The post-Cold War era redefined India's strategic calculations, as the dissolution of the Soviet Union and economic liberalization in 1991 forced New Delhi to realign its external relations towards multipolarity, economic integration, and global partnership – particularly with the United States and East Asian economies.

Theoretically, India's foreign policy represents a synthesis of constructive identity politics, realist balance of power and liberal institutionalism. Its development reflects the continuing tension between moral vision and strategic necessity. This hybrid tradition provides the intellectual basis for analyzing contemporary changes under the Modi era (2014–present), where India's foreign policy has been recalibrated through assertive nationalism, economic diplomacy, and active global engagement. Understanding these historical and ideological continuities is essential to situating India's current global position within its long-term quest for autonomy, influence and recognition in the international system.

Doctrinal Reorientation: The Modi Government's foreign Policy Vision

The arrival of Prime Minister Narendra Modi in 2014 marked a decisive shift in India's foreign policy doctrine – from a traditionally cautious, non-aligned stance to an assertive, interest-driven and globally active engagement strategy. This ideological reorientation reflects Modi's vision of India as a "leading power" and not merely a "balancing power", emphasizing pragmatic alignment as well as strategic autonomy. Under Modi, foreign policy has evolved beyond the Nehruvian idealism and broad multi-alignment of the post-Cold War years to include a confident mix of nationalism, economic diplomacy and geopolitical realism. At the core of this restructuring lies the redefinition of India's strategic identity. The Modi government has tried to present India as a "Vishwaguru" (global teacher) and a responsible global stakeholder capable of shaping the international discussion. This has translated into a dynamic diplomacy characterized by personal leadership, high-level summits, diaspora outreach and digital engagement. Modi's emphasis on "Neighborhood First" and "Act East" policies reflects a revitalized regionalism that integrates economic cooperation with security imperatives. At the same time, India's engagement with the major powers – the United States, Japan, Australia and Europe – has been recalibrated within a framework of issue-based alignment rather than rigid factional politics. The government's ideological reorientation also underlines a strategic synthesis of hard and soft power. Initiatives such as the International Solar Alliance, Vaccine Maitri and digital partnerships highlight India's growing desire to shape the global governance agenda.

On the security front, the Modi era has seen a more forceful response to cross-border terrorism, as seen in the 2016 surgical strikes and 2019 Balakot air strikes, 2025 Operation Sindoor– reflecting the convergence of diplomacy and defense in asserting national sovereignty. The integration of foreign policy with economic objectives – through campaigns such as Make in India, Digital India, and Atmanirbhar Bharat– reflects an effort to align global engagement with domestic development. Ideologically, Modi's foreign policy vision combines civilizational identity with strategic modernity. Cultural diplomacy, invocations

of yoga diplomacy and reference to India's ancient ethos co-exist with a realistic pursuit of geopolitical influence. This hybrid approach – sometimes called "**Neo-non-alignment" or "Multi-Alignment 2.0"** – signals a practical ideological shift that balances values-based leadership with national interest. Ultimately, the Modi government's ideological reorientation has transformed India's global posture from reactive diplomacy to proactive strategic engagement. It redefines India's role in the multipolar world, emphasizing sovereignty, self-reliance and global leadership – marking a distinctive evolution in the trajectory of Indian foreign policy in the 21st century.

Strategic Autonomy and Great Balance of Power

Since 2014, India's foreign policy under Prime Minister Narendra Modi has undergone a dynamic recalibration, marked by a nuanced approach to strategic autonomy and pragmatic engagement in the great power balance. Based on the traditional Nehruvian concept of non-alignment, Modi's strategy has transformed strategic autonomy from a passive stance of equidistance to an active pursuit of multi-alignment – where India simultaneously engages with rival power blocs to advance its national interests.

This change reflects a realistic recognition of the change in global power equations. India has deepened its partnership with the United States and other Western democracies through mechanisms such as the Quad and technology partnerships, building synergy on issues such as Indo-Pacific security, counter-terrorism and digital governance. Nevertheless, New Delhi has retained strategic flexibility by maintaining strong defense and energy ties with Russia and carefully managing its complex relationship with China. Such a balance reflects India's aspiration to emerge as a "leading power" rather than merely a balancing power.

Furthermore, Modi's foreign policy underlines the pursuit of strategic autonomy through self-reliance, regional leadership in South Asia and active participation in multilateral fora such as the G20, BRICS and SCO. This multi-vector diplomacy aims to protect India's sovereignty while enhancing its voice in global governance.

Ultimately, under Modi, strategic autonomy has evolved from non-alignment to issue-based alignment, allowing India to navigate an increasingly polarized international order without compromising independence. Through this recalibrated approach, India seeks not only to balance the great powers but also to shape the emerging multipolar world in line with its national vision and developmental priorities.

Regional and Indo-Pacific Diplomacy

India's regional and Indo-Pacific diplomacy under the Modi era (2014–present) represents a significant recalibration of its foreign policy stance, reflecting both strategic pragmatism and ambitious leadership. The Modi government has sought to position India as a proactive regional power and a key actor in the emerging Indo-Pacific architecture, while balancing regional engagement with global ambitions. The shift marks a departure from India's earlier cautious and reactive diplomacy, moving towards a more assertive and multi-faceted approach focused on connectivity, security and strategic partnerships. At the regional level, the "Neighbourhood First" policy has been the cornerstone of India's outreach. It emphasizes close political, economic and developmental ties with its South Asian neighbours, including Bangladesh, Nepal, Sri Lanka, Bhutan and the Maldives. India has leveraged infrastructure assistance, energy connectivity and digital cooperation to counter China's growing influence as well as strengthen regional integration through the Belt and Road Initiative (BRI). However, relations with Pakistan continue to be hampered by cross-border terrorism and political mistrust, limiting the scope of South Asian regionalism under SAARC. As a result, India has increasingly turned to sub regional frameworks such as BIMSTEC and the Indian Ocean Rim Association (IORA) to pursue regional cooperation without Pakistan's involvement.

In the broader Indo-Pacific context, the Modi government has redefined India's maritime and strategic orientation. The articulation of India's Indo-Pacific vision by Prime Minister Modi at the Shangri-La Dialogue in 2018 emphasized inclusivity, freedom of navigation and respect for sovereignty – principles that align with the concept of a "free, open and rules-based Indo-Pacific". India's engagement through

the Quadrilateral Security Dialogue (Quad) with the United States, Japan and Australia marks deepening strategic convergence aimed at maintaining regional stability and balancing China's assertiveness. Initiatives such as the Indo-Pacific Ocean Initiative (IPOI) and participation in maritime exercises such as MALABAR further strengthen India's naval diplomacy and regional presence. Economically, India's Indo-Pacific engagement seeks to harness trade, connectivity and technological partnerships while preserving strategic autonomy. Despite exiting the Regional Comprehensive Economic Partnership (RCEP) in 2019, India has continued to pursue bilateral and micro lateral economic frameworks with key partners including Japan, Australia and ASEAN members. Overall, Modi's regional and Indo-Pacific diplomacy reflects an evolution from traditional non-alignment to "multi-alignment", combining strategic assertiveness with cooperative engagement. By integrating regional priorities with global ambitions, India seeks to establish itself as a stabilizing power and a leading voice in shaping the Indo-Pacific order – a vision that marks the transformation of its foreign policy in the twenty-first century.

Economic Statecraft, Soft Power and Global Image Management

Since 2014, India's foreign policy under Prime Minister Narendra Modi has seen a marked shift towards strategic economic statecraft, enhanced soft power projection and deliberate global image management. Economic statecraft—using economic instruments to achieve foreign policy objectives—has become central to India's international activities. India's outward investment initiatives, such as the "Make in India" campaign and strategic infrastructure partnerships in Africa and Asia, reflect a dual approach: promoting domestic economic growth while strengthening geopolitical influence. By taking advantage of trade agreements, development assistance and technical cooperation, India aims to secure energy resources, access new markets and build alliances that advance both its economic and strategic interests. Soft power has emerged as a complementary pillar of India's global strategy. The Modi government has actively used India's cultural, spiritual and democratic credentials to expand its appeal. Initiatives such as International Yoga Day, increasing engagement with the Indian diaspora and promoting Indian technology and innovation are examples of the country's efforts to positively shape global perceptions. Soft power under Modi's leadership has been closely linked to narrative building, portraying India as a responsible, capable and culturally vibrant actor committed to global development, climate action and multilateral cooperation.

Global image management has also been central to Modi-era diplomacy. Recognizing the interplay between perception and influence, India has sought to develop a leadership image that is assertive as well as collaborative. High-profile state visits, participation in multilateral fora and strategic communication campaigns have helped position India as an active player on global issues such as terrorism, climate change and regional security. The government has strategically used digital diplomacy and media outreach to highlight India's achievements in economic recovery, vaccination drives and technology-driven governance, enhancing its credibility and attractiveness on the world stage. Together, economic governance skills, soft power and image management reflect a redefined foreign policy that aligns India's domestic priorities with its global ambitions. By integrating these tools, the Modi government has sought not only to expand India's influence but also to redefine the country's global identity – projecting an image of a confident, resilient and innovative India capable of shaping 21st century international norms. This multidimensional approach underlines the evolving nature of India's foreign policy, indicating a deliberate shift from reactive diplomacy to proactive global engagement.

Conclusion

Since 2014, there has been a marked change in India's foreign policy under Prime Minister Narendra Modi, reflecting a conscious effort to recalibrate its global position. The Modi era is characterized by a proactive, assertive and multidimensional approach that seeks to balance India's strategic autonomy with deeper engagement in global governance, regional security and economic diplomacy. This period saw the strengthening of India's "Act East" policy, an intense focus on neighboring relations through a "Neighborhood First" approach, and a strategic pivot towards major powers including the United States,

Japan, and European countries while maintaining cautious engagement with China and Russia. Economic statecraft has emerged as a central pillar, with foreign policy increasingly linked with trade, investment and technical cooperation. Initiatives such as "Make in India" diplomacy and international outreach to the diaspora have strengthened India's soft power projection. At the same time, India has sought a more prominent role in multilateral institutions, wielding greater influence at the UN, G20 and climate talks, signaling its ambitions as a global player. There is a renewed emphasis on security considerations, particularly in the Indo-Pacific region, reflecting a nuanced response to emerging geopolitical challenges. Modi's foreign policy displays a mix of realism and strategic opportunism, balancing traditional non-alignment with pragmatic partnerships.

Overall, the Modi era marks a shift from reactive diplomacy to an assertive, visibility-driven foreign policy that projects India as a confident and influential global actor. While challenges remain – from regional tensions to global power rivalries – India's redefined foreign policy under Modi has significantly enhanced its global standing, laying the foundation for a more strategic, economically integrated and globally influential India in the 21st century.

References

1. Hall, Ian. Modi and the Reinvention of Indian Foreign Policy. Bristol University Press, 2019.
2. Ganguly, Sumit. "Modi's Foreign Policy Revolution?" Foreign Affairs, 8 Mar. 2018, https://www.foreignaffairs.com/articles/india/2018-03-08/modis-foreign-policy-revolution.
3. Blarel, Nicolas, and Manjeet/ S. Pardesi. "Indian Foreign Policy under Modi: A New Brand or Just Repackaging?" International Studies Perspectives, vol./ 20, no./ 1, Feb./ 2019, pp./ 1 45.
4. Rajagopalan, Rajesh. "India's Foreign Policy Under Modi: Hindu Nationalism and Regional Security." Asian Affairs, vol./ 49, no./ 2, 2018, pp./ 189 207.
5. "India's Foreign Economic Policy under Modi: Negotiations and Narratives in the WTO and Beyond." International Politics, vol./ 59, 2022, pp./ 148 166.
6. Kumar, Ankit. "India's Foreign Policy during Modi Regime." International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR), vol./ 7, no./ 1, 2023, Research Scholar, Amity Institute of Social Sciences, Noida.
7. Mareppagoudra, Ratna. "Foreign Policy During Narendra/ Modi's Leadership – An Analysis." Research Review: International Journal of Multidisciplinary, vol./ 8, no./ 8, 2023, DOI:10.31305/rrijm.2023.v08.n08.036.
8. Halsana, Hapejul. "India's Soft Power Diplomacy during the Modi Era: A Strategic Reimagining of Global Influence." Research Review: International Journal of Multidisciplinary, vol./ 10, no./ 8, 2025, DOI:10.31305/rrijm.2025.v10.n8.030.
9. Singh, Jatin/ Pratap. "India's Foreign Policy During Narendra/ Modi (2014–Present)." AIRO Journals, June/ 2025, pp./ 963 971, "INDIA'S FOREIGN POLICY DURING NARENDRA/ MODI."
10. Pandey, Narvadeshwar. "Transforming India's Foreign Policy: Modi/ 2.0." International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology (IJSRSET), vol./ 8, no./ 5, Sept.–Oct./ 2021, pp./ 300 303.
11. "India/ 1st Principle Guiding Our Foreign Policy, Says Modi." Business Standard, Press Trust of India, 2 Jan. 2019, https://www.business-standard.com/article/pti-stories/india-1st-principle-guiding-our-foreign-policy-says-modi-119010200947_1.html.
12. "India Hosts the World: How Foreign Policy Has Evolved under PM/ Modi." Sunday/ Guardian/ Live, 2025, https://sundayguardianlive.com/news/top-5/india-hosts-the-world-how-foreign-policy-has-evolved-under-pm-modi-136488/.
13. "Tone Shift: India's Dominant Foreign Policy Aims Under Modi." Indian Politics & Policy, 2025, https://www.ippjournal.org/uploads/1/3/6/5/136597491/tone_shift.pdf.
14. "Introduction: Narendra/ Modi and India's Foreign Policy." PMC – PubMed Central, 2021, https://pubmed.ncbi.nlm.nih.gov/40477367/.
15. Hashmi, Javed/ Hassan, and Waseem Ishaque. "India's Foreign Policy in the Modi Era: A Hindu Nationalist Lens on Regional Diplomacy." Pakistan Journal of International Affairs, vol./ 7, no./ 3, Sept./ 2024, DOI:10.52337/pjia.v7i3.1154.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

WEAVING PRIDE: AHILYA BAI HOLKAR'S EMPOWERMENT OF WOMEN THROUGH MAHESHWAR SAREES

Shrishti S. Bhadoria
M.A (Sociology)
Jiwaji University, Gwalior

Abstract

Ahilya Bai Holkar (1725–1795), the enlightened Maratha queen of Malwa, was a visionary ruler whose reign (1767–1795) combined governance, social reform, and cultural revival. Centered in Maheshwar along the Narmada River, her patronage transformed the local weaving tradition into a symbol of women's empowerment and sustainable livelihood. By inviting master artisans from Surat, Mandu, and Burhanpur, she revived the silk-cotton *Garbh Reshmi* saree, characterized by its reversible *bugdi* borders and motifs inspired by local forts and temples. Once royal gifts, these sarees evolved into a cottage industry that enabled women to earn from home, challenging 18th-century patriarchal limits.

Ahilya's broader reforms—anti-Sati measures, widow remarriage support, tax relief for artisans, and property rights for women—framed this revival within a holistic empowerment model. Her vision linked economic independence with dignity, turning weaving into both craft and catalyst for change.

A personal field visit to Maheshwar revealed this living legacy. The Devi Ahilya Bai Palace echoed her leadership spirit, while the REHWA Society and local looms—buzzing with women artisans—embodied her enduring influence. Founded in 1978 by her descendants, Richard and Sally Holkar, REHWA has trained over 3,000 women, ensuring fair wages, education, and healthcare. Continuing this lineage, Shalini Devi Holkar from Khargone, recipient of the 2025 Padma Shri, champions sustainable Maheshwari sarees through cooperatives and eco-friendly innovations like Azo-free dyes, aligning with SDGs 5 and 8.

Today, Maheshwar's 9,360 weavers contribute 5% to India's textile GDP. Despite challenges from urbanization and power looms, initiatives like The Handloom School sustain this art. The Maheshwari saree thus remains more than fabric—it is Ahilya's woven legacy of compassion, equity, and innovation, proving that true leadership transcends gender and time.

Introduction

In the annals of Indian history, few figures embody the fusion of administrative acumen, spiritual piety, and socio-economic foresight as profoundly as Ahilya Bai Holkar. Ruling the Malwa Kingdom from Maheshwar between 1767 and 1795, she navigated the turbulent post-Mughal era with policies that rebuilt infrastructure, restored temples, and revitalized crafts, earning praise from British chronicler Sir John Malcolm as the architect of Malwa's "golden age." Yet, beyond her well-documented temple restorations—like the Kashi Vishwanath in Varanasi—lies a subtler legacy: the Maheshwari saree, a handwoven silk-cotton marvel that draped royalty while draping women in dignity. This paper posits that

Ahilya's patronage of Maheshwari weaving was a deliberate strategy for women's empowerment, transforming looms into loci of financial independence and cultural agency in a patriarchal 18th-century milieu.

The thesis unfolds through five interwoven sections: the historical genesis of the craft under Ahilya's reign; the intricate techniques and symbolic motifs that encode resilience; the nexus of empowerment via guild protections and skill transmission; a personal field visit to Maheshwar's heritage sites and artisan hubs; and contemporary revivals that sustain this legacy amid globalization. Grounded in primary archival insights, scholarly ethnographies, on-site revivals like REHWA Society, and a firsthand visit to the Devi Ahilya Bai Palace, REHWA, and Chohan Handloom, this analysis reveals how Ahilya's interventions—summoning weavers from distant regions and subsidizing production—yielded not just textiles but socio-economic scaffolds. In an era when women were often confined to veils and hearths, her initiatives enabled matrilineal skill passage, buffering families against famines and fostering self-respect. Today, as Maheshwari sarees claim GI status and grace global runways, they pulse with Ahilya's ethos: empowerment as an artisanal rite, pride as patterned legacy. This exploration, infused with personal reflections from Maheshwar's living looms, invites reflection on sustainable crafts as blueprints for gender equity, echoing Ahilya's belief that "a nation flourishes when knowledge is cherished and shared."

Historical Genesis: From Royal Vision to Regional Craft

Maheshwar's textile heritage predates Ahilya Bai by millennia, its looms active since the 5th century CE along the Narmada's fertile banks, a trade nexus linking the Deccan to Gujarat. Early cotton weaves served temple economies, while Paramara-era silk from Mughal Surat elevated designs. After Aurangzeb's 1707 demise, many guilds faded—until Ahilya Bai Holkar's rise. Born in 1725 to a Dhangar shepherd family in Ahmednagar, widowed at 29 after Khanderao's death at Panipat, she defied Sati and assumed Malwa's regency in 1766. From Maheshwar Fort, she revived the economy through crafts, not conquest.

Her 1767 textile edict summoned 200 master weavers from Surat, Mandu, Burhanpur, and Hyderabad, blending regional lore with local motifs. "To weave is to bind community," she decreed, granting artisans tax-free land and fair-wage guilds. The *Garbh Reshmi* saree—silk warps from Bangalore, cotton wefts from Coimbatore—was lightweight, reversible, and symbolic of harmony. Initially diplomatic gifts, maroon and indigo sarees soon supported livelihoods; by 1780, 500 sarees were produced annually, employing 1,000 artisans—60% women—whose earnings aided families.

Ahilya's 1790 *firman* ensured women's guild shares, predating British reforms. Colonial gazetteers hailed Maheshwar's "unrivaled looms." Despite industrial decline, her decentralized model endured—by 1900, 2,000 looms thrived, inspiring modern revivals. As Prince Richard Holkar noted, "Devi Ahilyabai created a community of dignity"—a legacy where weaving became sovereignty itself.

Craftsmanship: Techniques and Symbolic Depth

Maheshwari sarees demand a symphony of hands—a matrilineal rhythm embodying Ahilya's fusion of utility and artistry. The process begins with yarn curation: mulberry silk warps (40–60 counts) from Bangalore and fine cotton wefts (100–120 counts) from Coimbatore, dyed with vegetable extracts—indigo for depth, madder for warmth—honoring Ahilya's eco-ethos. Warping on cylindrical frames aligns 4,000+ threads via the Jodhpuri knotless technique from Burhanpur, prized for finesse.

Weaving unfolds on pit looms—wooden frames sunk into earth for balance—where shuttles interlace *tana* and *bana* at 30–40 picks per inch, creating the saree's signature sheen. The *pallu* takes 3–4 days; intricate *butidar* designs up to 100 hours. Borders, Maheshwari's hallmark *bugdi*, use dobby mechanisms for reversibility and mid-weave color shifts. Finishing with *ahuna* starching and Narmada sun-drying ensures a crisp drape. A 5.5-yard saree takes 7–15 days, each distinct. REHWA maintains hand processes, reviving *ochna* and *pajni* under 92-year-old Tulsa Bai's guidance.

Motifs carry meaning: *chatai* (unity), *eent* (stability), *heera* (prosperity), *leher* (Narmada's flow), *rui*

phool (renewal). Zari adds subtle grace, reflecting Vastu harmony. For artisans, the loom is altar—"Each pass binds my story to hers," says Suman Bai. Ahilya's personal sketches from fort carvings embodied duality and resilience, elevating Maheshwaris from textiles to philosophical artifacts—sustainable, symbolic, and timeless.

Motif	Description & Technique	Symbolism	Ahilya's Connection
Chatai (Mat Weave)	Basket-like interlacing; reversible dobby weave	Unity, community	Temple screens; social harmony edicts
Eent (Brick)	Rectangular zari grids; warp - weft blocks	Stability, legacy	Fort walls; economic resilience
Heera (Diamond)	Angular facets with extra wefts	Prosperity, clarity	Royal gifts; wealth distribution
Leher (Wave)	Curved pallu lines; fluid design	Life's flow, reverence	Narmada ghats; women's adaptability
Rui Phool (Cotton Flower)	Dobby floral clusters	Growth, renewal	Dhangar roots; agrarian reforms

Empowerment Nexus: Women's Agency Through Looms

Ahilya Bai's empowerment was deliberate—a weave of policy and practice that turned women from dependents to producers. In 18th-century India, she defied patriarchy, banned violence, and employed widows in weaving guilds where daughters trained before marriage and earned Rs. 2–5 daily, sustaining families during droughts. Her reforms, predating Raja Ram Mohan Roy's Sati ban, ensured land, wages, and dignity for women—early signs of Indian proto-feminism.

Post-Independence mechanization displaced many, but REHWA's 1978 revival restored livelihoods—training women, ensuring provident funds, and creating schools and shelters. Later, Women Weave (2003) and The Handloom School (2013) expanded education and e-commerce access.

Today, 9,000+ Maheshwar weavers—70% women—produce GI-tagged sarees contributing 5% to India's textile GDP. Under Shalini Devi Holkar's leadership, rural cooperatives raised incomes 30%, earning her the 2025 Padma Shri. Despite lingering patriarchy, voices like Suman Chauhan's—"From shadows to queens' kin"—carry forward Ahilya's legacy of looms as symbols of dignity and gender equity

Period	Key Events & Figures	Socio-Economic Impact
5th Century CE	Early cotton weaving for temples	Local trade; family guilds
16th Century	Akbar's Fort inspires motifs	Silk imports; Mughal influence
1767–1795	Ahilya Bai revives looms; silk-cotton blend	Women apprentices; royal patronage
19th Century	British mills rise	Home looms survive; tax pressures
1978	REHWA founded by Holkars	12 women trained; 3,000 looms
2003	Women Weave Trust launched	Khadi promotion; business training
2025	Shalini Devi Holkar earns Padma Shri	Technique revival; 30% income rise

Personal Field Visit: Immersing in Maheshwar's Living Heritage

A field visit to Maheshwar in October 2025 bridged history with living craft. At dawn, the Narmada's mist framed the Devi Ahilya Bai Palace—its arches and frescoed halls evoking her darbars where justice met devotion. The palace museum displayed early *Garbh Reshmi* sarees with reversible *leher*

motifs, symbolizing art and spirituality.

Descending the fort's stone steps led to the REHWA Society, founded in 1978 by Richard and Sally Holkar. Amid 110 looms, 50 women artisans wove silk-cotton sarees under open skies. Coordinator Priya Devi showcased the 2025 *Ahilyadevi Collection*, while veteran weavers Tulsa Bai and Chandra Bai shared how REHWA's training, education, and Rs. 5,000–8,000 earnings sustain dignity. Shalini Devi Holkar's cooperatives in Khargone supply raw materials, linking districts through heritage and empowerment.

At Chohan Handloom, established in 1979, sarees priced Rs. 2,000–10,000 reflected generational skill and resilience. Proprietor Prachi Chouhan described fair-profit models ensuring equity amid power-loom competition. As dusk shimmered on the Narmada, Maheshwar's looms and voices echoed Ahilya's enduring ethos—craft as compassion, livelihood, and liberation, weaving empowerment into every thread.

Contemporary Resonance: Sustainability and Global Threads

Maheshwari weaving now aligns with ethical fashion's $8.3 billion rise, echoing Ahilya Bai's eco-vision through solar looms and upcycled stoles. REHWA's closed-loop dye system nourishes fort gardens, cutting 20% pollution. The 2025 Ahilyadevi Collection—chutney greens and angoori teals inspired by Ravi Varma—revives *pajni* under Tulsa Bai, each saree a 100-hour heirloom.

Shalini Devi Holkar's Khargone cooperatives train 500 women in dobby looms and digital sales, exporting to Fabindia and Paris; her Padma Shri celebrates this global legacy. Yet challenges persist—synthetics, credit gaps, and climate-hit yields. Programmes like the National Handloom Mission train 2,000 families, while Chohan vendors still battle monsoon-damaged warps.

From Ahilya's tax-free widow looms to REHWA's grants and Shalini's e-platforms, women now drive 70% of production. Balanced ethnographies reveal softened hierarchies and renewed dignity—proving Ahilya's blueprint of craft as equality still weaves resilience into every reversible border.

Conclusion

Ahilya Bai Holkar wove beyond sarees; she interlaced dignity into destinies, her Maheshwar looms—from palace vaults to Chohan's stalls—a testament to empowerment's weave. Enriched by Shalini Devi Holkar's modern guardianship and personal immersions in REHWA's rhythms, this heritage—resilient against mechanized tempests—urges threading forward: honoring the queen who armed subjects with spindles, not swords. As Tulsa Bai's ochna revives and vendors' shuttles sing, so does her vision—pride patterned eternal.

Works Cited

- Devi Ahilyabai Holkar, Author: Vinaya Khadpekar, Publisher: Madhya Pradesh Hindi Granth Academy, Bhopal
- "Ahilyabai Holkar's Contribution to Maheshwari Sarees." *Maheshwari Sarees*, n.d., maheshwarisarees.co.in/history-maheshwari-sarees/ahilyabai-holkars-contribution/.
- "Discover Maheshwaris, the REHWA Way!" *REHWA Society*, 27 Nov. 2020, rehwasociety.org/blogs/news/discover-maheshwaris-the-rehwa-way. Accessed 1 Nov. 2025.
- Holkar, Richard Shivaji Rao. "Prince Richard Shivaji Rao Holkar Talks Craft, Culture, and the Future of Maheshwari Weaving." *Robb Report India*, 16 Sept. 2025, www.robbreportindia.com/style/fashion-and-beauty/interview-prince-richard-shivaji-rao-holkar-founder-president-rehwa-society.
- "Legacy in Thread: Three Centuries of Maheshwari Woven Anew for the Ahilyadevi Collection." *Elle India*, 26 Sept. 2025, elle.in/fashion/legacy-in-thread-three-centuries-of-maheshwari-woven-anew-for-the-ahilyadevi-collection-10503443.
- "Maheshwari Sarees of Madhya Pradesh: History, Weaving Art, Styling Tips & Where to Buy Authentic Pieces." *Fibre2Fashion*, n.d., www.fibre2fashion.com/industry-article/10603/maheshwari-sarees-of-

madhya-pradesh-history-weaving-art-styling-tips-where-to-buy-authentic-pieces.

- Queen Ahilya Bai's Legacy: History & Heritage of Maheshwari Sarees. *Vastraraag Blog*, 5 July 2025, vastraraag.com/blogs/news/queen-ahilya-bai-legacy-history-maheshwari-sarees.
- "Sally Holkar: The American Awarded A Padma Shri." *Rediff.com*, 22 Feb. 2025, www.rediff.com/news/special/-sally-holkar-the-american-awarded-a-padma-shri/20250221.htm.
- PIB - https://www.pib.gov.in/FeaturesDeatils.aspx?NoteId=154531&ModuleId=2

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सारनाथ का ऐतिहासिक महत्त्व और बौद्ध धर्म के विकास में इसकी भूमिका

अनूप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोध सार

सारनाथ भारत के उत्तर प्रदेश राज्य में वाराणसी के निकट स्थित एक प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल है। इसका ऐतिहासिक महत्त्व इसलिए है कि यह स्थान बुद्ध के जीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है, क्योंकि यहीं पर उन्होंने अपना प्रथम उपदेश (धर्मचक्र प्रवर्तन) दिया था। कालान्तर में सम्राट अशोक ने सारनाथ में कई स्मारक एवं स्तूपों का निर्माण करवाया, जिससे सारनाथ की प्रसिद्धि में और वृद्धि हुई।

यह स्थल प्राचीन काल में इसिपतन या मृगदाव के नाम से भी जाना जाता था एवं बौद्ध धर्म के चार पवित्र स्थलों में से एक है। वर्तमान समय में भी सारनाथ बौद्ध तीर्थयात्रियों का प्रमुख केन्द्र है, एवं पर्यटन की दृष्टि से बौद्ध तीर्थ स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। यहाँ का पुरातत्त्व संग्रहालय प्राचीन बौद्ध कला की अमूल्य धरोहर संजोए हुए है। विभिन्न कालों की बौद्ध मूर्तिकला और वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने यहाँ से प्राप्त होते हैं। सारनाथ के स्मारकों में चौखंडी स्तूप, धर्मराजिका स्तूप, धमेख स्तूप, मूलगंधकुटी विहार, अशोक स्तंभ एवं धर्मचक्रजिन विहार आदि प्रमुख है। सारनाथ के सांस्कृतिक महत्त्व को देखते हुए ही इसको यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में शामिल किया गया है।

मुख्य शब्द :– बौद्ध धर्म, तीर्थस्थल, धर्मचक्र प्रवर्तन, स्तूप, विहार, वास्तुकला, स्मारक आदि।

प्रस्तावना

उत्तर प्रदेश के वाराणसी में स्थिति सारनाथ बौद्ध धर्म का एक प्रमुख तीर्थस्थल है। जो वाराणसी से लगभग 6. 4 किलोमीटर उत्तर में स्थित है। इसका प्राचीन नाम ऋषिपतन (इसिपतन या मृगदाव) (हिरनो का जंगल) था। ऋषिपतन से तात्पर्य 'ऋषि का पतन' से है जिसका आशय है वह स्थान जहाँ किसी एक बुद्ध ने गौतम बुद्ध की भावी संबोधि को जानकर निर्वाण प्राप्त किया था।[1] मृगों के विचरण करने वाले स्थान के आधार पर इसका नाम मृगदाव पड़ा, जिसका वर्णन निग्रोधमृग जातक में भी आया है।[2] आधुनिक नाम सारनाथ की उत्त्पत्ति 'सारंगनाथ' (मृगों के नाथ) अर्थात् गौतम बुद्ध से हुई।

गौतम बुद्ध के प्रथम उपदेश (लगभग 533 ई0पू0) से 300 वर्ष बाद तक का सारनाथ का इतिहास अज्ञात है; क्योंकि उत्खनन से इस काल का कोई भी अवशेष प्राप्त नहीं हुआ है। सारनाथ की समृद्धि एवं बौद्ध धर्म का विकास सर्वप्रथम अशोक के शासन काल में दृष्टिगत होता है। उसने सारनाथ में धर्मराजिका स्तूप, धमेख स्तूप एवं सिंह स्तंभ का निर्माण करवाया। अशोक के उत्तराधिकारियों के शासन–काल में पुनः सारनाथ अवनति की ओर अग्रसर होने लगा। ई0पू0 दूसरी सदी में शुंग राज्य की स्थापना हुई, लेकिन सारनाथ से इस काल का कोई लेख नहीं मिला। प्रथम शताब्दी ई0 के लगभग उत्तर भारत में कुषाण राज्य की स्थापना के साथ ही एक बार पुनः बौद्ध धर्म की उन्नति हुई। कनिष्क के राज्यकाल के तीसरे वर्ष में भिक्षु बल ने यहाँ एक बोधिसत्व प्रतिमा की स्थापना की। कनिष्क ने अपने शासनकाल में न केवल सारनाथ में वरन् भारत के विभिन्न भागों में बहुत से विहारों एवं स्तूपों का निर्माण करवाया।

सारनाथ के इतिहास में सबसे गौरवपूर्ण समय गुप्तकाल था। उस समय यह मथुरा के अतिरिक्त उत्तर भारत में कला का सबसे बड़ा केन्द्र था। हर्ष के शासन–काल में ह्वेनसांग भारत आया था। उसने सारनाथ को अत्यंत खुशहाल बताया था। हर्ष के बाद कई सौ वर्ष तक सारनाथ विभिन्न शासकों के अधिकार में रहा था, लेकिन इनके शासनकाल में कोई विशेष उपलब्धि नहीं हो पाई। महमूद गजनवी (1017 ई0) के वाराणसी आक्रमण के समय सारनाथ को अत्यधिक क्षति पहुँची। पुनः 1026 ई0 में सम्राट महिपाल के शासनकाल में स्थिरपाल एवं बसन्तपाल नामक दो भाइयों ने सम्राट की प्रेरणा से काशी के देवालयों के उद्धार के साथ–साथ धर्मराजिका स्तूप एवं धर्मचक्र का भी उद्धार किया। गाहड़वाल वंश के शासन–काल में गोविन्द चंद्र की रानी कुमार देवी ने सारनाथ में एक विहार बनवाया था।[3] उत्खनन से प्राप्त अभिलेख भी इसकी पुष्टि होती है[4] इसके पश्चात् सारनाथ के वैभव का अन्त हो गया।

सारनाथ का उत्खनन

सारनाथ के संदर्भ में ऐतिहासिक जानकारी पुरातत्त्वविदों को उस समय हुई जब काशी नरेश चेत सिंह के दीवान जगत सिंह ने धर्मराजिका स्तूप को अज्ञानता वश खुदवा डाला था। इस घटना से जनता का आकर्षण सारनाथ की ओर बढ़ा। इस क्षेत्र का सर्वप्रथम सीमित उत्खनन कर्नल मैकेंजी ने 1815 ई0 में करवाया,[5] लेकिन उनको कोई महत्त्वपूर्ण सफलता नहीं मिली। इस उत्खनन से प्राप्त सामग्री अब कलकत्ता के भारतीय संग्रहालय में सुरक्षित है। मैंकेंजी के उत्खनन के 20 वर्ष पश्चात् 1835–36 में कनिंघम ने सारनाथ का विस्तृत उत्खनन करवाया। उत्खनन में उन्होंने मुख्य रूप से धमेख स्तूप, चौखंडी स्तूप एवं मध्यकालीन विहारों को खोज निकाला।[6]

1851–52 ई0 में मेजर किटोई ने यहां उत्खनन करवाया जिसमें उन्हें धमेख स्तूप के आस–पास अनेक स्तूपों एवं दो विहारों के अवशेष मिले, परन्तु इस उत्खनन की रिपोर्ट प्रकाशित न हो सकी। किटोई के उपरान्त एडवर्ड थामस[7] तथा प्रो0 फिट्ज एडवर्ड हार्न [8] ने खोज कार्य जारी रखा। उनके द्वारा उत्खानित वस्तुएं अब भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में हैं।

उत्खनन का यह कार्य बाद के वर्षों में भी जारी रहा। इस क्षेत्र का अन्तिम उत्खनन दयाराम साहनी के निर्दशन में 5 सत्रों तक चलता रहा।[9] धमेख स्तूप से मुख्य मंदिर तक के सम्पूर्ण क्षेत्र का उत्खनन किया गया। इस उत्खनन से दयाराम साहनी को एक 1 फिट 9) इंच लंबी, 2 फिट 7 इंच चौड़ी तथा 3 फिट गहरी एक नाली के अवशेष मिले। उपर्युक्त उत्खननों से निम्नलिखित स्मारक प्रकाश में आए है–

धमेख स्तूप (धर्मचक्र स्तूप)

धमेख स्तूप सारनाथ में स्थित स्मारकों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। यह स्तूप एक ठोस गोलाकार बुर्ज की भांति है। इसका व्यास 28.35 मीटर (93 फिट) एवं ऊँचाई 39.01 मीटर (143 फिट) है। 11.20 मीटर तक इसका घेरा सुंदर अलंकृत शिलापट्टों से आच्छादित है। अलंकरणों में मुख्य रूप से स्वास्तिक नद्यावर्त सदृश विविध आकृतियां एवं फूल–पत्ती के कटाव की बेलें हैं। इस प्रकार बल्लभी प्रधान अलंकरण बनाने में गुप्तकाल के शिल्पी पारंगत थे। इस स्तूप की नींव अशोक के समय में पड़ी। इसका विस्तार कुषाण–काल में हुआ, लेकिन गुप्तकाल में यह पूर्णतः तैयार हुआ। यह साक्ष्य पत्थरों की सजावट और उन पर गुप्त लिपि में अंकित चिन्हों से निश्चित् होता है।

कनिंघम ने सर्वप्रथम इस स्तूप के मध्य खुदाई कराकर 0.91 मीटर (03 फिट) नीचे एक शिलापट्ट प्राप्त किया था। इस शिलापट्ट पर सातवीं शताब्दी की लिपि में 'ये धर्महेतु प्रभवा' मंत्र अंकित था। इस स्तूप में प्रयुक्त ईंटे 141/2 इंच – 81/2इंच – 21/4 इंच आकार की है।[10]

धमेक (धमेख) शब्द की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों का मत है कि यह संस्कृत के 'धर्मेज्ञा' शब्द से निकला है। किन्तु 11वीं शताब्दी की एक मुद्रा पर 'धमाक जयतु' शब्द मिलता है, जिससे इसकी उत्पत्ति का ऊपर लिखे शब्द से संबंधित होना संदेहास्पद लगता है इस मुद्रा में इस स्तूप को धमाक कहा गया है। इसे लोग बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे और इसकी पूजा करते थे।[11] कनिंघम ने 'धमेख' शब्द को संस्कृत राष्ट्र 'धर्मोपदेशक' का संक्षिप्त रूप स्वीकार किया है।[12] उल्लेखनीय है कि बुद्ध ने सर्वप्रथम यहाँ 'धर्मचक्र' प्रारम्भ किया था। अतः ऐसा संभव है कि इस कारण ही इसका नाम धमेख पड़ा हो।

चौखंडी स्तूप

धमेख स्तूप से आधा मील दक्षिण में यह स्तूप स्थित है, जो सारनाथ के अवशिष्ट स्मारकों से अलग है। इस स्थान

पर गौतम बुद्ध ने अपने 5 शिष्यों को सबसे पहला उपदेश दिया था। जिसके स्मारक स्वरूप इस स्तूप का निर्माण हुआ था। ह्वेनसांग ने इस स्तूप की स्थिति सारनाथ से 0.8 कि0मी0 दक्षिण पश्चिम में बताई है, जो 91.44 मी0 ऊँचा था।[13] इसकी पहचान चौखंडी स्तूप से ठीक प्रतीत होती है। इस स्तूप के ऊपर एक अष्टपार्श्वीय बुर्जी बनी हुई है। इसके उत्तरी दरवाजे पर पड़े हुए पत्थर पर फारसी में एक लेख उल्लिखित है, जिससे ज्ञात होता है कि टोडरमल के पुत्र गोवर्धन ने सन् 1589 ई0 (996 ई0) में इसे बनवाया था। लेख में वर्णित है कि हुमायूँ ने इस स्थान पर एक रात व्यतीत की थी, जिसकी यादगार में इस बुर्ज का निर्माण संभव हुआ।[14]

इस स्तूप का 'चौखण्डी' नाम पुराना जान पड़ता है। इसके आकार–प्रकार से ज्ञात हेाता है कि एक चौकोर कुर्सी पर ठोस ईंटों की क्रमशः घटती हुई तीन मंजिलें बनाई गई थीं। सबसे ऊपर मंजिल की खुली छत पर संभवतः कोई प्रतिमा स्थापित थी। गुप्तकाल में इस प्रकार के स्तूपों को 'त्रिमेधि स्तूप' कहते थे।[15] उत्खनन से प्राप्त सामाग्रियों के आधार पर यह निश्चित हो जाता है कि गुप्तकाल में इस स्तूप का निर्माण हो चुका था।

धर्मराजिका स्तूप

इस स्तूप का निर्माण अशोक ने करवाया था। दुर्भाग्यवश 1794 ई0 में जगत सिंह के आदमियों ने काशी का प्रसिद्ध मुहल्ला जगतगंज बनाने के लिए इसकी ईटों को खोद डाला था। खुदाई के समय 8.23 मी0 की गहराई पर एक प्रस्तर पात्र के भीतर संगमरमर की मंजूषा में कुछ हड्डियाँ एवं सुवर्णपात्र, मोती के दाने एवं रत्न मिले थे, जिसे उन्होंने विशेष महत्त्व का न मानकर गंगा में प्रवाहित कर दिया।[16] यहाँ से प्राप्त महीपाल के समय के 1026 ई0 के एक लेख में यह उल्लेख है कि स्थिरपाल एवं बसंतपाल नामक दो बंधुओं ने धर्मराजिका एवं धर्मचक्र का जीर्णोद्धार किया।[17]

1907–08 ई0 में मार्शल के निर्देशन में खुदाई से इस स्तूप के क्रमिक परिनिर्माणों के इतिहास का पता चला।[18] इस स्तूप का कई बार परिवर्द्धन एवं संस्कार हुआ। इस स्तूप के मूल भाग का निर्माण अशोक ने करवाया था। उस समय इसका व्यास 13.48 मी0 (44 फिट 3 इंच) था। इसका सर्वप्रथम परिवर्द्धन कुषाण–काल या आरम्भिक गुप्तकाल में हुआ। दूसरा परिर्द्धन हूणों के आक्रमण के पश्चात् पाँचवीं या छठी शताब्दी में हुआ। इस समय स्तूप के चारों ओर 16 फिट (4.6) मीटर चौड़ा एक प्रदक्षिणा पथ जोड़ा गया। तीसरी बार परिवर्द्धन हर्ष के शासन–काल (7वीं सदी) में हुआ। चौथा परिवर्द्धन बंगाल नरेश महिपाल ने महमूद गजनवी के आक्रमण के दस वर्ष बाद करवाया। अंतिम पुनरूद्धार लगभग 1114 ई0 से 1154 ई0 के मध्य हुआ।[19] इसके पश्चात् मुसलमानों के आक्रमण ने सारनाथ को नष्ट कर दिया।

मूलगंध कुटी विहार

यह विहार धर्मराजिका स्तूप से उत्तर की ओर स्थित है। पूर्वाभिमुख इस विहार की कुर्सी चौकोर है, जिसकी एक भुजा 18.29 मीटर है। सातवीं शताब्दी में भारत भ्रमण पर आए चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसका वर्णन 200 फिट ऊँचे मूलगंधकुटी विहार के नाम से किया है।[20] इस पर बने हुए नक्काशीदार गोले और नतोदर ढलाई, छोटे–छोटे स्तम्भों तथा सुन्दर कलापूर्ण कटावों आदि से यह निश्चित हो जाता है कि इसका निर्माण गुप्तकाल में हुआ था।[21] परन्तु इसके चारों ओर मिट्टी और चूने की बनी हुई पक्की फर्शों तथा दीवालों के बाहरी भाग में प्रयुक्त अस्त–व्यस्त नक्काशीदार पत्थरों के आधार पर कुछ विद्वानों ने इसे 8वीं शताब्दी के लगभग का माना है।

ऐसा प्रतीत होता है कि इस मंदिर के बीच में बने मंडप के नीचे प्रारम्भ में भगवान बुद्ध की एक सोने की चमकीली आदमकद मूर्ति स्थापित थी। मंदिर में प्रवेश के लिए तीनों दिशाओं में एक–एक द्वार और पूर्व दिशा में मुख्य प्रवेश द्वार (सिंह द्वार) था।[22]

अशोक स्तम्भ

मूलगंधकुटी विहार से पश्चिम की ओर एक अशोक कालीन प्रस्तर–स्तम्भ है जिसकी ऊँचाई प्रारम्भ में 17.55 मी0 (55 फिट) थी। वर्तमान समय में इसकी ऊँचाई केवल 2.03 मी0 (7 फिट 9 इंच) है। स्तम्भ का ऊपरी सिरा अब सारनाथ संग्रहालय में हैं। नींव में खुदाई करते समय यह पता चला कि इसकी स्थापना 8 फिट X 16 फिट X 18 इंच आकार के बड़े पत्थर के चबूतरे पर बनी हुई थी।[23] इस स्तम्भ पर तीन लेख उल्लिखित हैं। पहला बड़ा लेख अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में है, जिसमें सम्राट ने आदेश दिया है कि जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेंगे और संघ की निंदा करेंगे, उन्हें सफेद वस्त्र पहनाकर संघ से निकाल दिया जाएगा। दूसरा लेख कुषाण–काल का है। तीसरा लेख गुप्तकाल का

है, जिसमें सम्मितीय शाखा के आचार्यों का उल्लेख किया गया है।[24]

धर्मचक्रजिन विहार

इस विहार का निर्माण कन्नौज के गहड़वाल शासक गोविन्दचंद्र (1114–1154 ई0) की पत्नी कुमार देवी ने करवाया था। इस विहार की पूर्व से पश्चिम लंबाई 760 फिट थी।[25] इसके आंगन की फर्श पकी ईंटों से ढकी थी, जिसके तीन ओर कमरे निर्मित थे। विहार की कुर्सी 8 फिट ऊँची थी जिसमें प्रयुक्त ईंटों की चिनाई नियमित है, यद्यपि भिक्षुओं के रहने के कक्ष अब ढह चुके हैं। प्रवेश के लिए पूर्व की ओर दो सिंह द्वार थे जिनके बीच की दूरी 88.89 मी0 (290 फिट) थी।[26] प्रवेश के दोनों ओर बड़े कक्ष थे। द्वार की बुर्जियों में जुड़ाई सुन्दर एवं अलंकृत है। इस विहार के नीचे पूर्वकालीन तीन विहारों के अवशेष पाए गए हैं।

शोध पत्र का उद्देश्य

उत्तर प्रदेश के बौद्ध तीर्थस्थल सारनाथ का ऐतिहासिक महत्त्व एवं बौद्ध धर्म के विकास में इसकी भूमिका का अध्ययन करना ही इस शोध पत्र का उद्देश्य है।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सारनाथ बौद्ध धर्म के सबसे महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों में से एक है। यह वह स्थान है जहाँ गौतम बुद्ध में अपना पहला उपदेश दिया था। प्रमुख शोध निष्कर्ष इस प्रकार है –

1. पुरातात्त्विक महत्व :– सारनाथ में की गई खुदाई से मौर्य, शुंग और गुप्त काल के अवशेष मिले हैं। धमेख स्तूप, मूलगंध कुटी विहार और अशोक स्तम्भ यहाँ के प्रमुख स्मारक है।

2. बौद्ध शिक्षा केन्द्र :– यह तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से 12वीं शताब्दी ई0 तक एक प्रमुख बौद्ध शिक्षा केन्द्र था। चीनी यात्री फाहियान एवं ह्वेनसांग ने अपने यात्रा वृतांत में यहाँ के विहारो का विस्तृत वर्णन किया है।

3. कला एवं वास्तुकला :– यहाँ से प्राप्त मूर्तियाँ और कलाकृतियाँ गुप्तकालीन कला की उत्कृष्टता को दर्शाती है। अशोक स्तम्भ का शीर्ष चिन्ह (चार सिंह) भारत का राष्ट्रीय प्रतीक बना।

4. धार्मिक महत्त्व :– यह स्थान ''धर्मचक्र प्रवर्तन'' का स्थल है, जहाँ बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को अपना पहला उपदेश दिया। आज भी बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए एक महत्त्पूर्ण तीर्थस्थल है।

इस प्रकार सारनाथ न केवल धार्मिक महत्त्व का स्थल है, बल्कि भारतीय इतिहास, कला, संस्कृति और वास्तुकला का एक अमूल्य खजाना भी है। यह स्थल प्राचीन भारत की समृद्ध विरासत का जीवंत प्रमाण है और आज भी विश्व भर के लोगों को आकर्षित करता है।

संदर्भ

1. बी0सी0 भट्टाचार्य, दि हिस्ट्री ऑफ सारनाथ, (बनारस, 1924), पृ0सं0– 47
2. निग्रोधमृग जातक, संख्या– 12 (फाउसबॉल संस्करण)।
3. इपिग्राफिया इंडिया, भाग–9, पृ0सं0– 325
4. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1907–08, पृ0सं0–78
5. तत्रैव, 1904–05, पृ0सं0– 212
6. कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल, सर्वे रिपोर्ट्स, भाग–1, पृ0सं0– 111
7. बंगाल एशियाटिक सोसाइटी जर्नल, 1854, पृ0सं0– 469
8. एशियाटिक सोसाइटी रिसर्चेज, 1856 पृ0सं0– 369
9. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (वार्षिक रिपोर्ट), 1919–20 पृ0सं0–26
10. तत्रैव, 1904–05, पृ0सं0– 74
11. जर्नल ऑफ दि यू0पी0 हिस्टोरिकल सोसाइटी, भाग– 11 (02 दिसंबर, 1938) पृ0सं0– 26–26
12. कनिंघम, दि ऐंश्येंट, ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ0सं0– 369
13. सेमुअल बील, चाइनीज एकाउंट्स ऑफ इंडिया, भाग–3, पृ0सं0– 297
14. आर्कियोलॉजिकल, सर्वे ऑफ इडिया, (वार्षिक रिपोर्ट), 1904–05, पृ0सं0 74

15. तत्रैव, 1904–05, पृ0सं0– 78
16. एशियाटिक रिसर्चेज, 05 पृ0सं0– 131–132
17. ऑकियोलॉजिकल, सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1903–04, पृ0सं0– 221
18. तत्रैव, 1907–08, पृ0सं0– 65
19. बुलेटिन ऑफ दि यू0पी0 हिस्टारिकल सोसाइटी, संख्या– 4, लखनऊ, (1965) पृ0सं0– 41
20. थामस वाटर्स, ऑन युवान च्वांग्स, ट्रेवेल्स, इन इंडिया, भाग– 2, पृ0सं0– 47
21. ऑर्कियोलॉजिकल, सर्वे ऑफ इंडिया (वार्षिक रिपोर्ट), 1904–05, पृ0सं0– 68
22. तत्रैव, 1904–05, पृ0सं0– 69
23. तत्रैव, पृ0सं0– 70
24. तत्रैव, 1907– 08, पृ0सं0 – 45
25. तत्रैव, 1907– 08, पृ0सं0 – 45
26. तत्रैव, 1907– 08, पृ0सं0 – 46

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पूर्व मुगलकालीन बिहार में समाज एवं संस्कृति

अविनाश कुमार पासवान
शोधार्थी, यू0जी0सी0–नेट
बाबसाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
डॉ. मो. इस्माईल
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर

सारांश

भारत में सामाजिक संगठन मूलतः प्राचीन काल से आधुनिक काल तक एक समान रहा है। पूर्व मुगलकालीन बिहार का समाज और संस्कृति अत्यंत विविध और समृद्धी थी, जिसमे हिंदू और मुस्लिम परंपराओं का मिश्रण, शाही वैभव, धार्मिक, सहिष्णुता तथा शिक्षा एवं कला का प्रसार प्रमुख था। इस काल में बिहार एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और आर्थिक केंद्र था। जो विभिन्न धर्मो, भाषाओं, और संस्कृतियों का संगम स्थल था। पूर्व मुगलकालीन बिहार में जाति व्यवस्था एक महत्वपूर्ण सामाजिक संरचना थी, समाज की विभिन्न वर्गों में विभाजित था।

मूल शब्द– मध्यकालीन समाज, संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज, परंपरा, भक्ति।

प्रस्तावना

11वीं सदी में मुसलमान के आगमन के फलस्वरुप भारतीय राजनीति एवं सामाजिक जीवन में बड़ा उथल–पुथल मच गया। भारतीय समाज का विघटन शुरू हो गया। हिंदू राजा रजवाड़े अपनी राजनीतिक आजादी धीरे–धीरे खोने लगे, सामाजिक ताने–बाने टूटने लगे हालांकि सलतन्तकालीन समाज में दो प्रमुख संप्रदाय के लोग (हिंदू और मुस्लिम) एक दूसरे के संपर्क में आये। निःसंदेह इस युग में दोनों संप्रदायों की बहुत सी पुरानी प्रथाए से जारी रही और दोनों ने बहुत सी बातें एक दूसरे से अपनायी। फिर भी इस युग में पूर्ण सामाजिक समन्वय नहीं हुआ। समय के साथ–साथ दोनों समुदाय में संस्कृति आदान–प्रदान की गति निरंतर होती गई और कुछ ही वर्शों बाद भारतीय सम्मान वर्ग के जीवन में एकरूपता दिखाई देने लगी।

मध्यकाल में बिहार का समाज कई धार्मिक संप्रदायों एवं जातियों में विभक्त था। समाज में बहुसंख्यक हिंदुओं की थी हिंदू समाज के विषय में हमें विस्तृत जानकारी ज्योतिरिश्वर ठाकुर की प्रस्तुत वर्ण रत्नाकर एवं महाकवि विद्यापति की रचना पदावली एवं पुरुष परीक्षा से मिलती है, जिससे स्पष्ट होता है कि मध्यकालीन बिहार का समाज, क्षेत्रीयविशिष्ठता एवं सामंती समाज था, जिसमें तत्कालीन निबंधकारों ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर आधारित पारंपरिक सामाजिक पद्धति कायम रखने की जरूरत पर बल दिया। जाति की अनिवार्यता आम बंधन थी जिसने सुविन्यास समाज के गठन में मदद की और कुलीनों की संख्या द्वारा वर्ण संरचना कायम किया गया। इसी समय बिहार में गैर ब्राह्मणवादी वर्णों का आगमन हुआ। साथ ही भौगोलिक अलगाव, वाणिज्य–व्यापार के ह्रास से समाज में व्याप्त गति हीनता तथा रूढ़िवादिता ने कठोर स्वरूप को दृढ़ता प्रदान की। रक्त एवं वंश की शुद्धता द्वारा कुलीनता की मान्यता प्रस्तुत की गई। कुलीनता इस युग की एक अद्भुत संस्था थी। इसने उत्तर बिहार विशेषकर मिथिला की पूरी सामाजिक व्यवस्था को झकझोर दिया। इसके फलस्वरूप जाति–व्यवस्था की कठोरता बढ़ गई और कर्मकांडों के दिन लौट आए। अनेक

वणर्जओं तथा बंधनों के कारण आदमी–आदमी की बीच फासला बढ़ गया। ब्राह्मण तथा क्षेत्रीयों की अनेक उप–जातियों निकल आयी। गौत्र और शाखा के आधार पर ब्राह्मणों का वर्गीकरण हो गया। जातिगत सोपान क्रम में ब्राह्मणों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। इस समय ब्राह्मणों के पॉच उप जाति तथा अनेक मूलों का उल्लेख मिलता है। वस्तुतः यह सामंती व्यवस्था के अनुरूप स्तरीकरण की दृढ़ता एवं कठोरता का उदाहरण है।

क्षेत्रिय वर्ण का भी समाज में व्यापक प्रभाव था। क्षेत्रिय जो अब राजपूत कहलाते थे वे गोत्र की अपेक्षा कुल या वंश का महत्व देते थे। राजपूतों में भी अनेक जातियाँ एवं उपजातियाँ निकल आयी। इस समय वर्णशंकर अर्थात मिश्रित जातियाँ की अस्तित्व में आई। तात्कालीन भारतीय साहित्य (राजतरंगणी) में 36 राजपूत वंश का उल्लेख है।

इसके अलावे समाज में वैश्य वर्ण का भी प्रभाव था। ये वाणिज्य–व्यापार एवं साहुकारी और कृषि कार्यों में संलग्न रहते थे। लेकिन इस वर्ण की सामाजिक प्रतिष्ठा ज्यादा प्रभावशाली नही थी। यदि यह वर्ण ज्यादा सशक्त होते तो समाज में कुछ उदारवादी तत्वों को स्थान दिलाने तथा अपने स्तर को उपर उठाने का सार्थक प्रयास करते जैसे भारत के अन्य क्षेत्रों में बौद्ध तथा जैन धर्म की समर्थन देकर प्रभावशाली स्थान प्राप्त करने में सफल रहे थे। मध्यकालीन बिहार के समाज में समय के परिवर्त्तन और राजनीतिक संरचना के बदलाव के साथ हम जातियों से संबंधित कर्त्तव्य में भी कुछ परिवर्तन देख सकते है। निम्न जातियों के समूह की दयनीय आर्थिक स्थिति ने उन्हें शासक वर्ण में बौध दिया था। समकालीन साहित्यिक स्रोता से यह पता चलता है कि गुलाम, कृषि दास और शूद्र प्रायः समान थे और इनका नियमित व्यापार होता था। जाति व्यवस्था के साथ–साथ दास व्यवस्था का व्यापक चलन था। सम्पूर्ण समाज एवं संकीर्ण जातीय वृक्ष के अन्दर कई खण्डों में बंटा था। शूद्रों की स्थिति दयनीय थी। उन्हें छोटे–छोटे अपराधों के लिए भी कठोर दण्ड दिया जाता था।

मध्यकाल में मुसलमानों के आगमन के साथ बिहार समेत पूरे भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में अत्यधिक परिवर्त्तन हुआ। रामधारी सिंह दिनकर लिखते है, ''भारत में इस्लाम का प्रसार तलवार से कम तथा जजिया के भय से बहुत कम, किंतु संतो का प्रभाव आसानी से पड़ा क्योंकि नीची जाति के लोग ऊँची जाति से अत्यंत पीड़ित थे।'' ऐसे समय में इस्लाम की कट्टरता तथा सूफियों के प्रेम मार्ग से भक्ति आंदोलन का उदय हुआ। भक्ति आन्दोलन में संतो ने एकेश्वरवाद का सिद्धांत प्रतिपादित किया एवं भेद–भाव का विरोध करते हुए सामाजिक समानता पर बल दिया, जिससे हिन्दुओं का एक नई दिशा मिली अतएव हिन्दू–मुस्लिम, संस्कृति समन्वय की एक महत्वपूर्ण देन भक्ति आंदोलन है।

हालॉकि मध्यकाल में अद्भूत सारे धार्मिक आंदोलन आखिरकार बिहार के इसी समन्वयवादी धार्मिक संस्कृति के अंग बनते चले गये एवं बिहार के पंथगत एवं सम्प्रदायगत कट्टरता को कभी अपने यहॉ पनपने नहीं दिया। मध्यकाल में धर्म सुधार की भावना से राष्ट्रव्यापी भक्ति आंदोलन की जो अध्याय शुरू हुआ उन्हें पौराणिक भक्ति आंदोलन, निर्गुण भक्ति आंदोलन, सर्गुण भक्ति आंदोलन, समन्वयवादी भक्ति आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। इसी तरह नानक पंथ, संतनामी पंथ, सखी सम्प्रदाय जैसे अनेकानेक धार्मिक आस्था से जूड़ा सम्प्रदाय मध्यकालीन बिहार में अद्भूत हुए। इसी काल में सगुण भक्ति आंदोलन का प्रारंभ हुआ जिसे वैष्णव भक्ति आंदोलन कहा जा सकता है।

इस्लाम धर्म के अन्तर्गत सूफी परम्परा का जन्म यद्यपि भारत के बाहर हुआ लेकिन इस सम्प्रदाय ने भारत एवं विशेषकर बिहार के उपर अपना अमिट छाप छोड़ा। बिहार में सबसे पहले चिश्ती एवं सुहरावर्दी सम्प्रदाय के लोगों ने प्रवेश किया और यहॉ के लोगों के उपर अच्छा खासा प्रभाव डाला। बिहार में लगभग सभी सुफी सम्प्रदाय का आगमन हुआ। फिरदौसी शाखा के मखदुम शर्फुद्दीन याहिया मनेरी, जिन्हे मखदूम–उल–मूल्क बिहारी और मखदुम–ए–जहॉ के नाम से जाना जाता है। इनका जन्म बिहार में पटना के पास एक गॉव मनेर में हुआ था। बिहार में सुफी परम्परा काफी समृद्ध रही है और वस्तुतः सभी महत्वपूर्ण सिलसिले के प्रभाव इस क्षेत्र में व्यापक स्तर पर प्रस्तुत किए। आज भी सुफियों केन्द्र अथवा दरगाहे और खानकाहें जन–मानस को प्रेरित और प्रभावित करने में सक्रिय है।

शिक्षा

मध्यकालीन बिहार में शिक्षा का प्रबंध परम्परागत ढंग से ही किया जा रहा था। टोल एवं पाठशाला हिन्दुओं के शिक्षा के केन्द्र हुआ करते थे। शिक्षा मंदिरों में भी दी जाती थी। टोल के माध्यम से शिक्षित किया जाना ज्यादा लोकप्रिय था। मुस्लमानों को मकतब एवं मदरसा के माध्यम से शिक्षा से धार्मिक ही होता था। मकतब प्रायः प्रारंभिक शिक्षा के केन्द्र थे। खनकाह भी इस्लामी शिक्षा के केन्द्र थे। बिहार में बिहारशरीफ, फुलवारीशरीफ, शेरघाटी एवं भागलपुर और दरभंगा में खानकाह की स्थापना की गई थी। मदरसा आज के आधुनिक महाविद्यालयों की समान थी।

मध्यकालीन बिहार में साहित्य को समृद्ध करने में ज्योतिरिश्वर एवं विद्यापति ने महान योगदान दिया। इन दोनों

ने मिथिला की स्थानीय भाषा की रचना की जिसे मैथिली भाषा के नाम से जाना जाता है। वर्णरत्नाकार मैथिली भाषा की महत्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है। वस्तुतः मैथिली भाषा और साहित्य का विकास इसी समय आरंभ हुआ। विद्यापति ने कीर्तिलता, किर्तिपता का तथा मैथिली पदावली इनके क्षेत्रीय साहित्य की श्रेष्ठतम प्रतिनिधि है। इसके अलावे भी इस समय कई श्रेष्ठ साहित्य का भी उन्यन इसी चरण में हुआ।

चित्रकला के विकास में मध्यकालीन बिहार के मुस्लिम समाज का योगदान न के बाराबर रहा। चूँकि कुरान में चित्रकला का विरोध किया गया है इसलिए धर्म प्रधान सल्तन्त के सुल्तानों ने चित्रकला को कोई संरक्षण नहीं दिया। मध्यकाल में सबसे पहले अकबर ने ही चित्रकला के क्षेत्र में नवीन युग का सूत्रपात किया था। इस काल में मिथिला के स्थानीय परम्पराओं, जादू–टोना, विवाह–संस्कार आदि से प्रभावित जो चित्र अपने घर की दीवारों पर निर्मित किये गये, उन्हें काफी लोकप्रियता प्राप्त हुई। मिथिला की चित्रकला की विशिष्ट विशेषता यह है कि चित्रण कार्य पूर्णतः परिवार के नारी द्वारा गृह कार्य के रूप में किया जाता है। इस तरह से मिथिला के संस्कार समारोह तथा पारिवारिक परम्परा से जुड़ा मिथिला चित्रकला एक स्वाभाविक व अनिवार्य पक्ष है।

निष्कर्ष

इस तरह कहा सकता है कि पूर्व मुगलकालीन बिहार के समाजिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्त्तन तथा सामंती प्रभाव था। जातीय विभाजन के कारण सामाजिक एकता को आघात पहुॅचा। इस्लामी शिक्षा का मुख्य दुर्गण यह था कि वह मजहवी विचारों से इतना प्रभावित था कि जनसाधारण का आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक हित साधन करने वाले अन्य विषय गौण रह जाते थे। पूर्व मुगलकालीन बिहार की संस्कृति एक समृद्ध मिश्रण थी जिसमें कला, संगीत, नृत्य, त्योहार, स्थापत्य कला और सामाजिक रीति–रिवाजों का समावेश था, जो आज भी बिहार की संस्कृति विरासत का हिस्सा है।

संदर्भ

1. कन्हैया लाल श्रीवास्तव एवं झारखण्ड चौवे, मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ–1979, पृ0–01
2. सतीश चन्द्र, मध्यकालीन भारत : राजनीति, समाज और संस्कृति, अनु0–नरेश 'नदीम', ओरियन्ट ब्लैकस्बॉग, हैदराबाद, 2007, पृ0–131
3. विपिन बिहारी सिन्हा, मध्यकालीन भारत का इतिहास, ज्ञानदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012, पृ0–143
4. प्रमोदानन्द दास एवं कुमार अमरेन्द्र, बिहार इतिहास एवं संस्कृति, ल्यूसेन्ट पब्लिकेशन, पटना, 2008, पृ0–141
5. इडिग्राफिया इंडिका, वा0यूम XXIX, पृ0–52–54
6. कौलेश्वर राय बिहार का इतिहास, विज्ञान महल, नई दिल्ली, 2021, पृ0–101
7. विजय कुमार ठाकुर ''मैथिली सभ्यताक उद्भव एवं विकास, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्मारिका, पटना,1983, पृ0–90–92
8. ज्योतिरिश्वर, वर्णरत्नाकर, संस्था0–आनन्द मिश्र, गोविन्द झा, पटना, 1980, पृ0–17–18

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में प्रगतिवादी चेतना

अंशु देवी
शोधार्थी, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर
महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,बरेली,(उ0प्र0)
डॉ0 शशिप्रभा
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ0प्र0)

सारांश

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद का समय 1936 ई0 से 1943 ई0 के बीच तक माना जाता है। सर्वप्रथम ''भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ'' का अधिवेशन 1936 ई0 में लखनऊ में हुआ, जिसकी अध्यक्षता मुंशी प्रेमचन्द ने की। जिसमें यह घोषणा की गयी कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना ही न हो, बल्कि उसमें समाज के हितों का समावेश भी हो। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद वह विचारधारा है जिसमें साहित्यकारों ने पूँजीवाद के विरूद्व आन्दोलन किया तथा गरीब और शोषित वर्ग में चेतना जागृत की। प्रगतिवाद साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित था तथा कुछ विद्वानों का मत भी है ''कि राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है साहित्य के क्षेत्र में वही प्रगतिवाद है।'' ''प्रगतिवादी कवियों में शिवमंगल सिंह 'सुमन' केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलास शर्मा, त्रिलोचन, रागेंय राघव आदि प्रमुख है। प्रगतिवादी कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने अपने साहित्य में प्रगतिवादी चेतना, सामाजिक चेतना, मानव–मूल्यों एवं पूँजीवाद पर प्रकाश डाला है। कवि ने समाज के शोषितों, श्रमिकों, गरीब व निम्न वर्ग आदि की स्थिति का मार्मिक चित्रण अपनी कविताओं में किया है। सुमन जी की अनेक रचनाएँ जैसे–हिल्लोल, जीवन के गान, युग का मोल, विश्वास बढ़ता ही गया, प्रलय–सृजन आदि समाज की वास्तविक स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करती है। अतः 'सुमन' जी ने 'नवीन' और दिनकर के मतों का प्रतिवाद करते हुए प्रगतिवाद को जीवन और साहित्य का नया दृष्टिकोण कहा है।

की वर्ड– प्रगतिवाद, साहित्य, समाज, शोषित, पूँजीवाद।

प्रस्तावना

डॉ0 शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जन्म 5 अगस्त 1916 ई0 को उन्नाव जिले के झगरपुर गाँव में नागपच्चमी के दिन हुआ था। इनके पिता ठाकुर बख्श सिंह परिहार क्षत्रिय वंश के थे, तथा इनकी माता गहरवाड वंशीय थी। कवि की प्रारम्भिक शिक्षा रीवा में हुयी तथा इसके आगे की शिक्षा ग्वालियर में प्राप्त की। कवि की बड़ी बहन कीर्तिकुमारी तथा बड़ा भाई दोनो कविता लिखते थे जिनका प्रभाव 'सुमन' जी पर पड़ा। डॉ0 शिवमंगल सिंह सुमन ने सदैव प्रगतिशील लेखन का कार्य किया। उन्होंने जो समाज का वास्तविक स्वरूप देखा, उसे ही अपने काव्य में उकेरा है। हरेराम पाठक के शब्दों में, ''सुमन जी की कविता भोगे हुए यथार्थ की अनुभूतिमय अभिव्यक्ति है। इसलिए उसमें जीवन का यथार्थ है।'' [1] 'सुमन' जी ने अपनी प्रगतिवादी विचारधारा को लोक–कल्याण की भावना, शोषितों व दलितों का संघर्ष, उनकी स्थितियों का मार्मिक चित्रण तथा राष्ट्रीय चेतना के रूप में व्यक्त किया है। कवि की प्रगतिवादी कविताएँ मार्क्सवादी सिद्वान्तों पर आधारित है। 'सुमन' जी की कविता 'मास्को अब भी दूर है' में प्रगतिवादी स्वर इस प्रकार दिखाई पड़ते है –

''जगे वीर, जागी वसुन्धरा, जागी युग की ज्वाला
यहाँ लुटेरे फासिस्तों को पड़ा मौत से पाला
जन–जन जागे, कण–कण जागा, जागा लाल सितारा
चली लाल सेना लहराती लाल रक्त की धारा
कौन लड़ेगा? कौन बढ़ेगा? कौन साहसी शूर है
दस हफ्ते दस साल बन गए, मास्को अब भी दूर है।'' [2]

'सुमन' जी पूंजीवाद का विद्रोह करते थे ताकि पूंजीवाद को जड़ से खत्म कर साम्यवाद की स्थापना की जा सके। जिसके लिए कवि श्रमजीवी वर्ग को शोषण तथा अन्याय के विरूद्व लड़के के लिए जागरूक करता है। जो इस प्रकार व्यक्त है –

''तुम गरजो आज प्रलय होगी
शोशक वर्गो की क्षय होगी
दुनिया के कोने–कोने से
मजलूमों की जय–जय होगी
अत्याचारी की छाती पर तुम
चढ़े चलो, तुम चढ़े चलो
मजदूर–किसानों बढ़े चलो।'' [3]

प्रगतिवादी कवियों ने प्राचीन रूढ़ियों एवं मान्यताओं का विरोध किया है। इन कवियों ने मानवीय–मूल्यों को केन्द्र में रखकर अपने साहित्य की रचना की है। इस प्रकार सुमन जी ने भी मनुष्य को पुरानी रूढ़ियों से हटाकर निरन्तर कार्यशील बने रहने के लिए प्रेरित किया है। जीवन के संघर्ष में थके हारे मनुष्य को, कवि ने जीवन पथ पर अग्रसर होने के लिए नवीन ऊर्जा प्रदान की है ताकि वह अपने लक्ष्य प्राप्ति तक अडिग रहे –

''गति प्रबल पैरो में भरी
फिर क्यों रहूँ दर–दर खड़ा
जब आज मेरे सामने है
रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंजिल पा सकूँ, तब तक मुझे न विराम है
चलना हमारा काम है, चलना हमारा काम है।'' [4]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' छायावाद के अन्तिम चरण में साहित्य के क्षेत्र में आए। उनका काव्य–संग्रह 'जीवन के गान' पूर्णतः प्रगतिवादी काव्य है। जिसमें कवि ने शोषितों की मार्मिक दशा का वर्णन किया है। उनकी कविता 'हाय नहीं यह देखा जाता' शोषित जनता के ह्दयविदारक दृश्य प्रकट करती है। समाज में निम्न वर्ग की ऐसी दशा देखकर कवि का ह्दय व्याकुल हो उठता है। और वह कह उठता है 'हाय नहीं यह देखा जाता –

''भाग्य लूटनेवाले को
वह धर्मवान भगवान बनाता
जीवन हाय हराम कर दिया
उसकी जयजयकार मनाता
जिसने सब कुछ छीन लिया
उसको ही वह दाता बतलाता
हाय नहीं यह देखा जाता।'' [5]

'सुमन' जी वर्गरहित, शोषण रहित, समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहते थे। उन्होंने रूस की क्रान्ति पर आधारित कविताएँ सोवियत रूस के प्रति, स्तालिनग्रेद, 'मास्को अब भी दूर है लिखी है। जो साम्यवाद के लिए समर्पित है। कवि का काव्य संग्रह, प्रलय–सृजन जीवन–संघर्ष की वेदना प्रकट करता है। 'गुनिया का यौवन', कलकत्ते का अकाल, चल रही उसकी कुदाली' इस काव्य संग्रह की प्रसिद्व कविताएं है। इसी प्रकार कवि ने अपनी कविता 'कलकत्ते के अकाल' में अकाल के समय की परिस्थितियों को दर्शाया है कि किस प्रकार जनता अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए दर–दर भटकती है तथा भूख–प्यास के कारण गरीब जनता अपने प्राणों की आहुति दे रही है। इन दुर्दशा का

वर्णन कवि ने इस पंक्तियों में किया है–

''निपट दुधमुँहे बच्चे सूखी
छाती से आसक्त
चूस रहे माँ के जीवन का
बचा बचाया रक्त
जिस गोदी में जीवन पाया
पाया लाङ–दुलार
आज उसी में बिना कफन के
सोए शिशु सुकुमार।''[6]

प्रगतिशील चेतना के कवि शिवमंगल सिंह 'सुमन' का जुड़ाव मिट्टी से भी है। कवि की मिट्टी के प्रति अपार श्रद्वा है। मिट्टी की सृजन क्षमता असीम होती है। 'मिट्टी की महिमा' कविता के द्वारा कवि मनुष्य को आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है जिसे कवि ने इस प्रकार व्यक्त किया है –

''निर्मम कुम्हार की थापी से
कितने रूपों में कुटी–पिटी,
हर बार बिखेरी गई, किन्तु
मिट्टी फिर भी तो नहीं मिटी।'' [7]

इस प्रकार कवि ने प्रगतिवादी विचारों का केवल प्रसार ही नहीं किया बल्कि संवेदना और भाव भी प्रदान किये। कवि की भावभूमि से सृजित पंक्तियाँ केवल कविता न होकर, प्राणि, वस्तु व परिस्थिति के प्रति संवेदना की प्रबल अभिव्यक्ति है। पीड़ितों के प्रति उनकी संवेदना मानवता के रूप में उभर कर सामने आती है तथा शोशकों के विरूद्व प्रतिरोध व्यक्त करती है–

''युग युग से पीड़ित मानवता
सुख की सांसे भरती होगी
जब अपने होगे वन–उपवन
जब उनकी यह धरती होगी
जब समझूंगा आया बसंत''।[8]

शिवमंगल सिंह 'सुमन' ने राष्ट्र की उन्नति व विकास के लिए राष्ट्रीय–प्रेम की भावना का संचार किया जो उनकी कविताओं में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। ''मिट्टी की बारात'' विध्य–हिमालय, 'विश्वास बढ़ता ही गया, काव्य–संग्रहो में कवि, ने राष्ट्र–प्रेम को दर्शाया है। जो जनता में राष्ट्रवादी चेतना के भाव जागृत करता है। जिसे हम उनकी इन पक्तियों में देख सकते है–

''भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव
सुर्खी से शहादल की
हस्ताक्षर कर गए
खोलती शिराओं में
ज्वार बन उमड़ा वह
पुतली की लाली में
सपनों सा छन गया
राष्ट्र की जवानी की
कहानी वह बन गया।'' [8]

इस प्रकार कवि ने देश के क्रान्तिकारी वीरों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है। तथा राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए क्रान्ति की ज्वाला जलायी है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' एक श्रेष्ठ रचनाकार है जो प्रगतिवादी जनवादी, राष्ट्रवादी व मानवतावादी सभी रूपों में दिखायी पड़ते है। उन्होंनें अपने कविकर्म, समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का पालन बहुत ही ईमानदारी व सजगता के साथ किया है।

'सुमन' जी की क्रान्तिकारी कविताओं का संग्रह 'प्रलय–सृजन' की भूमिका में कवि के प्रति राहुल सांस्कृत्यायन

ने अपने विचारों को व्यक्त किया है– ''कवि ने अपने आस–पास के संसार की अंतर्वेदना को ही व्यक्त नहीं किया और न केवल पीड़ितों के लिए आंसू बहाकर अंतर्वेदना भर से ही सन्तोष कर लिया है, बल्कि उसे बड़ी और दम घोटने वाली परिस्थिति को बदलने का सन्देश दिया है।'' [10] कवि 'सुमन' ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का यथार्थ चित्रण अपनी कविताओं में किया है तथा शोषित–पीड़ित जनता की दयनीय स्थिति को उजागर करने के साथ उनमें शोषण व पूंजीवाद के विरूद्व जागरूकता उत्पन्न की है। इस प्रकार कवि नवीन समाज के निर्माण के लिए उत्साहित है जिसे वह इन पंक्तियों में प्रकट करता है''–

''त्रस्त–ध्वस्त हो रहा पुरातन
नया वेश है, नया साज है
सदियों से सोई मानवता
अँगड़ाई ले रही आज है।'' [11]

कवि समाज के स्वरूप को बदल देना चाहता है। इस प्रकार उनके काव्य में सामाजिक चेतना का प्रखर स्वर सुनायी देता है। उस समय समाज में साम्प्रदायिकता फैली थी हिन्दु–मुस्लिम आपस में लड़ रहे थे जिसके फलस्वरूप कवि की कविताएँ क्रान्तिकारी कविताओं में परिवर्तित हुयी। अतः कवि ने समाज की दयनीय स्थिति देख कर अपनी लेखनी समाज की ओर उन्मुख कर दी। और समाज में समानता लाने व शोषित वर्ग के उत्थान के लिए आवाज उठायी।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रगतिवादी विचारधारा साहित्य में समाज की वास्तविकता प्रदर्शित करती है। प्रगतिवादी कवि वर्गरहित, शोषण मुक्त व समतामूलक समाज की स्थापना करना चाहते है। अतः शिवमंगल सिंह 'सुमन' की प्रगतिवादी चेतना उनकी कविताओं में दीन–हीन, दलितों व शोषितों की पीड़ा का स्वर लिए है। अपनी प्रगतिवादी विचारधारा के विषय में स्वयं कवि ने लिखा है– ''मैं स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि मेरे सम्पूर्ण कर्तव्य में व्यक्त प्रगतिवादी विचारधारा मेरी प्रिय विचारधारा है। और इसे व्यक्त करने के लिए मैं रत्तीभर भी पश्चाताप नही करता क्योंकि साहित्य और देश के इतिहास में एक विशिष्ट दौर में लोगो ने कविता–कविया या दृष्टि–दृष्टि के भेद को न समझते हुए साम्यवाद के विरूद्व एक जिहाद छेड दिया था, जिसकी चपेट में उन्होंने व्यावसायिक विदेशी एजेन्टो और घटिया उग्र मनोवृत्ति के अविवेकी लोगो की कोटि में सबको बिठा दिया, मैं कभी इस पर अलग से लिखूँगा, इस समय इतना ही अलम् है कि मैने मार्क्सीय दर्शन को अपने देश और काल के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्र कल्याण के सन्दर्भो में समझा है।'' [12] अतः साहित्य समाज से जुड़ा होता है, समाज में होने वाले परिवर्तन साहित्य पर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते है। कवि शिवमंगल सिंह सुमन ने समाज की इन दशाओं को अपने साहित्य में उकेरा है तथा प्रगतिवादी चेतना में नए आयामों को प्रस्तुत कर, नयी चेतना जागृत की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

1– शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता : विविध आयाम–व्यास मणि त्रिपाठी, पृष्ठ–74
2– सुमन–समग्र – भाग एक, शिवमंगल सिंह सुमन, पृष्ठ–195
3– वही, पृष्ठ–132
4– हिल्लोल–शिवमंगल सिंह 'सुमन' पृष्ठ–36
5– जीवन के गान – शिवमंगल सिंह 'सुमन' पृष्ठ–87
6– सुमन–समग्र–भाग एक, शिवमंगल सिंह 'सुमन' पृष्ठ–207
7– शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता : विविध आयाम –व्यास मणि त्रिपाठी, पृष्ठ–100
8– वही – पृष्ठ–97
9– मिट्टी की बारात – सुमन, पृष्ठ–91
10– शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता : विविध आयाम – व्यास मणि त्रिपाठी, पृष्ठ–97
11– सुमन समग्र –1, शिवमंगल सिंह 'सुमन', पृष्ठ–232
12– मनुष्य और स्रश्टा–प्रभाकर श्रोत्रिय, पृष्ठ – 11–12

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ग्रामीण जीवन के अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति

डॉ. बिहारी लाल द्विवेदी
प्राचार्य, मेकलसुता महाविद्यालय डिण्डौरी

सारांश

भारत के संविधान में यह व्यवस्था दी गयी है कि परम्परात्मक रुपसे जिन जातियों को अछूत माना जाता रहा है उन्हे कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरी में आरक्षण देकर ही उनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है। है। आज ऐसा कोई ही सामाजिक समूह होगा जो जाति प्रथा के प्रभाव से मुक्त होगा। ग्रामीण जीवन के अनुसूचित जाति के स्त्रियों के बच्चा न होना बच्चों का रोग ग्रस्त होना या किसी अन्य बीमारी के लिये वे चिकित्सक से नहीं बल्कि पंडा, ओझा, झाद फूंक करने वाले के पास जाते थे मान्यता आदि रखते थे जिसका कोई फायदा तो नहीं होता था बल्कि की कुछ रकम एकत्र करके रखते थे वो भी झाड़–फूंक के चक्कर में खर्च हो जाता था, सब निरर्थक हो जाता था।

प्रमुख शब्द– अस्पृश्य, दैवीय शक्ति, सार्वजनिक, परम्परा आदि।

इतिहास के आधार पर देखा जाय तो हिन्दू जाति व्यवस्था के अन्तरगत कुछ जातियां ऐसी है जिन्हे अपवित्र माना जाता है और उन्हें दूसरी जातियों के सम्पर्क से अलग कर दिया जाता है। ब्राह्मण जाति सबसे उपर पवित्र मानी गई और उसे विशेष अधिकार दिया गया। उसके व्यवसाय और जन्म के आधार पर अनुसूचित जातियों पर दूसरी जातियों के सम्पर्क पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और यह नियम बना दिया गया कि कुछ जातियां इतनी अपवित्र है कि उन्हें देखने मात्र से ही उच्च जाति के लोग अपवित्र हो जाते हैं।

भारत में जाति प्रथा अपने तरह की विचित्र व रोचक संस्था है जहाँ धर्म की सीमा से बाहर सभी में अपना पन और उसी की अनोखी अभिव्यक्ति जाति प्रथा है। आज ऐसा कोई ही सामाजिक समूह होगा जो जाति प्रथा के प्रभाव से मुक्त होगा। भारत वर्ष में आज 3000 जातियां और उपजातियां है। जति के सम्बन्ध में अब्बे दुबोयस ने लिखा है कि जब यूरोप बर्बरता में डूबा था उस समय भारत का मस्तक ऊंचा था. भारत में उस समय कला, विज्ञान तथा संस्कृति के विकास का संरक्षण किया था उन्होंने इसका श्रेय भारतीय जाति प्रथा को दिया।

श्री हिल ने कहा कि – ''जाति प्रथा एक ऐसी प्रथा है जिसका आधार दैवीय शक्ति से भी सुदृढ़ है।''

ब्राह्मण जाति सबसे उपर पवित्र मानी जाती है और उसे विशेष अधिकार दिया गया। उसके व्यवसाय और जन्म के आधार पर अनुसूचित जातियों पर दूसरी जातियों के सम्पर्क पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और यह नियम बना दिया गया कि कुछ जातियां इतनी अपवित्र हैं कि उन्हें देखने मात्र से ही उच्च जाति के लोग अपवित्र हो जाते हैं और पवित्र होने के लिये प्रायश्चित करना पड़ता था।

वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत चार वर्ण थे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद जिसका वर्णन ऋग्वेद में है–

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत बाहू राजन्यः कृतः।
उरुतदयद्वैस्यः पदभ्यांशूदोअजायतः।।

सन् 1668 में जाति प्रथा का उद्भव हुआ जो काफी व्यापक पैमाने पर बढ़ा और समाज में अपना प्रभाव स्थापित किया, सभी जातियों को उच्च जातियों द्वारा अस्पृश्य या अछूत माना गया जिसे बाद में महात्मा गांधी ने हरिजन नाम दिया। हरिजन के विकास के लिये सरकार द्वारा उनको सुविधा व संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से एक सूची के अन्तर्गत रखते हुये अनुसूचित जाति के रुप में एक अलग पहचान बनाई।

भारत सरकार अधिनियम 1935 में सर्वप्रथम अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया था जबकि संविधान के अनुच्छेद 341 में अनुसूचित जाति शब्द का उल्लेख किया गया है। यह एक विषम जातीय समूह है जिसमें 542 जातियां शामिल है सामाजिक आर्थिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से लगभग एक समान है।

स्वतंत्रता के समय अनुसूचित जातियों की संख्या 5.17 करोड़ थी जो 1981 में 10.47 करोड़ हुई 1991 में 13.82 करोड़ 2001 में 16.88 करोड़ तथा 2011 की जनगढ़ना की रिपोर्ट में इनकी संख्या 201368086 है जो देश की कुल जनसंख्या का 16.6 प्रतिशत है।

भारत के संविधान में यह व्यवस्था दी गयी है कि परम्परात्मक रुप से जिन जातियों को अछूत माना जाता रहा है उन्हे कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरी में आरक्षण देकर ही उनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है पहले इन अनुसूचित जातियों को सवर्ण जातियों के साथ सम्पर्क रखने पर सवर्ण द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं का उपयोग करने से बंचित रखा जाता था। सार्वजनिक स्थान कुआं तालाब एवं मंदिर का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी जाती थी, बल्कि यह व्यवस्था रखी गयी कि अस्पृश्य जाति के लोग गांव के बाहर रहेंगे। अनुसूचित जाति को अपवित्र मानकर उन्हें किसी तरह के धार्मिक आचरण करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। अनुसूचित जातियां आर्थिक जीवन में काफी दयनीय बनी रही. इनको केवल दो व्यवसाय करने की छूट दी गयी थी–

1– सभी प्रकार की गंदगी साफ करना।

2– मरे हुये जानवरों को उठाना व चमड़े का काम करना।

यही व्यवसाय इनके जीवन यापन का साधन रहा है। मानवता के इतिहास में जितना अधिक इन जातियों का शोषण हुआ है उतना किसी अन्य समाज में देखने को नहीं मिलता है। इसी दयनीय स्थिति को देखते हुये भारत के संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि परम्परागत रूप में जिन जातियों को अछूत माता जाता रहा है उन्हे कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरी में आरक्षण देकर उनकी दशा में सुधार किया गया है।

ग्रामीण जीवन के अनुसूचित जाति के स्त्रियों के बच्चा न होना बच्चों का रोग ग्रस्त होना या किसी अन्य बीमारी के लिये वे चिकित्सक से नहीं बल्कि पंडा, ओझा, झाड फूंक करने वाले के पास जाते थे मान्यता आदि रखते थे जिसका कोई फायदा तो नहीं होता था बल्कि की कुछ रकम एकत्र करके रखते थे वो भी झाड़–फूंक के चक्कर में खर्च हो जाता था, सब निरर्थक हो जाता था।

आज सारी बुराइयां समाप्त हो चुकी है लोग बच्चों को झाड़–फूंक के बजाय अस्पताल में इलाज कराने लगे हैं। यह एक अवसर ही है कि अनुसूचित जाति की स्थिति में सुधार किये बिना उसे राष्ट्र की मुख्य धारा से नहीं जोड़ा जा सकता है। भारत एक कल्याणकारी राष्ट्र है यहां होने वाले विकास, प्रगति के सुखद परिणामों पर प्रत्येक देश के हर नागरिक का अधिकार है। भारतीय लोकतंत्र का महत्वपूर्ण उद्देश्य इन कमजोर वर्गों को संरक्षण प्रदान करना है, सुरक्षा का भार वहन करना है ताकि समाज में यह दवा कुचला वर्ग भी अन्य सबल वर्गों के साथ मूलभूत सुविधाओं का उपयोग करे। कल्याणकारी राष्ट्र का यह कर्तव्य है कि इन अनुसूचित जातियों के सामाजिक आर्थिक जीवन का विकास करें और कमजोर वर्गों के संरक्षण के लिये कदम उठाएं, यह सत्य है कि पहले की तुलना में अनुसूचित जातियोंकी स्थिति में व्यापक सुधार हुआ है किन्तु आज भी अनेक समस्याएं किसी न किसी रूप में बनी हुई हैं।

अस्पृश्यता लगभग समाप्त होने के पास आई है फिर भी किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं यह अभी भी देखने को मिल रही है। अस्पृश्यता निवारण के लिये उठाये गये कदम का विश्लेषण करने पर यह पाया गया कि पिछले वर्षो की तुलना में अस्पृश्यता की घटना के दर्ज प्रकरणों में कमी आई है। अनुसूचित जातियों की स्थिति के संदर्भ में यह पाया गया है कि सार्वजनिक स्थलों पर दलित गैर दलित के साथ बैठते हैं, बस ट्रेन में सफर करते हैं, होटल में भी उच्च जातियों के साथ आते हैं. कुछ दलित लोगों ने चाय–पान की दुकान खोल रखी है जहाँ सभी जाति के लोग एवं धर्म के लोग सामान्य तौर पर आते हैं जहाँ पानी चाय ग्रहण करते हैं किन्तु गावों में अभी भी बड़े–बूढ़े पुरानी परम्परा के लोग न तो उनके हांथ का पानी लेते हैं और न ही उनका बनाया हुआ खाना खाते हैं किन्तु यह भी देखा गया है कि कुछ हिन्दू जातियां उनके हांथ का पानी पी रही है और भोजन ग्रहण कर रही है।

अनुसूचित जाति के एक अध्ययन में यह पाया गया है कि दलित समाज की शिक्षा में बहुत सुधार आया है। संविधान में सभी लोगों को समान अधिकार प्रदान किया गया है, वंचित बर्ग को मुख्यधारा में जोड़ने के लिये आरक्षण प्रदान किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में दलित वर्ग के लोग बहुत जागरुक हुये हैं। इनके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र तथा रोजगार में अवसर प्राप्त हुये और इनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और सरकारी व गैर सरकारी क्षेत्र में रोजगार प्राप्त हुये

हैं।

प्रस्तुत शोध के मुख्य उद्देश्य है–

(१) अनुसूचित जाति की आर्थिक व सामाजिक स्थिति को ज्ञात करना।

(2) अनुसूचित जाति के स्वास्थ्य संबंधी स्थिति को ज्ञात करना।

(3) अनुसूचित जाति की समस्या को जानना एवं समाधान के उपाय।

प्रस्तुत शोध पत्र मऊगंज जिले के हनुमना जनपद पंचायत के अन्तर्गत ग्राम पंचायत घरभरा को अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुनाव किया गया। विकास के दौर में यह ग्राम पंचायत पिछड़ी होने के कारण तथा सामंती संस्कृति के अस्तित्व के कारण अनुसूचित जाति की समस्याएँ वास्तविक रूप से दिखाई देती हैं। यह ग्राम पंचायत जिला मुख्यालय से 15 किमी. की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है। अध्ययन हेतु ग्राम पंचायत घरभरा से 300 घरों की सूची ली गई और दैवनिदर्शन पद्धति के द्वारा 50 उत्तरदाताओं का चयन किया गया और उन उत्तर दाताओं से उनके सामाजिक आर्थिक क्षेत्र की उपलब्धियों की जानकारी प्राप्त की गई जो सारणी में निम्नानुसार प्रदर्शित है –

सारणी क्र०–01

शिक्षा सम्बन्धी

क्र.	परिवार	संख्या	प्रतिशत
1	अशिक्षित	15	30
2	साक्षर	05	10
3	प्राथमिक / माध्यमिक	15	30
4	हाई स्कूल / हायर सेकण्ड्री	10	20
5	स्नातक	05	10
6	स्नातकोत्तर	–	–
7	अन्य	–	–
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी से यह ज्ञात होता है कि चयनित 50 उत्तरदाताओं में से 30 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित हैं. 10 प्रतिशत उत्तरदाता साक्षर हैं, 30 प्रतिशत उत्तरदाता प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त हैं, 20 प्रतिशत उत्तरदाता हाई स्कूल / हायर सेकण्ड्री स्तर तक की शिक्षा प्राप्त है और 10 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक, स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा प्राप्त है, अन्य क्षेत्र में कोई शिक्षा नहीं प्राप्त किये हैं।

सारणी क्र0–02

परिवार का व्यवसाय

क्र.	परिवार का व्यवसाय	संख्या	प्रतिशत
1	सरकारी सेवा	07	14
2	मजदूरी	33	66
3	अन्य	10	20
	योग	**50**	**100**

सारणी से यह स्पष्ट होता है कि चयनित 50 उत्तरदाताओं के परिवार के व्यवसाय के सम्बन्ध में 14 प्रतिशत उत्तरदाता सरकारी सेवा में कार्यरत हैं, 66 प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी के कार्य में संलग्न हैं और 10 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य कार्यों में संलग्न हैं। यह प्रतीत होता है कि आज भी ज्यादा परिवार मजदूरी को मुख्य व्यवसाय के रुप में अपनाये हुये हैं।

सारणी क्र०–03
बीमारी की अवस्था में चिकित्सा पद्धति

क्र.	चिकित्सा	संख्या	प्रतिशत
01	प्रमाणिक डॉक्टर द्वारा	35	70
02	घरेलू उपचार	10	20
03	झाड़–फूंक	05	10
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि चयनित 50 उत्तरदाताओं द्वारा बीमारी के इलाज के सम्बन्ध में यह पाया गया है कि 70 प्रतिशत उत्तरदाता प्रमाणित डाक्टर द्वारा इलाज कराते हैं, 20 प्रतिशत उत्तरदाता घरेलू इलाज करते हैं और 10 प्रतिशत उत्तरदाता झाड़–फूंक पर विश्वास करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्यादातर उत्तरदाता स्वास्थ्य के प्रति जागरुक हुये है।

सारणी क्र0–04
शासकीय स्वास्थ्य सुविधाओं से लाभ

क्र.	स्वास्थ्य सुधार	संख्या	प्रतिशत
01	हां	35	70
02	नहीं	15	30
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि 70 प्रतिशत लोगों को सरकारी स्वास्थ्य योजना का लाभ प्राप्त हुआ है, 30 प्रतिशत लोगों को इस योजना का लाभ नहीं मिला है। इससे यह दिखाई देता है कि अभी भी बहुत लोग है जो बंचित है।

सारणी क्र०–05
सरकारी योजनाओं का लाभ

क्र.	सरकारी योजना लाभार्थी	संख्या	प्रतिशत
01	लाभ प्राप्त किया	25	50
02	कभी–कभी प्राप्त किया	15	30
03	नहीं प्राप्त किया	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि चयनित 50 उत्तरदाताओं में से सरकारी योजनाओं का 50 प्रतिशत लोगों को लाभ प्राप्त किया है. 30 प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता हैं जिनको कभी–कभी लाभ प्राप्त हुआ और 10 प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जिन्हें योजनाओं का लाभ नहीं प्राप्त हुआ है।

सारणी क्र०–06
उच्च जातीय समारोह में सहभागिता

क्र.	समारोह में सहभागिता	संख्या	प्रतिशत
01	हां	35	70
02	नहीं	15	30
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश 30 प्रतिशत उत्तरदाता उच्चजातियों के समारोह में सामिल नहीं होते हैं जबकि 70 प्रतिशत उत्तरदाता सामिल होते हैं।

निष्कर्ष

शताब्दियों के भेदभाव और शोषण के शिकार अनुसूचित जातियों की स्थिति की सुदृढ करने के लिये संविधान में प्रावधान किया गया कि छुआछूत को समाप्त किया गया और सामाजिक प्रगति, अस्मिता के निर्माण का अवसर प्रदान किया गया। अनुसूचित जाति की सामाजिक, आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करने पर यह ज्ञात हुआ कि अनुसूचित जाति के परिवारों में शिक्षा के बारे में स्नातक स्तर तक की शिक्षा थी जिसमें प्राथमिक शिक्षा की ओर ज्यादा लोगों का झुकाव था। व्यावसायिक स्थिति को ज्ञात करने पर यह पाया गया कि अधिकतर उत्तरदाता मजदूरी से अपना जीवन यापन करते हैं। स्वास्थ्य सुविधा के क्षेत्र में अध्ययन से पता चला कि ज्यादातर उत्तरदाता प्रमाणित डाक्टर द्वारा उपचार कराते हैं किन्तु कुछ परिवार पाये गये हैं जो आज भी झाड़–फूंक में विस्वास करते हैं। शासकीय योजना के लाभ के सम्बन्ध में यह पाया गया कि ज्यादा लोगों को लाभ मिल रहा है किन्तु कुछ लोग हैं जिन्हें लाभ नहीं मिल रहा है। उच्चजातीय समारोह में सहभागिता के सम्बन्ध में यह पाया गया है कि ज्यादा लोग सामिल होते हैं कम लोग ही सामिल नहीं हो पाते हैं।

सुझाव

अनुसूचित जाति के सभी लोगों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये उनको प्रेरित करने की आवश्यकता है। उनको सरकारी और गैर सरकारी योजनाओं की जानकारी प्रदान की जाय जिससे ये तथा उनका परिवार अधिक से अधिक लाभान्वित हो सभी वर्गों के लोगों को अंधविश्वास के दुस्परिणामों से अवगत कराना होगा। साफ सफाई से रहने हेतु प्रेरित करना चाहिये समय समय पर चिकित्सा शिविरों का आयोजन किया जाना चाहिये। सरकारी योजनाओं की जानकारी ग्राम पंचायत से व अन्य साधनों द्वारा ग्रामीणों तक पहुंचाया जाना चाहिये।

संदर्भ ग्रंथ

1. समाज शास्त्र का परिचय, डा० डी०एस० बघेल पृष्ठ 83।
2. जी०आर०मदन, समाजकार्य, विवेक प्रकाशन दिल्ली, 2010 पृष्ठ 19।
3. ऋग्वेद
4. डॉ०बी०आर० अम्बेडकर, कांग्रेस और गांधी ने अछूतों के लिये क्या किया, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, 2000 पृष्ठ 254
5. सकुन्तला महावल, अनुसूचित जातियों की जनगणना, प्रकाशन विभाग सूचना और प्रशारण मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली 2011 पृष्ठ 09–25 1
6. सोहन लाल सुमनाक्षर, आदिम चमार जाति इतिहास धर्म व संस्कृति–भारतीय दर्शनसाहित्य अकादमी दिल्ली 2002 पृष्ठ 45
7. प्रदीप आगलावे, शूद्रों की खोज सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली 2006 पृष्ठ 163–164।
8. एक्सप्लोईट्सन एण्डएंट्रोसिटीज आन दलित इन इंडिया, क्रानिकल पब्लिकेशन नई दिल्ली 1994 पृष्ठ 34।
9. भावन खरे, दलितसमाज और शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन, राधा कमल मुखर्जी चिन्तन परम्परा वर्ष 2015 अंक–01 जनवरी–जून 2013 पृष्ठ 146।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बौद्ध और जैन धर्म का शूद्रों पर प्रभाव : एक अवलोकन

समीना नाज
शोध छात्रा, इतिहास विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

भारत में धर्म ने प्राचीन काल से ही समाज को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह न केवल धार्मिक आस्थाओं तक सीमित रहा है, बल्कि राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्रों को भी प्रभावित करता रहा है। भारत अपनी गहन धार्मिक परंपराओं और विभिन्न आध्यात्मिक दर्शनों के सामंजस्यपूर्ण सह–अस्तित्त्व के लिए जाना जाता है। यहाँ विभिन्न धर्मों ने समय–समय पर समाज को नई दिशा दी है और इसके मूलभूत ढाँचे को मजबूत किया है। भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का ढाँचा अत्यंत प्राचीन है, जिसमें शूद्रों को सामाजिक पिरामिड के सबसे निचले स्तर पर रखा गया। वैदिक काल से लेकर महाजनपद काल तक शूद्रों को प्रायः सेवा, श्रम तक सीमित रखा गया। उन्हें शिक्षा, यज्ञ और धार्मिक कर्मकाण्ड में भागीदारी का अधिकार नहीं था। इस सामाजिक विषमता ने समाज में असंतोष और सुधार की आवश्यकता को जन्म दिया। ऐसे समय में बौद्ध और जैन धर्म ने भारतीय समाज को नई दिशा प्रदान की। दोनों धर्मों ने जातिगत ऊँच–नीच का विरोध किया और सभी व्यक्तियों को समान मानने की विचारधारा प्रस्तुत की। बुद्ध ने स्पष्ट कहा है कि जन्म से कोई ऊँच या नीच नहीं होता, कर्म ही मनुष्य को श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ बनाते हैं। जैन धर्म ने भी अहिंसा, करूणा और समानता का संदेश दिया तथा समाज के सभी वर्गों को साधू–साध्वी बनने का अवसर प्रदान किया। इन सुधारात्मक विचारों का शूद्रों की सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा।

इस आलेख में हम बौद्ध और जैन धर्म द्वारा शूद्रों की स्थिति में आए बदलावों का का समग्र अवलोकन करेंगे तथा यह समझने का प्रयास करेंगे कि इन धर्मों ने समाज को अधिक न्यायपूर्ण और समानतामूलक बनाने में कैसी भूमिका निभाई।

मुख्य शब्द– बौद्ध, जैन, शूद्र, सामाजिक, विचारधारा, प्रभाव, धर्मसूत्र।

परिचय

'शूद्र' शब्द का उल्लेख ऋग्वेद, मनुस्मृति, अथर्ववेद, अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रों में किया गया है, जो पाँच शास्त्र हैं, जिन्हें हिंदू धर्म का हिस्सा माना जाता है। पुरुष सूक्त, जिसे 'सृष्टि स्तोत्र' 1028 के नाम से भी जाना जाता है। ऋग्वेद की दसवीं पुस्तक है। यह वर्ण व्यवस्था की चौगुनी उत्पत्ति पर प्रकाश डालता है। इस सूक्त में उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति पुरुष के मुख से हुई, क्षत्रिय की रचना पुरुष की भुजाओं से हुई और शूद्र की उत्पत्ति पुरुष के पैरों से हुई। बाद के वैदिक साहित्य, जिसमें धर्मशास्त्र, पुराण और महाभारत की परंपराएं शामिल हैं, इसी तरह इस सामग्री को पुनः प्रस्तुत करते हैं, लेकिन कुछ मामूली संशोधनों के साथ। सृष्टि के स्रोत को वस्तुतः लाभकारी बिंदु मानना और उसके आधार पर समाज की पदानुक्रमिक संरचना का पालन करना यह दर्शाता है कि ऋग्वैदिक लोगों ने धीरे–धीरे शरीर के निचले हिस्से से शरीर के ऊपरी हिस्से से जुड़े वर्णों को महत्व देना शुरू कर दिया। परिणमस्वरूप ब्राह्मणों को सौंपी गई जिम्मेदारियां अधिक महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ मानी जानें लगीं।

बाद के समय में वर्ण व्यवस्था विकृत हो गई और लोग जाति को वर्ण से भ्रमित करने लगे। वैदिक काल में शूद्रों

को केवल सेवा और श्रम कार्यों तक सीमित रखा गया। उन्हें वेदाध्ययन, यज्ञ और धार्मिक कर्मकाण्डों से वंचित कर दिया गया।

उद्देश्य

1. बौद्ध एवं जैन धर्म का शूद्रों पर हुए प्रभाव का अध्ययन करना।
2. शूद्रों की सामाजिक स्थिति में आए परिवर्तन का अध्ययन करना।

बौद्ध और जैन धर्म के उदयकाल में शूद्रों की सामाजिक दशा–

प्रारंभिक वैदिक सामाजिक संरचना में वर्णों की जो सृष्टि हुई, उसमें एक निश्चित स्थान था। अंगों से उत्पन्न होने वाले सिद्धांतों के अनुसार शूद्रों को चरणोत्पन्न माना गया था। बौद्ध साहित्य में इस संबंध में स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त होता है कि शूद्रों का लक्ष्य क्या था ? जैसा कि अंगुत्तर निकाय में ब्राह्मण के पूछने पर बुद्ध ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों के संबंध में बताया है, लेकिन शूद्र के संबंध में नहीं बताया है।

किंतु यह संकेत अवश्य मिलता है कि ये लोग मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुंभकार, माली का कार्य, आभूशण बनाने का कार्य, लोहे का कार्य करने वाले लोहार आदि शिल्पों को स्वीकार कर जीवन–यापन करते थे। इन्होनें कृषि कर्म को भी अपना लिया था। इनके कार्यों से स्पष्ट विदित होता है कि इनका ग्राम्य–जीवन में बहुत बड़ा योगदान था, किंतु इनमें कुछ ऐसे भी थे, जिनका जीवन अव्यवस्थित था। शूद्र जीविकोपार्जन के लिए इधर–उधर भ्रमण किया करते थे, विभिन्न व्यवसायों के कार्य करते थे, विभिन्न व्यवसायों के आधार पर इनकी पृथक–पृथक जातियाँ बन गई थीं। इस काल में वर्ण संबंधी पूर्ववर्ती मान्यताएँ एवं उनके आधार क्रमशः टूटते जा रहे थे। अतः शूद्रो का स्वरूप अपने व्यवसायों के आधार पर ही पहचाना जाने लगा। इनकी अपनी कोई परिषद नहीं होती थीं। मज्झिमनिकाय में केवल 8 परिषदों का उल्लेख हुआ है– 1. क्षत्रिय परिषद 2. ब्राह्मण परिषद 3. गृहपति परिषद 4. श्रमण परिषद 7. प्रायस्त्रिश परिषद (देवता) 8. ब्रह्म परिषद।

शूद्रों की गणना इनमें से किसी भी परिषद में नहीं हुई है। अतः किसी परिषद के न होने के कारण वे किसी स्थान पर न एकत्र हो सकते थे और न ही कोई निर्णय ले सकते थे। इनकी अन्य जातियां– गोपालक (ग्वाले), पशुपालक या तृणहारक (घसियारे), काष्ठहारक (लकड़हारे), वनकार्मिक आदि भी मिलती हैं। इनकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। किसी प्रकार वे केवल अपनी जीविका चलाते थे।

शूद्र वर्ण में चाण्डाल जाति की स्थिति काफी दयनीय थी। चाण्डालों को खाने के लिए भोजन, पहनने के लिए वस्त्र, रहने के लिए मकान, आने–जाने के लिए सवारी, प्रकाश के लिए तेल आदि कुछ भी नहीं मिलता था। इनकी पारिवारिक स्थिति व्यवस्थित नहीं थी और जीवन नैराश्यपूर्ण था। चाण्डाल लोग दण्ड प्राप्त अपराधियों को शारीरिक दण्ड देने के लिए नियुक्त होते थे। वे लोग शव धोने का कार्य भी करते थे। चित्तसमूत जातक से स्पष्ट हो जाता है कि इनको विद्याध्ययन का अधिकार नहीं था। इनका निवास स्थान ग्राम एवं नगर के बाहर और इन्हें देखना पाप समझा जाता था। देखने पर आंख तक धोने का प्रसंग मिलता है। इनको लोग मारते भी थे, इनकी जाति इनके लिए दुःख का कारण थी। शूद्र आरंभिककाल से ही बड़ी उपेक्षित दशा में रहते आए हैं।

एक ही अपराध के लिए चार वर्णों को अलग–अलग दण्ड निर्धारित किया गया था। ब्राह्मणों को कम से कम सजा दी जाती थी। इसी तरह ब्याज की राशि भी अलग दिखती थी। क्षत्रिय वर्ग की प्रतिष्ठा अब बढ़ गई थी क्योंकि लोहे के औजार अब युद्ध के रूप में इस्तेमाल किए जा रहे थे। उसी तरह, कृषि उपकरण और उत्पादन के विकास के साथ, वैश्य वर्ण की आर्थिक क्षमता भी बढ़ी। गौतम ने शूद्र को गैर–आर्य कहा। सांख्य सूत्र के अनुसार, शूद्र तीन अन्य वर्णों के साथ–साथ ओदन और महावत नामक संस्कारों में भी भाग ले सकते थे। जाति का निर्णय पहले जाति द्वारा अनुलोम और विलोम विवाह के आधार पर किया गया था। शुरूआती बौद्ध ग्रंथो में, हीनसेप (निचली जातियों के लिए) शल्य का इस्तेमाल किया गया है। 5 हीन जातियों का उल्लेख है– चाण्डाल, निशाद, वेना, रथकार, पुक्कस। बुद्ध और महावीर जन्म से जाति के समर्थक नहीं थे, बल्कि कर्म पर आधारित जाति व्यवस्था के पक्षपाती थे।

बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ और सिद्धांत

बुद्ध ने सामाजिक समानता, अहिंसा और करूणा पर बल दिया। उन्होनें जाति–पाति के भेदभाव को अस्वीकार किया और सभी को धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके उपदेश सरल और व्यावहारिक थे, जो आम जनता

के लिए आसानी से समझने योग्य थे।

बुद्ध ने अपने उपदेशों में चार आर्य सत्य और अश्टांगिक मार्ग की शिक्षा दी। चार आर्य सत्य हैं–

1. दुःख : संसार में दुःख व्याप्त है।
2. दुःख समुदय : इस दुःख का कारण तृष्णा (इच्छा) है।
3. दुःख निरोध : तृष्णा के निरोध से दुःख का अंत संभव है।
4. दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा : दुःख के निरोध के लिए अश्टांगिक मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।

अश्टांगिक मार्ग में सही दृष्टि, सही संकल्प, सही आजीविका, सही प्रयास, सही स्मृति और सही समाधि शामिल है।

जैन धर्म की शिक्षाएँ और सिद्धांत

महावीर स्वामी ने अहिंसा को सर्वोच्च नैतिक गुण बताया और अपरिग्रह जैसे अद्भुत महाव्रती सिद्धांत दिए। महावीर का आत्मधर्म सभी जीवों के लिए समान था और उन्होनें 'जियो और जीने दो' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। उनकी शिक्षाएं आज भी समाज में प्रासंगिक हैं। विशेषकर अहिंसा और अपरिग्रह के सिद्धांत, जो सामाजिक समरसता और आर्थिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण हैं।

महावीर स्वामी ने 'त्रिरत्न' या 'तीन रत्नों' का मार्ग प्रस्तुत किया, जो मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है। सम्यक दर्शन (सही दृष्टिकोण), सम्यक ज्ञान (सही ज्ञान) और सम्यक चरित्र (सही आचरण)। इन तीनों के समन्वय से व्यक्ति आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होता है और कर्म बंधनों से मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

महावीर ने जाति, वर्ग और लिंग के भेदभाव का विरोध किया और सभी के लिए मोक्ष प्राप्ति के द्वार खोले। उन्होनें स्त्रियों को भी धर्म में समान अधिकार दिए और उन्हें संन्यास धारण करने की अनुमति दी, जो उस समय की सामाजिक मान्यताओं के विरूद्ध था। उनकी शिक्षाएं नैतिकता, सदाचार और आत्मसंयम पर केंद्रित थीं, जो आज के समाज में भी प्रासंगिक हैं।

बौद्ध धर्म का शूद्रों पर प्रभाव

गौतम बुद्ध ने स्पष्ट रूप से कहा कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्म से तय होती है, जन्म से नहीं। उनके अनुसार, ''न जाति, न कुल, न वर्ण, मनुष्य को महान बनाते हैं, मनुष्य को महान बनाते हैं, उसके उत्तम कर्म''। इस विचारधारा ने शूद्रों को समाज में सम्मान पाने का अवसर दिया। बौद्ध संघ में प्रवेश के लिए कोई जातिगत रोक–टोक नहीं थी। शूद्रों को भिक्षु और भिक्षुणी बनने का समान अवसर मिला। इससे उन्हें शिक्षा, अनुशासन और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग मिला। उदाहरणस्वरूप उपालि जो पहले नाई थे, बुद्ध के प्रमुख शिष्यो में से एक बने। संघ में प्रवेश के बाद शूद्रों को पालि भाषा में शिक्षा मिली। वे त्रिपिटक का अध्ययन कर सके। उन्होनें बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई।

बौद्ध धर्म के अनुयायी राजाओं और आम जनता में फैले, जिससे समाज में शूद्रों को नया सम्मान मिला। अशोक के काल में शूद्रों को राज्य की नीतियो में समान अवसर मिला। विहारो में शूद्रों को सेवा कार्य, कृषि, निर्माण और अन्य कार्यो में रोजगार मिला। व्यापारिक गतिविधियों में भागीदारी से उनकी आर्थिक स्थिति सुधरी।

जैन धर्म का शूद्रों पर प्रभाव

महावीर स्वामी ने सभी प्राणियों में आत्मा की समानता का विचार दिया। शूद्रों को भी धार्मिक अधिकार प्रदान किए गए। जैन साधु–साध्वी बनने में जाति कोई बाधा नहीं रही। जैन धर्म ने व्यापार, शिल्प और उद्यमिता को महत्व दिया। शूद्रों को प्रोत्साहित किया गया कि वे व्यापार और कारीगरी में लगकर अपनी स्थिति सुधारें। कई शूद्र समुदाय बाद में धनी व्यापारी वर्ग का हिस्सा बने। जैन मठो में शूद्रों का प्रवेश संभव हुआ, उन्होनें धार्मिक उत्सवों और पूजा–अर्चना में भाग लिया। कला और स्थापत्य में भी उनकी भागीदारी रही। जैन आचार्यों ने जातिगत अहंकार को त्यागने पर बल दिया। शूद्रों को समाज में अधिक सम्मान और समानता का अनुभव होने लगा।

शूद्रों के लिए रोजगार और शिक्षा के अवसर उत्पन्न हुए। उन्होनें स्वयं को केवल सेवक न मानकर समाज में सक्रिय सदस्य के रूप में देखना शुरू किया। आर्थिक रूप से सशक्त होकर उन्होनें अपने जीवन स्तर में सुधार किया। मौर्य

साम्राज्य में विशेषकर अशोक के समय शूद्रों को प्रशासनिक और सैनिक पदों पर अवसर मिला। राज्य ने धर्म प्रचार में उनकी भागीदारी को मान्यता दी। सम्राट अशोक के शिलालेखों में सभी वर्गों के कल्याण की बात की गई है।

निष्कर्ष

हालाँकि बौद्ध और जैन धर्म ने समाज में बड़ा परिवर्तन किया, लेकिन वर्ण व्यवस्था पूरी तरह समाप्त नहीं हुई। कई क्षेत्रो में सामाजिक भेदभाव बना रहा, परंतु इन धर्मों ने समाज में समानता की नींव रखी। शूद्रों को पहली बार यह एहसास हुआ कि वे भी समाज के सम्माननीय अंग हैं और अपने कर्मों से महान बन सकते हैं। इन धमों ने शूद्रों को वह सामाजिक और धार्मिक सम्मान प्रदान किया, जिससे वे लंबे समय तक वंचित थे। उन्हें शिक्षा, आध्यात्मिक ज्ञान और आर्थिक अवसरों तक पहुंच मिली।

इस प्रकार, बौद्ध और जैन धर्म का शूद्रों पर प्रभाव भारतीय इतिहास में सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ।

संदर्भ

1. शर्मा, आर.एस., (2019), प्राचीन भारत में शूद्र : ल्गभग 500 ई. तक निम्न वर्गों की स्थिति का सर्वेक्षण, मोतीलाल नेहरू बनारसीदास, दिल्ली।
2. थापर, रोमिला, (1975), भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. श्रीकश्श्ण आनंद, (2019), ''गौतम बुद्ध और उनके उपदेश'', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. विद्यालंकार सत्यकेतु, (2005), प्राचीन, धार्मिक, सामाजिक और भारत का आर्थिक जीवन, जीवन सरस्वती सदन, मसूरी।
5. जैन कैलाश चन्द, (2023), ''जैन धर्म का इतिहास'', द डीके प्रिंटवर्ल्ड।
6. चौधरी महेन्द्र, (2017), ''भारत में बौद्ध धर्म के उदय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी।
7. पाटिल एस, (2019), दास– शूद्र दासता : भारतीय दासता और सामंतवाद की उत्पत्ति और उनके दर्शन पर अध्ययन, एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट, नई दिल्ली।
8. ऋग्वेद (सायन भाष्यसंहिता), सं. एफ मैक्समूलर, द्वितीय संस्करण, 2018।
9. गौतमधर्मसूत्राणि : अनुवाद, पाण्डेय, उमेशचंद्र, चौखम्बा संस्कृत श्रृंखला, वाराणसी, 1966।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन कौशाम्बी : एक महानगर के रूप में आर्थिक समृद्धि और व्यापारिक गतिविधियों का अध्ययन

प्रज्ञा तिवारी
शोधछात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

सार

कौशाम्बी उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले के दक्षिण–पश्चिम में यमुना नदी के किनारे स्थित है। अपने पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक वैभव के कारण यह प्रारम्भ से ही पुरातत्वविदों, इतिहासकारों एवं सामान्य जिज्ञासुओं का केंद्र रहा है। यह प्राचीन काल में वत्स साम्राज्य की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध थी, जो कि तत्कालीन 16 महाजनपदों में से एक थी। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यहाँ का राजा उदयन था। गंगा यमुना के दोआब में स्थित होने के कारण यह एक प्रमुख व्यापारिक एवं वाणिज्यिक केन्द्र व महत्वपूर्ण संचार बिन्दु के रूप स्थापित हुआ तथा प्राचीन भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्गों से जुड़ा। यहां से प्राप्त पुरातात्विक अवशेष, विविध मुद्राएं, धार्मिक संस्थानों के अवशेष तथा साहित्यिक साक्ष्यों से इसकी राजनैतिक ही नहीं, अपितु आर्थिक सक्रियता का भी ज्ञान होता है। इस शोधपत्र का उद्देश्य कौशाम्बी की संरचनाओं– व्यापारिक मार्ग, शिल्प व उत्पादन जैसे विभिन्न आर्थिक पक्षों का अध्ययन करना है तथा यह समझने का प्रयास करना कि किस प्रकार कौशाम्बी कि आर्थिक संरचना विकसित हुई और कैसे यह एक समृद्ध नगर के रूप में विकसित हुआ। इस शोधपत्र में कौशाम्बी का एक प्रमुख महानगर तथा प्राचीन भारतीय व्यापार में इसकी भूमिका का उल्लेख करते हुए इसके विभिन्न आर्थिक पक्षों का उल्लेख करते हुए इसकी आर्थिक स्थिति का विश्लेषण किया गया है।

शब्द कुंजियाँ– कौशाम्बी, व्यापारिक संपर्क, व्यापार एवं वाणिज्य, प्रमुख महानगर।

प्रस्तावना

कौशाम्बी प्राचीन भारत में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नगर रहा है। कनिंघम ने इसकी की पहचान प्रयागराज से 50 किलोमीटर दक्षिण–पश्चिम में यमुना नदी के किनारे स्थित आधुनिक कोसम नामक ग्राम से की है। अनेक ऐतिहासिक स्रोतों में इसकी राजनैतिक, सांस्कृतिक व आर्थिक महत्ता का उल्लेख प्राप्त होता है। कौशाम्बी का सर्वप्रथम उल्लेख उत्तरवैदिक काल मे मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में ''प्रोतिकौसरबिंदी'' का उल्लेख कौशाम्बी के निवासी के रूप में मिलता है। कौशाम्बी प्राचीन भारत के सोलह महाजनपदों में एक वत्स साम्राज्य की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध था। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यहाँ के राजा के रूप में उदयन का नाम मिलता है। तत्पश्चात यह नगर मौर्य, शुंग, कुशाण तथा गुप्त साम्राज्य के आधिपत्य में आया तथा निरन्तर अपनी प्रगति की ओर अग्रसारित रहा। प्राचीन काल में यह भारत के प्रमुख मार्गों से जुड़ते हुए एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र के रूप उभरा। तत्कालीन कौशाम्बी में हो रही विभिन्न आर्थिक गतिविधियों के कारण बौद्ध ग्रंथों में इसकी गणना छह प्रमुख महानगरों में से एक के रूप में की गई है। यहाँ वास्तुकला एवं शिल्पकला का भी अत्यंत विकास हुआ। यहाँ के पुरातात्विक साक्ष्यों से यहाँ की श्रेणियों व शिल्पियों की जानकारी भी प्राप्त होती हैं। यहाँ मौर्योत्तर काल में समृद्ध जीवन के अवशेष पाए गये हैं। यहां के उत्खनन से प्रस्तर प्रतिमाएं, मृण्मूर्तियाँ, सिक्के

अभिलेख तथा मुहरें प्राप्त हुई हैं, जो प्राचीन काल में कौशाम्बी की आर्थिक समृद्धि की द्योतक हैं।

प्रमुख व्यापारिक मार्ग व केन्द्र

कौशाम्बी यमुना नदी के किनारे स्थित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यह नगर विभिन्न व्यापारिक मार्गों के मिलन स्थल का केंद्र बिंदु बना। जो इस नगर की आर्थिक उन्नति में सहायक बना। द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व में व्यापार की प्रगति के कारण व्यापारिक पथों का अत्यधिक महत्व था। इस काल में उत्तर भारत के सभी व्यापारिक नगर विभिन्न मार्गों द्वारा एक–दूसरे से जुड़े हुए थे। उत्तर भारत को सीधे दक्षिण भारत से जोड़ने वाले भी कई स्थल एवं जल मार्ग थे। इस समय प्राचीन भारत में कई प्रमुख व्यापारिक मार्ग थे। सबसे प्रमुख मार्ग जो कि उत्तर भारत को दक्षिण भारत से जोड़ता था, वह था प्रतिष्ठान से श्रावस्ती जाने वाला मार्ग। यह राजमार्ग माहिष्मति, उज्जयिनी, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी और साकेत से होकर गुजरता था। दूसरा प्रमुख राजमार्ग दक्षिण–पश्चिम से दक्षिण पूर्व को जोड़ने वाला मार्ग था जो कि भृगुकच्छ से कौशाम्बी होते हुए ताम्रलिप्ति की ओर जाता था। वाराणसी से उज्जयिनी जाने वाले व्यापारी इसी मार्ग का उपयोग करते थे। तीसरा पूर्वी भारत को पश्चिमी भारत से जोड़ने वाला व्यापारिक पाटलिपुत्र से सिंध के मुहाने पर पत्तल पहुँचता था। चौथा चम्पा से पुष्कलावती की ओर जाने वाला मार्ग था जिसका उल्लेख मेगास्थनीज ने भी किया है। पांचवां मार्ग भृगुकच्छ से पुष्कलावती की ओर जाता था। ऐसे ही कई अन्य व्यापारिक मार्ग भी थे, जो कौशाम्बी से होकर गुजरते थे। प्राचीन भारतीय व्यापारिक मार्गों के कौशाम्बी से होकर गुजरने के कारण वह एक प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग एवं समृद्ध व्यापारिक केंद्र के रूप में विकसित हुआ। यमुना नदी के तट पर स्थित होने के कारण यहाँ व्यापार व वाणिज्य की बहुत उन्नति हुई। इसी कारण इसे ''वत्स पत्तन'' भी कहा गया है। हर्शकृत ''रत्नावली'' में श्रीलंका की राजकुमारी के समुद्र में डूबने की दुर्घटना का उल्लेख मिलता है। जिसे कौशाम्बी के व्यापारियों ने बचाया था।[1] इससे तत्कालीन कौशाम्बी के अंतर्देशीय व्यापार का संकेत मिलता है। छठवीं शताब्दी ईसा–पूर्व के आस–पास इसके म्यांमार से भी व्यापारिक सम्बन्धों का प्रमाण प्राप्त होता है।[2]

व्यापार हेतु सुदूर–विस्तृत स्थल और जल मार्गों पर सार्थवाहों के उद्यम से इस नगर को समृद्धि प्राप्त हुई। यह विभिन्न व्यापारिक कारवों का शी प्रमुख पड़ाव था।[3] जहाँ से कोशल और मगध के व्यापारी व यात्री आवागमन करते थे। यहाँ अनेक धनी व्यापारी निवास करते थे। साहित्यिक स्रोतों में यहाँ के कई व्यापारियों जैसे घोषित, कुक्कुट, तथा पावरिय आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। जिन्होंने यहाँ मठों एवं विहारों का निर्माण कराकर उसे बौद्ध संघ को दान में दिया। कौशाम्बी में बौद्ध मठों को दिए गये दान तत्कालीन कौशाम्बी की समृद्धि की ओर संकेत करते हैं।

कृषि व्यवस्था

यह प्राचीन कौशांबी की अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार रही है। गंगा–यमुना दोआब की उपजाऊ भूमि पर स्थित होने के कारण यह नगर जलवायु और भौगोलिक दृष्टि से अत्यंत अनुकूल था। पुरातात्त्विक प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि यहाँ सुव्यवस्थित कृषि प्रणाली विकसित हो चुकी थी, जो न केवल स्थानीय उपभोग के लिए बल्कि व्यापार हेतु भी अन्न उत्पादन में सक्षम थी। कौशांबी के उत्खनन में लोहे के हँसिए, फावड़े, हल के फाल, तथा अन्य कृशि उपकरण प्राप्त हुए हैं जो तत्कालीन काल में लोहे पर आधारित कृषि तकनीक संकेत देते हैं। यह उपकरण प्रारंभिक ऐतिहासिक काल (600 ई.पू. से 300 ई.) से संबंधित हैं। यह कृषि प्रणाली की तकनीकी परिपक्वता को दर्शाते हैं। कृषि के विकास में सिंचाई की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है,जो कि कुओं, जलाशयों एवं नालियों के द्धारा होता था। ये जल–स्रोत कृषकों को वर्ष भर सिंचाई की सुविधा प्रदान करते थे। इसके अतिरिक्त उत्खननों में कृत्रिम जलधाराओं के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं जो सुनियोजित जलप्रबंधन प्रणाली को दर्शाते हैं। कौशांबी से प्राप्त मिट्टी के अनाज भंडारण पात्र , मिट्टी के कुठले, तथा अग्नि से झुलसे हुए अन्न के दाने यह संकेत देते हैं कि अन्न भंडारण और प्रसंस्करण की व्यवस्था यहाँ विकसित थी। प्राचीन आवासीय संरचनाओं में पाए गए ये भंडारण साधन स्थानीय जनजीवन में कृषि की केंद्रीय भूमिका को दर्शाते हैं। उत्खनन के दौरान जले हुए गेहूं, जौ, चावल आदि के दानों के प्रमाण मिले हैं, जो इस क्षेत्र की कृषि विविधता को दर्शाते हैं। ये फसलें वत्स जनपद की खाद्य संस्कृति और अर्थव्यवस्था की रीढ़ थीं।

वस्त्र

शतपथ ब्राह्मण में ''कौशाम्बेय'' वस्त्र धारित एक शिष्य का उल्लेख मिलता है। वस्त्र के नाम के आधार पर अनुमान

लगाया जा सकता है कि यह वस्त्र कौशाम्बी में निर्मित होता था।[9] कौशाम्बी में सूती वस्त्र का भी उत्पादन होता था, जिसका उल्लेख हमे कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलता है, जहाँ वत्स देश में पैदा होने वाले कपास के कपड़ों को सर्वोत्तम कहा गया है।[10] अंगुत्तर निकाय में यहाँ के उच्च कोटि के रत्नों का भी उल्लेख मिलता है।

मृदभांड

प्राचीन काल में कौशाम्बी में मृदभांड परम्परा का विकास हुआ। ये मृदभांड कृषि, वाणिज्य और सामाजिक वर्गों के बीच उत्पादन और व्यापार से संबंधित गतिविधियों का भी संकेत देते हैं। यहाँ से कई मृदभांड संस्कृतियों चित्रित धूसर पात्र परंपरा, कृश्ण–लोहित पात्र परम्परा, उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा, तथा उत्तर एन. बी. पात्र परम्परा के साक्ष्य प्राप्त होते हैं।[11] यहाँ से ''उत्तरी काली चमकीली पात्र'' परम्परा के पात्र अन्य मृदभांडों की अपेक्षा बहुतायत में मिलते हैं। जिनको मार्शल ने ''काचित पात्र परम्परा'' कहा है। इनका कालानुक्रम 605 ईसा–पूर्व से 45 ईसा–पूर्व के मध्य निर्धारित किया गया है।[12] इन मृदभांडों में थाली, कटोरे, ढक्कन, कलश तथा हांड़ियाँ आदि प्रमुख पात्र हैं। जिन पर विभिन्न प्रकार की चित्रकारी जैसे पट्टी अथवा धारियाँ, बिंदु समूह, रेखाएं, संकेंद्रित वृत्त, प्रतिच्छेदित वृत्त, अर्धवश्त लहरिया तथा पाश आदि चित्रित मिलते हैं। कुछ पात्रों पर अंदर की तरफ चित्रण पाया गया है।[13] संभव है, कि ये मृदभांड कौशाम्बी से अन्य जगहों को निर्यात किए जाते होगें। इनकी उत्कृष्ट बनावट व तकनीक के आधार पर अनुमान लगाया जाता है कि ये बर्तन मुख्यतः अश्जिात वर्ग के व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल किये जाते थे।

मुद्राएं

यहाँ के उत्खनन से कई प्रकार की मुद्राएं प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं के माध्यम से प्राचीन कौशाम्बी की आर्थिक समृद्धि एवं अन्य कई पक्षों पर प्रकाश पड़ता है। इनमें रजत एवं ताम्र आहत मुद्राएं, यहाँ के स्थानीय सिक्के तथा कुशाण एवं मघ राजाओं के सिक्के उल्लेखनीय हैं। कौशाम्बी सार्थवाहों एवं श्रेणियों का भी एक प्रधान केंद्र था। कौशाम्बी से प्राप्त एक तांबे के सिक्के पर ''गन्धिकनम'' का लेख उत्कीर्ण है। जिसे कनिंघम ने द्वितीय शताब्दी ईसा–पूर्व का बताया है।[1]t संभव है कि यह सिक्का गांधिकों की श्रेणी द्वारा जारी किया गया हो।

वास्तुकला व शिल्पकला

द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के आस पास अन्य स्थानों की तरह यहाँ शी कलाकृतियों का सृजन हो रहा था। यहाँ की शिल्पकला अपने विकास की ओर अग्रसर थी, जिसका प्रमाण घोषिताराम से प्राप्त विभिन्न कलाकृतियों से प्राप्त होता है। जिन पर बुद्ध का प्रतीकों के माध्यम से अंकन किया गया है। कौशाम्बी के घोषिताराम, रक्षा प्राचीर, तथा राजप्रासाद क्षेत्रों में हुए उत्खनन से तत्कालीन समृद्ध वास्तुकला व शिल्पकला का प्रमाण प्राप्त होता है। कौशाम्बी कि रक्षा–प्राचीर पर बने बुर्ज और कंगूरे तत्कालीन वास्तुकला की विशिष्टता को दर्शाते हैं।[13] यहाँ से वृहद संख्या में प्राप्त मणि–माणिक्य, मिट्टी तथा हड्डी के बने हुये मनके तत्कालीन निर्माता शिल्पियों के हस्तलाघव के मूक साक्षी हैं।

मृण्मूर्तिकला

यहां से विभिन्न आकार–प्रकार की मृण्मूर्तियों की शी प्राप्ति हुई है। जिनका निर्माण संभवतः धार्मिक प्रयोजनों, सजावट तथा खिलौने आदि के रूप में किया जाता था। इन मृण्मूर्तियों के अधय्यन से ज्ञात होता है कि यहाँ मृण्मूर्तियों का निर्माण प्राक–मौर्य काल से ही हो रहा था। शुंग काल में तो यह प्रसिद्ध मृण्मूर्तिकला के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। जिनमें मानव एवं पशु–पक्षियों की मूर्तियां विशेष हैं। जिनके कुछ अच्छे नमूने हमे विभिन्न संग्रहालयों जैसे इलाहाबाद संग्रहालय, भारत कला भवन (बनारस), पटना संग्रहालय, तथा कलकत्ता के संग्रहालय में प्राप्त होते हैं।[15] यहाँ की मशतिका कला के विकास में यहाँ से गुजरने वाले व्यापारिक मार्गों का भी विशेष योगदान था। कौशाम्बी के अतिरिक्त इसके आस–पास के क्षेत्रों जैसे मथुरा, पटना, बुलंदीबाग, से भी असंख्य मृण्मूर्तियों की प्राप्ति हुई है। संभव है ये मृण्मूर्तियाँ यहां व्यापारिक गतिविधियों के दौरान लाई गई हो।

प्रस्तरकला

कुशाण काल में प्रस्तर कला का महत्व अधिक बढ़ा और मृण्मूर्तिकला की क्षति हुई तथा कौशाम्बी तत्कालीन समय

में इस कला के एक छोटे केंद्र के रूप में दिखाई देता है।[16], यहाँ ब्राह्मण, जैन तथा बौद्ध धर्म से संबंधित विभिन्न प्रस्तर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। जिनकी अपनी अनूठी विशेषता है। मथुरा एवं सारनाथ की भांति यहां भी एक अलग कला शैली का विकास हो रहा था। मौर्यकाल में पाटलिपुत्र का महत्व अधिक बढ़ने के कारण कौशाम्बी की स्थिति में गिरावट आयी। गुप्तकाल तक कौशाम्बी कला एक प्रमुख केंद्र था। छठवीं शताब्दी ईस्वी के प्रथम दशक में हुए हूणों के आक्रमण[17] के परिणामस्वरूप यहाँ की कला परम्परा की क्षति हुई तथा वह अपने पतन की ओर अग्रसर हुई। सातवीं शताब्दी में आये चीनी यात्री ने इस नगर को उजड़ा हुआ पाया।[18] जिसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि गुप्तकाल के बाद यह नगर निरन्तर अपने पतन की बढ रहा था।

प्रमुख महानगर

बौद्ध काल में वत्स साम्राज्य की राजधानी, तथा विभिन्न कालों के उत्कीर्ण अभिलेख, मुद्राएँ, मृण्मूर्तियों एवं प्रस्तर प्रतिमाएँ तत्कालीन समय में इस नगर के प्रशासनिक, राजनैतिक व आर्थिक केन्द्र के रूप में इसकी महत्वपूर्ण स्थिति का बोध कराते है। एक नगरीय विशेषता के कुछ प्रमुख घटक जैसे–वहाँ की भौगोलिक स्थिति, कृशि, अधिशेष उत्पादन, जनसंख्या, उद्योग एवं व्यापार, शिक्षा, प्रशासन, रक्षा–प्रणाली, धार्मिक स्थिति आदि होते हैं। और कौशांबी में लगभग ये सभी घटक पाए जाते हैं, जिसका प्रमाण विभिन्न साहित्यिक स्रोतों एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से प्राप्त होता है। यमुना नदी के किनारे स्थित होने के कारण यहाँ की भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। जिससे यहाँ प्राचीन काल में उत्कृश्ट कृशि व्यवस्था, तथा अधिशेष उत्पादन का अनुमान लगाया जा सकता है। पूर्व में गंगा एवं पश्चिम में यमुना नदी के किनारे स्थित होने के कारण यह प्राचीन भारत के प्रमुख व्यापारिक मार्गों का केंद्र बना। यह वैदिक काल से ही शिक्षा का प्रमुख केंद्र था। प्राचीन काल से ही यहाँ ब्राह्मण, जैन एवं बौद्ध तीनों धर्मों के उपस्थित होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। इन्हीं सब कारणों से बौद्ध ग्रंथों में इसका उल्लेख प्राचीन भारत के एक प्रमुख नगर के रूप में मिलता हैं।[20]

निष्कर्ष

प्राचीन कौशाम्बी नगरी के आर्थिक महत्वों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि यह नगर केवल राजनैतिक व धार्मिक ही नहीं अपितु आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत समृद्ध और विकसित था। कौशाम्बी कि मुद्राएं, वास्तुकला, शिल्पकला, श्रेणियाँ, व्यापारिक मार्गों तथा तत्कालीन विद्यमान धार्मिक संस्थानों ने इसे एक बहुआयामी आर्थिक संरचना वाले नगर के रूप में स्थापित किया। यहां की विभिन्न मुद्राएँ, उद्योग, शिल्पकला, वस्त्र–उत्पादन आदि यहाँ की आर्थिक समृद्धि को स्पष्ट करते हैं। यहां के धार्मिक संस्थानों को दिए जाने वाले दान और उनकी आर्थिक भागीदारी धर्म और अर्थ के गहरे संबंध को दर्शाती है। यहाँ की कृषिव्यवस्था केवल आत्मनिर्भरता का साधन नहीं थी, बल्कि उसने इस नगर को एक आर्थिक केंद्र के रूप में स्थापित किया। इसका व्यापारिक संपर्क न केवल उत्तर भारत बल्कि मध्य और दक्षिण भारत के क्षेत्र से भी था। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह केवल क्षेत्रीय ही नहीं, अपितु अंतर–क्षेत्रीय व्यापारिक गतिविधियों का भी केंद्र था।

अतः कौशाम्बी की आर्थिक महत्ता एक समग्र और संतुलित शहरी अर्थव्यवस्था का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जहाँ शासन, व्यापार, शिल्प और समाज सभी घटक आपसी सहकारिता से कार्य करते थे।

संदर्भ

1. हर्षकृत, रत्नावली, प्रथम अंक
2. कनिंघम, एंशियंट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृष्ठ संख्या–454।
3. चंद्र मोती, ट्रेड एंड ट्रेड रूट्स इन एंशियंट इंडिया, 1977, पृष्ठ संख्या–16।
4. विनयपिटक, चुल्लवग्ग 1. / 4 / 11,राहुल सांकृत्यायन, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, 1934।,
5. शर्मा, जी.आर., एक्सेवेशन एट कौशाम्बी, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, इलाहाबाद, 1960, पृष्ठ संख्या–48।
6. वही पृष्ठ संख्या–70।
7. वही पृष्ठ संख्या–60।
8. वही पृष्ठ संख्या–88,119।

9. शतपथ ब्राह्मण, काण्ड 12, अध्याय 22 श्लोक 23, माध्यन्दिन स्कूल, अनुवादक– जूलियस एगेलिंग, क्लेरेंडन प्रेस, ऑक्सफोर्ड, 1900, वाल्यूमः5।
10. डेविड रिज, बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ संख्या–104।
11. कनिंघम, कॉइन्स ऑफ एंशियंट इंडिया, पृष्ठ संख्या–63।
12. शर्मा, जी.आर., एक्सेवेशन एट कौशाम्बी, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, इलाहाबाद, 1960।
13. पाण्डेय, जे. एन., पुरातत्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या– 630।
14. शर्मा, जी.आर., एक्सेवेशन एट कौशाम्बी, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, इलाहाबाद, 1960 पृष्ठ–97।
15. पाण्डेय, जे. एन., पुरातत्व विमर्श, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या– 641।
16. काला सतीश चंद्र, टेराकोटा फिगरींस फ्रॉम कौशाम्बी, द म्युनिसिपल म्यूजियम,। इलाहाबाद,1950, पृष्ठ संख्या–11।
17. वी. एस. अग्रवाल, भारतीय कला. पृष्ठ संख्या–329–30।
18. शर्मा, जी.आर., एक्सेवेशन एट कौशाम्बी, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, इलाहाबाद, 1960 पृष्ठ–15।
19. वाटर्स थॉमस, ऑन युवानच्वांग स ट्रैवल्स इन इंडिया 629–645 ए. डी., रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लंदन, 1904, पृष्ठ–366।
20. सुत्तपिटक, दीघनिकाय,2,4।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

अंधेर नगरी : तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक व्यवस्था का दर्पण

डॉ. रजिंदर कौर
एसोसिएट प्रोफेसर
माता सुंदरी कॉलेज फॉर वुमैन,
दिल्ली विश्वविघालय

शोध-सार

भारतेंदु का युग, वह युग था जब भारत परतंत्र था तथा अंग्रेजों द्वारा भारतीयों का आर्थिक शोषण हो रहा था। भारतेंदु अपने देश की दशा से भली–भांति परिचित थे। उन्होनें अंधेर नगरी में तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था तथा सामाजिक परिवेश का चित्रण किया है। अंधेर नगरी के माध्यम से उन्होनें मौजूदा व्यवस्था का पर्दाफाश किया है। भारतेंदु ने इसमें हास्य, व्यंग्य, विडंबना तथा विद्रूप आदि सभी युक्तियों का सफलतापूर्वक उपयोग किया है।

बीज शब्द– बाजार, टका, राजसभा, राजा, कोतवाल, गुरुजी, महंत।

प्रस्तावना

अंधेर नगरी प्रहसन भारतेंदु ने अपने समय की विसंगतियों को चित्रित करने के लिए लिखा। अंधेर नगरी का क्लेवर अत्यंत संक्षिप्त है लेकिन यह हास्य और व्यंग्य से परिपूर्ण है, जिसमें सामाजिक तथा राजनीतिक परिवेश पर तीखे कटाक्ष किए गए हैं। ये कटाक्ष समय के साथ पुराने नहीं पड़े बल्कि आज की परिस्थितियों के अनुकूल तथा सटीक हैं। भारतेन्दु अंग्रेजों की काली चालों से भली–भांति परिचित थे। सामंती व्यवस्था की विसंगतियों को उभारकर तथाकथित न्याय और आजादी की इतनी दूरंदेशी से खिल्ली उड़ाई कि यह प्रहसन आज भी हमें मनोरंजन देने के साथ–साथ आत्म सचेत करता है।[1]

भारत का प्राचीन गौरव मटियामेट होते देख एक भारतीय कलाकार का हृदय हाहाकार कर उठा और उसकी सुरक्षा के लिए यथाशक्ति उन्होनें प्रयत्न किया। इस खातिर उन्होनें खुलकर व्यंग्य की फुलझड़ी छोड़ी है।[2]

भारतेंदु ने लोकप्रचलित उक्ति ''अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा'' को आधार बनाकर 1881 में काशी में नेशनल थिऐटर की स्थापना पर एक ही रात में अंधेर नगरी को लिखा और इस संस्थान में इसका मंचन भी किया। कहा जाता है कि बिहार प्रांत के किसी जमींदार के अन्याय को लक्ष्य कर उसे सुधारने के लिए इसकी रचना हुई। भारतेंदु ने इस लोककथा को नाट्य रूप बिहार प्रांत के किसी जमींदार के अन्याय को लक्ष्य कर दिया था।[3]

पूरा प्रहसन छः अंकों में विभाजित है। पहले अंक में महंत अपने दो शिष्यों गोवर्धनदास तथा नारायण दास के साथ भजन गाते हुए एक नगर जो कि दूर से देखने में बहुत सुंदर और जिसमें रहने वाले लोग संपन्न लगते हैं, में प्रवेश करते हैं। महंत अपने दोनों शिष्यों को दो अलग–अलग दिशाओं में भिक्षा मांगने के लिए भेजते हैं। भिक्षा के लिए संयमी, धीर, लालच में न पड़ने वाले नारायण दास को पूरब तथा लोभी प्रवशत्ति के गोवर्धनदास को लोभ न करने की शिक्षा देते हुए पश्चिम दिशा में भेजते हैं–

''लोभ पाप का मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहिं कीजिए, यामै नरक निदान।।[4]

महंत का गोवर्धनदास को लोभ न करने की चेतावनी देना वस्तुतः नैतिक भावना के प्रति हमारी संवेदना को जाग्रत करने की प्रस्तावना है। उस समय सामाजिक तथा प्रशासनिक जीवन के ताने–बाने में स्वार्थ तथा लोभ ऐसे समाए हुए थे कि लोग देश, संस्कृति तथा मान–मर्यादाओं को बेच देने पर आमादा थे।

दूसरा अंक बाजार के दृश्य को प्रस्तुत करता है, जहाँ हर चीज टके सेर बिकती है। सामान बेचने वाले अपने सामान की विशेषताओं का वर्णन अपनी भाषा में कर रहे हैं। कबाव वाला, कुंजडिन, हलवाई, मुगल, चूरन वाला आदि। सभी लालच देकर अपने सामान की तरफ ग्राहक को आकर्शित कर रहे हैं। इस बाजार में जरूरत का हर सामान टके सेर बिक रहा है। इस बाजार की खास बात यह है कि यहां जात भी बिकती है–

जात ले जात, टके सेर जात।[5]

गोवर्धनदास इस बाजार से इतना आकर्शित होता है कि भिक्षा में मिले पैसे से ढेर सारी मिठाइयां खरीद लेता है। यह अंक व्यंग्य की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं इस अंक में टके की शक्ति का प्रदर्शन किया गया है कि यहां सस्ती और बहुमूल्य सभी वस्तुएं टके सेर बिकती है। इस टके में इतनी ताकत है कि जात भी बिक रही है। इस अंक में भारतेंदु ने राजनीति में व्याप्त भ्रश्टाचार, कुव्यवस्था का वर्णन किया है।

चना हाकिम सब जो खाते। सब पर दूना टिकस लगाते।
चना जोर गरम टके सेर।[6]

उस समय अंग्रेजी प्रशासन के रहमों पर पलने वाले हाकिमों के अत्याचारों का आम आदमी पर इतना अधिक कहर बरसता था कि वे उनके खिलाफ कुछ भी नहीं बोल पाते थे। भारतेंदु ने इन हाकिमों के अत्याचारों का खुलासा करने का प्रयास किया है।

मुगल के माध्यम से तकदीर के भरोसे बैठने वाले हिंदुस्तान के आदमियों की कमजोरी तथा दब्बूपन को खोलकर रख दिया है–

''आपका ऐसा मुल्क जिसमें अंगरेज का भी दांत खट्टा हो गया नाहक का रूपया बरबाद किया। बेवकूफ बना। हिंदुस्तान का आदमी लकलक हमारे यहां का आदमी बुबुक–बुबुक।[7]

अंग्रेज हमेशा भारत को लूटना चाहते थे। उनका मुख्य उद्देश्य यहां के धन को विदेश लेकर जाना था। उन्होनें भारतीयों की समस्याओं की तरफ कभी कोई ध्यान नहीं दिया। पाचक वाले के माध्यम से भारतेंदु ने अंग्रेजों की इस नीति के विरूद्ध आवाज उठाई–

''चूरन जब से हिंद में आया।
इसका धन बल सभी घटाया।।[8]

जिस देश में शासक ही स्वार्थी हो वहां व्यवस्था को चलाने वाले दूसरे अधिकारियों का भी चारित्रिक दृष्टि से पतन हो जाना स्वाभाविक ही है। तभी ऐसी अंधेर नगरी में सभी यहां तक कि पुलिस भी भ्रश्टाचार में लिप्त है और ईमानदारी से अपने कर्तव्यों का पाालन नहीं करती–

''चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।''[9]

इस प्रकार, भारतेंदु ने अंग्रेजों पर कस–कर प्रहार किया है।

तीसरे अंक में महंत और उनके शिष्य मिलते है। महंत द्वारा पूछने पर गोवर्धनदास उन्हें पूरी नगरी के बारे में बताता है कि यहां हर चीज टके सेर बिकती है, जिस कारण वह इतनी मिठाईयां खरीद लाया। महंत गोवर्धनदास को उस नगरी में न रहने की शिक्षा देते हैं, लेकिन गोवर्धनदास द्वारा मना करने पर वह अपने दूसरे शिष्य नारायणदास के साथ उस नगरी को छोड़कर चले जाते हैं।

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।[10]

वास्तव में पूरे नाटक में महंत ही ऐसे पात्र हैं, जो बुद्धि से काम लेते हैं। बुद्धि हमेशा उन्नति की ओर ले कर जाती है और मूर्खता अवनति की ओर। अपनी इसी मूर्खता के कारण गोवर्धनदास अपनी गुरु की बात न मानकर लालच में आकर उक्त नगरी में बस जाता है।

चतुर्थ अंक राजदरबार का है। राजा मूर्ख, अविवेकी तथा नशे में है। राजा की जी हजूरी करने वाले सेवक उसे शराब पिलाते हैं। इस अंक में राजा के प्रत्यक्ष दर्शन तथा न्याय की विधि का परिचय मिलता है। कल्लू बनिया की दीवार गिरने से बकरी मर गई। राजा अपनी मूर्खता का परिचय देते हुए दीवार को गिरफ्तार करने का आदेश देता है जो कि

संभव नहीं है। इसलिए कारीगर, चूना बनाने वाले, भिश्ती, कसाई, गड़रिया और कोतवाल को राजा के सामने पेश किया जाता है, जो अपने आपको एक–एक करके निर्दोश साबित करते जाते हैं, परंतु अपना दोश दूसरे पर डालते जाते हैं, राजा अंत में अपनी मूर्खता का परिचय देते हुए कोतवाल को फांसी की सजा सुनाकर वहां से चला जाता है।

शुद्ध हास्य की दृष्टि से यह अंक काफी आकर्षक है। बकरी दीवार के गिरने से मर जाती है और न्याय मूर्खता की सारी हदें पार कर जाता है। अंत में कोतवाल के सिर पर दंड सौंप दिया जाता है, क्योंकि किसी न किसी को तो अपराधी होना ही है और जब अपराधी है तो उसे फांसी भी लगती है। कोई भी फांसी चढ़े भले ही वह अपराधी है या नहीं न्याय के अंतर्गत आता है। इसलिए जब एक के बाद एक सभी अपना बचाव प्रस्तुत करते हैं तो अंत में राजा कोतवाल को फांसी की सजा सुना देता हैं।

पांचवा अंक गोवर्धनदास की दुर्दशा को व्यक्त करता है। लालच में वह अंधेर नगरी में रूक जाता है और खा–खाकर मोटा हो जाता है। चार सिपाही आकर गोवर्धनदास को सूली पर चढ़ाने के लिए लेकर जाते हैं क्योंकि फांसी का फंदा बड़े आकार का बन गया था और पूरे नगर में वह फंदा केवल गोवर्धनदास को ही फिट आ जाता। गोवर्धनदास रोता है, चिल्लाता है और महंत को याद करता है लेकिन सिपाही उसे पकड़कर ले जाते हैं।

छठा अंक बुद्धिविहीन राजा के अंत को प्रदर्शित करता है। महंत से यह जानकर कि इस घड़ी में जो मरेगा उसे सीधा स्वर्ग नसीब होगा। महंत और गोवर्धनदास को फांसी चढ़ने के लिए झगड़ते देख राजा यह कहकर कि राजा के होते हुए बैकुंठ कौन जा सकता है फांसी पर चढ़ जाता है और उसका अंत हो जाता है।

अंधेर नगरी के माध्यम से भारतेंदु का जन–जागरण का उद्देश्य झलकता है। उन्होनें इसके द्वारा लोगों का मनोरंजन करने के साथ–साथ राजनीतिक शिक्षण देने का भी कार्य किया। भारतेंदु ने जब रचना कार्य आरंभ किया तो देश में अलग–अलग प्रकार की परिस्थितियों से भली–भांति परिचित थे। उन्होनें अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक जागृति लाने की ठानी और अपनी पूरी शक्ति तथा लगन से युग की भावनाओं के अनुरूप उसमें नवीन स्वरों की प्रतिष्ठा की।

अंधेर नगरी में वर्णित शासनकाल अत्यधिक निंदनीय है। ऐसे काल में मानवोचित व्यवहार बुरी स्थिति में पड़ा सिसकता सा मालूम पड़ता है। स्वार्थ का स्वर सर्वत्र अपना प्रभुत्व फैला रहा है। मानवोचित व्यवहार बुरी स्थिति में पड़ा सिसक रहा है, लल्लू चप्पू तथा हां में हां मिलाने वालों की तूती बजती है। जनता आकुल–व्याकुल होकर भी परिस्थिति के गंदे दरिया में बहने पर मजबूर सी है। ऐसे समाज का चित्रण कर भारतेंदु ने जनता के हृदय में तत्कालीन बुराइयों का प्रत्यक्ष बोध कराने में सफलतापूर्वक सहायता की ताकि जनता अपने कर्तव्य को निभाने में भरसक प्रयत्नशील बनी रहे तथा अपने सम्मुख उपजी हुई विषम परिस्थितियों का मुकाबला दृढ़तापूर्वक करती रहे।[11]

स्पष्टतः अंधेर नगरी के माध्यम से भारतेंदु ने भारतीयों को आगाह किया कि हम नई–नई परिस्थितियों के चलते इस बात को भूलते जा रहे हैं कि हम उस देश के वासी हैं जिस पर दुनिया को नाज था। इसलिए यह हमारा कर्तव्य है कि हम अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को पवित्र बनाए रखें।

भारतेंदु ने अंधेर नगरी में अंग्रेज नौकरशाही पर प्रहार किया है। स्पष्टतः अपने परिवेश का अवलोकन करते हैं कि देश की प्रजा पीड़ित है, अन्याय का सर्वत्र बोलवाला है। अन्याय का जहाँ भी बोलवाला है वहां किसी की भी गर्दन निरपराध होने पर भी राजा की आज्ञा से काटी जा सकती है। अंधेर नगरी की रचना में खेल ही खेल में राष्ट्रीयता की सुर–सरिता प्रवाहित कर देना भारतेंदु जी जैसे उत्कश्श्ट कलाकार का ही काम था।[12]

भारतेंदु ने प्रहसन के अंत में इन समस्याओं का निदान निर्धारित करते हुए ऐसी नगरी में न रहने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐसी नगरी के कुशासन का अंत सर्वोपरि माना है, क्योंकि वह इस बात को मान चुके थे कि कुशासन तथा अंधव्यवथा का अंत जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी हो जाना चाहिए तभी वह प्रहसन के अंत में फांसी का फंदा राजा की गर्दन में फिट कर देते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार, भारतेंदु जी ने इस प्रहसन के द्वारा राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था की विकृतियों के प्रति संवेदित करते हुए अंततः हमारे इस बोध को प्रबल बनाया है कि समाज की प्रगति, बुद्धि तथा विवेक के विकास तथा नीतिमय आचरण द्वारा ही संभव है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतेंदु और भारतीय नवजागरण, सं. शंभुनाथ और अशोक जोशी, पृ. 41
2. भारतेंदु और भारतीय नवजागरण, सं. शंभुनाथ और अशोक जोशी, पृ. 72
3. भारतेंदु के नाटक, भानुदेव शुक्ल, पृ. 71
4. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 46
5. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 53
6. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 50
7. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 51
8. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 51
9. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 53
10. अंधेर नगरी चौपट राजा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, साहित्य सागर प्रकाशन, पश. 58
11. भारतेंदु के प्रमुख नाटक, सत्येंद्र कुमार सिंह, अतुल प्रकाशन, पश. 70
12. भारतेंदु कालीन नाट्य साहित्य, गोपीनाथ तिवारी, पश. 223

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं धर्म-दर्शन

ज्योति श्री
शोधार्थिनी, पीएच.डी. (इतिहास)
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला
विभागाध्यक्ष, इतिहास एवं संस्कृति विभाग
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

सार

भारतीय ज्ञान प्रणाली ज्ञान, विश्वासों और प्रथाओं का एक समृद्ध और विविध संग्रह है जो भारतीय उपमहाद्वीप में हजारों वर्षों में विकसित हुआ है। वेदों, उपनिषदों और पुराणों जैसे प्राचीन ग्रन्थों में निहित, भारतीय ज्ञान प्रणाली में दर्शन, धर्म, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, ज्योतिश और साहित्य सहित विभिन्न विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। वेद, जिन्हें विश्व स्तर सबसे पुराना धर्मग्रन्थ माना जाता है, भारतीय ज्ञान प्रणाली की जड़े स्थापित करते हैं। इन ग्रन्थों में जीवन के विभिन्न पहलुओं की विवेचना है, जो समाज में सन्तुलन सद्भाव और एकता को प्रदर्शित करते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, भारतीय ज्ञान प्रणाली पर आधारित भारत के विकास के क्षेत्र में एक बड़ी क्रान्ति की आशा करती है। भारत के पास प्राचीन काल से ही ज्ञान का अपार भण्डार है, जिसमें अभी कुछ साहित्यों, पाण्डुलिपियों को खोजा जाना बाकी है। भारतीय ज्ञान प्रणाली में NEP-2020 के अनुसार परम्पराओं का अध्ययन, अनुकूलन और आधुनिक जीवन में एकीकृत किया जायेगा, जिससे हर क्षेत्र में परिवर्तनकारी बदलाव आयेंगे। भारतीय ज्ञान प्रणाली के कार्यान्वयन से न केवल शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन आयेगा वरन् भारतीय मानस एवं जीवन शैली का भी कायाकल्प होगा। विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक भारतीय विचार, ज्ञान परंपरा, कला, कौशल, शिल्प कौशल और प्रबन्धन को शामिल करके भारत एक विशेष परिवर्तन से गुजरेगा।

कीवर्ड– भारतीय, ज्ञान, धर्म, दर्शन, प्रणाली, राष्ट्रीय शिक्षा।

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान प्रणाली अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और अलौकिक, कर्म और धर्म तथा योग और ज्याग का अद्भुत समन्वय है। ऋग्वेद के समय से ही शिक्षा प्रणाली जीवन के नैतिक, भौतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक मूल्यों पर केन्द्रित होकर अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सभी के लिए सम्मान जैसे मूल्यों पर जोर देती थी। वेदो में विद्या को मनुष्यता की श्रेष्ठता का आधार स्वीकार किया गया है। शिक्षा प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केन्द्रित किया। भारतीय ज्ञान प्रणाली ने सीखने और शारीरिक विकास दोनों पर ध्यान केन्द्रित किया। प्राचीन काल की शिक्षा प्रणाली ज्ञान, परंपराएं और प्रथाएं मानवता को प्रोत्साहित करती हैं। पुरोणों में ज्ञान को अप्रतिम माना गया है। भारत के तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, बल्लभी, उज्जयिनी, काशी आदि विश्व प्रसिद्ध शिक्षा एवं शोध के प्रमुख केन्द्र थे तथा यहाँ कई देशों से शिक्षार्थी ज्ञानार्जन के लिए आते थे। वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रसिद्धि थी, जिसमें मैत्रेयी, ऋतम्भरा, अपाला, गार्गी और लोपामुद्रा आदि जैसे नाम प्रमुख थे। बोधायन कात्यायन, आर्यभट्ट, चरक, कणाद, वाराहामिहिर, नागार्जुन, अगस्त्थ भर्तृहरि, शंकराचार्य,

स्वामी विवेकानंद जैसे अनेकानेक महापुरुषों ने भारत भूमि पर जन्म लेकर अपनी मेधा से विश्व में भारतीय ज्ञान प्रणाली के समृद्धि हेतु अतुल्य योगदान दिया है।

भारतीय ज्ञान प्रणालियों में गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, कानून, वास्तुकला और भाषा विज्ञान सहित अन्य क्षेत्रों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। वेद, उपनिषद जैसे प्राचीन ग्रन्थ और गणित और खगोल में आर्यभट्ट का काम, सर्जरी और चिकित्सा क्षेत्र में सुश्रुत का योगदान एवं पाणिनी का व्याकरण परिश्कृत सिद्धान्तों और प्रथाओं को प्रदर्शित करता है जिनका दुनिया पर गहरा प्रभाव पड़ा है। यह अखण्ड भारत अर्थात अविभाजित भारतीय उपमहाद्वीप को सन्दभ्रित करता है। यह पूर्व में वर्मा से लेकर पश्चिम में आधुनिक अफगानिस्तान उत्तर में हिमालय और दक्षिण में हिन्द महासागर तक फैले क्षेत्र को परिभाषित करता है। चाणक्य ने मौर्य साम्राज्य की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और पाणिनि जिन्होंने संस्कृत व्याकरण लिखा था, उन्होंने प्राचीन भारत के तक्षशिला विश्वविद्यालय में अपनी शिक्षा प्राप्त की थी जो अब पाकिस्तान के पंजाब प्रान्त में है। प्राचीन भारतीय शिक्षा में अठारह विधाओं की शिक्षा शमिल थी, जो नालन्दा और तक्षशिला जैसे प्रसिद्ध केन्द्रों में प्रदान की गयी थी। भारत की वैश्विक प्रतिष्ठा कला, वास्तुकला, विज्ञान तकनीक, शिल्प, इंजीनियरिंग, दर्शन और प्रथाओं के क्षेत्र में इसके योगदान से प्राप्त हुयी है। अधिकांश विदेशी जो ज्ञान के लिए भारत आये और इस ज्ञान को पश्चिम और दुनिया के अन्य हिस्सों से प्रसारित किया यह भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक हिस्सा है। ज्ञान शब्द मौन ज्ञान को परिभाषित करता है और यह ज्ञान चाहने वालों की बुद्धि में निहित है। यह व्यक्तिगत अनुभवों में अर्न्तदृष्टि अवलोकन के माध्यम से, वास्तविक जीवन की समस्याओं का सामना करने और उन्हें हल करने से प्राप्त होता है। ज्ञान साहित्यिक और गैर साहित्यिक रूपों में मौजूद हो सकता है। इस यौन ज्ञान को नए सिद्धान्तों और रूपरेखाओं के प्रस्ताव के माध्यम से और साहित्यिक कार्य के रूप में यानी स्पष्ट ज्ञान के रूप में व्यवस्थित रूप से स्थानांतरित किया जाता है। प्रणाली का अर्थ है ज्ञान के एक निकाय तक पहुंचने के लिए उपयोग की जाने वाली एक सुव्यवस्थित पद्धति और वर्गीकरण योजना।

वेद और उपनिषद भारतीय दर्शन के आधार है, जो कर्म, धर्म, मोक्ष और आत्मा और अन्तिम वास्तविकता की प्रकृति जैसी आवधारणों का परिचय देते हैं। बौद्ध धर्म में आत्मज्ञान (निर्वाण) प्राप्त करने के साधन के रूप में चार कार्य सत्य और अयतांत्रिक मार्ग का विवरण प्राप्त होता है। इसके बाद शास्त्रीय काल में आदि शंकराचार्य, रामानुज तथा माधवाचार्य जैसे सन्तों ने अपने दर्शन के माध्यम से आत्म ज्ञान की शिक्षा दी। इसी के साथ बढ़ते समय क्रम में मध्यकाल में कबीर, गुरुनानक जैसे सन्तों ने ईश्वर के एक होने तथा सभी के समान होने का ज्ञान विश्व को दिया। आधुनिक काल में विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, राजाराममोहन राय, दयानन्द सरस्वती इत्यादि महत्वपूर्ण व्यक्तित्वों ने धर्म तथा दर्शन पर अपने विशिष्ट विचारों का संग्रह विश्व के सामने प्रस्तुत किया। समसामयिक काल की बात करें तो जिद्दकृष्ण मूर्ति एक मनोवैज्ञानिक, दर्शनशास्त्री दार्शनिक के रूप में आये जिन्होंने धर्म, दर्शन, अध्यात्म, ध्यान इत्यादि विषयों पर एक गहन अध्ययन किया।

सामाजिक और सांस्कृतिक पहचान के विषय में धर्म एक शक्तिशाली शक्ति है। धर्म रीति–रिवाजों, परम्पराओं और सामाजिक मानदंडों को प्रभावित करता है। आधुनिक विश्व में धर्म की भूमिका लगातार विकसित हो रही है। धर्म विश्व स्तर पर एक जीवंत और प्रभावशाली शक्ति बना हुआ है। भारतीय समाज सदा से ही धर्म से प्रतिबद्ध रहा है। यद्यपि सभी समाजों में सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन को नियमित करने में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है, परन्तु हिन्दू संस्कृति में धर्म ''जीवन की एक विधि'' है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के उन सभी सांस्कृतिक मूल्यों व्यक्तिगत कर्तव्यों तथा नैतिक व्यवहार का समन्वय है, जिनकी एक व्यक्ति से पूरी करने की आशा की जाती है। धर्म का तत्व है जो सम्पूर्ण समाज को धारण करता है जिसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था व संगठन को बनाये रखा जा सकता है। पाश्चात विचार दर्शन के अनुसार धर्म में मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि या आराधना शामिल है। जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव जीवन को मार्ग दिखाती है और उसे नियन्त्रित व प्रशस्त करती है। परन्तु भारतीय विचारकों ने धर्म में मनुष्य के आध्यात्मिक और पारलौकिक जीवन के कल्याणर्थ मार्ग प्रशस्त करने हेतु विभिन्न बातें सम्मिलित की है।

डा. पी.वी. काणे के अनुसार,

''धर्म शब्द से हमारा तात्पर्य किसी विशेष ईश्वर मत अथवा सम्प्रदाय से नहीं है, बल्कि यह जीवन की एक ऐसी विधि अथवा व्यवहारों की ऐसी संहिता है, जो व्यक्ति की क्रियाओं को नियन्त्रित करती है। इस प्रकार धर्म का प्रयत्न व्यक्तियों का विकास करना तथा व्यक्तियों को इस योग्य बनाना है कि ये जीवन के महत्वपूर्ण लक्ष्यों को प्राप्त कर सके।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि धर्म का तात्पर्य केवल पूजा पाठ, कर्मकाण्ड अथवा अन्ध विश्वासों से नहीं है बल्कि वे सभी गुण धर्म के अंग है जो व्यक्ति के विकास में सहायक है। हिन्दूधर्म ने इतने पैर फैलाये है कि जीवन के किसी भी पक्ष को स्वतन्त्र नहीं छोड़ा है। विवाह, जन्म, मृत्यु और अन्य संस्कारों में धर्म की स्वीकृति आवश्यक है। वस्तुतः धर्म में उन सब नियमों और उपनियमों का समावेश किया गया है जो प्रथाओं पर आधारित थे किन्तु इन्हें दैवीय समझा जाता था। ऋषियों ने इन नियमों को बनाया इनकी रक्षा की और इनका विकास करके आगे आने वाली पीढ़ियों को दिया। इससे समझा जा सकता है कि जिन मौलिक सिद्धान्तों पर मानव जीवन आधारित था वे सभी धर्म के अन्तर्गत आते थे। जीवन के विभिन्न नियमों से लेकर ईश्वर उपासना सम्बन्धी समस्त विधि विधान धर्म के ही अंग कहे गये हैं। प्राचीन भारत में धर्म के तीन रूप बताये गये हैं – (1) सामान्य धर्म, (2) स्वधर्म (3) राज्य धर्मे। इस दृष्टि से भारतीय धर्म अनेक विश्वासों, पूजा, विधानों एवं ज्ञान की विभिन्न राशियों का एक समुच्चय है। हिन्दू संस्कृति के अनुसार जीवन का एक मात्र लक्ष्य कर्तव्य पालन द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है। विश्व में धर्म का उद्‌भव किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा अचानक नहोकर मनुष्य के समाजीकरण के कारण हुआ है। मनुष्य ने प्रकृति के साथ उसकी अद्‌भुत शक्तियों को देखकर उनकी उपयोगिता के आधार पर उन्हें देवत्व प्रदान कर दिया, यह प्रक्रिया मनुष्य के सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने का प्रयत्न था।

धर्म के स्वरूप की विवेचना के पश्चात दर्शन के अर्थ पर भी विचार करना आवश्यक है। जिससे धर्म–दर्शन के स्वरूप को भली–भॉति स्पष्ट किया जा सके। धर्म के समान ही दर्शन को परिभाषित करना कठिन कार्य है। क्योंकि दर्शन शब्द का प्रयोग भी भिन्न–भिन्न अर्थों में किया जाता है। दर्शन निश्चय ही एक बौद्धिक विषय है और अपेक्षाकृत कुछ कठिन भी है। दर्शन संस्कृत भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है देखना या खोजना। दर्शन का अर्थ अमूर्त चिन्तन के उस प्रयास से है, जिसके द्वारा आत्मा, ईश्वर, प्रकृति तथा सम्पूर्ण जीवन का सार समझा जा सकता है। दर्शन एक व्यापक विषय है जो शिक्षा के क्षेत्र में उससे सम्बन्धित समस्याओं, उद्‌देश्यों, पाठ्‌यक्रम, शिक्षण विधियों और अन्य सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों पर समाधान प्रस्तुत करता है। दर्शन एक दृष्टि का निर्माण करता है वहीं धर्म इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग को समझाने का प्रयास करता है। भारतीय दर्शन में विभिन्न तत्व महत्वपूर्ण है–न्याय, वैशेषिक, सॉख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त। दर्शन की विभिन्न परिकल्पनाएं इन्हीं तत्वों में समाहित है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपलब्लिक में लिखा है–''जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई–नई बातों को जानने के लिए रूचि प्रकट करता है तथा जो कभी सन्तुश्ट नहीं होना उसे दार्शनिक कहा जाता है।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म के आधारभूत तत्व अनुभूति और आस्था है जबकि दर्शन के मूल तत्व निष्पक्ष चिंतन एवं तर्क है। जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण में इस मूल भेद के कारण ही भक्त तथा दर्शनिक के विचारों एवं विश्वासों में आधारभूत अन्तर पाया जाता है।

धर्म अक्सर नैतिक मूल्यों और नैतिक मानकों को निर्देशित करता है, व्यक्तियों को उनके दैनिक जीवन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में मार्गदर्शन करता है। धर्म की शिक्षाएं इस बात को प्रभावित कर सकती है कि व्यक्ति अपने आसपास की दुनिया को कैसे समझने है और उसकी व्याख्या करते हैं। जिसमें प्रकृति मानवता और परमात्मा के बारे में उनकी समझ भी सम्मिलित होती है। धर्म से सम्बन्धित मान्यताएं एक मजबूत सामुदायिक बंधन को बढ़ावा देती है, जिससे अनुयायियों के बीच पहचान और उद्‌देश्य की साझा भावना विकसित होती है। धर्म के माध्यम से एक शक्तिशाली सांस्कृतिक शक्ति का विकास किया जा सकता है, जो कला साहित्य और सामाजिक रीति रिवाजों को प्रभावित कर सकता हे, जिसमें समाज के व्यापक विश्व दृष्टिकोण को आकार मिल सकता है। बाइबिल, कुरान, भगवद्‌गीता जैसे ग्रन्थ अपने–अपने धर्मों के लिये ज्ञान के मूलभूत स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। स्वदेशी आस्थाओं सहित कई धर्म, पीढ़ियों से चली आ रही मौखिक पंरपराओं और शिक्षाओं पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। दर्शन का शिक्षा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन शिक्षा ज्ञान के विभिन्न अंगों को प्रभावित करता है। जे.एस. रास के अनुसार ''दर्शन तथा शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू है जो एक ही वस्तु के विभिन्न दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं, वे एक दूसरे पर अन्तनिर्हित हैं।'' महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं–प्लेटो, सुकरात, लॉक, कमेनियस, रूसो, फ्रेब्रिल, डीवी, गॉधी, टैगोर, स्वामी विवेकानन्द तथा अरविन्द घोश आदि महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं। इन महान दार्शनिकों द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ केवल दर्शनशास्त्र की ही महान कृतियॉ नहीं रही अपितु इनका शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष महत्व है। उक्त सभी दर्शनिकों ने अपने–अपने दर्शन को क्रियात्मक अथवा व्यवहारिक रूप देने के लिए शिक्षा का ही सहारा लिया है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान प्रणाली के अन्तर्गत धर्म एवं दर्शन पर शोध से विचारों की एक समृद्ध श्रृंखला की जानकारी प्राप्त हुयी जिसने दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय ज्ञान प्रणाली न केवल दार्शनिक विचारों का भण्डार है बल्कि व्यवहारिक ज्ञान का स्रोत भी है जैसा कि योग जैसी सशक्त प्रथाओं के वैश्विक महत्व में देखा जा सकता है। यह जीवन के प्रति समस्त दृष्टिकोण में विश्वास को परिभाषित करता है, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को एकीकृत करता है और संस्कृतियों के उत्थान और पतन को आर्थिक स्थिति के बजाय परम्पराओं की दृष्टि के माध्यम से परिभाषित करता है। प्राचीन भारत में धर्म एवं दर्शन गहराई से जुडे हुए है। भारतीय ऋषियों द्वारा विकसित तकनीके जैसे योग, सामान्य से परे जाने की चेतना, आध्यात्मिक जीवन के रहस्यों को समझने की जिज्ञासा उस स्तर तक पहुॅचने का प्रमाण है। धर्म एवं दर्शन ने भारतीय ज्ञान प्रणाली में मानव जीवन के आध्यात्मिक एवं बौद्धिक दोनों क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जैसे–जैसे हम आगे बढ़ रहे हैं, भारतीय ज्ञान प्रणाली अपनी गहरी जड़ों वाली दार्शनिक एवं धार्मिक परंपराओं के साथ आधुनिक विश्व की विशिष्ट समस्याओं के समाधान में ज्ञान और मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण स्रोत बनी हुयी है, जो शान्ति, सद्भाव को बढ़ावा देने में अपनी शिक्षाओं की शाश्वत प्रासंगिकता पर जोर देती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. न्याय प्रणाली – भारतीय धर्म और दर्शन https://ebooks.inflibnet.ac.in/icp03 /chapter/the-nyaya-system/
2. भारतीय ज्ञान प्रणाली के वैश्विक महत्व का अनावरण और https://www.ijsr.net/ archive/ v12i8/SR23825134400.pdf.
3. भारतीय ज्ञान परंपरा और अनुसंधान स्प्रिगरलिंक ? https://link.springer.com /chapter/10.1007/978-981-16-7818-9_18.
4. प्राचीन भारत में दर्शन और धर्म ? http://ijar.org.in/stuff/issues/v9-i7/v9-i7-a004.pdf.
5. संसाधनों के एक महत्वपूर्ण संग्रह के रूप में भारतीय ज्ञान प्रणाली ://www.ijhssi.org/ papers/ vol12%289%29/ 1209191200.pdf.
6. भारतीय ज्ञान प्रणाली https://www.jetir.org/papers/JETIR2402475.pdf.
7. भारतीय दर्शन इतिहास, विशेषताऍ और महत्व https://www.britannica.com /topic/Indian-philosophy.
8. भारतीय धर्म और दर्शन https://ebooks.inflibnet.ac.in/icp03/chapter/indian-religion-and-philosophy/.
9. न्याय प्रणाली भारतीय धर्म और दर्शन https://ebooks.inflibnet.ac.in /icp03/chapter/the-nyaya-system/.
10. बी.एम. रजत, बी.वी., और आर.एन., एन.पी. (2022) भारतीय ज्ञान प्रणाली का परिचय पीएचआई लर्निंग प्राइवेट लि0।
11. कोलमैन, एम.ए. (2010) बहु अधिग्रहण में सांस्कृतिक प्रभुत्व पर नकारात्मक परिपाक का प्रभव (डॉक्टरेट शोध प्रबंध, सेंट थॉमस विश्वविद्यालय, (सेंट पॉल मिनेसोटा)
12. घोश ए, और जोशी ए. (2015) पारंपरिक ज्ञान : समस्याएं और संभावनाएं। लोकोदर्पण – एक सहकर्मी–समीक्षित द्विभाषी वार्षिक शोध पत्रिका।
13. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020, 03 जनवरी 2024) https://www.education.gov.in/sites/ upload_files/mhrd/files/ NEP_Final_English_0.pdf
14. शर्मा, ए., और जोशी, ए. (2018) भारत में शिक्षा पर वैश्वीकरण का प्रभाव : वैश्विककरण का प्रभाव : वैश्विक मानकों की ओर या सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की ओर ? वैश्वीकरण की पहेली–उम्मीद के पीछे काले बादल, 257–265
15. अमरकोश–प्रथम काण्ड–पंचमवर्ग श्लोक–6
16. न्यायसूत्र–वास्यायन भाष्य–1/1/16
17. वैशेषिक दर्शन 1/1/6
18. न्यय कन्दली प्रशस्तपाद भाष्य पश–171
19. सांख्य दर्शन–1/155
20. सुशमा टीका, सां.का.–5

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भगवान बुद्ध का अस्थि स्तूप एवं धातुनिधान, राजगृह
(एक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिचय)

ललन कुमार सिंह
व्याख्याता, भूगोल विभाग
पी0एम0एस0 कॉलेज, बिहारशरीफ

सारांश

प्राचीन काल में भारतीय उपमहाद्वीप के सोलह महाजनपदों में से सबसे प्रमुख एवं महत्वपूर्ण स्थान मगध का ही रहा है। उस समय की प्राचीन राजधानी राजगृह (गिरिव्रज) विभिन्न संस्कृतियों एवं धार्मिक क्रियाकलापों का केन्द्र रहा है जिसमें से बौद्ध धर्म का प्रमुख स्थान है। राजगृह भगवान बुद्ध के प्रिय स्थलों में से एक था जहाँ उनके जीवन से संबंधित कई घटनाएँ प्रसांगिक है।

उन प्रसांगिक घटनाओं में से एक है बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके अस्थि धातु अवशेष के एक भाग को राजा अजातशत्रु द्वारा प्राचीन राजगृह में अस्थि स्तूप का निर्माण एवं महापरिनिर्वाण के बीस वर्शों के पश्चात प्राचीन बौद्ध साहित्य महावंश एवं अट्ठकथा में उल्लेखित धातुनिधान (चहबच्चा, जो धातु रखने की गुप्त जगह) की स्थापना।

धातुनिधान का उल्लेख कई प्राचीन पाली साहित्यों में जैसे महावंश, दिघनिकाय, बुद्धचर्या एवं अट्ठकथा में आता है। भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनके अस्थि के आठ भागों में से एक भाग प्राप्त कर अजातशत्रु ने उसपर राजगृह में एक स्तूप बनवाया। तदोपरान्त बुद्ध के परिनिर्वाण के 20 वर्ष बाद बुद्ध के प्रमुख शिष्य महाकश्यप के कहने पर अजातशत्रु ने फिर एक धातुनिधान का निर्माण करवाया, जिसमें उसने रामग्राम को दिये गये अस्थि अवशेष को छोड़कर अन्य सभी स्थलों से बुद्ध की अस्थियों को मँगवाकर धातुनिधान में सुरक्षित रखवा दिया। यह बौद्ध इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है जिसकी परिचर्चा हम मुख्य विषय में विस्तृत रूप से करेंगे।

शब्द कूट– स्तूप, राजगृह, चहबच्चा, अजातशत्रु, महापरिनिर्वाण, नवीन नगर, चीनी यात्री, भगवान, बुद्ध, अन्वेषण, पाली साहित्य, प्राचीन, अस्थि, ग्रंथ, धातुनिधान, अशोक, मौर्यकालीन, राजधानी, पाषाण, स्थावीर।

विषय एवं परिचर्या

महापरिनिर्वाण सुत के अनुसार जब कुशीनगर में भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ तो उनके अस्थि अवशेष के बँटवारा में उत्पन्न विवाद को द्रोण ब्राह्मण द्वारा समझौता कर आठ राज्यों के प्रमुखों में बराबर–बराबर बँटवा दिया, जिसमें से एक भाग मगध के राजा अजातशत्रु को प्राप्त हुआ जिसपर उसने अपनी राजधानी राजगृह में एक स्तूप बनवाया।

उपरोक्त लिखित बातों से ये पता चलता है कि भगवान बुद्ध की अस्थि के एक भाग पर राजगृह में राजा अजातशत्रु ने स्तूप का निर्माण करवाया था, लेकिन कहाँ और किस स्थान पर निर्माण किया गया था इसका उल्लेख प्राचीन साहित्यों में नहीं मिलता है। इस स्तूप के स्थान का उल्लेख 7वीं शताब्दी में राजगृह (कुशाग्रपुर) आये चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा विवरण में किया है। उन्होंने इस प्राचीन स्तूप की स्थिति को करंड वेणुवन के पुरब में बताया है। आगे उन्होंने लिखा है कि अजातशत्रु के बनाये इस स्तूप के पास एक और स्तूप है जिसमें आनन्द थेर का अर्द्धशव सुरक्षित है। प्राचीन

काल में जिस समय यह अर्हत (आनन्द) परिनिर्वाण प्राप्त करने को हुआ उस समय मगध को छोड़कर वह वैशाली नगर को गया। दोनों देशों के राजाओं को सेना संसाधन करके दोनों को युद्ध पर तत्पर देखकर उस अर्हत ने दयावश अपने शरीर को दो भागों में विभक्त कर दिया। मगधराज अजातशत्रु अपना भाग लेकर लौट आया और अपनी धार्मिक सेवा को सम्पादन करके इस पवित्र भूमि में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ इस स्तूप को बनवाया। इसके निकट वह स्थान है जहाँ भगवान बुद्ध ने चंक्रमण किया था। इस प्रकार यह स्थान राजगृह के महत्वपूर्ण स्थानों में से एक था।

नवीन पहचान

शोधार्थी ने प्राचीन साहित्यों एवं चीनी यात्री ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर इसकी वर्त्तमान स्थिति का पता लगाया है। वर्त्तमान में यह स्थान उदयगिरि के पश्चिमी ढलान की तलहटी में स्थित है। इसके ठीक 200 मीटर दक्षिण सुरक्षा प्राचीर (साइक्लोपियन वॉल) है एवं इसके सटे पश्चिम में राजगीर–गया मार्ग है। यह स्तुप वर्त्तमान में नवीन स्तूप के नाम से जाना जाता है, लेकिन इसकी स्पष्ट पहचान अभी तक स्थापित नहीं हो पाई थी। शोधार्थी ने प्राचीन साहित्यों एवं चीनी यात्रियों के विवरण के आधार पर इसे अजातशत्रु द्वारा बुद्ध के अस्थि अवशेष पर निर्मित स्तूप से मिलाया है।

इस स्तूप में पूर्व मौर्यकालीन एवं मौर्यकालीन ईंटों का प्रयोग किया गया है। सम्भवतः इसे सम्राट अशोक ने भगवान बुद्ध का अस्थि धातु खोजने के लिए सात स्तूपों में से एक राजगृह में स्थित इस स्तूप को भी खुलवाया होगा, पर उसे यहाँ अस्थि धातु नहीं मिला होगा। तब सम्राट अशोक ने इसे मरम्मती करवाया होगा। इस प्रकार अजातशत्रु के समय की पूर्व मौर्यकालीन ईंटें और सम्राट अशोक के समय की मौर्यकालीन ईंटों का मिलन इस स्तूप में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

इसकी वर्त्तमान समय में उँचाई लगभग बीस फीट है। इसकी लम्बाई–चौड़ाई उत्तर में 101 फीट, दक्षिण में 102 फीट, पुरब में 95 फीट और पश्चिम में 95 फीट 6 इंच है।

इस स्तूप के उपर पश्चिम की तरफ एक लम्बा अण्डाकार कक्ष है जिसे ईंटों से दो भागों में बाँटा गया है। स्तूप के उपर बीच में एक बड़ा तथा एक छोटा कक्ष है। बड़ा कक्ष में जाने का पतला गलियारा बना है। इस गलियारे के पुरब चार और छोटे–बड़े जीर्ण–शीर्ण अवस्था में कक्ष बनें हैं। आठों कक्षों का छत और ज्यादातर दिवारें ध्वस्त हो चुका है। इस स्तूप में भीतर जाने का मार्ग है तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विमोक्ष (मुक्ति, बंधन मुक्त) स्तूप है। इस स्तूप के उपर दक्षिण में खुली एवं चौड़ी जगह है। स्तूप के किनारे–किनारे परिक्रमा स्थल है। स्तूप के दक्षिण तरफ सटे पूर्व मौर्यकालीन ईंटों का हीं चंक्रमण स्थान बना है जिसकी लम्बाई 50 फीट a" 10 फीट है। यह चंक्रमण स्थान पुरब से उँचा एवं पश्चिम में इसकी उँचाई कुछ कम है। यह स्तूप उतर 24° 58′ 55″ अक्षांश एवं पुरब 85° 25′ 47″ देशान्तर पर स्थित है।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसी स्तूप के पास भगवान बुद्ध के शिष्य आनंद थेर के अर्द्धशव (शरीर के अस्थि धातु का आधा भाग) रखे स्तूप को देखा था। शोधार्थी ने अपने अन्वेषण के दौरान इस स्तूप की स्थिति आज भी वैसी हीं पाया जैसा कि चीनी यात्री ने इसका वर्णन किया था। आनन्द का स्तूप आज भी भगवान बुद्ध के अस्थि अवशेष स्तूप से लगभग सौ फीट दक्षिण में स्थित है। आनन्द के वर्गाकार स्तूप पूर्व मौर्यकालीन ईंटों से बना है जिसके उपर वर्गाकार पाषाणों का प्रयोग दिखता है। इस स्तूप की लम्बाई 26 फीट, चौड़ाई 25 फीट एवं उँचाई वर्त्तमान में 6 फीट है।

धातुनिधान तथा परिचर्चा

भगवान बुद्ध का एक और धातुनिधान (अस्थि धातु रखने का चहबच्चा) राजा अजातशत्रु के द्वारा भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग बीस वर्शों के बाद राजगृह में बनवाया गया था। पाली ग्रन्थ के 'महावंश' के इकतीसवाँ परिच्छेद (धातुनिधान–वर्णन) में उल्लेख मिलता है कि–

राजगहस्स सामन्ते रञ्ञो अजातसतुनो।
कारापेन्तो, महाधातुनिधानं साधु सङ्गतं।। 21।।

"राजगृह के पास वहाँ के राजा अजातशत्रु ने एक सुदृढ़ एवं सुरक्षित धातुनिधान बनवाया।। 21।।

सत दोणानि धातूनं आहरित्यान कारयि।
रामगामम्हि दोणं तु सत्थुचितञ्ञ नाग्गहि।। 21।।

"तब उन्होंने वहाँ रखने के लिए सातों द्रोण धातु तो मँगवा लिए–परन्तु रामग्राम स्थित द्रोणधातु, शास्ता का चित

का भाव जानते हुए, नहीं मँगवाया।। 22।।

बौद्ध साहित्य के अट्ठकथा में वर्णन मिलता है कि भगवान बुद्ध के अस्थि धातु का आठ भाग में से प्राप्त एक भाग पर अजातशत्रु ने राजगृह में स्तूप बनवाया एवं पूजा कराई।

इस प्रकार स्तूपों के प्रतिष्ठित हो जाने पर महाकाश्यप स्थविर ने धातुओं के अंतराय (विध्न) को देखकर, राजा अजातशत्रु के पास जाकर कहा–"महाराज! एक धातु–निधान (अस्थि–धातु रखने का चहबच्चा) बनाना चाहिए।" तब राजा ने कहा– "अच्छा भंते!" ...

रामग्राम के धातु को छोड़कर (क्योंकि भगवान बुद्ध की इच्छा थी कि मेरा एक द्रोण अस्थि धातु रामग्राम में पूजित हो। यह बात महाकश्यप जानते थे) स्थविर महाकश्यप उन–उन राज कुलों को पूजा करने भर मात्र की धातु छोड़कर बाकी धातुओं को राजगृह ले आए और राजगृह के पूर्व–दक्षिण भाग में (जो स्थान है); राजा ने उस स्थान को खुदवाकर, उससे निकली मिट्टी से ईंटें बनवाई। 'यहां राजा क्या बनवाता है', पूछने वालों को भी 'महाश्रावकों का चैत्य बनवाता है' यही कहते थे; कोई भी धातु–निधान की बात न जानता था।

उस स्थान के अस्सी हाथ गहरा हो जाने पर, नीचे लोहे का पत्तर बिछाकर, वहां 'थूपाराम' के चैत्य–घर के बराबर का तांबे(ताम्र–लोह) का घर बनवा, आठ–आठ हरिचंदन आदि के करंडों (पिटारी, डिब्बा) में रखवा, उसकृ को दूसरे हरिचंदन के करण्ड में, उसे भी दूसरे में, इस प्रकार आठ हरिचंदन के करण्ड में एक में एक रखकर, कृकृ आठ हरिचंदन–स्तूपों में... आठ लोहित (लाल) चंदन के स्तूपों में, (उन्हें) आठ (हाथी–) दंत–करण्ड में, आठ दंत–करण्डों को आठ दंतस्तूपों में,.. सर्वरत्न–करण्ड में,कृसर्वरत्न–स्तूपों में,कृआठ सुवर्ण–करण्डों में, ...आठ सुवर्ण–स्तूपों में,... लोहितांक–करण्डों में,लोहितांक (पन्नरागमणि) स्तूपों में,कृमसार–गल्ल(कबर–मणि)करण्डों में, मसारगल्ल–स्तूपों में,कृ आठ स्फटिक–करण्ड में,...आठ स्फटिक–स्तूपों में रखकर, सबसे उपर थूपाराम के चैत्य के बराबर का स्फटिक चैत्य बनवाया। उसके ऊपर सर्वरत्नमय गेह बनवाया। उसके ऊपर सुवर्णमय,...रजतमय, उसके ऊपर ताम्रलोह(तांबा)–मय गेह बनवाया। वहां सर्वरत्नमय बालुका बिखेरकर, जलज स्थलज सहस्त्रों पुश्पों को बिखेरकर, साढ़े पांच सौ जातक, अस्सी महास्थविर, शुद्धोदन महाराज, महामाया देवी, (सिद्धार्थ के) साथ उत्पन्न हुए सात–सभी (की मूर्तियों) को सुवर्णमय बनवाया। पांच–सौ सुवर्ण–रजतमय घट स्थापित किय पांच सौ सुवर्ण–ध्वज फहराये पांच–सौ सुवर्ण–दीप, पांच–सौ रजत दीप बनवाकर सुगंध–तैल भरकर, उनमें दुकूल(बहुमूल्य वस्त्र) की बत्तियां डलवाई। तब आयुश्मान् महाकाश्यप ने–'माला मत मुरझाए, गंध न नश्ट हो, प्रदीप न बुझे'–यह अधिष्ठान (दिव्य संकल्प) करके सुवर्ण–पत्र पर अक्षर खुदवाए–

"भविष्य में पियदास (पियदस्सी=प्रियदर्शी) नामक कुमार छत्र धारण कर अशोक धर्मराजा होगा। वह इन धातुओं को फैलाएगा।"

राजा ने सब साधनों से पूजाकर आदि से ही (एक–एक) द्वार को बंदकर, जंजीर में कुंजी दे(कुंचिकमुद्दियं बंधित्वा), वहां बड़ी मणियों की राशि स्थापित की–"भविष्य में (होने वाले) दरिद्र राजा मणियों को ग्रहणकर धातुओं की पूजा करें"–अक्षर खुदवा दिए। शक्र देवराज ने विश्वकर्मा को बुलाकर–कहा तात! अजातशत्रु ने धातुविधार कर दिया, वहां पहरा नियुक्त करो। उसने आकर बाल–संघाट–यंत्र लगा दिया। (जिससे) उस धातु गर्भ (धातु के चहबच्चे) में काष्ठ की मूर्त्तियां स्फटिक के वर्ण के खड्गों को लेकर पवन वेग से घूमती थीं। यंत्र में जोड़कर एक ही आनी में बांधकर चारों ओर गृधों के रहने के स्थान की भांति शिला–परिक्षेप करवा, ऊपर एक शिला से वंदनाकर मिट्टी डलवा भूमि समतल कर, उसके ऊपर पाषाण–स्तूप स्थापित करवा दिया।

इस प्रकार धातु–निधान समाप्त हो जाने पर, स्थविर आयुभर रहकर निर्वाण को चले गए, राजा भी कर्मनुसार गया, वह मनुष्य भी मर गए। पीछे पियदास (पियदस्सी) नामक कुमार ने छत्र, धारण कर अशोक नामक धर्म–राजा हो, उन धातुओं को लेकर जंबूद्वीप में फैलाया।

पाँचवीं शताब्दी में आचार्य बुद्धघोष द्वारा रचित ग्रंथ सुमंगलविलासिनी में उल्लेख किया गया हैं कि स्थविर महाकश्यप को भगवान के धातुओं की चिंता थी। अजातशत्रु ने सभी धातुओं को फिर से गड्ड–मड्ड कर (बुद्ध के परिनिर्वाण के बीस वर्ष बाद जमीन के भीतर एक कक्ष बनवाकर रखवा दिया था। अशोक ने सात स्तूपों को खुलवाकर देखा पर उसे कहीं भी पवित्र धातुएँ नहीं मिली, फिर उसे यह सम्मिलित धातुएँ मिली। उसने इसे चौरासी हजार विहारों में स्तूपों में नहीं निक्षिप्त करा दिया।

शोधार्थी ने इसकी पहचान नवीन राजगृह के अजातशत्रु किला का पत्थर की दीवार के दक्षिण–पूरब कोने के निकट से 400 मीटर दक्षिण एवं सड़क से सटे पूरब में, एवं गर्म झरना (ब्रह्मकुंड) के निकट से 800 मीटर उत्तर–पूरब में की

है, जो पत्थर की संरचना अभी के समय में अजातशत्रु के स्तूप के नाम से जाना जाता है। किन्तु अन्वेषण से पता चलता है कि इस संरचना का निर्माण उसी प्रकार किया गया था, जिस प्रकार धातुनिधान (चहबच्चा) की संरचना का निर्माण अजातशत्रु द्वारा निर्मित था, जिसका उल्लेख प्राचीन बौद्ध साहित्य की अट्ठकथा में स्पष्ट रूप से मिलता है।

यह उतर 25°1′ 6″ अक्षांश एवं पुरब 85°25′ 12″ देशांतर पर स्थित है। इसकी ऊपरी दीवार बड़े–बड़े पत्थरों से बना हुआ है। इसके चारों तरफ दीवारों की दूरी 422 फीट है एवं ऊंचाई लगभग 3 फीट से 12 फीट तक है। इसमें चढ़ने का रास्ता उत्तर तरफ से है एवं पश्चिम का भाग कुछ आगे की ओर निकला हुआ है जिससे सटे पूरब पत्थर की





कई शिलायें जीर्ण–शीर्ण अवस्था में खड़ी एवं गिरी हुई है। इस धातुनिधान के पश्चिमी छोर पर अभी भी कुछ शिला ऐसे परिक्षेप किया हुआ है जैसे गृधों के बैठने का स्थान हो अट्ठकथा के अनुसार ऊपर एक शिला से बंदना कर मिट्टी डलवाकर भूमि समतल कर इसके ऊपर पाषाण स्तूप स्थापित करवा दिये, जो ये अवशेष आज भी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में यहाँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

शोधार्थी द्वारा इस धातुनिधान को चंक्रमण करने के लिए छोड़ी गई भूमि सहित एक कोने से दूसरे कोने तक की दूरी नापी करने पर अभी भी अस्सी हाँथ (134 फीट) हीं है। सम्भवतः अस्सी हाँथ जमीन नापकर फिर उसे गहरा किया गया होगा, न कि अस्सी हाँथ गहरा।

अट्ठकथा के अनुसार इसमें अस्सी महास्थविर की मूर्तियाँ भी रखी गई थी, कदाचित इसलिए अस्सी हाँथ हीं जमीन नापकर धातुनिधान बनाया गया होगा ऐसा प्रतीत होता है।

इसमें थूपाराम के चैत्य के बराबर का घर बनाने एवं स्फटिक चैत्य बनाने की बात आई है, वो थूपाराम श्रीलंका में एक बौद्ध चैत्य है। उस थूपाराम के अगल–बगल जिस प्रकार और जितना मोटे पत्थर पर नक्काशी किया हुआ जो शिला खड़ा है, इस धातुनिधान के उपर भी कुछ शिला जीर्ण–शीर्ण अवस्था में अभी भी यहाँ खड़े एवं कुछ गिरे हुये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि राजगीर के धातुनिधान पर जो शिला खड़ा किया गया है उसकी झलक श्रीलंका के थूपाराम के चैत्य के अगल–बगल में भी दिखती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त चर्चा से हम पाते हैं कि प्राचीन राजगृह में इन धातु स्तूपों का बौद्ध इतिहास के साथ–साथ भारतीय इतिहास में इसका स्थान काफी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इन सब की स्मृतियां सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक रूप से विलुप्त हो चुकी थी। इनके प्रकाश में आ जाने के पश्चात मगध के साथ–साथ भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण तथ्य की वशद्धि हो जाएगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) बुद्धचर्या– राहुल सांकृत्यायन, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, 2023
(2) महापरिनिर्वाण सुत–राहुल सांकृत्यायन एवं जगदीश कश्यप, सम्यक प्रकाशन (द्वितीय संस्करण), नई दिल्ली, 2021
(3) महावंश– द्वारका दास शास्त्री, त्रिपाठी सिंह, खन्ना पब्लिकेशन, वाराणसी, 1996
(4) अशोक–राधा कुमुद मुखर्जी, मोतीलाल बनारसी दास प्रकाशन, पटना 1962
(5) फाहियान की भारत यात्रा–जगमोहन वर्मा, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019
(6) ह्वेनसांग की भारत यात्रा–ह्वेनसांग, अनुवादक–ठाकुर प्रसाद वर्मा, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, 1918
(7) द्विव्यावदानम् मिथिला विद्यापीठेन प्रकाशितम् परशुराम शर्मा, दरभंगा, 1880 राजगीर मोक
(8) RAJGIR- Mohammad Hamid, Kuraishi, A. Ghosh, Manger of Publication, delhi, 1951

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पट्कू बुनाई भारतीय परिधान संस्कृति की पहचान और लोकपरंपरा का एक विशिष्ट अध्ययन

सोनिया सैनी
शोधार्थी, वस्त्र आकल्पन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
डॉ. कविता चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, वस्त्र आकल्पन विभाग
वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सारांश

यह शोध पत्र, "पटकू बुनाई भारतीय वेशभूषा संस्कृति में पहचान और लोक परंपरा का एक विशिष्ट अध्ययन", गुजरात के मांडवी के पटकू वस्त्रों की बुनाई परंपरा पर केंद्रित है। पटकू, इकत तकनीक पर आधारित है, जिसमें करघे पर बुनाई से पहले धागों को रंगा जाता है। यह अध्ययन पटकू बुनाई के ऐतिहासिक विकास, इसकी तकनीकी विशेषताओं, रंग योजनाओं और डिज़ाइन पैटर्न का अन्वेषण करता है, साथ ही इसके गहरे सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व पर भी प्रकाश डालता है। चौधरी जनजाति में, पटकू वस्त्रों का एक विशेष स्थान है, जो शादियों, त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों का एक अनिवार्य हिस्सा है। शोध इस बात पर ज़ोर देता है कि पटकू बुनाई केवल एक शिल्प नहीं है, बल्कि एक सांस्कृतिक दस्तावेज़ है जो स्थानीय समुदायों की पहचान और सामूहिक स्मृति का प्रतिनिधित्व करता है। खत्री बुनकरों ने इस परंपरा को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि आज इस शिल्प को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है जैसे मशीन–निर्मित प्रतिस्पर्धा, बदलते फैशन के रुझान और युवाओं में घटती रुचि–लेकिन सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों की पहल, फैशन उद्योग की रुचि और टिकाऊ हथकरघा उत्पादों की बढ़ती वैश्विक माँग के माध्यम से इसके लिए आशाजनक अवसर भी मौजूद हैं।

मुख्य शब्दावली– पतकू बुनाई, इकत तकनीक, भारतीय पोशाक संस्कृति, मांडवी, चौधरी जनजाति, खत्री बुनकर, लोक परंपरा, कपड़ा कला, सांस्कृतिक पहचान, हथकरघा।

परिचय

भारत प्राचीन काल से ही वस्त्र निर्माण और परिधान संस्कृति के लिए विश्व प्रसिद्ध रहा है। यहाँ की जलवायु, सामाजिक विविधता और सांस्कृतिक परंपराओं ने वस्त्रों की विविधता को जन्म दिया। सिंधु घाटी सभ्यता से लेकर वैदिक युग, मध्यकालीन और आधुनिक काल तक वस्त्र न केवल शरीर ढकने का साधन रहे, बल्कि उन्होंने समाज की जातीय, धार्मिक और सांस्कृतिक पहचान को भी प्रकट किया। भारत के हर क्षेत्र ने अपने विशिष्ट परिधान और बुनाई परंपरा विकसित की। इसी क्रम में गुजरात के दक्षिणी हिस्से में पट्कू बुनाई ने विशेष स्थान प्राप्त किया।

पट्कू बुनाई का महत्व और विशिष्टता

पट्कू बुनाई केवल वस्त्र निर्माण की तकनीक नहीं है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक धरोहर है। इकत तकनीक से निर्मित पट्कू वस्त्र रंग, डिज़ाइन और बुनाई की दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट होते हैं। यह वस्त्र मंडवी क्षेत्र और चौधरी

जनजाति की सामाजिक पहचान से गहराई से जुड़ा हुआ है। विवाह और अनुष्ठानों में इसका उपयोग इसे और भी महत्त्वपूर्ण बना देता है।

पट्कू बुनाई का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

उत्पत्ति और प्राचीन साक्ष्य–

इकत तकनीक का इतिहास हजारों वर्षों पुराना है। भारत में इसका उल्लेख प्राचीन यात्रा–वृत्तांतों में मिलता है। वस्त्रों पर विशेष बंधेज और रंगाई के प्रयोग को इकत परंपरा से जोड़ा जाता है। यह तकनीक पूपश्चिम भारत (गुजरात) में समानांतर रूप से विकसित हुई।

गुजरात, खासकर मंडवी क्षेत्र में इसका विकास

दक्षिण गुजरात क्षेत्र में खत्री बुनकरों ने पट्कू परंपरा को विकसित किया। मंडवी विशेष रूप से पट्कू उत्पादन का प्रमुख केंद्र बना। यहाँ के बुनकर चौधरी जनजाति के लिए लंबे पट्टेदार कपड़े बुनते थे, जिन्हें "पट्कू" कहा जाता था इन वस्त्रों का सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व इतना था कि बिना पट्कू के विवाह और प्रमुख अनुष्ठान अधूरे माने जाते थे।

तकनीकी पक्ष

इकत और पट्कू बुनाई की तकनीक–

पट्कू बुनाई में बाना इकत तकनीक का प्रयोग होता है। इसमें बाने के धागों को पहले पैटर्न में बाँधकर रंगा जाता है और बाद में उन्हें करघे पर बुना जाता है।

- ताना सामान्य रहता है।
- बाना पर डिज़ाइन उभरता है।
- बुनाई करते समय धागों का संतुलन और पैटर्न की सटीकता बनाए रखना अत्यंत कठिन होता है।

रंगाई, ताना-बाना और डिज़ाइन की विशेषताएँ

पट्कू में लाल, सफ़ेद और नीले रंग प्रमुखता से प्रयुक्त होते हैं। आकृतियों में सीधी रेखाएँ शामिल रहती हैं। ताना–बाना की यह तकनीक इतनी सूक्ष्म होती है कि वस्त्र पर डिज़ाइन धुंधली किनारी के साथ उभरते हैं, जो इकत की विशेष पहचान है।

सांस्कृतिक और सामाजिक आयाम

विवाह, त्योहार और अनुष्ठानों में पट्कू का प्रयोग–

पट्कू केवल वस्त्र नहीं, बल्कि संस्कार और परंपरा का प्रतीक है। चौधरी जनजाति में विवाह के अवसर पर दूल्हे–दुल्हन को विशेष पट्कू पहनाया जाता है। त्योहारों और धार्मिक अनुष्ठानों में भी इसका प्रयोग पवित्रता और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता है।

आदिवासी और स्थानीय समुदायों की पहचान से जुड़ाव–

पट्कू वस्त्र चौधरी जनजाति की सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न हिस्सा है। यह उनकी सामूहिक स्मृति और परंपरा से जुड़ा है। इस वस्त्र के बिना उनकी सामाजिक स्थिति अधूरी मानी जाती थी।

आर्थिक और शिल्पकार समुदाय

बुनकरों की सामाजिक स्थिति–

पट्कू बुनाई का कार्य मुख्यतः खत्री बुनकरों द्वारा किया जाता था। उनकी सामाजिक स्थिति समाज में शिल्पकार के रूप में सम्मानित थी, किंतु आर्थिक दृष्टि से वे अक्सर सीमित संसाधनों पर निर्भर रहते थे।

आजीविका और रोजगार का साधन

पट्कू बुनाई बुनकरों की आजीविका का प्रमुख साधन रही। चौधरी जनजाति और अन्य स्थानीय समूहों से वस्त्रों

की निरंतर माँग के कारण यह पेशा लंबे समय तक फलता–फूलता रहा। हालाँकि औद्योगीकरण और मशीन से बने कपड़ों ने धीरे–धीरे उनकी आर्थिक स्थिरता को प्रभावित किया।

आधुनिक संदर्भ और चुनौतियाँ

बदलती फैशन संस्कृति और पट्कू की प्रासंगिकता–

आज के समय में फैशन की परिभाषा तेजी से बदल रही है। बदलती फैशन संस्कृति ने पट्कू बुनाई की पारंपरिक भूमिका को चुनौती दी है। जहाँ पहले यह सांस्कृतिक पहचान का मूल अंग था, वहीं आज इसका उपयोग सीमित हो गया है। परंतु फैशन उद्योग की नई धाराएँ जैसे फ्यूज़न और सस्टेनेबिलिटी पट्कू को आधुनिक संदर्भ में पुनर्जीवित करने का अवसर प्रदान करती हैं। वहीं अंतरराष्ट्रीय फैशन मंचों पर भी अपनी विशिष्ट पहचान बना सकेगा।

मशीन उत्पादन और पारंपरिक बुनाई पर प्रभाव

मशीन से बने कपड़े सस्ते और आसानी से उपलब्ध होते हैं। इनके कारण पारंपरिक करघा–आधारित पट्कू बुनाई प्रतिस्पर्धा में पिछड़ रही है। बुनकरों की आय कम हो रही है और नई पीढ़ी इस पेशे से विमुख हो रही है।

संरक्षण और संवर्धन के प्रयास

सरकारी और गैर–सरकारी पहल–

भारत सरकार और गुजरात सरकार दोनों ने हस्तशिल्प और करघा उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं। और सहकारी समितियाँ भी बुनकरों को प्रशिक्षण और विपणन सहयोग दे रही हैं।

हस्तशिल्प मेलों, GI टैग, और शैक्षणिक अध्ययन की भूमिका–

- राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय हस्तशिल्प मेलों में पट्कू वस्त्रों की प्रदर्शनी।
- GI (Geographical Indication) टैग के माध्यम से इस शिल्प को कानूनी पहचान मिल सकती है।
- Calico Museum of Textiles और विद्वानों (Eberhard Fischer, Haku Shah) द्वारा किए गए शोध ने पट्कू परंपरा को दस्तावेजीकृत किया है

निष्कर्ष

भारतीय परिधान संस्कृति में पट्कू बुनाई का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह केवल वस्त्र निर्माण की तकनीक नहीं, बल्कि लोकपरंपरा, सामाजिक पहचान और सांस्कृतिक स्मृति का हिस्सा है आज भले ही यह परंपरा मशीन उत्पादन और आधुनिक फैशन से चुनौती का सामना कर रही हो, किंतु इसके संरक्षण और संवर्धन के प्रयास इसे नया जीवन दे सकते हैं। आवश्यक है कि हम पट्कू बुनाई को न केवल शिल्प के रूप में, बल्कि भारतीय परिधान संस्कृति की पहचान और लोकपरंपरा के प्रतीक के रूप में आगे बढ़ाएँ।

संदर्भ सूची

1. फिशर, ई. एवं शाह, एच. (1970). दक्षिण गुजरात, भारत से साधारण वेफ्ट–इकट. अहमदाबादः कलीको म्यूज़ियम पब्लिकेशन्स.
2. मिश्रा, एस., कुमार, ए., एवं महापात्र, डी. (2019). हैंडलूम उद्योग के बुनकरों की वर्तमान स्थिति पर एक अध्ययनः एक समीक्षा. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड इनोवेशन्स, 7(2), 325–331.
3. रंजन, ए., एवं रंजन, एम. पी. (2007). हैंडमेड इन इंडिया.
4. तोमर, एस., एवं शरण, एम. (2016). मांडवी, सूरत में कपास के लंगोट वस्त्र निर्माण और ज़री बॉर्डर बुनाई की विलुप्त होती कला की एक झलक. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ टेक्सटाइल एंड फैशन टेक्नोलॉजी , 6(6), 37–44.
5. क्रिल, आर. (1998). भारतीय इकट वस्त्र. लंदनः वी एंड ए पब्लिकेशन्स.

आलेख

1. गुजरात हैंडीक्राफ्ट डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन वार्षिक प्रतिवेदन.

2. इंडियन टेक्सटाइल्स एंड क्राफ्ट्स रिपॉजिटरी.
3. स्थानीय कारीगरों से साक्षात्कार मांडवी, 2022.
4. नवलानी एवं भाटिया (2019). पट्कू बुनाई दक्षिण गुजरात की लुप्त होती कला की कथा.
5. न्यूज़ 18 गुजराती (2023). पट्कू बुनाई.
6. गुजरात की मरती हुई पट्कू कला पर रिपोर्ट.
7. शाह, गोपी. (2023). गुजरात की मरती हुई पट्कू बुनाई कला को पुनर्जीवित करने का प्रयास.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

20वीं शताब्दी में राष्ट्र सेविका समिति का सामाजिक योगदान

पूर्वा दीक्षित
शोधार्थिनी, पीएच.डी. (इतिहास)
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा (उ0प्र0)
प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला
विभागाध्यक्ष, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा (उ0प्र0)

सार संक्षेप

प्राचीन समय में महिलाओं की स्थिति को हम सुदृढ़ अवस्था में देखते हैं लेकिन मध्यकाल तक आते–आते महिलाओं की स्थिति दिन–प्रतिदिन गिरती चली गई 20वीं शताब्दी तक आते–आते महिलाओं की स्थिति बहुत खराब हो गई थी लेकिन कुछ महान विदुषियों के कारण भारतीय समाज की महिलाएं अपने शिक्षा, आत्म सम्मान और अपने अधिकारों के लिए उठ खड़ी हुई थी। ऐसे ही एक संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की महिला शाखा राष्ट्र सेविका समिति का उद्भव 1936 लक्ष्मीबाई केलकर द्वारा किया गया। इस समिति द्वारा महिला सशक्तिकरण और सामाजिक–सांस्कृतिक सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह समिति महिलाओं के लिए अनुशासन, देशभक्ति और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देने का कार्य किया। 20वीं शताब्दी के हालात महिलाओं के अनुकूल नहीं थे जिसके कारण कई महिला संगठनों का उद्भव हुआ, जिसमें राष्ट्र सेविका समिति एक प्रमुख संगठन के रूप में उभरा। जिसने महिलाओं को सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं को सशक्त करना प्रमुख कार्य रहा है। यह केवल 20वीं शताब्दी में ही नहीं बल्कि वर्तमान समय में भी भारत के प्रत्येक राज्य में महिलाओं के सुदृढ़ीकरण करने में सहायक है। इस समिति की प्रत्येक राज्य की प्रमुख वाहिकाएं व अन्य सामाजिक स्तर पर कई महिलाएं अपना विशेष योगदान दे रही है। वर्तमान समय में यह समिति महिलाओं के कौशल विकसित करने और समाजमें शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए सभी महिलाओं को मंच प्रदान करता है। यह महिलाओं में शिक्षा साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए, समाज में स्वास्थ्य सेवा और सामाजिक सुधार जैसे–दहेजप्रथा, जातिगत भेदभाव आदि कार्यों में सक्रिय रूप से रहा है। यह समिति महिलाओं व बच्चियों में सांस्कृतिक संरक्षण जो भारत की धरोहर है और देशभक्ति व राष्ट्रवाद की भावना को बढ़ावा देती है। यह समिति समय–समय पर अपने संभाग लगाकर बच्चियों व महिलाओं को प्रशिक्षित करने का कार्य करती है व प्रत्येक त्यौहार पर ग्रामीण क्षेत्रों व अपने कार्यालयों में त्यौहार मनाकर महिलाओं में भारतीय समाज की सांस्कृति गतिविधियों को बढ़ावा देती है। इन योगदानों के कारण राष्ट्र सेविका समिति सामाजिक–सांस्कृतिक और महिलाओं के समग्र विकास की ओर अग्रसर है।

की वर्ड– राष्ट्र, समिति, महिला सशक्तीकरण, वाहिकाएं, सामाजिक, सांस्कृतिक।

प्रस्तावना– 19वीं शताब्दी में भारत, भारतीय समाज में धार्मिक व अन्ध–विश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ है और इस काल में सुधारों की कोई गुंजाइस नहीं थी। उसका कारण ब्रिटिश औपनिवेशिक का काल था और हमारा समाज सामाजिक, धार्मिक रूढ़िवादिता से इस प्रकार बंधा हुआ था कि राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की बात सोचना भी सम्भव नहीं था। ऐसा नहीं है कि हमारे तत्कालीन बुद्धिजीवी को इस बात की जानकारी नहीं थी बल्कि हमारे देश के

बुद्धिजीवियों ने एकत्रित होना प्रारम्भ किया, जिसके साथ ही वातावरण में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों के प्रणेता अधिकांश पुरुष ही थे। पुरुषों ने इस बात को महसूस किया कि अब अलग–अलग होने से काम नहीं चलेगा इसलिए संगठनों का उदय हुआ। हिन्दू राष्ट्र को बढ़ावा देने के लिए ऐसे ही एक राष्ट्र स्वयं सेवक संघ का निर्माण हुआ जिसके संस्थापक डा0 केशव हेडगेवार द्वारा की गयी। यह संगठन युवाओं में राष्ट्र की भावना को जाग्रत करने का कार्य करती थी। हमारा देश गुलामी से जूझ रहा था ऐसे में आजादी के लिए युवाओं का एक साथ होना अत्यधिक महत्वपूर्ण था और युवाओं में न केवल पुरुष बल्कि महिलाओं का भी एकत्रित होना अत्यधिक महत्वपूर्ण था। राष्ट्र सेविका समिति की नींव 25 अक्टूवर, 1936 के विजय दशमी के दिन लक्ष्मीबाई केलकर ने वर्धा महाराष्ट्र में रखी थी। इस समिति के पूर्व नेतृत्व में लक्ष्मीबाई केलकर (मौसीजी) ने अपने पूर्वजों की परपंरागत मूल्यों और संस्कृति को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया था। भारतीय महिलाओं के लिए एक प्रमुख संगठन है। जो उन्हें सशक्त बनाने और राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाने के लिए कार्य करती है। समिति का उद्देश्य महिलाओं का शारीरिक प्रशिक्षण, सांस्कृतिक शिक्षा और सामाजिक सेवा के माध्यम से सशक्त बनाना है। इस संगठन का मानना है कि स्त्री राष्ट्र की आधारशिला है और इसका ध्येय सूत्र फेमिनिजिम नहीं बल्कि फेमिलिजम की विचारधारा पर आधारित है। राष्ट्र सेविका समिति ने महिलाओं के नैसर्गिक गुणों का संवर्धन करने और उन्हें शक्ति के अपार पुंज के रूप में स्थापित करने का पावन कार्य सफलता पूर्व सम्पन्न किया है। इस संगठन की स्थापना के पीछे का विचार यह था कि मातृशक्ति को भी राष्ट्र स्वयंसेवक संघ में स्थान दिया जाना चाहिए और इसके लिए एक अलग संगठन की आवश्यकता थी मौसीजी ने मातृशक्ति को राष्ट्र के कार्य के लिए प्रेरित किया। इस संगठन का इतिहास भारतीय समाज में महिलाओं के योगदान और उनके सम्मान की गाथा है। समिति ने भारतीय संस्कृति के प्रति गर्व और सम्मान को बढ़ाया है और इसने महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाया है। इस समिति के माध्यम से महिलाओं को न केवल शारीरिक और मानसिक रूप से सशक्त बनाया है बल्कि उन्हें सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक रूप से भी सक्रिय बनाया है। राष्ट्र सेविका समिति ने भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को मजबूत किया है और उन्हें राष्ट्र निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए प्रेरित किया है। मौसीजी के नेतृत्व में समिति ने शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वरोजगार के क्षेत्र में कई पहल की। आज भी समिति भारतीय संस्कृति और धार्मिकता को प्रोत्साहित करने के साथ–साथ समाज में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में कार्य कर रही है। भारतीय समाज में संगठनों का महत्व विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। भारत में व्यवस्था का महत्व अधिक है चाहे यह शहरी या ग्रामीण क्षेत्र हो, धार्मिक या भाषाई समूहों में, लोग और सामाजिक संस्थाएँ विभिन्न गुणों के आधार पर श्रेणीबद्ध किए जाते हैं। जातियों का व्यवस्थापन विशेष रूप से हिन्दू धर्म के साथ जुड़ा होता है लेकिन अन्य धार्मिक समुदायों में भी पाया जाता है। यह ज्ञान के आधार पर व्यवहार को तथा संवाद और सम्मान को प्रभावित करती है। ये धाराएं सामाजिक स्थिति पर प्रभाव डालती है। ऐसे ही राष्ट्र सेविका समिति भारतीय समाज में महिलाओं की भूमिका के नेतृत्व और सकारात्मक सामाजिक सुधार के रूप में महत्वपूर्ण बनाती है। समिति अपने सदस्यों को तीन आदर्शों की शिक्षा देती है।

भारत में गैर–सरकारी संगठन और स्वयंसेवी संगठनों ने सामाजिक कल्याण, सशक्तिकरण और समुदाय विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ये संगठन निम्नलिखित क्षेत्रों में अपनी भूमिका निभाते हैं। सामाजिक कार्यों में शामिल होते हैं, जैसे–पर्यावरण संरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य और गरीबों के हितों का संरक्षण। राष्ट्रीय विकास के कार्यों में सम्मिलित होते हैं जैसे–ग्रामीण विकास, जल संरक्षण और गरीबी उन्मूलन राष्ट्रीय स्तर पर अपना योगदान देते हैं। नागरिक भागीदारी में स्वयंसेवी संगठन सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक परिवर्तन को प्रोत्साहित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन संगठनों के माध्यम से सामाजिक और राष्ट्रीय विकास को समृद्धि मिलती है। इनकी सामूहिक शक्ति के माध्यम से वित्तीय पहुँच प्रदान की, जीविका के अवसर बनाए और सामाजिक समावेश को बढ़ावा दिया है। महिला स्वयं सहायता समूह गरीब महिलाओं को संगठित करके उन्हें वित्तीय स्वायत्तता जीविका के अवसर और सामाजिक समावेश की दिशा में सहायता प्रदान करते हैं। ज्ञान, पित्त, शक्ति के अवसर प्रदान करके महिलाओं को सशक्त बनाया जाता है। उदाहरण के रूप में SEWA (स्वनियोजित महिला संघ) और आजीविका सुधार परियोजना ने महिला SHGs के सदस्यों को सशक्त किया है। इन समूहों ने ग्रामीण भारत में महिलाओं के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। भारत में महिला सशक्तिकरण के लिए संगठनों के प्रभाव ने महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं। प्रधानमंत्री मुद्रा योजना–महिला उद्यमियों ओर स्वयंसहायता समूहों के लिए सस्ते क्रेडिट की पहुँच प्रदान करती है। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ – शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के कल्याण को सुधारने के लिए जागरूकता बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करती है।

महिला ई–हाट–ऑनलाइन मार्केटिंग प्लेटफार्म महिला उद्यमियों और स्वयं सहायता समूहों का समर्थन करता है। समिति का सामाजिक योगदान–राष्ट्र सेविका समिति महिला क्षेत्र में संगठनात्मक कार्य करने वाला एकमात्र संगठन है। उनमें राष्ट्रीय सामाजिक सांस्कृतिक चेतना जागृत किए बिना अपने समाज की प्रगति अधूरी ही रहेगी। यही धारणा लेकर उन्होंने स्वर्गीय पूज्यनीय डाक्टर हेडगेवार जी से भेंट की थी। डाक्टर साहब पहले से ही एक ऐसा कार्य बन्धु समाज के मध्य करते थे। विचार–विमर्श हुआ और हिन्दुत्व जागरण का प्रमुख ध्येय लेकर इस स्वतंत्र संगठन का शुभारम हुआ। वस्तुतः नारी का कार्यक्षेत्र अलग है। यह शिक्षा किसी पर आक्रमण के लिए नहीं प्रत्यत् स्वात्म–संरक्षण के लिए प्रदान की जाती है। स्व–संरक्षणक्षम नारी की समाज में अधिक प्रतिष्ठा होती है। सीताजी इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। अतः खेल–खेल के माध्यम से बहिनों में आध्यात्मिक तेज, शौर्य, साहस, धैर्य, शील, जुझारूवृत्ति एवं देशभक्ति कब निर्माण हो जाती है इसका पता भी नहीं चलता। यही है अपनी शाखा पद्धति का वैशिष्ट्य। सुदृढ़ शरीर में तेजस्वी मन का निर्माण होता है, इसके साथ ही साथ बौद्धिक विकास के विविध कार्यक्रम भी शाखाओं पर लिए जाते हैं। जिनके द्वारा अपनी श्रेष्ठ संस्कृति, इतिहास एवं धर्म का ज्ञान उन्हें प्राप्त होता है। इसमें सभी सेविकायें कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण करने में सक्षम बनकर विवेक, बुद्धि से समाज कार्य में संलग्न रहती है। साप्ताहिक शाखाओं में शारीरिक शिक्षा के अतिरिक्त, हस्तकला प्रशिक्षण, रामायण, महाभारत, कथा–कथन, संगीत, कला, साहित्य का प्रोत्साहन भी दिया जाता है। समिति ने आज तक बहिनों के सहयोग से स्वातंत्र प्रयत्नों का इतिहास, छत्रपति शिवाजी चरित्र, स्वामी विवेकानन्द जीवनी, श्रीराम चरितमानस, भजनी–निवेदिता चरित्र, वीर सावरकर जीवनमाला, मातृत्व की झलकियाँ आदि विषयों पर भव्य प्रदर्शनी आयोजित करके जन जागरण के कार्य में यशस्विता प्राप्त की है। उत्सव एवं सम्मेलन–समिति द्वारा समाज से सामंजस्य बनाते हुए पाँच राष्ट्रीय उत्सव भी आयोजित किये जाते हैं। ये हैं–प्रतिपदा (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा) गुरु पूर्णिमा (आषाढ़ पूर्णिमा)

रक्षाबंधन (श्रावण पूर्णिमा) विजयादशमी (आश्विन शुक्ल दशमी) मकर संक्रान्ति (14 जनवरी)। अपने संगठन के अखिल भारतीय स्वरूप के साक्षात्कार हेतु समिति त्रयवार्शिक सम्मेलनों का आयोजन करती है। ऐसा प्रथम सम्मेलन 1953 में बम्बई में हुआ। इसके उपरान्त क्रमशः नासिक, वर्धा, नागपुर, पूना, ग्वालियर, दिल्ली, हैदराबाद, बंगलौर, कर्णावती एवं वं. मौसीजी की जन्मशताब्दी पर 2005 में नागपुर में सम्मेलन हुए। महिला अदर्शों की प्रेरणा–कथनी–करनी के साम्य का उदाहरण रखने के लिए जब समिति के सामने प्रश्न उठा तो उन्होंने अपनी ऐतिहासिक परम्परा का दर्शन कराते हुए समिति की सेविकाओं के सामने 'राष्ट्र कल्याण'' की आकांक्षा लेकर पुत्र शिवाजी का निर्माण करने वाली राष्ट्रमाता जीजाबाई का आदर्श मातृत्व के लिये प्रस्तुत किया। नारी का श्रेय कार्यस्वरूप उसका श्रेष्ठ मातृत्व ही है। परन्तु समय पड़ने पर वह अपने कर्तव्य नेतृत्व में भी पीछे नहीं रही क्योंकि समिति की सेविकाओं ने तेजस्वी नेतृत्व की अद्वितीय ज्योति महारानी लक्ष्मीबाई में देखी जिसके धैर्य, स्वातंत्र प्रेम और सेनापतित्व के गुणों की प्रशंसा विदेशियों ने भी मुक्त कंठ से की है। नारी माता बनकर स्नेह वर्षा कर सकती है तो सम्मान पर संकट आने से उग्र चण्डी का रूप लेकर दुराचारी शत्रु पर अंगार भी बरसाती है। ऐसा अद्वितीय आदर्श महारानी लक्ष्मीबाई का रहा है। इसके साथ ही स्वास्थ्य से परे हटकर महारानी आहिल्याबाई ने जो कर्तव्य समाज के सामने रखा आज उसे पूरब से पश्चिम तक, उत्तर से दक्षिण तक के सभी लोग जानते हैं। इन सभी महिला रत्नों की पुण्यतिथियाँ भी शाखाओं पर पुण्य स्मृति के साथ मनायी जाती है। शारदोत्सव, बसन्तोत्सव, रामनवमी, गोपालअश्टमी आदि कार्यक्रम प्रादेशिक विशेषताओं के साथ सम्पन्न किये जाते हैं। विविध रचनात्मक कार्य–समिति की सेविकाओं का आराध्य राष्ट्र देवता है इसलिए देश पर समय–समय पर पड़ने वाली विविध आपत्तियों से भी संगठन का पर्याप्त सहयोग रहा है। बंगाल, पूना, जयपुर, मौरवी आदि स्थानों की बाढ़, अकाल एवं युद्धकाल सभी विपत्तियों के समय में स्वयं–सेविकाओं द्वारा धन, वस्त्र, दवाइयॉ, प्राथमिक चिकित्सा आदि सहयोग पूर्णतः दिया जाता रहा है। संगठनात्मक कार्य के साथ–साथ समिति द्वारा शिक्षण संस्थायें, गृहणी विद्यालय, योग साधना केन्द्र, उद्योग मन्दिर, औशधालय, कन्या छात्रावास, भजन मण्डल, आदि प्रकल्प भी विविध स्थानों पर चलाये जा रहे हैं, जिनका विधायक कार्य समिति कार्य के वैशिष्ट्य का परिचायक बना हुआ है। इस प्रकार अपने चहुँमुखी विकास के पथ पर बढ़ती हुई, यह ईश्वरीय कार्य की जान्हवी भारत के प्रत्येक प्रान्त एवं नगर नगर को पावन बना रही है। कन्याकुमारी से लेकर जम्मू तक, आसाम से लेकर राजस्थान तक हजारों–हजारों सेविकाओं का जाल फैला हुआ है। अब तो दक्षिणी प्रान्तों में अपना कार्य ग्रामीण अंचल की ओर अग्रसर है। ध्येय पथ पर आरूढ़ सेविकायें दृढ़वती बनकर इस रचनात्मक कार्य को सदा सर्वदा करती हुई अपने राष्ट्र को नवीन दिशा की ओर ले जायें, यही ईश्वर से कामना है।

निष्कर्ष

राष्ट्र सेविका समिति भारतीय संस्कृति और परंपराओं को बनाए रखने के लिए काम करने वाला सबसे बड़ा हिन्दू संगठन है। यह समिति समाज में सक्रिय रूप से शामिल है और सामाजिक सांस्कृतिक गतिविधियों में भाग लेती है। सामाजिक संगठनों के साथ सहयोग करती है। यह समिति स्वयंसेवी कार्यक्रमों में शामिल होती है। जैसे कि स्वयं रक्षा प्रशिक्षण और महिलाओं के लिए कानूनी जागरूकता के लिए कार्यरत है। समिति ने महिलाओं के लिए नर्सरी स्कूल व्यावसायिक पाठ्यक्रम और छोटे स्तर के उद्योगों की स्थापना की। उनकी यात्राएँ भारत के विभाजन के समय सिंध में हिन्दूओं की सहायता के लिए भी जानी जाती है। समिति गोशालाओं, लाइब्रेरी, कम्प्यूटर प्रशिक्षण केन्द्र और अनाथालय जैसी परियोजनाओं को चलाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bacchetta, P. (2004) Gender in the Hindu Nation : RSS Women as Ideologies, New Delhi : kali for Women.
2. Bleen, K.M. (1996) "Becoming Racist : Women in Contemporary Ku Klux Jlan and Neo-Nazi Groups," Gender and Society. 10(6) : 680-704.
3. Chakravarti, U. (1993) "Brahmanical Patriarchy," Economic and Political Weekly, 3 April. Volume 28.
4. Dixit, N. (2013) "Holier Than Cow," Outlook, 28 January.
5. Jaffrelot, C. (2007) Hindu Nationalism : A Reader. Third ed. Ranikhet Permanent Black.
6. Manjrekar, N. (2011) "Ideals of Hindu Girlhood : Reading Vidya Bharti's 'Balika Shikshan', Childhood August 2011 Vol. 18 no. 3 350-366.
7. Rajagopal, A., (1994) "Ram Janmabhoomi, Consumer Identity and Image - Based Politics," Economic and Political weekly. 29(27) : 1659-1668.
8. Ram Ke Naam, 1991. (Film) Directed by Anand Patwardhan, India Anand Patwardhan.
9. Sarkar, T. (1991) "Woman as a Communal Subject Rashtra Sevika Samti and the Ram Janmbhoomi Movement," Economic and Political Weekly, Vol. XXVI No. 35, August 30, 1991.
10. Kumar, A. Hatckar, N. and Mathur R. (2009) "THe making of the Middle Class in Western India. Age at Marraige for Brahmin Women (1900-50), Economic and Political Weekly May 23-29, 2009 44(21) : 40-47, 49
11. Uttar Pradesh District Gazetteers : Agra, Joshi, Basanti Esha, Central Secretatiate Library Government of Uttar Pradesh (Dept of Dist. Gazetteers U.P. Lucknow, 1965).
12. Uttar Pradesh District Gazetteers : Varanasi, Joshi, Basanti Esha, Central Secretatiate Library Government of Uttar Pradesh (Dept of Dist. Gazetteers U.P. Lucknow, 1965).
13. Allahabad : A Gazetteer, being volume XXIII of the District Gazetteers of the United Provinces of Agra and Oudh Nevill, H.R. Central Secretariat Library Copy 3, 1911.
14- Thapar, Suruchi (2006), Women in the Indian National Movement Unseen Facess and Unheard Voices 1930-42, Sage Publication, New Delhi.
15- Mohapatra, Padmalaya, (2002), Elite Women of India, APH Publishing Corporation, New Delhi.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारत में धर्म के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका

पूजा पोरस
पीएच0डी0, शोधार्थी, इतिहास एवं संस्कृति विभाग
डॉ0 भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा
प्रो. सुगम आनन्द
इतिहास एवं संस्कृति विभाग
डॉ0 भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा

सार

प्राचीन भारत में समानता के आदर्श वातावरण में स्त्रियों के लिए ज्ञानार्जन और आध्यात्मिक उत्थान सम्भव हुआ। हिन्दू समाज में सन्यास का मार्ग अपनाकर सिद्धि प्राप्त करने वालों में स्त्रियों और पुरुषों का अनुपात लगभग बराबर रहा। हिन्दुओं के दाम्पत्य जीवन के आदर्शवादी प्रतिमानों के कारण ही ऐसा सम्भव हुआ। देश की आध्यात्मिक परम्परा के मानदण्ड जन–मानस में इतने गहरी पैठ बना चुके थे कि यहां दाम्पत्य और ग्रार्हस्थ जीवन को कभी आत्म–तुष्टि अथवा भोग का साधन नहीं माना गया, अपितु उसे आध्यात्मिक अभ्युदय का ही एक सोपान समझा गया। विवाह की श्रशंगारिक और औपन्यासिक व्याख्या हिन्दू धर्म को कभी मान्य नहीं हुई। पति–पत्नी अध्यात्म–पथ के सहयात्री समझे गये हैं और उन्हें मोक्ष–प्राप्ति के लिए एक दूसरे का अनुपूरक माना गया है। यह विधान रहा है कि दाम्पत्य जीवन भोग–विलास के लिए नहीं, संयम और अनुशासन के वातावरण में सम्पन्न हो।

परिवारों और ग्राम–समुदायों में पले हुए सभी व्यक्तियों को ब्रह्म–निष्ठा के संस्कार मिले क्योंकि उन्होंने बचपन से यह देखा कि हिन्दू समाज में छोटे–बड़े सभी कृत्यों को आध्यात्मिक दिशा देने का आग्रह है। अतः आश्चर्य नहीं कि इस विशाल और प्राचीन देश में असंख्य ऐसी महिलाएं हुई जो आध्यात्मिक विकास के अन्तिम सोपान तक पहुंची।

प्रस्तावना

ऋग्वेद में ऐसी अनेक स्त्रियों का उल्लेख है जिन्होंने चिरन्तन सत्य प्राप्त किया है। इन्हें सत्यसिद्धा, अध्यात्मान्वेशिणी, अनागतदर्शिनी, ब्रह्मवादिनी जैसे विशेषणों से विभूशित किया गया। ऋग्वेद में ही अनेक ऐसे प्रेरणादायी सूक्त हैं जिनकी रचयिता स्त्रियाँ बतायी जाती हैं। ऋग्वेद में सत्ताइस ब्रह्मवादिनियों का उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम सर्ग के एक सौ छब्बीसवें सूक्त की रचयिता रोमशा और एक सौ उन्यासीवें सूक्त की रचयिता लोपामुद्रा बतायी गयी हैं। इन विदुषियों के अध्यात्मान्वेशण की गहराई वास्तव में विलक्षण थी। वॉच नामक ब्रह्मवादिनी ने, जो अम्भश्ण ऋषि की सुपुत्री थी, अपने को परम ब्रह्म से एकसात् कर लिया और इस आध्यात्मिक अनुभव के आनन्दातिरके में कह उठी–''मैं परम सम्राज्ञी हूँ–जो भी भोजन करता है मेरे माध्यम से करता है, जो भी देखता है, श्वास लेता है, सुनता है; सब मेरे माध्यम से करता है। मैं ही चराचर का सृजन करने वाली हूँ, वायु की भांति समस्त जगत में प्रवाहित होती हूँ। इस पृथ्वी और उस स्वर्ग से भी परे हूँ मैं, ऐसी विशाल है मेरी महानता।''

वैदिक ज्ञान और दर्शन का उद्घाटन तथा निरूपण करने वाली और भी कई स्त्रियाँ हुई हैं। उदाहरणार्थ विश्ववारा, शाश्वती, अपाला, घोशा और अदिति। इन सबने सन्यास के उच्चतम आदर्श को अपनाया और सांसारिक ऐश्वर्य का सर्वथा त्याग किया। इन्होंने श्रद्धापूर्वक सब धार्मिक कृत्य पूरे किये, सूक्तों की रचना और उनका पठन–पाठन किया,

जीवन और मृत्यु, आत्मा और परमात्मा की सूक्ष्म जटिल समस्याओं के बारे में विद्वानों से शास्त्रार्थ किया और कई अवसरों पर अपने समय के श्रेष्ठतम् दार्शनिकों को वाद–विवाद में परास्त कर दिखाया।

प्राचीन भारत में विदुषी महिलायें

पूर्व वैदिक काल में भी हिन्दू स्त्रियों की आध्यात्मिक परम्परा काफी समृद्ध और सुदृढ़ हो चली थी। इसका एक उदाहरण में ब्रह्मवादिनी गार्गी के जीवन से मिलता है जो एक विदुषी महिला थी और जिसने महर्शि याज्ञवल्क्य को, आमन्त्रित जनता के सामने दर्शन के गूढ़ तत्वों के बारे में शास्त्रार्थ करने की चुनौती दी थी। परम शान्ति और मोक्ष प्राप्त करने की शाश्वत समस्या पर अविवाहित ही नहीं विवाहित स्त्रियाँ भी चिन्तन–मनन किया करती थी। इसका दश्टान्त याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी के उस समय के संवाद से मिलता है जब याज्ञवल्क्य अपनी सम्पत्ति में से मैत्रेयी का हिस्सा निश्चित करके सन्यास ग्रहण करने जा रहे थे। मैत्रेयी ने उनसे कहा, ''स्वामी! अगर धन–धान्य से परिपूर्ण यह सारा संसार भी मेरा होता तो क्या मैं अमर हो जाती?'' याज्ञवल्क्य बोले– ''नहीं, तुम्हारा जीवन वैसा ही होता जैसा कि धनी लोगों का होता है। अमरता की तो धन के माध्यम से कोई सम्भावना ही नहीं है।'' मैत्रेयी ने कहा–''तो फिर मैं उसे लेकर क्या करूँ जो मुझे अमरता प्रदान नहीं कर सकता! स्वामी, मुझे तो वह मार्ग सुझाइये जिससे मैं अमरता को प्राप्त कर सकूँ।'' याज्ञवल्क्य बोले–''तुम मुझे पहले भी वास्तव में प्रिय रही हो। तुममें जो कुछ मुझे प्रिय रहा है वह इस संवाद से बढ़ गया है। प्रिये, यदि तुम वास्तव में मोक्ष के साधन जानना चाहती हो तो सुनो मैं उनकी विवेचना करता हूँ। तुम विवेचना के अर्थ पर मनन करती जाओ। मैत्रेयी, पति प्रिय होता है तो वास्तव में वह प्रेम पति के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। मैत्रेयी! पत्नी प्रिय होती है तो वास्तव में वह प्रेम पत्नी के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है; मैत्रेयी, पुत्र प्रिय हेाता है तो वास्तव में वह प्रेम पुत्र के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है; मैत्रेयी, धन–सम्पदा प्रिय होती है तो वास्तव में वह प्रेम धन–सम्पदा के लिए नहीं स्वयं के लिए होता है। यह सब प्रेम, ममता के ही रूप है। इसलिए हमें आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। पहले गुरुजनों और धर्म–ग्रन्थों से उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके, फिर उसके विषय में चिन्तन–मनन करके और अन्त में समाधिस्थ होकर उसका ध्यान करके। जब औरों से सुनकर तथा स्वयं चिन्तन–मनन और ध्यान करके हम आत्म–ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं तो आत्मेतर का ज्ञान हो जाता है क्योंकि सभी कुछ हम में है, हमसे अलग या बाहर कुछ भी नहीं है।''

जब दार्शनिक विचार–विमर्श हुआ करते थे तो बहुधा स्त्रियों को मध्यस्थ बनाया जाता था और वे अपने पाण्डित्य और निष्पक्ष निर्णय से सम्मान प्राप्त करती थीं। उत्तर–वैदिक काल में भी जब श्री शंकराचार्य ने विख्यात कर्मकाण्डी मण्डन मिश्र से वेदान्त–दर्शन के बारे में शास्त्रार्थ किया तो निर्णायक का पद मण्डन मिश्र की पत्नी भारती को दिया गया जो वेदविद्या में पारंगत थी। सात दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा और भारती ने मण्डन मिश्र की पत्नी होते हुए भी निष्पक्ष भाव से निर्णय करते हुए शंकराचार्य को विजयी घोषित किया। शंकराचार्य भारती की विद्धत्ता से अत्यन्त प्रभावित हुए और इस महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ के बाद उन्होंने अपने आश्रमिक नाम के आगे 'भारती' का नाम जोड़ कर मण्डन मिश्र की पत्नी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

उत्तर वैदिक काल में शिक्षित स्त्रियों की संख्या काफी बड़ी थी। इसका एक प्रमाण यह भी है कि ऐसी स्त्रियों का, आचार्यों और गुरुओं की पत्नियों से विभेद करने के लिए उन्हें अलग–अलग संज्ञाएं दी गयी थीं। गुरुपत्नियाँ उपाध्यायानी, आचार्यानी आदि कहलाती थीं और विदुषी स्त्री को उपाध्याया, उपाध्यायी, आचार्या, पण्डिता आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किया जाता था।

वैदिक कालीन समाज में भारत में स्त्रियों का इतना आदर था कि वे एक तरह से पूज्य समझी जाती थी। धार्मिक आयोजनों में उनको यथेष्ट स्थान प्राप्त था। स्मृतिकार मनु ने वेद की शिक्षाओं को स्वीकार किया और स्त्री–पुरुष के लिए समान अधिकारों को विधान किया। मनुस्मृति में कहा गया है, ''इस मायावी जगत् के सृजन से पहले संसार के स्वामी आदि देवता ने अपने को हिस्सों में बांट लिया। एक हिस्सा पुरुष और दूसरा हिस्सा स्त्री कहलाया। परम्परानुरूप भारतीय समाज में त्रिमूर्ति के रूप में अर्धनारीश्वर के रूप में पूजन किया जाता रहा है। भारतीय समाज के धार्मिक, नैतिक और सदाचार–सम्बन्धी प्रतिमानों के अनुसार स्त्री–पुरुष को बराबर समझना और इसमें किसी भी तरह का पक्षपात न करना नितान्त आवश्यक रहा है। ऋग्वेद में स्पष्ट और निश्चित रूप से कहा गया है कि ''पति–पत्नी एक ही काया के दो बराबर–बराबर अंग है, और हर दृष्टि में उनमें पूर्ण समानता है, इसलिए, धार्मिक और लौकिक सभी कृत्यों में उन्हें समान रूप से हिस्सा लेना चाहिए। यही सन्दर्भ उपनिषदों में मिलता है।

ऋग्वैदिक वैदिक समाज में स्त्री–पुरुषों और बालक–बालिकाओं को सभी प्रकार की शिक्षा तथा धार्मिक व्यवहार के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान किये जाते थे। लड़कों की तरह लड़कियों का भी उपनयन होता था और उन्हें गायत्री तथा ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती थी। संसार के और किसी धर्मग्रन्थ में स्त्रियों के लिए इतने अधिक और पुरुष के समकक्ष अधिकारों का विधान नहीं हैं, जितना कि वेदों में।

उत्तर वैदिक काल में भी स्त्रियों में शिक्षा का प्रचलन था। स्त्रियों के लिए दो प्रकार की शिक्षा–पद्धति की व्यवस्था थी और इनके अनुसार शिक्षित स्त्रियों के दो वर्ग हुआ करते थे' सद्योद्वाहा–जो विवाह होने पर अपना शिक्षा कर्म समाप्त कर देती थीं, और ब्रह्मवादिनी–जो विवाह नहीं करती थीं और आजीवन शिक्षा लेती रहती थीं। ब्रह्मयज्ञ के युग में वैदिक गुरुओं का श्रद्धापूर्ण स्मरण किया जाता था। उनकी सूची में तीन आचार्यों के नाम भी शामिल थे–गार्गी वाचक्नवी, वडवा प्रातिथेयी और सुलभा मैत्रेयी।

इस प्रकार उत्तर वैदिक युग में वेदाध्ययन तथा अन्य उच्चतर शिक्षा–कम पुरुषों की तरह स्त्रियों के लिए भी सुलभ थे। कई स्त्रियों ने वेदाध्ययन, शिक्षण, दर्शन तथा मीमांसा और शास्त्रार्थ के क्षेत्र में प्रसिद्ध प्राप्त की। यही नहीं, वैदिक काल में यज्ञ सामान्यतः स्त्री–पुरुष मिलकर किया करते थे।

पूर्व–वैदिक काल में बच्चों के शिक्षण का दायित्व सामान्यतः पिता कर होता था। ब्राह्मण–उपनिषदों के समय में लड़कियों की शिक्षा–दीक्षा सामान्य रूप से घरों में पिता, भाइयों और अन्य पुरुष सम्बन्धियों द्वारा सम्पन्न होती थी। लेकिन कुछ लड़कियां परिवार के बाहर के लोगों को भी गुरु बनाती थीं और कुछ विद्यार्जन के लिए घर से बाहर 'छात्रीशालाओं' में भी रहती थीं। इस युग में भी स्त्रियां विद्वानों की गोश्ठियों में जाकर शास्त्रार्थ करने की पूर्वकालीन परम्परा को आगे बढ़ाती रहीं।

ऐसी भी स्त्रियाँ थीं जिन्होंने रामकृष्ण के मीमांसावाद में विशेष योग्यता प्राप्त की और दर्शनशास्त्र के अध्ययन को लोकप्रिय बनाने में योग दिया। इस प्रसंग में सुलभा, गार्गी और वडवा के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें से कुछ स्त्रियों ने सुखी दाम्पत्य जीवन और विवाह की सम्भावना को तिलांजलि देकर कष्टसाध्य तपस्विनी जीवन अपनाया। बौद्ध धर्म के आविर्भाव से पहले भी भारतीय समाज में भिक्षुणियाँ और सन्यासिनियाँ हुआ करती थीं। यद्यपि उतनी बड़ी संख्या में नहीं थीं। सन्यास की भावना के प्रति लोगों की श्रद्धा धीरे–धीरे बढ़ती गयी और ऐसी मान्यता स्थापित होने लगी थी कि सामान्य गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिक चिन्तन परम्पर विरोधी होने के कारण एक साथ नहीं निभाये जा सकते।

प्राचीन काल की स्त्री प्रज्ञा के विषय में बौद्ध धर्म तथा दर्शन से जुड़ी हुईं थेरीगाथाओं से काफी जानकारी मिलती है। थेरीगाथा नारी स्वतंत्रता को प्रकट करने वाला दस्तावेज है। त्रिपिटक के निकाय ग्रन्थों में थेरीगाथा खुद्दक निका के पन्द्रह ग्रन्थ समूहों में क्रम संख्या नौ पर समाहित हैं। महात्मा बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की। भिक्षुणी संघ में 73 भिक्षुणियाँ थीं जिन्हें अर्हत पद प्राप्त था। इनकी चर्चा थेरीगाथा में मिलती है। बौद्ध काल में थेरीगाथाओं में स्त्रियों की स्वतन्त्रता की चर्चा हैं। महात्मा बुद्ध की समकालीन भिक्षुणियों के जीवनानुभव उनकी अपनी वाणी में अभिव्यक्त हुए हैं। पुरानी मान्यताओं की परवाह किये बगैर ये स्त्रियां महात्मा बुद्ध की शरण में आने का साहस दिखा सकीं। अपने अन्तर्मन की भावनाओं की खुली अभिव्यक्ति सामने रख सकी। अबला समझी जाने वाली नारी का क्रान्तिकारी रूप में इसमें विद्यमान था। प्राचीन भारतीय समाज में महिलाओं की धार्मिक स्थिति और उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण का यथार्थ रूप बौद्ध ग्रन्थ थेरीगाथा के माध्यम स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए भिक्षुणी सुमंगला माता भिक्षुणी बनने के पहले और बाद के अपने अनुभवों को यों रेखांकित करती है। वह कहती है–

अहो! मैं मुक्त नारी! मेरी मुक्ति कितनी धन्य है!
पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी,
आज उससे मुक्त हुई।
मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे–छोटे बर्तन।
जिनके बीच में मैं मैली–कुचली बैठती थी,
और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी
तुच्छ समझता था
जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था
अब उस जीवन की आसक्तियों और मलों को
मैंने छोड़ दिया

मैं आज वृक्ष मूलों में ध्यान करती हुई
जीवन–यापन करती हूँ।
अहो! अब मैं कितनी सुखी हूँ...

कष्टमय घरेलू जीवन में गरीबों से जूझने वाली स्त्री कैसे अपने पति की अवहेलना सहकर जी रही थी और बाद में कैसे मुक्त होकर सुखी होने का आनन्द पा रही थी इसकी झलक इन पंक्तियों में है। उब्बीरी थेरीगाथा में पुत्री की मृत्यु से मातृहृदय पर जो आघात पड़ता है, उस आघात का मर्मस्पर्शी चित्र है। पुत्री जीवन्ती की शोक में विलाप करने वाली उब्बीरी की आँखें तब खुल गयी थीं जब बुद्ध ने उससे पूछा था–'उब्बीरी इसी श्मशान में तेरी चौरासी हजार कन्याएं जलाई गई है। बता, तू उनमें से किस कन्या के लिए विलाप कर रही है? मातृहृदय के विस्तार की भावना यहाँ परिदर्शित है। महिलाएं बुद्ध के विचारों से प्रभावित थीं। भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श के प्रामाणिक स्रोत के रूप में थेरीगाथा को स्थान दिया जा सकता है। नारी मुक्ति का तीखा स्वर इन गाथाओं में सुनायी पड़ता है। थेरियों ने अपने सामाजिक जीवन को सही मायने में व्यक्त किया है। स्त्री के रूप में समाज में अपने स्थान को और पारिवारिक जीवन में अपनी स्थिति को खुलकर अभिव्यक्ति देने में थेरियों को सफलता मिली है। महिलाओं की ओर देखने का समाज का क्या दृष्टिकोण था, इन सारी बातों की जानकारी थेरीगाथा से मिलती है।

डॉ. विमल कीर्ति जैसे बौद्ध धर्म के विचारक का मत है कि ''जो नारी पुरुष प्रधान समाज में किसी भी प्रकार की अधिकारिणी नहीं थी, उसको सभी प्रकार के अधिकारियों की अधिकारिणी बनाना, उसको ज्ञान प्राप्त करने की अधिकारिणी घोषित करना बहुत क्रान्तिकारी बात की।'' इसी प्रकार डॉ0 अम्बेडकर की अंग्रेजी में लिखी पुस्तक 'द बुद्धा एण्ड हिज धम्मा' का अनुवाद डॉ0 भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने हिन्दी में 'भगवान बुद्ध और उनका धम्म' नाम से किया है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में सिद्धार्थ का जन्म हुआ था। उस काल में स्त्री को स्वयंकर का अधिकार प्राप्त था। स्त्री अपना निर्णय खुद ले सकती थी। यशोधरा का विवाह इसका साक्ष्य है–''दण्डपाणि नामक शाक्य की बेटी यशोधरा सोलह वर्ष की हो गयी तो प्रथा के अनुसार दण्डपाणि ने अपनी बेटी के स्वयंवर में सम्मिलित होने का निमंत्रण अपने पड़ौसी देशों के तरुणों को भेजा जिसमें सिद्धार्थ गौतम भी था और उसका भी सोलहवां वर्ष पूरा हो चुका था। आगत तरुणों में से यशोधरा ने सिद्धार्थ गौतम को ही चुना।'' स्त्रियों की धर्मदीक्षा के सन्दर्भ में डॉ0 अम्बेडकर ने स्पष्ट किया है कि महाप्रजापति गौतमी ही स्त्रियों की अगुआ थी जो संघ में प्रवेश करना चाहती थी। स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की अनुमति देने से बुद्ध ने पहले इन्कार किया था। लेकिन स्त्रियों ने सोचा कि तथागत के इन्कार को उनका अन्तिम निर्णय नहीं मानेंगी और किसी न किसी तरह तथागत को राजी करेंगी। बाद में आनन्द के साथ इस पर चर्चा हुई। आनन्द के पूछने पर तथागत ने कहा–''मेरा मत है कि पुरुषों की तरह स्त्रियों भी निर्वाण प्राप्त कर सकती हैं। आनन्द मुझे गलत तौर पर मत समझो। मैं पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा किसी भी तरह विशेष नहीं मानता। महाप्रजापति गौतमी की प्रार्थना को जो मैंने स्वीकार नहीं किया है, वह स्त्रियों को पुरुष की अपेक्षा हेय समझने का कारण नहीं, बल्कि व्यावहारिक कारणों से ही।''

बाद में महाप्रजापति गौतमी के साथ 500 स्त्रियाँ भी भिक्षुणियाँ बन गयीं। धर्मदीक्ष के मामले में बुद्ध ने कोई जाति–पांति का बन्धन नहीं माना और प्रकृति नामक चण्डालिका को भी उन्होंने दीक्षा दी। तथागत ने कहा–''हे प्रकृति! यद्यपि तू चण्डाल कन्या है किन्तु तू श्रेष्ठ, पुरुषों और स्त्रियों के लिए आदर्श का काम देगी। तू 'नीच' जाति की है सही लेकिन ब्राह्मण तुझसे शिक्षा ग्रहण करेंगे। न्याय तथा धर्म के पथ से विचलित न होना। तेरी कीर्ति राजसिंहासन पर बैठी हुई रानियों की कीर्ति से बढ़ जायेगी।'' बौद्ध धर्म में स्त्रियों को जो उच्च स्थान प्राप्त था इसके पतन के बाद वह नहीं रहा। परवर्तीयुग में भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति बिगड़ गयी थी। जिसके कई ऐतिहासिक और सामाजिक कारण हैं। यहाँ उल्लेखनीय है कि तत्कालीन समाज में चण्डाल कन्या प्रकृति जैसी नारी अपने अन्तर्मन की इच्छापूर्ति के लिए, ज्ञान प्राप्ति के लिए कितनी उत्सुक रही है। तथागत के तर्क भी लौकिकता की सारहीनता का तत्व समझने की क्षमता चण्डाल कन्या प्रकृति में थी। बुद्ध ने अपने कार्य से नारी जीवन की प्रतिष्ठा बढ़ायी। बुद्ध ने पति–पत्नी सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने की बात कही है। परिवार में पति–पत्नी के लिए जीवन नियम क्या होना चाहिए इसकी चर्चा मिलती है। स्त्री को आदरणीय स्थान देने पर उन्होंने बल दिया। पारिवारिक और सामजिक जीवन में स्त्री–पुरुष सम्बन्ध के सम्यक् स्वरूप पर बुद्ध ने बल दिया था। कौटुम्बिक प्रबन्धन में स्त्री के प्रमुख स्थान को उन्होंने रेखांकित किया था।

पुराणों और रामायण–महाभारत के काल में भी कई स्त्रियों ने अध्यात्मवाद के क्षेत्र में महान् प्रगति की और वे योगिनियाँ बनीं। रामायण में सश्मणी और शबरी नामक दो तपस्विनियों का उल्लेख है। शबरी महर्शि मातंग की शिष्या

थी और उसने अपना अद्भुत आध्यात्मिक विकास किया था। शबरी ने घोर तपस्या की। वह वल्कन वस्त्र पहनती थी और जटाजूट धारण किए रहती थी। महाभारत में योगिनी सुलभा का उल्लेख है जो भिक्षुणी बनकर पर्यटन करती रही। सुलभा, महाराज जनक के दरबार में गयी और वहां उसने योग–साधना से प्राप्त अपनी विलक्षण शक्ति और विस्मयजनक ज्ञान का परिचय दिया। तपस्विनी शिवा ने भी वेदों के अध्ययन में अद्भुत प्रगति की और परम ज्ञान प्राप्त किया। शाण्डिल्य की सुपुत्री ने भी ब्रह्मचर्य को आजीवन अपनाया और आध्यात्मिक मुक्ति पायी। विवाहित स्त्रियों द्वारा सन्यास ग्रहण किये जाने के भी कतिपय उदाहरण मिलते हैं, यथा प्रभास की धर्मपत्नी ब्रह्मवादिनी बनी, उन्होंने परिभ्रमक भिक्षुणी का जीवन अपनाया और योग–साधना की।

स्मृति पुराण–युग (500 ई0पू0 से 600 ई0 तक) एक प्रकार से ह्रास और वर्जन का युग है। इसमें स्त्रियों के लिए शिक्षा–दीक्षा लेने की सुविधाओं का सर्वथा अभाव था। अल्पायु में स्त्रियों का विवाह कर देने की प्रथा चल पड़ी थी और यह विधान कर दिया गया था कि कोई भी स्त्री अविवाहित नहीं रह सकती। स्त्रियों के लिए पूर्ण मानसिक और आध्यात्मिक विकास के अवसर उपलब्ध नहीं थे। इस युग के प्रारम्भिक चरण में ही लड़कियों का उपनयन संस्कार कराने का महत्व प्रायः समाप्त हो गया था और यह संस्कार केवल नाममात्र का किया जाता था। उपनयन के बाद लड़कियों को वेदाध्ययन नहीं कराया जाता था। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह डाला है कि लड़कियों का उपनयन संस्कार उनसे वेदमन्त्रोच्चार कराये बिना ही सम्पन्न किया जाये। समाज के अग्रणी विधायकों ने अनन्तर यह अनुभव किया कि जब लड़कियों के उपनयन का केवल आचारानुगत महत्व शेष रह गया है तो क्यों न इस संस्कार को पूर्णतया समाप्त ही कर दिया जाये। याज्ञवल्क्य ने लड़कियों के लिए उपनयन का निशेध किया है और बाद के स्मृतियों का भी यही विधान है।

स्मृति पुराण के युग में भी कुछ हिन्दू तपस्विनियाँ हुई, लेकिन धार्मिक आचार्याधिपत्य में उन्हें कोई सम्मानित पद नहीं दिया गया। वानप्रस्थी व्यक्ति सन्यास लेते समय अपनी पत्नी को साथ लेकर जा सकता था और पति–पत्नी मिल कर तपश्चर्या कर सकते थे। लेकिन इसके उदाहरण बहुत ही कम मिलते हैं। कालान्तर में यह विधान भी समाप्त कर दिया गया और आचार्यों ने कह दिया कि लौह युग में स्त्रियों के लिए वानप्रस्थ और सन्यास असम्भव तथा निशिद्ध हैं। बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों के विहारों में भ्रश्टाचार के पनपने पर तो यह विधान और भी अनुल्लंघ्य समझा जाने लगा।

निष्कर्ष

600 ई0 से लेकर 1200 ई0 तक के काल में महाकाव्यों और पुराणों में प्रतिपादित धार्मिक मान्यताओं का बोलबाला रहा। वेदों, पुराणों और स्मृतियों में प्रयुक्त संस्कृत भाषा का प्रचलन धीरे–धीरे कम होता गया और ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते–होते ये सब ग्रन्थ जनसाधारण के लिए सुगम–सुबोध नहीं रहे। वैदिक काल में स्त्रियों को जो सुविधाएं और विशेषाधिकार प्राप्त थे वे सब समाप्त हो गये। यह वही युग है जिसमें भक्ति मार्ग का प्रादुर्भाव हुआ। स्त्रियों ने बहुत उत्साह और निष्ठा से साधना का यह नया मार्ग अपनाया। इस युग की लगभग सभी सन्त हिन्दू महिलाएं किसी न किसी भक्ति सम्प्रदाय की सदस्या रहीं। सभी प्रान्तों में भक्ति–सम्प्रदायों का विकास हुआ और सभी प्रान्तों में अनेक महिलाएं सन्त बनकर प्रसिद्ध हुई। व्रत, पूजा, भजन कीर्तन, धार्मिक ग्रन्थों का पठन–पाठन और अन्य आध्यात्मिक कृत्य इन महिलाओं के नित्य नियम बने।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मालती, के0एम0, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2017।
2. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2013।
3. घनानन्द, स्वामी, पूर्व और पश्चिम की सन्त महिलाएं, सूचना विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 1962।
4. बृहदारण्यक उपनिषद् 1–4–3
5. अल्तेकर, ए0एस0, 2016, दि पोजीशन ऑफ वीमैन इन हिन्दू सिविलीजेशन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
6. वंशी, बलदेव, 2017, भारतीय नारी सन्त परम्परा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
7. मालती, के0एम0, 2017, स्त्री विमर्श : भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
8. शुक्ला, ऋतु, 2016, प्रमुख धर्मग्रन्थों में नारी अधिकार, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद।

9. मिश्र, जयशंकर, 2013, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना।
10. आर्य, भारती, 1989, स्मृतियों में नारी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, वाराणसी।
11. शर्मा, मालती, 1990, वैदिक संहिताओं में नारी, शोध प्रबन्ध, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि0वि0 वाराणसी।
12. घोश, एस0के0, 1989, इंडियन वीमैन थ्रू दि ऐजेस, आशीष प्रकाशन हाउस, दिल्ली।
13. काणे, पी0वी0, धर्म शास्त्र का इतिहास (द्वितीय खण्ड) (1992), उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ।
14. उपाध्याय, एफ0सी0, 1980, स्टेट्स ऑफ वीमैन, अनमोल प्रकाशन, दिल्ली।
15. डॉ. वासंती मधुकर सालवेकर, भारत की महिला सन्त, 2017, अतुल प्रकाशन, कानपुर।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन भारत में चौहान शासक और धार्मिक सहिष्णुता

सतेन्द्र कुमार
शोधार्थी, इतिहास एवं संस्कृति विभाग
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

सारांश

मध्यकालीन भारत का इतिहास न केवल राजनीतिक प्रतिरोध का काल रहा वल्कि धार्मिक विविधता एवं सहिष्णुता का भी प्रतीक रहा है। चौहान शासन इस दृष्टि से विशिष्ट हो जाता है क्योंकि इसके शासकों ने धर्म को केवल आस्था का विषय न मानकर सामाजिक–सांस्कृतिक एकता का आधार बनाया। चौहान राजाओं ने शैव, वैष्णव एवं शक्ति की उपासना को संरक्षण प्रदान किया, साथ ही जैन मठों, मंदिरों व तीर्थों के लिए भूमि अनुदान एवं दान दिया। विभिन्न अभिलेखीय साक्ष्य तथा साहित्यिक प्रमाण इस बात की पुष्टि करते हैं कि चौहान शासकों की नीतियॉ किसी एक संप्रदाय तक सीमित न होकर बहुधर्मी सहअस्तित्व को प्रोत्साहित करने वाली थीं। प्रस्तुत शोध पत्र में चौहान–शासकों की धार्मिक नीति एवं उनके द्वारा विभिन्न धार्मिक संप्रदायों को दिए गये संरक्षण की विवेचना की गयी है।

मूल शब्द– चौहान शासन, धार्मिक सहिष्णुता, जैन संप्रदाय, शैव–वैष्णव परंपरा, अभिलेखीय साक्ष्य, सांस्कृतिक समन्वय।

प्रस्तावना

भारत प्राचीनकाल से विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का आश्रयदाता रहा है यहाँ सभी संप्रदायों को समान रूप से फलने–फूलने का अवसर मिला। कोई भी धार्मिक उपदेशक अपने पंथ की श्रेष्ठता के बारे में लोगों को आश्वस्त कर देता था तो लोग पूरी श्रद्धा के साथ उस नये धर्म को अपना लेते थे। उदाहरणस्वरूप छठी शताब्दी ई. में भारत में जैन एवं बौद्ध संप्रदायों ने लोकप्रियता अर्जित की और लोग तेजी से इन संप्रदायों की ओर आकृष्ट हुए। भारत में प्रचलित धार्मिक संप्रदायों ने भौतिक उन्नति से अधिक आध्यात्मिक उन्नति पर बल दिया और आत्मा को सांसारिक बंधनों से मुक्त करने के लिए मोक्ष/सर्वोच्च आनंद की अवधारणा सामने आयी, इसलिए विभिन्न धार्मिक संप्रदाय अंतिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अलग–अलग तरीके एवं साधन जुटाने की होड़ में लग गये। चौहान शासनकाल में राजपूताना एवं निकटवर्ती क्षेत्रों में अनेक धार्मिक संप्रदायों के प्रचलन की सूचना मिलती है जिसमें मुख्य रूप से शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन एवं बौद्ध संप्रदाय सम्मिलित हैं।

शैव संप्रदाय

चौहान राज्य में शिव सर्वाधिक लोकप्रिय देवता थे उनका अन्य नाम हर्शनाथ भी है। हर्शनाथ महादेव शाकंभरी के चौहान शासकों के कुलदेवता थे जिनका मंदिर हर्शगिरि पहाड़ी (सीकर) पर बना है। चौहान शासक गुवक प्रथम ने हर्शनाथ की स्वर्ण प्रतिमा बनवायी थी।[1] पृथ्वीराज विजय से ज्ञात होता है कि वाक्पतिराज प्रथम एवं उसके पुत्र सिंहराज ने पुश्कर झील के किनारे अत्यन्त भव्य मंदिर बनवाया था जो पृथ्वीराज तृतीय के काल तक विद्यमान रहा।[2]

अर्णोराज और उसके पुत्र सोमेश्वर ने भी अजमेर तथा अन्य स्थानों पर शिव मंदिरों का निर्माण करवाया था।[3] प्रसिद्ध शासक विग्रहराज चतुर्थ या बीसलदेव जो कला एवं विद्या का महान संरक्षक था, शिव का अनन्य भक्त था। इसी प्रकार पृथ्वीराज तृतीय के एक लेख से उसके शिव भक्त होने का प्रमाण मिलता है।[4]

नाडोल के चौहान शासक भी शिव के उपासक थे उन्होंने अनेक शिव मंदिरों का निर्माण लक्ष्मणस्वामी, सोमेश्वर, पृथ्वीपालेश्वर, जेन्द्रराजेश्वर इत्यादि नामों से करवाया था।[5] नाडौल से प्राप्त अभिलेख (वि.सं. 1024) से ज्ञात होता है कि चौहान शासक लक्ष्मणसेन ने नीलकण्ठ महादेव मंदिर का निर्माण करवाया था।[6] इसके अतिरिक्त महाराज पृथ्वीपाल के पुत्र महाराज रत्नपाल के एक ताम्रपत्र (वि.सं. 1176) में पार्वती पति शिव को चराचर जगत के स्वामी, संसार के पापों का हरणकर्ता, जन्म मरण के दाता तथा वृद्धावस्था में रक्षक के रूप में स्तुत्य माना गया है।[7] बाड़मेर से प्राप्त कपालेश्वर मंदिर अभिलेख (वि.सं. 1365) शैव संप्रदाय के उप संप्रदाय (पाशुपत संप्रदाय) के विद्यमान होने की सूचना देता है।[8] अभिलेख से ज्ञात होता है कि लकुलीश संप्रदाय के साधु धर्मराशि ने आत्मश्रेयार्थ इस शिवालय का जीर्णोद्वार करवाया।

वैष्णव संप्रदाय

चौहान शासकों के अभिलेखों से वैष्णव संप्रदाय के अस्तित्व की सूचना मिलती है। नाडोल के चौहान शासक पृथ्वीपाल का खण्डित ताम्रपत्र (संभवतः वि.सं. 1167) में हरि विष्णु की वंदना की गयी है।[19] अभिलेख से ज्ञात होता है कि लक्ष्मणदेव चौहान ने हरि का सुंदर मंदिर बनवाया था। इसी अभिलेख में आसराज को महान भगवद्भक्त कहा गया है। मण्डोर से प्राप्त एक खण्डित अभिलेख (वि0सं0 1202 के पश्चात) के प्रारंभ में विष्णु और लक्ष्मी की वंदना की गयी है।[10] महाराज अल्हणदेव के पुत्र गजसिंह देव ने माण्डव्यपुर के विष्णु मंदिर के निमित्त दान किया था।[11]

पृथ्वीराज विजय से ज्ञात होता है कि शाकंभरी के चौहान शासक चामुण्डराज ने नरवर नामक स्थान पर एक विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया था।[12] इसी प्रकार राजा अर्णोराज भी विष्णु भक्त था। चौहान राजा सोमेश्वर ने अपनी राजधानी में भगवान विष्णु का मंदिर बनवाया थ।[13] पृथ्वीराज द्वितीय व तश्तीय का वर्णन राम के रूप में किया गया है।[14] चौहान शासक अर्णोराज और अजयराज ने वैष्णव गुरु देवबोधि को आश्रय प्रदान किया था इन्हीं देवबोधि के प्रयासों के कारण राजस्थान में वैष्णव धर्म का प्रचार प्रसार हुआ।[15] राजस्थान में चतुर्भुज विष्णु और उनकी भार्या लक्ष्मी का पूजन लोकप्रिय था। राजस्थान से विष्णु अवतारों में नशसिंह व वराह की प्रतिमाऐं अधिक संख्या में मिली है। जोधपुर अभिलेख परमेश्वर को चतुर्भज रूपी बताता है। वे शंख, चक्र, गदा, पद्म और कौस्तुभमणि धारण करते हैं, उनकी पत्नी लक्ष्मी भी पूजनीय है।[16]

शाक्त संप्रदाय

शाक्त मत की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। कालांतर में दुर्गा, काली, चामुण्डा, भवानी, रूद्राणी, लक्ष्मी, सरस्वती इत्यादि देवियों को शक्ति का प्रतीक मान लिया गया। चौहान काल में शैव तथा वैष्णव संप्रदाय की भाँति शाक्त संप्रदाय भी अत्यधिक लोकप्रिय था। चौहान दुर्लभराज का किणसरिया अभिलेख (वि.स. 1056) राजा द्वारा कात्यायनी तथा काली देवी की उपासना किये जाने की सूचना देता है।[17] चौहान शासक जयसिंह देव के सामंत अश्वक के बाली पाषाण अभिलेख (वि.सं. 1200) से देवी मंदिर को दिये दान की सूचना मिलती है।[18] लाडनूँ के बड़े दिगंबर जैन मंदिर में स्थापित सरस्वती प्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख (वि.सं. 1219) से ज्ञात होता है कि माथुर संघ के जैनाचार्य श्री अनंतकीर्ति के धर्मशासन में भक्त श्रेष्ठी बहुदेव की पत्नी आशा देवी द्वारा सकुटुम्ब सरस्वती वंदना की गयी।[19] यह अभिलेख सरस्वती पूजा के प्रचलन की पुष्टि करता है। सुण्डा पर्वत का चामुण्डा माता मंदिर अभिलेख (वि.सं. 1319–23) नाडोल तथा जालौर के चौहान शासकों की सम्मिलित प्रशस्ति है। इस अभिलेख में पार्वती, लक्ष्मी, चण्डिका देवी की स्तुति की गयी है।[20] चौहानों द्वारा शक्ति की उपासना वटयक्षिणी दैवी, शाकंभरी देवी, आशा पुरी देवी इत्यादि देवियों के रूप में की जाती थी। देवी आशापुरी को शाकंभरी क्षेत्र की संरक्षिका माना जाता था।[21] सोमेश्वर, पृथ्वीराज तृतीय के सिक्कों पर आशावरी शब्द उत्कीर्ण है निश्चित रूप से यह शब्द आशापुरी माता के लिए प्रयुक्त हुआ है।[22]

जैन संप्रदाय

चौहान काल में बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैन धर्म उन्नत अवस्था में था इस समय जैनों के प्रमुख केन्द्र राजपूताना तथा गुजरात थे। दक्षिण में जैनों को शैवों की कड़ी प्रतिद्वंद्वता का सामना करना पड़ा, संभवतः इसलिए उत्पीड़न से त्रस्त होकर कुछ जैन गुजरात तथा राजस्थान आ गये थे।[23] इस युग के जैन धर्म के प्रमुख आचार्य हरिभद्र सूरि थे जिन्होंने जैन संघ में नवचेतना का संचार करने के लिए विधि चैत्य आंदोलन चलाया। हरिभद्र सूरि के आंदोलन को उनके शिष्यों उद्योतन सूरि तथा सिद्धर्शि सूरि ने आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त हेमचंद्र ने भी राजस्थान के धार्मिक एवं सांस्कृतिक

इतिहास को अप्रतिम योगदान दिया।

विभिन्न चौहान शासकों ने जैन धर्म को प्रश्रय दिया। चौहान कटुकराज का सेवाड़ी प्रस्तर अभिलेख (वि.सं. 1172) तीर्थंकर शांतिनाथ की स्तुति के साथ प्रतापी अणहिल चौहान का भूमि विजेता के रूप में उल्लेख करता है।[24] इसी अभिलेख से विदित होता है कि कटुकराज ने प्रसन्न होकर महशिवरात्रि को 8 द्रम्म प्रति वर्ष शांतिनाथ के पूजार्थ दान दिया। चौहान नरेश पृथ्वीराज प्रथम ने रणथंभौर के जैन मंदिर में स्वर्णकलश अर्पित किया था।[25] पृथ्वीराज प्रथम के पुत्र अजयराज ने भी अजमेर के पार्श्वनाथ मंदिर को स्वर्णकलश भेंट किया था। अर्णोराज चौहान ने अजमेर में जैन मंदिर के निर्माण हेतु भूमि अनुदान दिया था।[26] विग्रहराज चतुर्थ ने अपनी राजधानी अजमेर में न केवल एक जैन विहार का निर्माण करवाया, अपितु अपने गुरु धर्मघोश सूरि के आदेशानुसार एकादशी के दिन पशुवध निशेध करवा दिया।[27] शाकंभरी तथा नाडोल के चौहानों ने शैवधर्म के साथ–साथ जैन धर्म को भी प्रश्रय दिया, यह उनकी धर्म सहिष्णुता की नीति का ही परिचायक है।

बौद्ध संप्रदाय

राजपूताना एवं पश्चिमी भारत में जैन धर्म के बाहुल्य एवं लोकप्रिय होने के कारण चौहानों के अभिलेखीय एवं साहित्यिक स्रोतों से बौद्ध धर्म से संबंधित नगण्य प्रमाण प्राप्त होते हैं। संभवतः चौहान शासन के प्रारंभिक वर्षों के दौरान शाकंभरी क्षेत्र में बौद्ध धर्म का प्रचलन था।[28] ध्यातव्य है कि चौहान राज्य के पूर्व में अवस्थित उनके समकालिक गहड़वाल वंश के लेखों में बौद्ध धर्म के प्रचलन के कतिपय प्रमाण प्राप्त होते हैं।

चौहान शासकों की धार्मिक नीति

चौहान शासकों के अभिलेखों से उनकी धार्मिक निष्ठा के बारे में जानकारी मिलती है, वे मुख्यतः सनातन धर्म के विभिन्न संप्रदायों यथा शैव, वैष्णव, शाक्त के प्रति व्यक्तिगत निष्ठा प्रकट करते रहे। किन्तु उन्होंने अन्य धर्मो के मतावलंम्बियों के प्रति भी सहिष्णुता एवं आदर का परिचय दिया। नाडौल के चौहान शासकों की धर्मविषयक नीति सर्वधर्म समभाव की थी, उन्होंने शैव, वैष्णव मंदिरों को जिस तरह दान दिया, उसी तरह नाडोल, नदलाई, सांडेराव इत्यादि के जैन मंदिरों को भी दान दिया। उनके दान का उद्देश्य अपने माता–पिता और पूर्वजों की पुण्यवृद्धि करना था।

इसी प्रकार अजमेर के चौहान शासकों ने भी अपनी व्यक्तिगत धार्मिक निष्ठा से परेय दूसरे धार्मिक संप्रदायों को यथोचित आदर सम्मान दिया। इस क्रम में पृथ्वीराज प्रथम एवं उसके पुत्र अजयराज ने क्रमशः रणथंभौर और अजमेर के जैन मंदिरों को स्वर्णकलश दान दिये। अर्णोराज चौहान विष्णु का परम भक्त था किंतु उसके द्वारा धार्मिक वाद–विवाद में विजयी एक श्वेतांबर जैन सन्यासी को विजयपत्र दिये जाने की सूचना मिलती है।[29] विग्रहराज चतुर्थ यद्यपि शैव मतानुयायी था, फिर भी जैन आचार्य धर्मघोश सूरि के आदेशानुसार एकादशी के दिन पशुवध निशेध कर दिया।[30] चौहान शासक महाराज पूतन पक्षदेव तथा उनकी रानी गिरिजादेवी के रतनपुर अभिलेख (वि.सं. 1202–07) से ज्ञात होता है कि गिरिजादेवी ने ग्यारस, चौदस, अमावस तथा अन्य श्रेष्ठ तिथियों को जीव हिंसा का निशेध किया था।[31]

चौहानों ने जिनपति सूरि, तथा पद्मनाभ इत्यादि जैन विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया तथा विभिन्न जैन मंदिरों को उनके द्वारा अनेक अवसरों पर दान दिये गये, साथ ही जनसामान्य को अपनी आस्थानुसार कोई भी धार्मिक आचरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वस्तुतः चौहान शासकों की नीति सभी संप्रदायों के प्रति सहिष्णु थी तथा वे व्यक्तिगत धार्मिक संप्रदायों के साथ–साथ अन्य संप्रदायों के प्रति भी उदार बने रहे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हर्ष शिलालेख, इण्डियन ऐण्टिक्वेरी, 1913, पृ. 57–58
2. पृथ्वीराज विजय, 4, 43
3. वही, 6.26–28, 8.63–70
4. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. 107
5. एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 11, पृ. 26–27, 38–39
6. टॉड कर्नल, एनाल्स एंड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, खण्ड–1, पृ. 209

7. एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 11, पृ. 308
8. प्रोग्रेसिव रिपोर्ट ऑफ ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्कल 1906–07 पृ. 43
9. नाहर, पी.सी., जैन लेख संग्रह, भाग–1, पृ. 226
10. आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1909–10, पृ. 102–03
11. श्रीमालि, गोविन्दलाल, राजस्थान के अभिलेख, भाग 1, पृ. 146
12. पृथ्वीराजविजय, 5.68
13. वही, 8.65, 68
14. वही, 1.33, 6.35
15. प्रभाचंद, प्रभावकचरित, पृ. 282–83
16. एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 2, पृ. 482
17. वही, वाल्यूम 12, पृ. 59
18. वही, वाल्यूम 11, पृ. 33
19. मरूभारती, 1971, अंक 2, पृ. 51–52
20. एपिग्राफिया इण्डिका, वाल्यूम 9, पृ. 70–74
21. पृथ्वीराज विजय, पृ. 84
22. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. 263
23. शर्मा, मथुरालाल, भारतीय संस्कृति का विकास, पृ. 264
24. श्रीमालि, गोविन्दलाल, राजस्थान के अभिलेख, पृ. 88
25. खरतरगच्छ वश्हद गुर्वावलि, पृ. 16
26. सिंह, एम.पी., चहमान कालीन सामाजिक संरचना, पृ. 512
27. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ. 64–65
28. सिंह, आर.बी., हिस्ट्री ऑफ द चहमानाज, पृ. 365
29. सिंह, एम.पी., चहमान कालीन सामाजिक संरचना, पृ. 64–65
30. शर्मा, दशरथ, अर्ली चौहान डाइनेस्टीज, पृ. 65
31. प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वेस्टर्न सर्कल, 1908, पृ. 51–52.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का संक्षिप्त अध्ययन

सत्यम सिंह राजावत
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

सारांश

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में स्त्रियों की दशा जटिल और विरोधाभासी रही। एक ओर वे गृहस्थ जीवन की आधारशिला थी, तो दूसरी ओर पितृसत्तात्मक समाज में पराधीनता और असमानता की शिकारी। सामाजिक दृष्टि से स्त्रियों पर परदा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों का बोझ था, जिससे उनका स्वतंत्र जीवन सीमित हो गया। शिक्षा के अवसर भी अत्यंत सीमित रहे, परिणामस्वरूप वे विद्या और बौद्धिक उन्नति से वंचित रहीं। मध्यकालीन भारत की स्त्रियाँ समाज और अर्थव्यवस्था का अभिन्न हिस्सा होते हुए भी पराधीनता की बेड़ियों में बंधी रहीं। जहाँ कुछ विशिष्ट स्त्रियाँ स्वतंत्रता और सम्मान का प्रतीक बनीं, वहीं अधिकांश स्त्रियाँ सामाजिक कुरीतियों और आर्थिक निर्भरता से ग्रसित थी। राजनीतिक दृष्टि से भी कुछ स्त्रियों ने इतिहास में विशेष स्थान बनाया। रज़िया सुल्तान ने दिल्ली सल्तनत की गद्दी संभालकर यह सिद्ध किया कि स्त्रियाँ सत्ता संचालन में सक्षम हैं। इसी प्रकार नूरजहाँ ने जहाँगीर के शासनकाल में राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक निर्णयों पर प्रभाव डाला। कला और संस्कृति के क्षेत्र में भी स्त्रियों की भूमिका उल्लेखनीय रही। वे संगीत, नृत्य, कढ़ाई, शिल्प और साहित्य में दक्ष थी और कई दरबारों में सम्मान प्राप्त करती थी। उच्च वर्गीय व राजघरानों की स्त्रियों को सीमित रूप से शिक्षा के अवसर भी प्राप्त हुए, जिससे वे कविता, साहित्य और धर्मशास्त्र में योगदान कर सकीं।

शब्द कुन्जी– प्राणोंत्सर्ग, राजधर्म, भुजंग, इस्मतपनाह, प्रशासनिक प्रतिभा, फरगना, मालोजीराव, रोहिणी, लेखा–जोखा, शैतानपुरी, साहसी, आत्मसम्मान, अंधकारमय, देवदासी, गौरी, रेहला।

शोध अभिलेख– भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखंडों में स्त्रियों की स्थिति में निंरतर परिवर्तन देखने को मिलता है। प्राचीन काल में जहाँ उन्हें सम्मान, शिक्षा और धार्मिक कार्यों में सक्रिय भागीदारी का अवसर मिलता था वहीं मध्यकाल में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत जटिल व विरोधावासी होती गई। मध्यकालीन भारतीय युग मुख्यता दो भागों में विभाजित किया जाता है प्रथम सल्तनत काल 1206ई. से 1526ई. तक तथा द्वितीय मुगल काल 1526ई. से 1707ई. तक। इस सम्पूर्ण अवधि में हिन्दू और मुस्लिम दो धर्मों का अधिक वर्चस्व था एवं इस काल में इस्लाम को राजधर्म घोषित किए जाने के कारण हिन्दुओं व मुसलमानों के मध्य तनाव था। राजनैतिक पराभाव के इस युग में नारी ने ही सर्वाधिक मर्यादा खोयी है तथा भक्तिकालीन अवधि में इस नारी को पुरुष से बहुत दूर कर दिया गया एवं उसका सानिध्य पुरुष के पतन का कारण प्रमाणित किया। तथा नारी को पूर्ण अविश्वास का कारण कह डाला।

कबीरदास

नारी की झाँई पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिन की कौन गति, जो नित नारी संग।

तुलसीदास

ढोल, गंवार, शुद्र, पशु, नारी।
सकल, ताड़ना के अधिकारी।

सल्तनत काल की तुलना में मुगलकाल राजनीतिक व सामाजिक दृष्टि से स्थिरता का काल था। अतः इस युग में शासन के प्रत्येक क्षेत्र में स्थायित्व दृष्टिगोचर होने लगा फलतः महिलाओं की उत्तरोत्तर गिरती हुयी स्थिति में सुधार आया। सल्तनत काल में जहाँ रजिया सुल्तान मुस्लिम समाज की एक अपवाद थी वहीं मुगलकाल में नूरजहाँ, मुमताज़ एवं जेबुन्निसा आदि महिलाओं के नाम उल्लेखनीय है जिन्होने अपने कार्यों और क्षमताओं के कारण न केवल समाज को प्रभावित किया अपितु शासन संचालन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तथा जब मुस्लिम, विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किया तो वह अपने साथ अपनी संस्कृति भी लाए उनके लिए महिलाएँ अपने माता–पिता, भाई या पति की एकमात्र संपत्ति थी और उनकी कोई इच्छा नही थी। इस प्रकार की सोच भारतीयों के मन में घर कर गई और वे भी अपनी महिलाओं के साथ ऐसा व्यवहार करने लगे। इस काल में अब यह माना जाने लगा की स्त्री स्वभाव से ज्यादा भावुक है और अपने इस स्वभाव के कारण किसी के भी समक्ष समर्पण कर सकती है अतः इन पर कठोर नियंत्रण रखना आवश्यक है। पति भी अपनी पत्नी को मित्र या साथी न मानकर अपनी सम्पत्ति मानने लगा था। स्त्रियों का कार्य क्षेत्र सिर्फ चार दीवारी तक ही सीमित होता जा रहा था पत्नियों पर पति के अत्याचार भी बढने लगे थे तथा अब कोई भी अपनी पत्नी की राय लेना महत्वपूर्ण नही समझता था।

अरस्तू

"नारी की उन्नति व अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति व अवनति निर्धारित है।"

नेपोलियन बोनापार्ट

"मुझे एक योग्य माता दे दो मैं तुमको एक योग्य राष्ट्र दूंगा।"

मध्यकालीन इतिहास में स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति

मध्ययुग में स्त्रियों की राजनीतिक में भागीदारी विशेष परिस्थितियों की उपज थी केवल राजपरिवार की रानियाँ और राजकुमारियाँ ही राजनीति से प्रभावित थी तथा साधारण स्त्रियों के लिए राजनीति में कोई स्थान नहीं था। इसके साथ ही राजनीतिक परिदृश्य का प्रारंभ मुस्लिमों से ही करना उचित होगा क्योंकि केन्द्र में उन्ही का शासन था। इस्लाम में स्त्री को बहन , पुत्री व पत्नी के रूप में सम्मान प्राप्त था और "इफतमाब" एवं "इस्तमपनाह" जैसे रक्षात्मक सूचक भारी भरकम शब्द उसके विशेषण थे। मध्ययुगीन राजनीतिक परिदृश्य एवं शासन में महिलाओं की भूमिकाओं का भी विशेष योगदान देखने को मिलता है अर्थात रजिया सुल्तान द्वारा दिल्ली पर शासन (एकमात्र महिला शासिका), फरगना के राज्य को हस्तगत करने में बाबर के सलाहकारों में उसकी माँ "कुतलक निगार" और बहन "खानजादे बेगम" का योगदान , गोंड शासिका रानी दुर्गावती द्वारा 1564 में मुगल सम्राट अकबर के सेनापति आसफ खाँ से लड़कर जान गवाने से पहले 15 वर्षो तक शासन, चाँद बीबी द्वारा अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ अहमदनगर की रक्षा की आदि।

अकबर के शासन काल में माहमअनगा, हमीदाबानो व सलीमाबेगम का भी राजनीति में प्रभाव था। जहाँगीर के काल में उसकी पत्नी नूरजहाँ ने राजशाही शक्ति का प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया। राजकुमारी जहाँआरा, जेबुन्निसा तथा रोशनआरा ने भी सत्तारूढ शासन को प्रभावित किया। परिणामस्वरूप उत्तराधिकार के समय जहाँआरा ने शाहजहाँ का साथ दिया वही बेगम रोशनआरा ने औरंगजेब की तरफदारी की। शाहजहाँ के प्रांरभिक जीवन में मुमताज महल का वर्चस्व था तथा शाहजहाँ हमेशा सलाह लेता था एवं उसके अधीन राज्यकीय मुद्रा भी रखता था। जहाँदार शाह के समय लालकुवँरी और मुहम्मदशाह के समय कोकीजीउ के नाम उल्लेखनीय है। सम्पूर्ण मध्यकाल हिन्दू जाति के पराभाव का काल था तथापि कुछ स्त्री रत्न अवनती के इस काल में अपनी सैन्य संचालन की योग्यता, प्रशासनिक क्षमता तथा उच्च आदर्श के कारण अपनी प्रमुखता स्थापित कर पाए। पूर्व से पश्चिम सुदुर उत्तर से दक्षिण तक ऐसी स्त्रीयों के उदाहरण इतिहास में उपलब्ध है जिन्होंने न केवल शासन ही बल्कि युद्ध की उत्कृष्ट विभिशिका भी झेली है जिनके नाम अग्रलिखित है – शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी ताराबाई, मेवाड़ के राणा सांगा की पत्नी रानी कर्णवती, रानी

उमायम्मा, सोमेश्वर की पत्नी रानी चेनम्मा, इन्दौर की शासिका अहिल्याबाई होल्कर एवं जागीरदार मालोजीराव के पुत्र शाहजी की पत्नी जीजाबाई आदि का नाम उल्लेखनीय।

ताराबाई की प्रशासनिक प्रतिभा के सम्बन्ध में सर जे.एन.सरकार ने स्पष्ट लिखा है कि "उसकी प्रशासनिक क्षमता एवं चारित्रिक गुणों के कारण वह देश को भयानक विपत्तियों से बचाने में सफल रही।"

डॉ॰ प्रभा खेतान –

"स्त्री न गुलाम रहना चाहती है न पुरुष को बनाना चाहती है स्त्री चाहती है मानवीय अधिकार"

मध्यकालीन इतिहास में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

मध्यकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति वैदिक युग की अपेक्षा निम्न कही जा सकती है एक ओर वे सामाजिक बंधनों और पितृसत्ता की बेड़ियों में जकड़ी रही तो दूसरी ओर कुछ वीरांगनाएं, संत कवियित्रियों और राजनीतिक हस्तियों समाज में अपने अद्भूत योगदान के लिए जानी गई तथा समाज में धीरे–धीरे कुरीतियों भी जन्म लेती जा रही थी जिससे समाज में महिलाओं को कई समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था जैसे सतीप्रथा, जौहर, तलाक, बाल–विवाह, दहेजप्रथा, पर्दाप्रथा आदि।

आचार्य क्षेमेन्द्र जी कृति "समयमात्रिका" एवं "कुट्टनी मित्तम" में तात्कालीन सामाजिक स्वरूप देखने को मिलता है।

सती प्रथा

मध्यकालीन समाज में पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी को भी चिता पर जलने के लिए विवश किया जाता था। तथा कुछ ग्रंथो के अनुसार अपने पति की चिता पर मरने वाली स्त्रियाँ सीधे स्वर्ग जाती थी इसलिए इस संस्कार का पालन करना अच्छा माना जाता था सल्तनत काल में मोहम्मद बिन तुगलक के पूर्व किसी भी सुल्तान ने इसको रोकने का प्रयास नही किया। मोहम्मद बिन तुगलक के काल में सती होने से पूर्व राज्य की अनुमति लेना अनिवार्य होता था।

अल्तेकर लिखते है "जब 1724 में मारवाड़ के राजा अजीत सिंह की मृत्यु हुई तो 64 महिलाएँ उनकी चिता पर चढी तथा जब बूंदी के राजा बुद्ध सिंह की जल में डूबने से मृत्यु हुई तो 84 महिलाएँ सती हुयी।"

जौहर

युद्ध में पराजय देख समस्त परिवार की स्त्रियों द्वारा अग्नि में कूद कर आत्मदाह कर लेने की प्रक्रिया जौहर कहलाती है। जौहर के पश्चात् उनके पती शत्रु के साथ 'शाका' नामक अन्तिम निर्णायक युद्ध लड़ते है। मध्यकालीन मुस्लिम शासन में सर्वप्रथम जौहर व्रत का पालन 1286ई. बलवन के काल में जैसलमेर आक्रमण के समय किया गया था। गुजरात के सुल्तान बहादूरशाह द्वारा चितौड़गढ पर हमले के दौरान राजमाता कर्णावती ने जौहर में सैकड़ो महिलाओं का नेतृत्व किया।

बाल-विवाह

मध्यकालीन समाज मे माता–पिता कन्या का विवाह 6 से 10 वर्ष की आयु तक कर देने की कोशिश करते थे क्योंकि शास्त्र वचन इससे बड़ी आयु की कन्या का विवाह धर्म विरूद्ध कहते है।

अष्ट वर्षा भवेद गौरी, नव वर्षा तू रोहिणी।
दश वर्षा भवेद कन्या, उर्ध्व रजः स्वला।।

अतः समाज में बाल विवाह इतने अधिक प्रचलित थे की कुछ विवाह तो गोदी में अथवा गर्भस्थ शिशुओं तक के विवाह तय हो जाते थे। परिणामस्वरूप बाल–विधवाओं की संख्या समाज में अत्यधिक होती थी।

वैश्यावृति

समाज में नियमों एवं प्रतिबंधो से रहित स्त्रीयों का एक ऐसा वर्ग जो आर्थिक या भौतिक लाभ के बदले यौन सेवाओं का आदान प्रदान करता है। इस कार्य को करने वाली स्त्री गणिका या वैश्या कहलाती है। वैश्यावृति को मुगल शासकों की हरम व्यवस्था से भी प्रोत्साहन मिला। इससे न केवल स्त्री जीवन कलंकित हुआ अपितु पुरुषों का चरित्रिक पतन भी हुआ। सम्राट अकबर ने वैश्यावृति पर प्रतिबंध लगाने के लिए अनेक प्रयास किये उनके लिए उसने 'शैतानपुरी' नामक बस्ती बसाकर रहने का निर्देश दिया।

पर्दा प्रथा

पिटरो डेला वेला ने लिखा है कि "केवल वही मुस्लिम महिलाएँ बिना पर्दे के घर से निकलती थी जो निर्धन अथवा चरित्रहीन होती थी। शाही परिवार की महिलाएँ घर से बाहर जाने में ढकी हुई पालकियों का प्रयोग करती थी। मुस्लिम परिवारों में पर्दे का भंग होना अपराध माना जाता था। मुस्लिम काल में केवल सुल्तान रजिया और नूरजहाँ बेगम इसका अपवाद थीं।"

स्त्री शिक्षा

सल्तनत काल में स्त्री की शिक्षा का स्तर गिरता गया सुल्तानों ने स्त्री शिक्षा के प्रति कोई अभिरूची न दिखाई। शासक तथा अमीर यदा–कदा अपनी कन्याओं की शिक्षा व्यवस्था अलग कर दिया करते थे तथा बेगम रजिया फारसी व अरबी में पारंगत थी उसे पूरा कुरान कंठस्थ था।

नूनिज– "महिलाओं को खर्चो का हिसाब–किताब लिखने और राज्य के काम–काज का लेखा जोखा रखने के कार्य में लगाया जाता था जिससे पता चलता है कि वे शिक्षित थी।"

इब्नबतूता– अपनी रचना "रेहला" में दक्षिण भारत के हनौर शहर में लड़कियों की शिक्षा हेतु 13 स्कूलों का विवरण लिखता है।

"मध्यकालीन कुप्रथाये नारी को बाँध न सकी, वह आज भी प्रेरणा है।"

मध्यकालीन इतिहास में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति

मध्यकालीन भारत में स्त्रियों की धार्मिक स्थिति पितृसत्तात्मक समाज, सामाजिक प्रतिबंधो और धार्मिक परम्पराओं के बीच विरोधाभासी और जटिल रही लेकिन भक्ति और सूफी आंदोलनों ने उन्हें आध्यात्मिक स्वतंत्रता और सामाजिक मान्यता के नए अवसर प्रदान किए। भक्ति आंदोलन की कई शाखाएं विकसित हुई जिनके सिद्धांतो को समझने में विद्या–विवेक शून्य सामान्य स्त्री स्वयं को असमर्थ पाती थी लेकिन भक्ति ज्ञान, विज्ञान, आचरण सिद्धांत से आगे की चीज है जिसे विरले ही प्राप्त कर पाते है। इन आंदोलनों ने पूजा और भक्ति के लिए साधारण भाषा में निजी संबधों को महत्व दिया जिससे वे मंदिरों और ब्राह्मण प्रधान अनुष्ठानों से बाहर आए और सीधे ईश्वर से जुड़े सके।

इसके प्रमुख उदा. इस प्रकार देखे जा सकते है – कर्नाटक की कवयित्री अक्का महादेवी जिन्होंने शैव भक्ति में खुद को समर्पित किया, राजपूत राजकुमारी मीराबाई जिन्होने कृष्ण भक्ति में अपना जीवन समर्पित किया एवं बाहिमाबाई, जनाबाई जैसी संत कवित्रियों ने भी स्त्री आध्यात्मिकता को सशक्त बनाया।

मध्यकालीन भारत में सूफी परम्परा के उदय ने मुस्लिम महिलाओं को प्रेम, करूणा और व्यक्तिगत ईश्वर संबंध के आधार पर आध्यात्मिकता अपनाने का अवसर दिया तथा कई सूफी संतो (राबिया–अल–वसरी, बीबी कमाल, जरीन ताज, उम्म हरम) ने भी इस क्षेत्र में कार्य किया।

मध्यकालीन दक्षिण भारतीय हिन्दु समाज में इस समय देवदासी कुप्रथा का प्रचलन था जिसके कारण मंदिरों में सुंदर बालिकाओं को नृत्य व गायन के उद्देश्य से देवदासी बना लिया जाता था जिससे व्यवहार में स्त्रियाँ सामाजिक और आर्थिक रूप से अस्थिर स्थिति में आ जाती थी।

मध्यकालीन इतिहास में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति

मध्यकालीन समाज मे पितृसत्तात्मकता प्रबल थी। महिलाओं की आर्थिक दशा का सबसे बड़ा पहलू यह था कि वे आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर थी उनकी आय, सम्पत्ति और श्रम का नियंत्रण अधिकतर पिता, पति या पुत्र के पास रहता था जिस कारण वे स्वतंत्र रूप से आर्थिक निर्णय नहीं ले पाती थी। हिन्दू स्त्रियों की तुलना में मुस्लिम स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती थी क्योंकि इस्लामी कानून के अनुसार के पिता की सम्पत्ति में भाइयों के समान ही वे अधिकारिणी थी। मध्यकाल में ग्रामीण स्त्रियाँ खेती–बाड़ी, चराई, बुनाई, कपड़ा तैयार करने, चक्की पीसने और पशुपालन जैसे कार्यों में पुरुषों की सहायता करती थी। घरेलू उद्योगों जैसे चरखा कातना, वस्त्र निर्माण, मछली पकड़ने में सहयोग आदि में स्त्रियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। कई जातियों और समुदायों की स्त्रियाँ हस्तशिल्प, मिट्टी के बर्तन बनाने और लोक–हस्तकला में योगदान देती थी। निम्न वर्ग की स्त्रियाँ मजदूरी करके भी घर की आय बढ़ाती थी, परंतु इसका श्रेय उन्हें नही मिलता था। राजघरानों और उच्च वर्ग की स्त्रियाँ सीधे आर्थिक कार्यों में शामिल नही थी, परंतु उनके

पास जागीरें, दान और उपहार की संपत्ति होती थी।

निष्कर्ष

मध्यकालीन इतिहास में स्त्रियों की स्थिति सामान्यतः अवनति और पराधीनता से ग्रसित रही, परंतु इस अंधकारमय वातावरण में भी कुछ स्त्रियाँ समाज और इतिहास के पन्नों पर उज्जवल नक्षत्र की तरह चमकती रही। भारत में समय–समय पर आने वाले विदेशी यात्रियों ने भारतीय नारी के आदर्श चरित्र की अत्यधिक प्रशंसा की है। उनके अनुसार मृतक पति के साथ जीवित चिता में जलना, हँसते–हँसते अपने परिजनों को युद्ध क्षेत्र में प्राणोत्सर्ग हेतु भेजना तथा स्वयं अपने सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर की अग्नि में कूद जाना आदि कुछ ऐसे आदर्श थे जिनका वर्णन अन्य देशों अथवा समाजों में प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि स्त्रियाँ अपने आत्मसम्मान के प्रति समर्पित थी। तथा मध्यकालीन समाज में कुछ नकारात्मक प्रथाएँ जैसे बालविवाह, सतीप्रथा और पर्दा प्रथा आदि व्याप्त थी जिससे महिलाओं की स्वायत्तता और सामाजिक स्थिति में गिरावट आई। हालांकि कुछ क्षेत्रों में महिलाओं को महत्वपूर्ण भूमि अधिकार प्राप्त थे और वे धार्मिक एवं घरेलू जीवन में सक्रिय भूमिकाएँ निभाती थी वहीं उच्च वर्ग की महिलाएँ घर और संपत्ति के प्रबंधन में भागीदारी करती थी। कुल मिलाकर यह काल स्त्रियों के लिए कई चुनौतियों के साथ–साथ कुछ सकारात्मक पहलुओं को भी दर्शाता है, लेकिन समग्र रूप से उनकी स्थिति में गिरावट आई। मध्य कालीन समाज में पुत्री का जन्म अशुभ माना जाता था। बाल विवाह होने के कारण जो स्त्रियाँ जल्दी विधवा हो जाती थी, उनका जीवन काफी कष्टमय तरीके से बीतता था क्योंकि वह पुनः विवाह नही कर सकती थी। मुस्लिम पुरुष बहुविवाह कर सकते थे जो हिन्दूओं में नही था। वैसे तो मुस्लिम स्त्रियों की दशा भी अच्छी नहीं थी फिर भी उन्हें कुछ विशेषाधिकार प्राप्त थे जो हिन्दू स्त्रियों को प्राप्त नही थे। उनके यहाँ तलाक प्रथा प्रचलित थी मुस्लिम स्त्रियाँ विधवा होने के बाद पुनः विवाह कर सकती थी सती होने की आवश्यकता नही थी। कुछ महान स्त्रियों ने परंपराओं को चुनौती दी और समाज को यह संदेश दिया कि स्त्रियाँ भी पुरूशों के समान साहसी, प्रतिभाशाली और सक्षम हो सकती हैं। मीराबाई की भक्ति, रजिया सुल्तान का शासन और रानी दुर्गावती का शौर्य इसका उदाहरण है।

संदर्भ सूची

1. प्रो. विशाल श्रीवास्तव – मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति
2. प्रो. राधाकुमुद मुखर्जी – वूमेन ऑफ इंडिया
3. प्रो. ए. एस. अल्तेकर – हिन्दू सभ्यता में महिलाओं की स्थिति
4. प्रो. कृष्णा गोस्वामी – सतकाव्य में नारी
5. प्रो. ऊषा पांडे – मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना
6. प्रो. हबीब – मध्यकालीन भारत : एक सभ्यता का अध्ययन

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय दर्शन संस्कृति और शिक्षा

बबीता देवी
शोध छात्रा, संस्कृत, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

सारांश

दर्शन मनुष्य के चिन्तन की उच्चतम सीमा है। इसमें सम्पर्ण ब्रह्माण्ड एवं मानव जीवन के वास्तविक स्वरूप सृष्टि–सृष्टा आत्मा–परमात्मा जीव–जगत ज्ञान–अज्ञान ज्ञान प्राप्त करने के साधन और मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मो का तार्किक विवेचन किया जाता है। भारत दर्शन की गुरुस्थली माना जाता है। आज तो संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों में दर्शन का विकास हो रहा है परन्तु दर्शन के विषय में भारतीय और पाश्चात्य दृष्टिकोणों में थोडा अन्तर है। प्राचीन भारत में किसी भी प्रकार के चिन्तन को दर्शन कहा जाता था। परन्तु जैसे–जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ तैसे–तैसे हमने उसे भिन्न–भिन्न अनुशासनों में विभाजित करना प्रारम्भ किया। जैसे– मानवशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र और चिकित्साशास्त्र आदि। ज्ञान की उस शाखा को जिसमें इस ब्रह्माण्ड के अन्तिम सत्य की खोज की जाती है, उसे हमनें दर्शनशास्त्र की संज्ञा दी। उपनिषद् काल में दर्शन को इसी रूप में स्वीकार किया जाता था।

''जिससे देखा जाए अर्थात सत्य के दर्शन किए जाएँ, वह दर्शन है।''
(दृश्यते अनेन इति दर्शनम – उपनिषद्)
''दर्शन सत्य के स्वरूप की तार्किक विवेचन है। ''

किसी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उस समाज के स्वरूप, उसके दार्शनिक चिन्तन, शासनतन्त्र, आर्थिक व्यवस्था और मनोवैज्ञानिक तथ्यों तथा वैज्ञानिक प्रगति पर आधारित होती है। इनमें दर्शन का प्रभाव बडा स्थायी होता है। दर्शन की तत्त्व मीमांसा से शिक्षा के उद्देश्य एवं पाठ्यचर्या, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा से शिक्षण विधियाँ एवं मूल्य एवं आचार मीमांसा से शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षक तथा विद्यार्थी के कर्त्तव्य और अनुशासन का स्वरूप निश्चित होता है।

किसी भी देश की संस्कृति उस देश के व्यक्तियों की युग–युग की साधना का परिणाम होती है। यह मनुष्यों को अन्य जीवों से अलग करती है, और ऊपर उठाती है। जहाँ तक हमारे देश भारत की संस्कृति का प्रश्न है, यहाँ अनेक संस्कृतियाँ विकसित हुई हैं। '' वसुधैव कुटुम्बकम् '', '' सर्वे भवन्तु सुखिना '' यह हमारी भारतीय संस्कृति ही है, जो मनुष्य को स्वयं समाज एवं राष्ट्र के लिये ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व के लिए जीना सिखाती है।

किसी भी समाज की शिक्षा मुख्य रूप से उसके स्वरूप एवं धर्म दर्शन राज्यतन्त्र एवं अर्थतन्त्र और मनो वैज्ञानिक तथ्यों एवं वैज्ञानिक आविश्कारों पर निर्भर करती है। और समाज का स्वरूप और धर्म एवं दर्शन उसकी संस्कृति के अंग होते हैं। तब कहना न होगा कि किसी समाज की शिक्षा पर उसकी संस्कृति का बडा प्रभाव होता है। दूसरी तरफ किसी समाज की शिक्षा अनेक कार्यों के साथ–साथ समाज विशेष की संस्कृति का बडा प्रभाव होता है।

मनुष्य स्वभाव से ही मननशील प्राणी है। इसलिए कहा गया है –

'' मत्वा कर्माणि सीज्यतीति तन्निरूक्तिरपि पूर्वोक्तानुकूला ''।
'' स हि कोडहं कस्मादहमित्यादि समस्याः सततं भावयित्वा ''।
'' आत्मा वा अरे द्रश्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः ''।

इति दर्शनबीजमुद्भावितवान अर्थात् चिन्तनशील मानव ने एकान्तिक एवं आत्यधिक शान्ति के निमित्त जिस शास्त्र का उद्भव किया वही दर्शनशास्त्र है। आत्मदर्शन करना ही सभी दर्शनशास्त्र की प्रवृत्ति है। सांसारिक जीवन में सुख–

दुःख भी उत्पन्न होते रहते हैं, क्योंकि संसार त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न होता है, जो सुख– दुःख एवं मोह इन तीनों से अन्वित होता है। संसार के सभी प्राणी स्वभावतः सुख की प्राप्ति तथा दुःख की निवृत्ति चाहता है, जो '' आत्मा वा द्रश्टव्यः अर्थात् आत्मदर्शन से ही सम्भव है। यह श्रुति का निर्देश है। दर्शनशास्त्र का अंकुर वेद से प्रस्फुरित हुआ और उपनिषद् काल में पल्लवित पुष्पित हुआ।

प्रमुख शब्द–दर्शन से ऐसी दिव्य– दृष्टि प्राप्त होती है, जिससे संस्कृति एवं शिक्षा में आत्मदर्शन एवं तत्त्वदर्शन सम्भव हो जाता है। इस प्रकार दर्शन हमें व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है। भारतीय दर्शन की प्रत्येक शाखा अत्यन्त समृद्ध है। वेदान्त दर्शन में चार्वाक, बौद्ध, जैन, सांख्य, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक आदि मतों पर विचार किया गया है। यही नीति अन्य दर्शनों में भी है। भारतीय दर्शन का भली– भाँति ज्ञान होने पर पाश्चात्य दर्शन की जटिलताओं का आसानी से समाधान हो सकता है। दर्शन जीवन का एक अंग है। भारतीय धर्म, दर्शन, संस्कृति, साहित्य आदि सभी के मूल स्त्रोत हैं। आधुनिक अर्थ में वेदों को हम दर्शन के ग्रन्थ नहीं कह सकते , यह एक विचारात्मक प्रविधि के रूप में कार्य करता है।

परिचय

दर्शन के लिए अंग्रेजी में फिलॉस्फी शब्द का प्रयोग होता है , जो दो ग्रीक शब्दों – फिलॉस तथा सोफिया से मिलकर बना है। फिलॉस का अर्थ है– प्रेम और सोफिया का अर्थ है– ज्ञान। इसलिए फिलॉस्फी का अर्थ है– ज्ञान से प्रेम। यह दर्शन का विस्तृत अर्थ होता है यूनानी (ग्रीक) दार्शनिक प्लेटो दर्शन को इसी अर्थ में स्वीकार करते थे। उनके शब्दों में, वह व्यक्ति जो सभी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता है, और सीखने के लिए सदैव उत्सुक रहता है, कभी भी सन्तोष करके रुकता नही है, वास्तव में वह ही दार्शनिक है, परन्तु सब कुछ जानने से उनका अर्थ, कुछ के पीछे छिपे मूल तत्त्व को जानने से है। शिक्षा में अब मूल तत्त्व की खोज स्थान पर ज्ञान की विभिन्न शाखाओं की तार्किक विवेचना की ओर प्रवृत्त है।

आज का युग वैज्ञानिक युग है। वैज्ञानिक मस्तिश्क को चाहिए तर्क और प्रमाण, ऐसे में दैवीय सिद्धान्त में तर्क और प्रमाण नहीं हो सकता है। तथागत बुद्ध का धर्म तर्क एवं प्रमाणों की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता है, क्योंकि बुद्ध ने अन्य धर्मों के प्रवर्तकों की तरह स्वयं को न तो किसी कल्पित दैवीय शक्ति से सम्बद्ध किया है और न ही अपने को कोई विशेष या सर्वोत्तम जीव बताया है। बुद्ध का धर्म वैज्ञानिक विचारधारा पर आधारित मानवतावादी प्रज्ञामूलक धर्म है।

सावित्री बाई फूले सम्भवतः पहली ऐसी महिला थी, जिन्होनें शिक्षण – कार्य को अपने जीवन का आधार बनाया। वस्तुतः यह उनकी वशत्ति नही बल्कि स्त्री समाज को जागृत करने का सामाजिक संकल्प था, क्योंकि उन्होनें जीवन पर्यन्त अवैतनिक रूप से ही शिक्षण कार्य किया था। ऐसी महानता का दूसरा उदाहरण दुर्लभ है। शिक्षा के माध्यम से जहाँ आर्येत्तर स्त्री समाज में उन्होनें शिक्षा की भूख पैदाकर उन्हें स्वाभिमान और आत्म बल के भाव से परिपुश्ट किया तो वहीं विधवा आश्रम की संरक्षित के रूप में उन्होनें अपनी कल्याण और मैत्री की मृदुलता की साकार रूप प्रदान किया। सत्यशोधक समाज का लक्ष्य तो जैसे उनका मिशन बन गया था, क्योंकि उनके पति ज्योतिबा ने इस संस्था के द्वारा बाह्माणवाद को ध्वस्त करने एवं सामाजिक क्रान्ति के आन्दोलन द्वारा शोषित – पीडित जनता में स्वाभिमान और आत्मबल की जो लौ प्रज्वलित की थी, उसे मन्द न पडने देना उनकी जिम्मेदारी बन गया थी, क्योंकि ऐसा प्रयास करना अब उनका सामाजिक ही नहीं, पत्नी धर्म भी बन गया था। सामाजिक क्रान्ति की रणभेरी की प्रतिध्वनि सम्पूर्ण महाराष्ट्र में गुंजायमान थी, अब सावित्री बाई की जिम्मेदारी थी कि इसे किसी प्रकार के मद्यिम न पडने दें। उन्होनें अपनी जिम्मेदारी पूर्ण निष्ठा के साथ निभाया और महिलाओं पर लगे बदनुमा दाग ''अबला'' को अपने बल और पौरुश से धो डाला। उनके सद्प्रयासों से स्त्री शक्ति को महत्त्वपूर्ण उभार मिला जिसके लिए उनके योगदान को चिरकाल तक याद किया जायेगा।

शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देश्य सामाजिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है, और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यष्टि एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

शिक्षा देश की भावी पीढ़ी के भविष्य का निर्धारण करती है। अतः इसमें एकरूपता होनी चाहिए, अराजकता नहीं। स्वतंत्र भारत में आज शिक्षा पूरी तरह अराजकता की स्थिति में पहुँच चुकी है। प्राथमिक शिक्षा में एक ओर तो ग्राम शाला या राजीव गाँधी पाठशालाएँ हैं, जिसमें हजार बारह सौ रुपये मासिक पारिश्रमिक पाने वाला एक अध्यापक दूसरी ओर

पंचायत समितियों के नियंत्रण में चलने वाले ग्रामीण क्षेत्र के सरकारी प्राथमिक विद्यालय हैं, जिनमें अध्यापकों और छात्रों दोनों के ही हाल बुरे हैं। कहीं शाला भवन हैं तो कहीं नहीं हैं। अध्यापक अक्सर सरपंचों की दादागिरी के शिकार होते हैं। बच्चों को पढ़ने के साथ – साथ राजनेताओं की ताबेदारी का दायित्व भी उन पर आ जाता है। शहरी क्षेत्रों के सरकारी प्राथमिक विद्यालयों का नियंत्रण शिक्षा विभाग के पास होता है। इन पाठशालाओं के भवन प्रायः जर्जर , अपर्याप्त हवा, रोशनी वाले होते हैं। सरकारी विद्यालयों में साधन सुविधाओं का भी अभाव होता है।

मानव की विकास यात्रा बहुत लम्बी रही है। ज्ञान – विज्ञान में आश्चर्यजनक उन्नति करने वाला वर्तमान मानव कभी पत्थर युग में पशुवत् जीवन जीता था। आहार, निद्रा, भय और मैथुन में वह पशुओं से कुछ ही अंशों में बेहतर था धीरे–धीरे वह सभ्यता के सोपान चढ़ता गया। पशु चारण , कृषि उद्योग और फिर उसने अंतरिक्ष युग में प्रवेश किया। इस विकास के साथ ही कई मानव मूल्यों का भी विकास हुआ। इन मूल्यों ने आदमी को इन्सान बनने का आधार दिया। वर्तमान युग में स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व चरम मानवीय आदर्शों के रूप में विश्व मानव के सामने आए। ये आदर्श ही हैं, उपलब्धियाँ नहीं हैं।

भारत के संविधान में भारत की भावी पीढ़ियों को शिक्षित करने का दायित्व सरकार के कंधों पर रखा था। इस बोझ को 1991 में सरकार ने अपने कंधों से उतार फेंकने का निर्णय लिया और उस निर्णय का प्रतिफल आज शिक्षा के निजीकरण और व्यवसायिकरण के रूप में देश की जनता ने शिक्षा के निजीकरण और व्यवसायिकरण की इस नीति को चलने दिया, तो भारत की आने वाली पीढ़ियों को पूँजीवाद की गुलामी और अनपढ़ रहने की बदनामी और जहालत से कोई क्या नहीं कर सकता।

निष्कर्ष

शिक्षा का भार सरकार को क्यों वहन करना चाहिए, इस सिद्धान्त को जानने के लिये हमें इतिहास की ओर देखना होगा। डॉ0 बाबा साहब अम्बेडकर जब बॉम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल के मैम्बर थे, तब उन्होनें अपने एक भाशण में कहा था–''एक धनवान व्यक्ति अपने बेटे–बेटियों को पढ़ाने के लिए एक से एक विद्वान को नियोजित कर सकता है, अच्छे से अच्छे शिक्षण–संस्थान में उन्हें शिक्षा दिलवा सकता है, किन्तु एक साधारण नागरिक ऐसा नहीं कर सकता। अतः सरकार का दायित्व है कि वह सरकारी स्कूल खोले और आम आदमी के बच्चों के लिए शिक्षा की पूर्ण व्यवस्था करें।''

मनुष्य को सर्वांग सुन्दर सबल शरीर मिला है। यह शरीर अनमोल है। प्रकृति ने मनुष्य को लम्बी उम्र दी है। इसमें विज्ञान की ऊँची – ऊँची छलांगें भरने वाला मस्तिश्क दिया है। इसके बाद भी स्वयं को दीन–हीन इसलिए पाता है, क्योंकि मानवीय गुणों से उसका परिचय नहीं हो पाता। सही शिक्षा के सोपान मिले तो माननीय मूल्यों की महत्ता से परिचित होने में देर नहीं लगे।

शिक्षा, दर्शन और संस्कृति अलग–अलग बातें नहीं हैं। सभी अच्छे इंसान बनाने के तरीके हैं। शिक्षा अगर भौतिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है तो धर्म संस्कृति नैतिक आचरण निर्धारित करता है। शिक्षा जीवन भर सीखते रहने का प्रयास है, और सही जीवन जीने का तरीका।

देश की वर्तमान शिक्षा उद्देश्यहीन, विषमतापोषक, अन्धविश्वास बढाने वाली दूषित, खर्चीली है। भारतीय संविधान की धारा 45 को सही ढंग से लागू नही किया गया और शिक्षा को नागरिकों के मूल अधिकार में शामिल करने के बाद भी अमीरों और गरीबों के लिए दोहरी शिक्षा व्यवस्था चलाई जा रही है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश को एकता और अखण्डता के लिए राष्ट्रीयकृत और वैज्ञानिक सोच पर आधारित शिक्षा की आवश्यकता है। भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा ही संसार को सुख–शान्ति का पाठ पढाएगी और संसार में मानवता की रक्षा करेगी।

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा का दर्शन और समाजशास्त्र (प्रो0 रमन बिहारी लाल)
2. दलितों को अनपढ़ रखने की साजिश (डॉ0 एम. एल. परिहार)
3. भारतीय संविधान और राजव्यवस्था(मौर्य एवं द्विवेदी)
4. दर्शनशास्त्र (डॉ0 प्रदीप कुमार)

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

ताड़पत्र से भोजपत्र तक : चिकित्सा ज्ञान परंपरा के लेखन एवं संरक्षण का भौतिक आयाम

मयंक त्रिपाठी
शोधार्थी, प्राचीन इतिहास विभाग
के एन पी जी कॉलेज ज्ञानपुर भदोही
सम्बद्ध- महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
डॉ. प्रीतम कुमार
सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग
के एन पी जी कॉलेज ज्ञानपुर भदोही
सम्बद्ध– महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

सार

प्राचीन भारत में चिकित्सा ग्रंथों का इतिहास केवल वैचारिक या चिकित्सकीय परंपरा का इतिहास नहीं, बल्कि यह लेखन माध्यमों, संरक्षण तकनीकों और ज्ञान-संरचना के भौतिक विकास का भी दर्पण है। ताड़पत्र और भोजपत्र जैसे जैविक माध्यम चिकित्सा ग्रंथों के लेखन और संरक्षण के प्रमुख आधार बने। प्रारंभिक काल में ताड़पत्र पर लेखन मुख्यतः दक्षिण एवं पश्चिमी भारत में प्रचलित था, जबकि उत्तर भारत में भोजपत्र को प्राथमिकता दी गई। इन माध्यमों की भौतिक विशेषताएँ—जैसे उनकी लचीली संरचना, नमी-संवेदनशीलता और दीर्घायुता ने पांडुलिपियों के संरक्षण पद्धतियों को आकार दिया। न केवल चरकसंहिता और सुश्रुतसंहिता जैसे आयुर्वेदिक ग्रंथ इन्हीं माध्यमों पर लिखे गए, बल्कि बौद्ध चिकित्सा ग्रंथों और बोअर पांडुलिपि जैसे प्रमाण इस पांडुलिपि परंपरा को ऐतिहासिक रूप से पुष्ट करते हैं। साथ ही, शिलालेखीय और पुरातात्त्विक प्रमाण यह दर्शाते हैं कि इन पांडुलिपियों के संरक्षण हेतु विशेष तकनीकें विकसित की गई—जैसे तैल अभिषेक, कीट-रोधी धूपन तथा ताम्रपत्र या लकड़ी के आवरण में संधारण। इस भौतिक इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि चिकित्सा ज्ञान के प्रसार में लेखन माध्यम केवल वाहक नहीं रहे, बल्कि उन्होंने चिकित्सा परंपरा के स्वरूप, उसके प्रसार और सामाजिक स्मृति को गहराई से प्रभावित किया।

मुख्य शब्द - ताड़पत्र, भोजपत्र चिकित्सा ग्रंथ, पांडुलिपि परंपरा-लेखन माध्यम, संरक्षण तकनीक चरकसंहिता सुश्रुतसंहिता पांडुलिपि भारतीय ज्ञान परंपरा भौतिक इतिहास।

प्रस्तावना

भारतीय सभ्यता की विशेषता यह रही है कि यहाँ ज्ञान केवल मौखिक परंपरा में नहीं, बल्कि भौतिक रूपों में भी संरक्षित हुआ। वैदिक युग से लेकर गुप्तोत्तर काल तक भारतीय ज्ञान का विकास दो समानांतर धाराओं में हुआ—वाचिक परंपरा और लिखित परंपरा। चिकित्सा, जो भारतीय दार्शनिक चिंतन की व्यावहारिक शाखा कही जा सकती है, अपने विकास में इन दोनों परंपराओं से समान रूप से प्रभावित रही। प्रथम से आठवीं शताब्दी के बीच, जब भारत में शैक्षणिक संस्थानों का विस्तार हुआ और वैज्ञानिक अनुशासन व्यवस्थित रूप लेने लगे, तब ज्ञान को संरक्षित रखने की आवश्यकता पहले से अधिक बढ़ी। यह काल भारतीय चिकित्सा ग्रंथों के लेखन माध्यमों के विकास का निर्णायक युग था। ताड़पत्र और भोजपत्र—ये दो ऐसे भौतिक माध्यम थे जिन्होंने चिकित्सा साहित्य को पीढ़ी दर पीढ़ी सुरक्षित रखा और इसे भौगोलिक सीमाओं से परे पहुँचाया। इन माध्यमों ने केवल ज्ञान को स्थायित्व

नहीं दिया, बल्कि समाज में ज्ञान-संरचना और उसकी पहुँच को भी नियंत्रित किया। इस प्रकार, चिकित्सा ग्रंथों का भौतिक इतिहास, भारत की सांस्कृतिक स्मृति का अभिन्न अंग बन जाता है।

भौगोलिक परिप्रेक्ष्य : जलवायु, वनस्पति और लेखन की आवश्यकता

भारत की विविध भौगोलिक संरचना ने लेखन माध्यमों के चयन में निर्णायक भूमिका निभाई। दक्षिण और पूर्वी भारत के तटीय क्षेत्रों में, जहाँ गर्म और आर्द्र जलवायु थी, वहाँ ताल और श्रीताल वृक्षों की प्रचुरता के कारण ताड़पत्र प्रमुख लेखन सामग्री के रूप में उभरा। ये पत्ते लंबे, लचीले और संसाधन के बाद स्थायी रूप से टिकाऊ हो जाते थे। दूसरी ओर, उत्तर भारत के हिमालयी और उपहिमालयी क्षेत्रों जैसे कश्मीर, उत्तराखंड, नेपाल और तिब्बत में भोजवृक्ष की छाल से भोजपत्र प्राप्त किया जाता था। यहाँ की शुष्क ठंडी जलवायु इस छाल को लंबे समय तक सुरक्षित रखती थी।

इन दोनों माध्यमों का वितरण किसी सांस्कृतिक संयोग मात्र नहीं था, बल्कि उस समय के पर्यावरणीय और सामाजिक यथार्थ से गहराई से जुड़ा था। दक्षिण में जहाँ सिद्ध और तमिल चिकित्सा परंपरा (सिद्धमार्ग) विकसित हुई, वहाँ ताड़पत्र पांडुलिपियाँ सामान्य थीं; वहीं उत्तर भारत में आयुर्वेदिक परंपरा का अधिकांश लेखन भोजपत्र पर मिलता है।

इस प्रकार, भौगोलिक स्थिति ने लेखन सामग्री, लिपि-विकास, और संरक्षण पद्धतियों—तीनों को गहराई से प्रभावित किया।

ताड़पत्र पांडुलिपि निर्माण की प्रक्रिया : एक शिल्प और विज्ञान

ताड़पत्र पांडुलिपियों का निर्माण मात्र तकनीकी प्रक्रिया न होकर एक निपुण शिल्पकला थी। इसके लिए ताड़ के वृक्ष से सावधानीपूर्वक परिपक्व पत्तियाँ चुनी जाती थीं—न तो अत्यधिक कोमल और न ही अधिक पुरानी। इन्हें हल्दी और नीम के मिश्रण वाले पानी में उबालकर सुखाया जाता था। हल्दी के एंटीबैक्टीरियल गुण पत्तों को दीमक और फफूंद से बचाते थे। इसके बाद पत्तों को समान लंबाई (30–50 से.मी.) और चौड़ाई (3–5 से.मी.) में काटा जाता था। पत्तों की सतह को झांवा या शंख से रगड़कर चिकना किया जाता। लेखन के लिए लोहे की नुकीली शलाका (stylus) से अक्षर उकेरे जाते, जिन्हें बाद में कालिख और तेल के मिश्रण से भरा जाता था। इस प्रक्रिया से बने अक्षर सैकड़ों वर्षों तक टिके रहते थे। ताड़पत्रों को बीच में छेद कर डोरी से पिरोया जाता था और लकड़ी के दो आवरणों के बीच रखा जाता था। किनारों पर अंकन के रूप में ग्रंथ का नाम, क्रमांक और कभी-कभी वैद्य का नाम भी लिखा जाता था। दक्षिण भारत, विशेषकर केरल और तमिलनाडु, इस शिल्पकला के केंद्र रहे। यहाँ के मंदिरों और आयुर्वेदिक गुरुकुलों में आज भी ताड़पत्र पांडुलिपियों की हजारों प्रतियाँ सुरक्षित हैं।

भोजपत्र : हिमालयी छाल में अमर हुआ ज्ञान

भोजपत्र पांडुलिपियाँ उत्तर भारत के बौद्धिक इतिहास की एक विशिष्ट धरोहर हैं। भोजवृक्ष की छाल की पतली परतों को सावधानीपूर्वक अलग कर सुखाया जाता और तेल से संसाधित किया जाता था। इसकी सतह स्वाभाविक रूप से चिकनी होती थी, जिस पर स्याही से सुंदर अक्षर लिखे जा सकते थे। स्याही प्रायः कालिख, गोंद, और पानी से तैयार की जाती थी; कभी-कभी उसमें गुग्गुल या पौध-आधारित राल भी मिलाई जाती थी ताकि अक्षर स्थायी रहें। लेखन के लिए बांस की कलम (कटक) का प्रयोग होता था। विशेष ग्रंथों में स्वर्ण, रजत या केसर-संयुक्त स्याही भी प्रयुक्त होती थी, जो उस ग्रंथ के धार्मिक या वैज्ञानिक महत्त्व को दर्शाती थी। बोअर पांडुलिपि, जो पाँचवीं-छठी शताब्दी की मानी जाती है, भोजपत्र पर लिखी गई प्राचीनतम चिकित्सा पांडुलिपि है। इसमें नवनीतक नामक चिकित्सा ग्रंथ के अंश सहित सात ग्रंथ हैं। इसकी लिपि गुप्त ब्राह्मी है और भाषा संस्कृत। यह खोज दर्शाती है कि उत्तर भारत की भोजपत्र परंपरा ने ताड़पत्र के प्रारूप को अपनाकर अपनी नवीन शैली विकसित की।

चिकित्सा ग्रंथों का संस्थागत संरक्षण

भारत की चिकित्सा परंपरा केवल वैद्य परिवारों तक सीमित नहीं थी; इसे संस्थागत रूप भी प्राप्त था। तक्षशिला विश्वविद्यालय (ई.पू. 6वीं शताब्दी) में आत्रेय और जीवक जैसे प्रसिद्ध चिकित्सक सक्रिय थे। बाद में नालंदा महाविहार (5वीं–12वीं शताब्दी) इस परंपरा का केंद्र बना। ह्वेनसांग के अनुसार, नालंदा में तीन विशाल पुस्तकालय भवन थे—रत्नसागर, रत्नरंजक और रत्नोदधि। इनमें चिकित्सा, तर्क, दर्शन, ज्योतिष और व्याकरण से संबंधित हज़ारों पांडुलिपियाँ संग्रहित थीं। पांडुलिपियों की प्रतिलिपि तैयार करने के लिए प्रशिक्षित लिपिक रखे जाते थे। यह कार्य राजकीय अनुदान से संचालित होता था। इन संस्थानों की पांडुलिपि-संरचना केवल ज्ञान-संग्रह नहीं थी, बल्कि एक बौद्धिक अनुशासन का प्रतीक थी—जहाँ ग्रंथों को पढ़ना, प्रतिलिपि बनाना, और सुरक्षित रखना एक धार्मिक कर्तव्य माना जाता था।

संरक्षण की चुनौतियाँ और उनका समाधान

1. ताड़पत्र और भोजपत्र दोनों ही प्राकृतिक रूप से नाजुक सामग्री थीं।

2. ताड़पत्र की सबसे बड़ी कमजोरी आर्द्रता थी—नमी बढ़ने पर यह फूल जाता और फफूंद लग जाती।

भोजपत्र शुष्क वातावरण में दीर्घजीवी था, परंतु बार-बार मोड़ने या अत्यधिक ठंड से टूट सकता था।

इन कठिनाइयों से बचने के लिए भारतीय विद्वानों ने अनेक उपाय विकसित किए—

1. पांडुलिपियों पर नीम या सरसों के तेल का उपचार।

2. इन्हें कपड़े में लपेटकर लकड़ी के डिब्बों में रखना।

3. मंदिरों, विहारों या गुफाओं में भंडारण।

फिर भी प्राकृतिक आपदाएँ, युद्ध और आगजनी इन ग्रंथों के लिए घातक सिद्ध हुए। 12वीं शताब्दी में बख्तियार खिलजी द्वारा नालंदा विश्वविद्यालय का विध्वंस भारतीय चिकित्सा पांडुलिपियों के इतिहास का सबसे बड़ा झटका था। परंतु ज्ञान की धारा रुकी नहीं—प्रतिलिपिकरण की परंपरा ने इस बौद्धिक विरासत को पुनर्जीवित रखा। यही कारण है कि चरक और सुश्रुत संहिताओं के विभिन्न पाठ आज भी मिलते हैं।

सामाजिक संरचना और ज्ञान की पहुँच

चिकित्सा ज्ञान का लेखन और अध्ययन समाज के सभी वर्गों के लिए समान रूप से सुलभ नहीं था। पांडुलिपियों का निर्माण महंगा था, और शिक्षण संस्थान सीमित थे। चरक संहिता में कहा गया है कि चिकित्सा शिक्षा उसी को दी जानी चाहिए जो संयमी, विनम्र और योग्य हो। गुरु-शिष्य परंपरा में अधिकांश अध्ययन मौखिक होता था; पांडुलिपि केवल गुरु या राजकीय पुस्तकालयों तक सीमित रहती थी। इस प्रकार, ज्ञान की पहुँच पर सामाजिक और आर्थिक नियंत्रण बना रहा। फिर भी, यह परंपरा इतनी मजबूत थी कि आक्रमणों और राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद चिकित्सा ज्ञान का प्रवाह निरंतर चलता रहा।

लिपि-विकास और क्षेत्रीय विविधता

ताड़पत्र और भोजपत्र ने लिपियों के विकास को भी प्रभावित किया—

1. दक्षिण भारत में ग्रंथम लिपि और बाद में मलयालम लिपि विकसित हुईं, जो शलाका से लिखने के अनुकूल गोलाकार संरचना रखती थीं।

2. उत्तर भारत में शारदा लिपि कश्मीर और उसके आसपास के भोजपत्र पांडुलिपियों में प्रचलित थी और इसकी कोणीय और स्पष्ट अक्षर संरचना लेखन के अनुकूल मानी जाती थी।

3. गुप्त काल में गुप्त लिपि और उसके विकसित रूप सिद्धमात्रिका का प्रयोग उत्तर और पूर्वी भारत में हुआ, जो बाद में देवनागरी और अन्य उत्तर भारतीय लिपियों के विकास का आधार बनी।

इन विविध लिपियों ने भारतीय चिकित्सा ग्रंथों को भिन्न-भिन्न भाषिक स्वरूपों में सुरक्षित रखा, जिससे क्षेत्रीय परंपराओं का पारस्परिक संवाद संभव हुआ।

राजकीय संरक्षण और आर्थिक पक्ष

गुप्तकाल को भारतीय विद्या परंपरा का स्वर्ण युग कहा जाता है। कुमारगुप्त प्रथम ने नालंदा की स्थापना की, जहाँ चिकित्सा सहित विविध विषयों की शिक्षा दी जाती थी। हर्षवर्धन के समय इस परंपरा को और विस्तार मिला। दक्षिण भारत में पल्लव और चालुक्य शासकों ने भी आयुर्वेदिक विद्या को राजकीय संरक्षण दिया। एक पांडुलिपि तैयार करने की लागत उस युग में अत्यधिक थी। इसमें सामग्री, लिपिक का पारिश्रमिक, स्याही और संरक्षण सामग्री शामिल थी। इसलिए केवल विद्या-व्रत संस्थान, मंदिर या संपन्न वैद्य ही इनका निर्माण करा पाते थे। यही कारण है कि चिकित्सा ग्रंथों की प्रतियाँ सीमित थीं, किंतु उनकी विद्या व्यापक थी।

टीका परंपरा और ग्रंथों का पुनर्लेखन

प्राचीन चिकित्सा ग्रंथों को दीर्घजीवी बनाने में टीका परंपरा की अहम भूमिका रही। नागार्जुन, जेजट, चक्रपाणिदत्त और वाग्भट्ट जैसे विद्वानों ने चरक व सुश्रुत के ग्रंथों की टीकाएँ लिखीं। अष्टांग हृदय (6वी—7वीं शताब्दी) वाग्भट्ट द्वारा रचित एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसने चरक और सुश्रुत दोनों के सिद्धांतों को संक्षिप्त व सुलभ रूप में पुनर्गठित किया। यह न केवल चिकित्सा ज्ञान

का संकलन था, बल्कि पांडुलिपि संस्कृति का पुनर्जागरण भी।

अंतर्राष्ट्रीय प्रसार और बौद्ध प्रभाव

बौद्ध भिक्षुओं के माध्यम से भारतीय चिकित्सा का ज्ञान चीन, तिब्बत, श्रीलंका और दक्षिण-पूर्व एशिया तक पहुँचा। तिब्बत में 7वीं–8वीं शताब्दी में सौवा-रिग्पा नामक चिकित्सा प्रणाली विकसित हुई जो आयुर्वेद से गहराई से प्रभावित थी। भारतीय ग्रंथों के तिब्बती अनुवादों ने अनेक खोए हुए ग्रंथों को संरक्षित किया। इसी काल में फारस और अरब जगत में भी भारतीय चिकित्सा सिद्धांतों का प्रभाव देखा गया, विशेषकर जुंदीशापुर विश्वविद्यालय में। यह प्रसार दर्शाता है कि भारतीय चिकित्सा ज्ञान अपने भौतिक माध्यमों के माध्यम से वैश्विक सांस्कृतिक संवाद का अंग बन गया था।

निष्कर्ष : भौतिक माध्यम और सांस्कृतिक स्मृति का संगम

ताड़पत्र और भोजपत्र भारत की सांस्कृतिक चेतना के भौतिक प्रतीक हैं। उन्होंने न केवल चिकित्सा ज्ञान को संरक्षित किया, बल्कि उस युग की शिल्पकला, पारिस्थितिकी और सामाजिक संरचना को भी आकार दिया। ताड़पत्र जहाँ दक्षिण के नम वातावरण का प्रतिनिधि था, वहीं भोजपत्र उत्तर के हिमालयी प्रदेश की स्थिरता का प्रतीक। दोनों मिलकर भारतीय ज्ञान परंपरा की वह आधारशिला बने जिन पर आज का चिकित्सा इतिहास टिका है। इन माध्यमों ने हमें यह सिखाया कि ज्ञान केवल विचार नहीं, बल्कि एक भौतिक जीवन है–जो पत्तों, छालों और स्याही की गंध में साँस लेता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. बोवर पांडुलिपि. (1897). फेक्सिमिली संस्करण. क्लेरेंडन प्रेस.
2. चट्टोपाध्याय, डी. पी. (सम्पा.). (1991). भारतीय सभ्यता में विज्ञान, दर्शन और संस्कृति का इतिहास (खंड II, भाग 2). पीएचआईएसपीसी.
3. फिलियोज़ा, जे. (1964). भारतीय चिकित्सा का शास्त्रीय सिद्धांत, इसकी उत्पत्ति और उसके ग्रीक समानांतर. मुंशीराम मनोहरलाल
4. गोयल, एस. आर. (1990). भारतीय पांडुलिपियों का इतिहास. आर्यन बुक्स इंटरनेशनल
5. कश्यप, एल. (सम्पा.). (1988). चरकसंहिता (आलोचनात्मक संस्करण). चौखम्भा संस्कृत सीरीज़
6. सालोमन, आर. (1998). भारतीय अभिलेखशास्त्र. संस्कृत, प्राकृत और अन्य इंडो-आर्य भाषाओं के अभिलेखों के अध्ययन के लिए एक मार्गदर्शक. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
7. शर्मा, पी. वी. (1992). भारत में चिकित्सा का इतिहास. भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी
8. दत्त, एस. (1962). भारत के बौद्ध भिक्षु और विहार. डोवर पब्लिकेशन्स
9. मोनरो, जे. (2000). नालंदा महाविहार. महान बौद्ध विश्वविद्यालय का एक अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स.
10. शास्त्री, अंबिकादत्त (सम्पा.). (2015). सुश्रुतसंहिता. आयुर्वेद तत्त्व संदीपिका (हिंदी व्याख्या सहित).,वाराणसी. चौखम्भा संस्कृत सीरीज़.
11. भारतीय पांडुलिपि मिशन. (प्रा.). नेशनल मिशन फॉर मैन्युस्क्रिप्ट्स के तकनीकी विवरण. नई दिल्ली. संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार.
12. वुजास्टिक, डी. (2003). आयुर्वेद की जड़ें. संस्कृत चिकित्सा ग्रंथों से चयन. पेंगुइन बुक्स.
13. सोयलेमेज़, एम. एम. (2021). जुंदिशापुर स्कूल. इसका इतिहास, संरचना और कार्य. एशियन जर्नल ऑफ इस्लामिक स्टडीज़, 5(2), 1–10. https://www.ajis.org/index-php/ajiss/article/download/455/2246/4975
14. दानेशफर्द, बी., नासेरी, एम., और गफ्फारी, एफ. (2022). विश्व के प्रथम विश्वविद्यालय, जुंदिशापुर अकादमी में चिकित्सा शिक्षा. जर्नल ऑफ फैमिली मेडिसिन एंड प्राइमरी केयर, 11(11), 4267-4272. https://www.researchgate-net/publication/363514241-Medical&education&in&the&first&university&of&the&world&the&Jundishapur&Academy
15. विकिपीडिया योगदानकर्ता. (2025). शारदा लिपि. लिया गया स्रोत से: https://en-wikipedia-org/wiki/Sharada&script
16. विकिपीडिया योगदानकर्ता. (2025). ग्रन्थ लिपि. विकिपीडिया में. 20 अक्टूबर 2025 को लिया गया, स्रोत से : https://en-wikipedia-org/wiki/Grantha&script
17. हैम्बर्ग विश्वविद्यालय. (तिथि). तमिलनाडु की ताड़पत्र पांडुलिपियाँ. हैम्बर्ग. हैम्बर्ग विश्वविद्यालय.
18. ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी. (तिथि). कश्मीर से वेद संबंधी भोजपत्र पांडुलिपि, शारदा लिपि में. कैनबरा. एएनयू प्रेस.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रकृति का साहित्यिक चित्रण : वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में

मंजू सुयाल
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय बनबसा, चम्पावत (उत्तराखंड)

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र आदिकवि महर्षि वाल्मीकि कृत आदिकाव्य रामायण में काव्य–सौंदर्य तथा पर्वतों, नदियों एवं समुद्र के अद्‌भुत प्रकृति–वर्णन के विश्लेषण पर आधारित है। प्रकृति के प्रति महर्षि वाल्मीकि की सौन्दर्य संवेदना कवित्वमय है। इसमें आदि कवि ने मानवीय संवेदनाओं के साथ–साथ प्रकृति की सौंदर्यात्मक छटाओं को भी अत्यंत सूक्ष्म एवं मार्मिक रूप से व्यक्त किया है। परंपरागत प्रकृति–चित्रण के विविध रूपों को दृष्टिगत करते हुए, वाल्मीकि रामायण से लेकर तदनुरूप सौंदर्य–ललिता तक के प्राकृतिक रूपों का विश्लेषण इस शोध पत्र में किया गया है।

प्रायः स्थावर एवं जड़गमात्मक सृष्टि ही प्रकृति की संज्ञा से व्यवहृत होती है, जिसमें मनुष्य का अस्तित्व प्रकृति की कोख में उत्पन्न, पालित एवं अन्तर्निहित रहती है, क्योंकि उसके समस्त क्रियाकलाप, कर्तव्य एवं कर्म प्रकृति के अविच्छिन्न अंग हैं। अतः मानव जीवन में प्रकृति की सौन्दर्यपूर्ण छटा प्रतिविम्बित होती है, तथा प्रकृति का सौंदर्य मानव जीवन को आद्यात्मिक व भौतिक दृष्टि से समृद्ध बनाता है। वैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित मतानुसार–"विकासवाद एवं आस्तिकों की अपौरुषेय सृष्टि कल्पना दोनों पक्ष ही इस विषय पर एकमत हैं किमानव जाति, प्रकृति के विशाल गर्भस्थल में जन्म धारण करती है और उसके सान्निध्य में चेतनात्मक उत्क्रांति प्राप्त करती है।"इस प्रकार मनुष्य अपनी कल्पना शक्ति से प्रकृतिक के अद्‌भुत दृश्यों, रहस्यमयता एवं विविधता का अतिसूक्ष्म विश्लेषण कर उसकी सृजनात्मक व्याख्या प्रस्तुत कर बैठता है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि कृत 'श्रीमद्रामायण' भी इसी प्रकृति की देन है। निषाद द्वारा क्रौञ्चपक्षी पर प्रहार करना आदिकाव्य के सृजन प्रक्रिया का प्रमुख प्रेरक तत्व मात्र सिद्ध होता है।

आदिकवि द्वारा प्रकृति के सौंदर्यात्मक तत्त्वों की अभिव्यक्ति सहज रूप से किया गया हैं। वे प्रकृति की अनुपम छटा पर हर्षोल्लासित होकर आनन्दमग्न हो उठते हैं। वाटिकामण्डल में पुष्पित् पुष्पमालाओं को जलसिंचन करते हुए कवि का हृदय हर्षोल्लास और पुलकित हो उठता हैं। इस प्रकार अनेक कवियों में काव्य रचना की प्रेरक साधना द्वारा प्रकृति के विविध आयामों का साक्षात्कार संभव होता है। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि को महाकवियों में अभिजात स्थान प्राप्त हैं, यह न केवल श्रेष्ठ कवि माने जाते है अपितु धर्मसाक्षात्कारिता का प्रतिरूप भी माने जाते हैं। इनके द्वारा आदिकाव्य रामायण की रचना चित्रकूट पर्वत के शिखरावलोकन की छाया में, तमसा नदी के तटवर्ती क्षेत्र पर, सर–सरिता, वन, पर्वत से आवृत आश्रममण्डल में, ऋतुओं से अलंकृत एवं विहंगों के मधुर कलरव से कूजित प्रकृति के स्वच्छन्द प्रांगण में हुई है। अतः महर्षि वाल्मीकि ने जहाँ प्रकृति के भव्य, विराट और दिव्य दृश्यावलोकनों की मार्मिक प्रस्तुति की है, वहीं उन्होंने प्रकृति के गूढ़ तत्त्वों में गहन प्रवेश करते हुए मनुष्य जीवन के समस्त क्रिया–कलापों के उल्लास, विषाद, हास, अश्रु, आशा एवं निराशा आदि का भी प्रत्यक्षीकरण किया है। क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रंथ में प्रकृति और मनुष्य को सहोदर तुल्य दृष्टि से परिगणित किया है। जहाँ एक ओर मनुष्य प्राकृतिक विभूतियों के दर्शन से हर्षोल्लासित होकर नृत्य करता हुआ दृष्टिगोचर होता है, तो वहीं दूसरी ओर मानवीय विपदाओं पर प्रकृति

करुणामयी अश्रु परवाहित करती हुई प्रतिबिंब प्रस्तुत करती है।

नदियों का वर्णन

नदियाँ प्रकृति–सौंदर्यवर्धन में अत्यन्त सहायक होती हैं। मनोहारी प्रवाहिनी धारा, सङ्गीतात्मक ध्वनि, अलौकिक सौन्दर्य, तथा विहंगमों के कलरवों से युक्त तटों की मनमोहक छटा प्रत्येक ह्रदय को आकर्षित करने वाली होती है। इन सभी का अद्भुत चित्रण वाल्मीकि रामायण में अत्यन्त रमणीय रूप से किया गया है।

गंगा नदी

वाल्मीकि रामायण के अनुसार गंगा नदी का उद्गम राजा भगीरथ के कठिन तपोबल से माता गंगा स्वर्गलोक से प्रस्फुटित होकर भगवान शिव जी की जटा में अवतरित हुई थी। तत्पश्चात भगवान शिव ने इन्हे बिन्दुसार रूप में उत्सर्जित किया था। जो सातधाराओं में प्रवाहित हुई–

सप्तमी चान्वगात् तासां भागीरथरथं तदा।
भागीरथोऽपि राजर्षिर्दिव्यं स्यन्दनमास्थितः।।
प्रायादग्रे महातेजा गंगा तं चाप्यनुव्रजत्।
गगनाच्छंकरशिरस्ततो धरणिमागता।।[1]

जैसे–

हलादिनी पावनी चौव नलिनी च तथैव च।
तिस्रः प्राचीं दिशं जग्मुर्गङ्गाःशिवजलाः शुभाः।।
सुचक्षुश्चौव सीता च सिन्धुश्चौव महानदी।
तिस्रश्चैता दिशं जग्मुः प्रतीचीं तु दिशं शुभाः।।
गंगा नदी को 'पापनशिनी' भी कहा जाता हैं–
यतो भागीरथो राजा ततो गङ्गण यशस्विनी।
जगाम सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी।।[2]

कौशिकी नदी

आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने इस नदी को विश्वामित्र की भगिनी रूपमेंअंकित किया है–

दिव्या पुण्योदका रम्या हिमवन्तमुपाश्रिता।
लोकस्य हितकार्यार्थां प्रवृत्ता भगिनी मम्।।[3]

इस प्रकार यह महानदी कौशिकी के रूप में प्रकट होकर धरा पर प्रवाहित हुई–

पूर्वजा भगिनी चापि मम राघव सुव्रता।
नाम्ना सत्यवती नाम ऋचीके प्रतिपादिता।।
सशरीरा गता स्वर्ग भर्तारमनुवर्तिनी।
कौशिकी परमोदारा प्रवृत्ता च महानदी।।[4]

शोण नदी

महर्षि वाल्मीकि ने शोण नदी के प्रवाहदिशा कोपश्चिम की ओर बताया है, एवं इसेमगध देश में शोभायमान नदी के रूप में वर्णित किया गया है–

सुमागधी नदी रम्या मागधान् विश्रुताऽऽययौ।
पंचानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते।।[5]

महर्षि वाल्मीकि ने इस नदी को श्सुमागधीश उपनाम द्वारा संबोधित किया है। क्योंकि यह दक्षिण–पश्चिम दिशा से प्रवाहित होकर मगधभूमि में प्रवेश करती है। यह नदी पाँच पर्वतों के मध्य माला की भाँति सुशोभित होती है इसके अतिरिक्त इसी शोण नदी में राजर्षि कुशनाभ ने घृताची अप्सरा के गर्भ से सौ उत्तम कन्याओं का सृजन किया–

कुशनाभस्तु राजर्षिः कन्याशतमनुत्तमम्।
जनयामास धर्मात्मा घृताच्यां रघुनन्दन।।[6]
तास्तु यौवनशालिन्यो रूपवत्यः स्वलंकृताः।

उद्यानभूमिमागम्य प्रावृषीव शतहदाः।।
गायन्त्यो नृत्यमानाश्च वादयन्त्यस्तु राघव।
आमोदं परमं जग्मुर्वराभरणभूषिताः।।[7]

समुद्र का वर्णन

जब भगवान श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान सहित माता सीता की खोज में परिश्रांत अवस्था में सुग्रीव के पास पहुँचे, तब वे दक्षिण दिशा की ओर समुद्र के भीतर जाकर अन्वेषण करते हैं और वानरसमूह भूखे– प्यासे सभी वृक्ष के नीचे विश्राम करने के लिए बैठे जाते हैं–

विचित्य तु वनं सर्वं समुद्रं दक्षिणां दिशम्।
वयं बुभुक्षिताः सर्वे वृक्षमूलमुपाश्रिताः।।[8]

आकाश मार्ग से शोभायमान हो रहे विशाल समुद्र की प्राकृतिक सुन्दरता का महर्षि वाल्मीकि ने इस प्रकार वर्णन किया है–

ज्ञानेन खलु पश्यामि दृष्ट्वा प्रत्यागमिष्यथ।
आद्यः पन्थाः कुलिंगानां ये चान्येधान्यजीविनः।।
द्वितीयो बलिभोजानां ये च वृक्षफलाशनाः।
भासस्तृतीयं गच्छन्ति क्रौंचाश्च कुररैः सह।।
श्येनाश्चतुर्थं गच्छन्ति गृध्रा गच्छन्तिपञ्चमम्।
बलवीर्योपपन्नानां रूपयौवनशालिनाम्।।
षष्ठस्तु पन्था हंस्तनां वैनतेयगतिः परा।
वैनतेयाच्च नो जन्म सर्वेषां वानरर्षभाः।।[9]

पर्वतों का वर्णन

आदिकाव्य रामायण में प्राकृतिक रम्यरूपों में रमणीय स्थल के रूप में पर्वत एवं पठारों का समुचित रूप में वर्णन किया गया है।

चित्रकूट पर्वत–

महर्षि वाल्मीकि ने लक्ष्मण द्वारा चित्रकूट पर्वत की दिव्य शोभा का अद्भुत वर्णन किया है, तथा प्रकृति के मनोरम पर्यालोचन पर आधारित निवासस्थलीके निर्माण हेतु परामर्श देते हैं–

मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे।।[10]

महेन्द्र पर्वत

वाल्मीकि रामायणानुसार सप्तकुल पर्वतों के शिलाओं के समूह से अलंकृत इस महेन्द्र पर्वत का स्थान प्रमुख है। जब महावीर हनुमान् लंका प्रस्थान हेतु उद्यत हुए थे, तब उन्होंने इसी पर्वत पर छलांग लगाया था–

एतानीह नगस्यास्य शिलांसकटशालिनः।
शिखराणि महेन्द्रस्य स्थिराणि च महान्ति च।।
येषु वेगं गमिष्यामि महेन्द्र शिखरेष्वहम्।
नानाद्रुमविकीर्णेषु धातुनिष्पन्दशोभिषु।।[11]

इस अद्भुत मैनाक पर्वत की कान्तिमान और तेजस्वी सुवर्णमय शिखरों की तुलना सैकड़ों सूर्यों के समान दीप्तिमान होने से की गयी हैं–

जातरूपमयैः श्रृंगैर्भाजमानैर्महाप्रभैः।
आदित्यशतसंकाशः सोऽभवद् गिरिसत्तमः।।[12]

निष्कर्ष

आदिकवि वाल्मीकि कृत रामायण न केवल धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, अपितु इसमें प्रकृति का अद्भुत साहित्यिक चित्रण भी देखने को मिलता है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण में प्राकृतिक सौंदर्य का सजीव और सरस चित्रण प्रस्तुत कर इसे समग्र प्राणियों के आपसी संबंध,

जीवन–दर्शन, सौंदर्य–संवेदना और पर्यावरणीय चेतना का संदेश दिया गया है। यह न केवल कथा को जीवंत बनाता है अपितु भावी कवियों के लिए प्रेरणा और काव्य–सौंदर्य का अद्वितीय उदाहरण भी प्रस्तुत करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 43/14–15
2. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 43/33
3. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 38/9
4. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 38/16
5. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 23/9
6. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 32/11
7. वाल्मीकि रामायण, बा.का.– 32/12–13
8. वाल्मीकि रामायण, कि. का.– 52/9
9. वाल्मीकि रामायण, कि. का.– 58/26–29
10. वाल्मीकि रामायण– 2ध्56/18
11. वाल्मीकि रामायण– 4ध्67/36
12. वाल्मीकि रामायण, सु. का.– 1/106

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

शिक्षा से सम्बंधित सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का अनुसूचित जाति की छात्राओं पर पड़ने वाले प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

कु. विनीता
पी० एच० डी० शोधर्थिनी, समाजशास्त्र विभाग
राधेहरी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर उधम सिंह नगर (उत्तराखंड)
डॉ. कल्पनाथ सिंह यादव
प्रोफेसर, राधेहरी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर उधम सिंह नगर (उत्तराखंड)

सारांश

अनुसूचित जाति की छात्राओं ने प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा तक पहुँचने में कई समस्याओं का सामना किया है जिसके पीछे का मुख्य कारण काफी हद तक समाज का अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक न होना तथा दूसरा उनके परिवार का आर्थिक रूप से सक्षम न हो पाना माना जाता है। प्रस्तुत शोध में अनुसूचित जाति की छात्राओं की समस्याओं से सम्बंधित अध्ययन किया गया है जिसके अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया है कि उन्हें उच्च शिक्षा में उनके परिवार के आर्थिक निम्नीकरण के पश्चात सरकारी कल्याणकारी योजनाओं से कितना लाभ मिलता है ? जैसे कि क्या उनको महाविद्यालय में छात्रावास, छात्रवृति, पुस्तकालय, स्पोर्ट्स गेम्स आदि की सुविधा प्राप्त है ? क्या उनके साथ छात्रावास में समतामूलक व्यवहार किया जाता है ? क्या उनको महाविद्यालय में विशेष कोचिंग सुविधा प्राप्त है? क्या वह महाविद्यालय में होने वाले अधिकांश कार्यक्रमों में प्रतिभाग करती है ? आदि।

प्रस्तावना

अनुसूचित जाति की महिलाओं का शैक्षिक सम्बन्धी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय समाज प्राचीनकाल में वर्णों में विभाजित था (ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र) और यहाँ पर शिक्षा का अधिकार उच्च जाति यानि ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों को दिया जाता था और ब्राहमण परिवार से ताल्लुक रखने वाले लोगों के द्वारा धर्म से सम्बंधित शिक्षा जैसे वेद, पुराण, रामायण, महाभारत तथा श्रीमदभगवत गीता जैसे ग्रंथों का अध्ययन किया जाता था और इन्हीं के द्वारा वह समाज का संचालन करते थे रही बात शूद्रों की तो उन्हें शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा गया था अर्थात उन्हें शिक्षा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था यहाँ तक कि शिक्षा प्राप्त करने वाले पवित्र स्थानों पर उनका प्रवेश भी वर्जित था जिसके पीछे यह मान्यतः यह थी कि उनके जाने से वह पवित्र स्थान अपवित्र हो जायेगें, ऐसी स्थिति में उनके लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सोच भी रखना बहुत बड़ी बात थी और यही वह समय था जब दलित जाति के लोगों की शिक्षा का स्तर सबसे निम्न था। यदि हम वैदिक काल की बात करें तो इस समय स्त्रियों की सामाजिक स्थिति सर्वाधिक उच्च एवम् श्रेष्ठ थी परन्तु शिक्षा बहुत ही सीमित थी और बड़े–बड़े राजघरानों के लोग अपनी पुत्रियों की शिक्षा प्राप्ति की व्यवस्था स्वयं के राजघरानों में ही करते थे साथ ही इस समय गुरुओं की पुत्रियों को भी शिक्षा दी जाती थी परन्तु अनुसूचित जाति की बालिकाओं के लिए प्राचीन वैदिक काल में शिक्षा प्राप्ति हेतु कोई व्यवस्था नहीं थी परन्तु यहाँ पर यह वर्णन मिलता है कि "अनेक ऋषियों का जन्म इन्हीं दलित

महिलाओं के गर्भ से हुआ। डॉ मंजू सुमन 2014,17) : "जिनमें कव्य, कक्षिवान और औशिज वत्स आदि प्रमुख हैं" उत्तर वैदिक काल की बात की जाये तो इस काल में स्त्रियों की सामाजिक–सांस्कृतिक स्थिति में परिवर्तन होना आरंभ हो गया था जैसे कि वैदिक काल में उच्च जाति की महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था परन्तु उत्तर वैदिक काल में आते–आते अब स्त्रियों से वेद अध्ययन की स्वतंत्रता का अधिकार भी ले लिया गया। (डॉ मंजू लता 2017:5–6) : "इस काल में महिलाओं स्थिति में परिवर्तन हुआ और यह विचार पनपने लगा कि बौद्धिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से निम्न है। महाभारत उल्लिखित उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि यद्यपि महिलाओं के प्रति वैचारिक मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा था परन्तु सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में अभी भी महिलाओं अधिकारों को कम नहीं किया गया था।" और इसके साथ ही निम्न परिवार की जो महिलाएँ थी वह अभी भी अपने गृहस्थी, कृषि एवम् पशुपालन से सम्बंधित सामान्य कार्यों में लगी हुयी थी। उन्हें अभी भी शिक्षा का कोई अधिकार के अधिकार से वंचित रखा गया था। जब बौद्ध काल का प्रादुर्भाव हुआ तो इस समय में बिना किसी जातिगत विभेद के सभी के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिए गये थे परन्तु इस समय जो समस्या उभर कर आई वह थी ब्रह्माणवादी व्यवस्था जिसने सभी निन्म जाति के लोगों एवम् महिलाओं को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दिया। (बिहारी शर्मा, 2013–14:31)

"बौद्ध काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बौद्ध मठों एवम् विहारों में प्रवेश नहीं दिया जाता था पुरुषों को ही बौद्ध मठों एवम् विहारों में जाकर शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। बौद्ध मठों एवम् विहारों के नियम इतने अधिक कठोर थे कि उनको पुरुषों के द्वारा ही पूर्ण किया जा सकता था।" इसके पश्चात जब मध्यकाल आया तो यहाँ पर महिलाओं की स्थिति और भी अधिक खराब हो गयी थी और समाज में पहले से व्याप्त कुप्रथाओं जैसे पर्दा प्रथा,बाल विवाह साथ ही कठोर जाति व्यवस्था आदि ने शूद्रों एवम् दलित महिलाओं दोनों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा। देखा जा सकता है कि उपर्युक्त सभी कालों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दलित महिलाओं का शिक्षा के अधिकार का जितना भी इतिहास रहा है वह अत्यंत ही कठिन एवम् संघर्षमय रहा है दलित महिलाओं की शिक्षा को उपर्युक्त किसी भी काल में प्रोत्साहन नहीं किया गया। इसके पश्चात जब आधुनिक काल का प्रादुर्भाव हुआ तो यहाँ पर भी प्रारम्भिक काल में दलित महिलाओं की शिक्षा न के बराबर थी फिर आगे चलकर धीरे–धीरे दलित महिलाओं की शिक्षा कुछ समाज सुधारकों तथा मिशनरियों के प्रयासों से सम्भव होने लगी, जहाँ पर दलित महिलाओं की प्रथम शिक्षिका के रूप में सर्वप्रथम सावित्री बाई फुले उभरी, जिन्होंने 1848 में दलित तथा अन्य महिलाओं के लिए पहला विद्यालय खोला जिसके फलस्वरूप समाज में इनको कई समस्याओं का सामना करना पड़ा ᐧ जब हमारा देश आजाद हुआ तो स्वतंत्रता के समय भी दलित महिलाओं की शिक्षा का स्तर लगभग नगण्य ही था जो कि सामाजिक भेदभाव तथा वर्षों से चली आ रही मानसिकता का परिणाम थी। स्वतंत्रता के बाद से अनुसूचित जाति की महिलाओं की शिक्षा में महत्वपूर्ण बदलाव देखे जा सकते हैं हालाँकि इसके बावजूद भी निम्न जाति की महिलाओं को उनको जातिगत विभेद तथा दूसरा लिंग भेद के कारण भी कई समस्याओं का सामना करना पड़ता था। परन्तु इन सब के पश्चात भी निम्न जाति की महिलाओं की शिक्षा में काफी सुधार होने लगा जिसका मुख्य कारण था संवैधानिक प्रावधान जिसमें की सभी को समानता का अधिकार देने की बात कही गयी जिसमें बिना किसी जातिगत, धार्मिक तथा लैंगिक विभेद के सभी को शिक्षा का अधिकार दिया गया यानि कि शिक्षा को ही मौलिक अधिकार बना दिया, इसी के साथ सरकार ने स्कूल पढ़ने वाले गरीब छात्र–छात्राओं के लिए कई प्रकार सरकारी योजनाओं को लाँच किया है जैसे मिडे–डे–मील, छात्रवृत्ति योजना, छात्रावास की सुविधा, बच्चों को स्कूलों में पुस्तकें तथा यूनीफोर्म वितरण करना आदि जिससे से कि आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के बच्चों को शिक्षा प्राप्ति में कोई रूकावट नहीं आये और उन्हें भी शिक्षा के अवसर प्राप्त हो। यदि अनुसूचित जाति की महिलाओं की वर्तमान शैक्षिक स्थिति की ओर देखा जाए तो ज्ञात होता है कि पहले सभी कालों की तुलना में उनकी शैक्षिक स्थिति में काफी सुधार हुआ है और कई महिलाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त कर उच्च पदों पर कार्यरत हैं और समाज को चलाने में अपना योगदान दे रही है परन्तु ध्यान देने वाली बात यह है कि अनुसूचित जाति की महिलायें आज के समय में शिक्षा प्राप्त तो जरुर कर रही है परन्तु उनका शिक्षा का औसत अभी भी सामान्य महिलाओं की तुलना में निम्न है विशेषकर ग्रामीण समाज में रहने वाली अनुसूचित जाति की महिलाओं का शिक्षा का स्तर देखा जाए तो वह शहरी महिलाओं तथा सामान्य महिलाओं की तुलना में अभी भी निम्न है।

साहित्य सर्वेक्षण

डॉ. बी.बी. अग्रवाल (1997)– इनके अनुसार बालिकाओं के माता–पिता में बालिकाओं को स्कूल भेजने के प्रति

उपेक्षा का भाव, शिक्षा के प्रति पूर्वाग्रह, उनके यौवनारम्भ के बाद उनके घर से बाहर आने–जाने पर प्रतिबन्ध, कम उम्र में उनका विवाह करा देना, उन पर गृहस्थी सम्भालने के दायित्व का दबाव देना आदि और इन सभी विचारधाराओं के पीछे सिर्फ एक मुख्य कारण पितृसत्तात्मक मूल्य है तथा इनका कहना था कि गरीब परिवारों में छोटी बालिकाओं के परिवारों की आर्थिक निशक्तता तथा घर के उत्तरदायित्व स्कूल जाने में रुकावट थे।

सुजीत कु० चौधरी 2007,52– इनके अनुसार इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता की महिलायें तीव्रता से शिक्षा ग्रहण कर रही हैं इसके पश्चात भी वह अभी भी पुरुषों की तुलना में पीछे है यद्यपि योजना के शैक्षिक विकास में कुछ प्रगति हुयी है जैसे अनुसूचित जातियों के शैक्षिक स्तर में 1971 में 14.67 प्रतिशत 1991 में 37.41 प्रतिशत और स्नातक, स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में तथा (पेशेवर पाठ्यक्रमों) में भी बालिकाओं की संख्या में वृद्धि हुयी है। परन्तु प्रारम्भिक काल से ही दलित कहे जाने वाली अनुसूचित जातियों की शिक्षा पर अनेक कठोर प्रतिबन्ध लगाये जाते थे।

डॉ संगीता गुप्ता (2009,86)– इनका मानना है कि जब भारत देश आजाद हुआ यदि उसके कई वर्षों के पश्चात की भी बात की जाए तो इस समय में भी अनुसूचित जाति की छात्राओं की साक्षरता में सुधार नहीं आया था अनुसूचित जाति की महिलाएँ न केवल अपनी जाति के पुरुषों की तुलना में पीछे थी बल्कि अन्य सामान्य जाति की महिलाओं की तुलना में भी पिछड़ी हुयी थी इनके अध्ययन में एक महत्वपूर्ण बात यह उभर कर आयी कि दलित वर्गों के परिवार में बालकों की तुलना में बालिकाओं में ड्राप आउट अंतराल अधिक देखने को मिला।

रीता अवस्थी और उमा शंकर पांडे (2008,20)– इनका कहना था कि जिस प्रकार धन ही धन में वृद्धि करता है उसी भांति एक शिक्षित व्यक्ति ही दुसरे शिक्षित व्यक्ति की शिक्षा के महत्व को समझ सकता है अनुसूचित जाति के परिवारों की बात की जाए तो यहाँ पर अधिकांशतः माता–पिता या तो कम पढ़े–लिखे होते है या फिर निरक्षर जिस कारण वह अपने बच्चों की शिक्षा पर अधिक ध्यान नहीं दे पाते हैं यहाँ पर छात्र–छात्राओं की दृष्टिकोण से शिक्षा का उपयोगी न होना, आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षकों की सेवाकालीन प्रशिक्षण पर्याप्त न मिल पाना, शिक्षकों को बालक–बालिकाओं की बोली को न समझ पाना आदि से उनका तदात्मय स्थापित नहीं हो पाता है।

सुशील कुमार शर्मा– अनुसूचित जाति की छात्राएँ अपने जाति के बालकों तथा अन्य सामन्य जाति की बालिकाओं से शिक्षा के मामले में काफी पिछड़ी हुयी है इनके अनुसार शिक्षा का महत्व यह जानना था कि अनुसूचित जाति की बालिकाओं का कितना अनुपात पढाई पूरी किये बिना स्कूल छोड़कर घर बैठ जाता है शिक्षा के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति की बालिकाओं की ड्राप आउट अंतराल बहुत जादा है। उच्च शिक्षा में सकल नामांकन दर 13. 8 प्रतिशत है जबकि अनुसूचित जाति की बालिकाओं की दर 1.8 प्रतिशत है जिसमें अनुसूचित जाति की बालिकाओं की शैक्षिक स्थिति काफी बुरी है।

अनुसूचित जाति की छात्रों के लिए कल्याणकारी योजनाएँ

शिक्षा मनुष्य को पशु से भिन्न करने की वो सर्वोत्तम प्रणाली है जो एक व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिपक्व निर्मित करने के लिए अतिआवश्यक है क्योंकि बिना शिक्षित हुए प्रत्येक मनुष्य पशु के समान ही होता है अतः प्रस्तुत शोध में बात की जा रही है अनुसूचित जाति की छात्राओं के उच्च शिक्षा के विषय में, जिसके बारे में यह मान्यता है कि अन्य उच्च जाति की छात्राओं की तुलना में अनुसूचित जाति की छात्राएँ उच्च शिक्षा तक कम पहुँच पाती हैं और जो छात्राएँ उच्च शिक्षा तक पहुँच जाती हैं उनमें से अधिकांश छात्राओं को कई समस्याओं से गुजरना पड़ता है जिसमें से मुख्य कारण काफी हद तक उनके परिवार का आर्थिक रूप से सक्षम न हो पाना है जिसके पश्चात प्रत्येक समस्या उत्पन्न होने लगती हैं अनुसूचित जाति की इन्हीं समस्याओं को मध्य नजर रखते हुए केंद्र सरकार तथा राज्य सरकार के द्वारा समय–समय पर अनुसूचित जाति की छात्राओं के कल्याण हेतु भिन्न– भिन्न प्रकार की योजनाएँ संचालित की जाती हैं ताकि वह उच्च शिक्षा में जाने से जिन भी कारणों से वंचित रह जाती हैं उनको उन समस्याओं से न गुजरना पड़े और वह आगे बढ़े जिससे की समाज के विकास हेतु वह अपना योगदान बखूबी दे सके और और हमारे समाज में कुछ परिवर्तन हो सके और कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति की छात्रों ने काफी हद तक इसका लाभ उठाया है जिससे उनकी सामाजिक परिस्थिति कुछ परिवर्तन भी हुए हैं।

सरकार के द्वारा अनुसूचित जाति की छात्राओं के लिए संचालित की जाने वाली योजनाओं का विवरण

- कस्तूरबा गाँधी बालिका विद्यालय
- पूर्व माध्यमिक छात्रवृति

- माध्यमिक स्तर के पश्चात छात्रवृति
- उच्च शिक्षा हेतु राजीव गाँधी फेलोशिप
- गौरादेवी कन्या धन योजना
- बालिका छात्रावास
- बेटी बचाओ बेटी पढाओ
- एन० एफ० एस० सी०
- अनुसूचित जाति के छात्र–छात्राओं हेतु राष्ट्रीय प्रवासी छात्रवृति योजना

शोध पद्धति शास्त्र

उद्देश्य

1. उत्तरदाताओं से यह जानना कि क्या वह छात्रवृति योजनाओं का लाभ उठाती हैं
2. उत्तरदाताओं से यह जानना कि उनको छात्रावास तथा लाइब्रेरी की सुविधा मिलती है।
3. यह जानना कि क्या वह महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करती हैं
4. उत्तरदाताओं की महाविद्यालय समाप्ति के पश्चात की कार्ययोजना को समझना।

शोध प्रारूप– प्रस्तुत शोध वर्णात्मक शोध प्रविधि पर आधारित हैप् प्रस्तुत शोध में अनुसूचित जाति की छात्राओं की समस्याओं का गहनता से विश्लेषण तथा वर्णन किया जायेगा।

प्रस्तुत अध्ययन कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल के लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय पिथौरागढ़ के सम्बन्ध में किया गया था जोकि वर्तमान में अल्मोड़ा विश्वविद्यालय के अंतर्गत आता है।

अध्ययन की समग्री

प्रस्तुत अध्ययन में समस्त विश्वविद्यालय की छात्राओं को सम्मिलित न करते हुए केवल लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में अध्ययनरत अनुसूचित जाति की छात्राओं को कला एवम् विज्ञान दोनों संकाय से लिया गया है जिसमें कि विशेष रूप से पिथौरागढ़, अल्मोड़ा,चम्पावत तथा नैनीताल जनपद की छात्राएँ सम्मिलित हैं।

अध्ययन का निदर्शन– प्रस्तुत अध्ययन में अनुसूचित जाति की 50 छात्राओं का अध्ययन स्तरीकृत यादृच्छिक विधि के द्वारा किया गया है जिसमें 50 प्रतिशत छात्राएँ स्नातक तथा 50 प्रतिशत छात्राएँ स्नातकोत्तर की सम्मिलित की गयी हैं।

तथ्य संकलन– प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ा संकलन हेतु तथ्य संकलन की विधि का प्रयोग किया गया है जो निम्नलिखित है–

प्राथमिक स्रोत– प्रस्तुत शोध में सभी तथ्यों का संकलन प्राथमिक स्रोत के माध्यम से किया गया है।

प्रश्नावली– प्रस्तुत अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु प्रश्नावली का प्रयोग किया गया है क्योंकि प्रस्तुत शोध चयनित सभी उत्तरदात्री उच्च शिक्षित है जिस कारण वह प्रश्नावली से सम्बंधित प्रश्न समझने एवम् सूचनाएँ सहज रूप से प्रदान करने के लिए सक्षम हैं।

सहभागी अवलोकन– तथ्यों को अधिक प्रमाणिक रूप से प्रस्तुत करने हेतु उत्तरदाताओं के साथ कुछ समय बिताकर उनकी समस्याओं का अवलोकन किया गया इसके साथ ही साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्रित किये तथ्यों का मूल्यांकन भी सहभागी अवलोकन पद्धति के माध्यम से किया गया।

द्वितीयक स्रोत– द्वितीयक स्रोतों में शोधार्थी के द्वारा उन विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन किया गया जिनमें की शीर्षक से सम्बंधित साहित्य उपलब्ध था।

सारणी संख्या –01
उत्तरदाताओं की आयु

क्र० स०	आयु वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	17–19	15	30

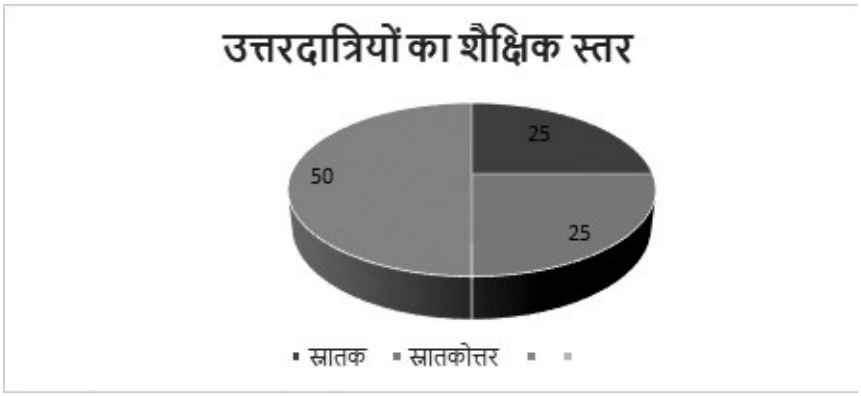
2.	19–21	10	20
3.	21–23	13	26
4.	23–25	12	24
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 01 से ज्ञात होता है कि 15 (30 प्रतिशत) छात्राओं की आयु 17–19 है 10 (20 प्रतिशत) छात्राओं की आयु 19–21 वर्ष है। 13 (26 प्रतिशत) छात्राओं की आयु 21–23 है 12 (24 प्रतिशत) छात्राओं की आयु 23–25 है।

सारणी संख्या 02
उत्तरदात्रियों का शैक्षिक स्तर

क्र० स०	उत्तरदात्रियों का शैक्षिक स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	स्नातक	25	50
2.	स्नातकोत्तर	25	50
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 02 से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत अध्ययन में 25 (50 प्रतिशत) छात्राएँ स्नातक से तथा 25 (50 प्रतिशत) छात्राएँ स्नातकोत्तर से ली गयी है।



सारणी संख्या –03
उत्तरदाताओं का पारिवार के मुखिया का व्यवसाय

क्र० स०	मुखिया का व्यवसाय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	कृषि	20	40
2.	प्राइवेट नौकरी	12	24
3.	सरकारी नौकरी	10	20
4.	अन्य व्यवसाय	08	18
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त सारणी संख्या 03 से ज्ञात होता है कि 20 (40 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के परिवार के मुखिया का व्यवसाय कृषि, 12 (24 प्रतिशत) प्राइवेट नौकरी, 10 (20 प्रतिशत) सरकारी तथा (16 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के परिवार के मुखिया का व्यवसाय अन्य है जिससे यह स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राओं के परिवार के मुख्यों का व्यवसाय कृषि कार्य है।

सारणी संख्या 04
उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय

क्र० स०	पारिवारिक मासिक आय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	10,000	22	44
2.	20,000	10	20
3.	30,000	08	16
4.	30,000 से अधिक	10	20
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 04 से ज्ञात होता है कि 22 (44 प्रतिशत) उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 10,000 है 10 (20 प्रतिशत) की 20,000, 08 (16 प्रतिशत) की मासिक आय 30,000 तथा 10 (20 प्रतिशत) की मासिक आय 30,000 से अधिक है अतः कहा जा सकता है कि अधिकांशतः उत्तरदाताओं की पारिवारिक मासिक आय 10,100 है जिसमें कि आज के मेहंगायी में परिवार का गुजारा कर पाना मुश्किल हो जाता है।

सारणी संख्या 05
निम्न पारिवारिक आर्थिक स्थिति के कारण आपको अपनी पढाई में समझौते करने पड़ते हैं

क्र० स०	पढाई में समझौते	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	28	56
2.	नहीं	22	44
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 05 से ज्ञात होता है कि 28 (56 प्रतिशत) अनुसूचित जाति की छात्राओं का कहना है कि उनको अपने परिवार की निम्न आर्थिक स्थिति के कारण कई बार अपनी पढाई के साथ समझौता करना पड़ता है जबकि 22 (44 प्रतिशत) छात्राओं को पारिवारिक निम्न आर्थिक स्थिति के कारण पढाई में समझौते नहीं करने पड़ते हैं

सारणी संख्या 06
उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर

क्र० स०	माता–पिता का शैक्षिक स्तर	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	निरक्षर	04	08
2.	प्राथमिक	08	16
3.	उच्च प्राथमिक	10	20
4.	हाई स्कूल	09	18
5.	इंटरमीडियट	12	24
6.	स्नातक	04	08
7.	स्नातकोतर	03	06
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 06 से ज्ञात होता है कि 04 (8 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके माता–पिता का शैक्षिक स्तर निरक्षर है 08 (16 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर प्राथमिक है। 10 (20 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर उच्च प्राथमिक है 9 (18 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर हाई स्कूल है 12 (24 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर इंटरमीडियट है 4 (08 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर स्नातक है 03 (06 प्रतिशत) उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर स्नातकोत्तर

है। जिससे स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर या तो निरक्षर है या फिर इंटरमीडियट तक पढ़े–लिखे है।

सारणी संख्या –07

क्या आपको महाविद्यालय से छात्रवृत्ति मिलती है ?

क्र० स०	छात्रवृति मिलती है	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	35	70
2	नहीं	15	30
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 07 ज्ञात होता है कि 35 (70 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों का कहना है कि उनको महाविद्यालय से छात्रवृति सुविधा प्राप्त होती है तथा 30 प्रतिशत उत्तरदात्रियों का कहना है कि उनको महाविद्यालय से छात्रवृति प्राप्त नहीं होती है अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में पढ़ने वाली अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राएँ छात्रवृति से सम्बंधित सुविधाएँ प्राप्त कर रही हैं जो कि उनके पढाई–लिखाई के प्रति काफी सहायक होती है।

सारणी संख्या –08

क्या आपको छात्रावास की सुविधा प्राप्त है ?

क्र० स०	छात्रावास में आश्रय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	28	56
2.	नहीं	22	44
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 08 से ज्ञात होता है कि 28 (56 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों का कहना है कि वह छात्रावास में ही रहती हैं तथा 22 (44 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों का कहना है कि उनमें से कुछ सूचनादात्री अपने घर से तथा कुछ किराये के घर में रहकर महाविद्यालय पढ़ने आते हैं अतः उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राएँ छात्रावास में रहकर शिक्षा ग्रहण करती हैं जिससे की उनका बाहर कमरे लेकर पढ़ने का खर्चा बच जाता है और वह उन पैसों का प्रयोग कहीं और कर सकते हैं।

सारणी संख्या– 09

यदि आप छात्रावास में रहती हो तो छात्रावास की अन्य साथियों का आपके साथ कैसा व्यवहार है ?

क्र० स०	आपके साथ अन्य साथियों का व्यवहार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	सहयोगपूर्ण	25	50
2	भेदभावपूर्ण	10	20
3	सामान्य	15	30
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 09 से ज्ञात होता है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ के महिला छात्रावास में रहने वाली अनुसूचित जाति की 25 (50 प्रतिशत) छात्राओं के साथ अन्य साथियों का व्यवहार सहयोगपूर्ण है 10 (20 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके साथ अन्य साथियों का व्यवहार भेदभावपूर्ण है तथा 15 (30 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि उनके साथ अन्य साथियों का व्यवहार सामान्य है।

सारणी संख्या– 10

क्या आपको पुस्तकालय से समय–समय पर पुस्तकें प्राप्त होती है ?

क्र० स०	पुस्तकें प्राप्त होती है	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	44	88
2	नहीं	06	12
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 10 से ज्ञात होता है कि 44 (88 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों का कहना है कि उनको महाविद्यालय से समय समय पर उनकी आवश्यकतानुसार पुस्तकें प्राप्त होती हैं तथा 06 (12 प्रतिशत) उत्तरदात्रियों का कहना है कि उन्हें पुस्तकालय से उनकी आवश्कतानुसार पुस्तकें नहीं मिल पाती है अतः उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में पढ़ने वाली अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राओं की समय–समय पर पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त होती है अतः वह पुस्तकालय की पुस्तकों का सम्पूर्ण लाभ उठाते हैं

सारणी संख्या –11

क्या आप लाइब्रेरी पढ़ने जाती हो ?

क्र० स०	लाइब्रेरी में पढ़ती हो	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	30	60
2.	नहीं	20	40
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 11 से ज्ञात होता है कि 30 (60 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि उनको लाइब्रेरी में पढ़ने की सुविधा उपलब्ध है और वो लाइब्रेरी में जाकर पढ़ सकती हैं 20 (40 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि वह लाइब्रेरी में जाकर नहीं पढ़ती हैं अतः स्पष्ट है कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राएं लाइब्रेरी में जाकर पढ़ती है अतः उनका कहना है की महाविद्यालय में लाइब्रेरी का समय प्रातः 10 बजे से सायं 5 बजे तक होता है इस बीच हम अपने समय के अनुसार कभी भी पढ़ने हेतु जा सकते है और जिससे कि हम यहाँ पर आराम से पढ़ सकते हैं जो कि हमारे परीक्षा के समय पर अधिक मददगार होता है।

सारणी संख्या –12

क्या आप महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करते हैं ?

क्र० स० सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग		उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	26	52
2	नहीं	24	48
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 12 से ज्ञात होता है कि 26 (52 प्रतिशत) अनुसूचित जाति की छात्राएँ महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करती हैं तथा 24 (48 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि वह महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग नहीं करती हैं अतः स्पष्ट है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में पढ़ने वाली अनुसूचित जाति की अधिकांशतः छात्राएं महाविद्यालय में होने वाली सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करती है जिससे कि उनका आत्मविश्वास बढ़ता है और खुलकर सामने आते हैं।

सारणी संख्या 13

क्या आप महाविद्यालय में होने वाले खेलों में प्रतिभाग करती है ?

क्र० स०	खेलों में प्रतिभाग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	15	30
2.	नहीं	35	70
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 13 से ज्ञात होता है कि 15 (30 प्रतिशत) छात्राएँ महाविद्यालय में होने वाले खेलों में प्रतिभाग करती हैं जबकि 35 (70 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का कहना है कि वह महाविद्यालय में आयोजित किये जाने वाले खेलों में प्रतिभाग नहीं करती हैं।

सारणी संख्या 14

आपकी महाविद्यालय से अध्ययन समाप्ति के पश्चात की क्या योजना होगी ?

क्र० स०	महाविद्यालय समाप्ति की बाद की कार्ययोजना	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	गृहणी	20	00
2	कामकाजी	50	100
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 14 से ज्ञात होता है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में अध्यनरत अनुसूचित जाति की 50 यानी शतप्रतिशत छात्राओं का कहना है कि वह महाविद्यालय समाप्ति के पश्चात कामकाजी बनेगी अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः अनुसूचित जाति की छात्राएँ उच्च शिक्षा में आने के पश्चात कामकाजी बनना चाहती है और अपनी योग्यता के अनुसार उनको उच्च पदों पर आसीन होना चाहती है ताकि वह अपनी निम्न सामाजिक, आर्थिक, तथा राजनैतिक स्थिति से उभर पाए और उनका जीवन कुछ हद तक सफल बन जाये।

सारणी संख्या –15

आप किस क्षेत्र में जाना पसंद करेंगी ?

क्र० स०	क्षेत्र की स्थिति	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
1	शैक्षिक क्षेत्र	33	66
2	व्यावसायिक क्षेत्र	06	12
3	प्राशासनिक क्षेत्र	08	16
4	सांस्कृतिक क्षेत्र	03	06
	योग	**50**	**100**

सारणी संख्या 15 से ज्ञात होता है कि 33 (66 प्रतिशत) सूचनादात्रियों का कहना है कि वह शैक्षिक क्षेत्र में जाना चाहती है 06 (12 प्रतिशत) सूचनादात्रियों का कहना है कि वह व्यावसायिक क्षेत्र में जाना चाहती हैं 08 (16 प्रतिशत) सूचनादात्रियों का कहना है कि वह प्राशासनिक क्षेत्र में जाना चाहती है 03 (6 प्रतिशत) सूचनादात्रियों का कहना है कि वह सांस्कृतिक क्षेत्र में जाना चाहती हैं अतः उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि लक्ष्मण सिंह मेहर राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ में अध्यनरत अनुसूचित जाति की अधिकांशतः छात्राएँ शैक्षिक क्षेत्र में जाना पसंद करती है।

निष्कर्ष एवम् सुझाव

सारणी संख्या 01 से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत अध्ययन में 17 से 25 वर्ष की आयु वर्ग वाली अनुसूचित जाति की छात्राओं का चयन किया गया है सारणी संख्या 02 के आधार पर 50 प्रतिशत स्नातक तथा 50 प्रतिशत स्नातकोतर की छात्राओं के होने का ज्ञान होता है सारणी संख्या 03 के आधार पर केवल 10 प्रतिशत छात्राओं के परिवार के मुखिया का व्यवसाय सरकारी नौकरी है तथा बाकि जो 80 प्रतिशत छात्राओं के पारिवार के मुखिया का व्यवसाय अधिकांशतः कृषि कार्य, कुछ प्राइवेट नौकरी तथा इनके अलावा कुछ लोग अन्य व्यवसाय करते हैं सारणी संख्या 04 के आधार पर 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं की पारिवारिक आय 30,000 से अधिक है तथा बाकि 80 प्रतिशत छात्राओं की पारिवारिक आय 10,000,20,000 या फिर 30,000 है सारणी संख्या 05 के आधार पर जब छात्राओं से यह पश्न पूछा गया कि क्या आपको अपनी परिवार की निम्न आर्थिक स्थिति के कारण अपनी पढाई में समझौते करने पड़ते है तो 56 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर हाँ तथा 44 का उत्तर नहीं था अतः यहाँ निष्कर्ष निकलता है कि अधिकांश अनुसूचित जाति की छात्राओं को अपने परिवार की निम्न आर्थिक के कारण अपनी पढाई में आज भी समझौते करने पड़ते है सारणी संख्या 06 के आधार पर ज्ञात होता है कि केवल 14 प्रतिशत छात्राओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर स्नातक तथा स्नाकोत्तर है 8 प्रतिशत छात्राओं के माता–पिता निरक्षर, 16 प्रतिशत प्राथमिक,20 प्रतिशत उच्च प्राथमिक 18 प्रतिशत हाई स्कूल तथा 24 प्रतिशत इंटरमीडियट है जिससे यह स्पष्ट है कि केवल 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं के माता–पिता का शैक्षिक स्तर उच्च शिक्षा है जोकि बहुत ही कम है सारणी संख्या 07 के आधार पर 70 प्रतिशत उत्तरदाताओं का कहना है कि उनको छात्रवृत्ति मिलती है जबकि 30 प्रतिशत उत्तरदाताओं को छात्रवृत्ति नहीं मिलती है सारणी संख्या 08 के आधार पर 56 प्रतिशत छात्राओं को छात्रावास की सुविधा उपलब्ध है जबकि 44 प्रतिशत उत्तरदाताओं को छात्रावास की सुविधा उपलब्ध नहीं है सारणी संख्या 09 के आधार पर छात्रावास में रहने वाली अनुसूचित जाति की छात्राओं के साथ जब अन्य सामान्य जाति की छात्राओं का व्यवहार पूछा गया तो 50 प्रतिशत छात्राओं का कहना था कि अन्य छात्राओं का व्यवहार उनके साथ सहयोगपूर्ण,20 प्रतिशत छात्रओं के साथ भेदभावपूर्ण तथा 30 प्रतिशत छात्राओं के साथ सामान्य था सारणी संख्या 10 आधार पर 88 पतिशत छात्राओं को पुस्तकालय से समय–समय पर पुस्तकें प्राप्त होती हैं जबकि 12 प्रतिशत छात्राओं का उत्तर नहीं था सारणी संख्या 11 के आधार पर 60 प्रतिशत छात्राएँ महाविद्यालय की लाइब्रेरी में पढ़ने हेतु जाती है जबकि 40 प्रतिशत छात्राएँ इसमें नकारात्मक पायी गयी ५ सारणी संख्या 12 के आधार पर 52 प्रतिशत छात्राएँ महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रतिभाग करने में सकारात्मक तथा 48 प्रतिशत नकारात्मक पाई गयी ५ सारणी संख्या 13 के आधार पर 30 प्रतिशत छात्राएँ महाविद्यालय में होने वाले खेलों में प्रतिभाग करती है जबकि 70 प्रतिशत छात्राएं प्रतिभाग नहीं करती है सारणी संख्या 14 के आधार पर 100 यानि शतप्रतिशत छात्राओं का यह कहना है कि वह महाविद्यालय की समाप्ति के पश्चात कामकाजी महिला की श्रेणी में जाना पसंद करेंगी ५ सारणी संख्या 15 के आधार पर 66 प्रतिशत छात्राएँ शैक्षिक क्षेत्र में, 12 प्रतिशत व्यावसायिक क्षेत्र में,16 प्रतिशत प्राशासनिक क्षेत्र में तथा 6 प्रतिशत सांस्कृतिक क्षेत्र में जाना की इच्छा रखती हैं उपर्युक्त निष्कर्षो के आधार पर शोधार्थी के द्वारा निम्न सुझाव दिए गये हैं : (1) सरकार को अनुसूचित जाति के ग्रामीण परिवारों के लिए प्रत्येक गाँवों में विभिन्न प्रकार के रोजगार खोलने चाहिए जिससे कि उनकी पारिवारिक आर्थिक स्थिति में सुधार आ सके और किसी भी माता–पिता को अपनी बालिकाओं को भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में किसी प्रकार आर्थिक बाधाओं का सामना न करना पड़े। (2) लगभग सभी गाँव में बच्चों के लिए स्कूल तथा बड़ों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की उचित व्यवस्था होनी चाहिए जिससे आर्थिक रूप से कमजोर बच्चे तो शिक्षित हों ही साथ में उनके माता–पिता भी शिक्षित हों ताकि वह भी शिक्षा में महत्व को समझने में सक्षम हो और अपने बालकों के साथ–साथ बालिकाओं को भी पढ़ने–लिखने के लिए प्रोत्साहित कर सकें। (3) (2) महाविद्यालय में पढ़ने वाली सभी अनुसूचित जाति की छात्राओं की छात्रवृत्ति में कुछ मात्रा में बढ़ोत्तरी की जानी चाहिए जिससे कि छात्राओं को अपनी पढाई के प्रति किसी भी प्रकार का कोई समझौता न पड़े। (4) छात्रावास में प्रत्येक सामान्य जाति की बालिका के साथ रूम पाटनर के रूप में एक अनुसूचित जाति की छात्रा होनी चाहिए ताकि छुआछूत को कम किया जा सके और आपस में पारस्परिक सहयोग की भावना का विकास हो सके। (5) महाविद्यालय की लाइब्रेरी में प्रत्येक छात्राओं के समय सीमा को सुनिश्चित किया जाए ताकि वह अपनी पढाई को और अधिक समय दे पाए। (6)महाविद्यालय में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रमों तथा खेलों में अनुसूचित जाति की बालिकाओं के प्रतिभाग का कुछ प्रतिशत अनिवार्य कर दिया जाए जिससे कि उनमें अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन करने का कौशल विकसित हो

सके और आगे चलकर अन्य महिलाओं को भी सशक्तिकरण की मुख्य धारा से जोड़ने में अपना योगदान दे सके।

संदर्भ सूची

1– सुमन,मंजू : 2014 तृतीय संस्करण "दलित नारी एक विमर्श" सम्यक् प्रकाशन 32 ध्3,पश्चिम पुरी,नयी दिल्ली –110063

2– लता,मंजू : 2017 प्रथम संस्करण "अनुसूचित जाति में महिला उत्पीडन"प्रकाशन अर्जुन पब्लिशिंग हाउस,4831/24गोविन्द लेन अंसारी रोड,दरियागंज नयी दिल्ली –110002

3– बिहारी रमण लाल, शर्मा कृष्णा कान्त 2013,14 "भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवम् समस्याएं विनय रखेजा, आर० लाल डिपो,निकट गवर्मेंट इंटर कॉलेज बेगम ब्रिज रोड मेरठ 250001

4– सिंह,वी० एन०एवम् सिंह,जनमजेय : 2010 "आधुनिकता एवम् महिला सशक्तिकरण" रावत पब्लिकेशन, सत्यम अपार्टमेंट, सेक्टर 3, जवाहर नगर,जयपुर 302 004(इंडिया)

5– अग्रवाल,डॉ बी.बी : 1997 " आधुनिक भारतीय शिक्षा और समस्याएं रू विनोद पुस्तक मंदिर, कार्यालय रूडॉ रांगेय राघव मार्ग,आगरा–2

6– चौधरी,सुजीत कु० : 2007 "उच्च शिक्षा में महिलाओं की स्थिति एवम् व्यावसायिक भेदभावरू परिप्रेक्ष्य राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवम् प्रशासन विश्वविद्यालय,नयी दिल्ली।

7– गुप्ता, डॉ संगीता : 2009 "भारत के सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक परिवेश में दलित" प्रतियोगिता दर्पण।

8– अवस्थी,रीता पांडे उमाशंकर : 2008 " प्राथमिक शिक्षा की सर्भौमिकता में विशेषकर बालिका शिक्षा में अपव्यय एवम् अवरोधन" परिप्रेक्ष्य रून्यूपा नयी दिल्ली।

9– शर्मा,सुशील कुमार : भारतीय शिक्षा का इतिहास : विकास एवम् समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, 11 यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद 211002

10– तिवारी,आर० पी० एवम् शुक्ला,डी० पी० : 1999 "भारतीय नारी रू वर्तमान समस्यायें और भावी समाधान" ए० पी० एच० पब्लिशिंग कार्पोरेशन,नयी दिल्ली

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा

डॉ. सोहद्रा दीवान
अतिथि सहायक प्राध्यापक
नवीन शासकीय महाविद्यालय, लोहण्डीगुड़ा, बस्तर (छ.ग.)

सार

भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा का आपसी संबंध मानव सभ्यता के विकास के साथ निरंतर रूप से जुड़ा रहा है। भारतीय दर्शन केवल बौद्धिक चिंतन की परंपरा भर नहीं है, बल्कि यह जीवन को जीने की कला और सत्य, धर्म तथा मोक्ष की खोज का मार्ग भी है। इसमें सांख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन परंपराओं ने शिक्षा को नैतिकता, अनुशासन और आत्मविकास का साधन माना। इसी आधार पर भारतीय संस्कृति का स्वरूप भी निर्मित हुआ, जिसमें गुरु–शिष्य परंपरा, लोकाचार, कला, साहित्य और अध्यात्म को शिक्षा से जोड़ा गया। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं था, बल्कि चरित्र निर्माण, आत्मानुभूति और सामाजिक उत्तरदायित्व की स्थापना भी था। वर्तमान वैश्वीकरण और भौतिकवादी युग में जहाँ शिक्षा का लक्ष्य कौशल और रोजगार तक सीमित हो गया है, वहीं भारतीय दर्शन और संस्कृति की शिक्षाएँ संतुलन, समरसता और नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यह शोध–पत्र भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा के ऐतिहासिक विकास, उनके परस्पर संबंधों तथा आधुनिक परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता का विवेचन करता है।

मुख्य शब्द– भारतीय दर्शन, संस्कृति, शिक्षा, गुरु–शिष्य परंपरा, नैतिक मूल्य, समकालीन प्रासंगिकता इत्यादि।

परिचय

भारतीय चिंतन परंपरा का मूल स्वभाव बहुआयामी और समन्वयकारी रहा है, जहाँ दर्शन, संस्कृति और शिक्षा तीनों परस्पर गहराई से जुड़े हुए हैं। दर्शन को यदि सत्य की खोज और जीवन की दिशा का मार्गदर्शन करने वाला शास्त्र माना जाए, तो संस्कृति उस दर्शन की व्यावहारिक अभिव्यक्ति है और शिक्षा उसकी सजीव साधना। भारतवर्ष में दार्शनिक विचार केवल ग्रंथों तक सीमित नहीं रहे, बल्कि उन्होंने समाज की जीवन–पद्धति, नैतिक आदर्शों और सामाजिक संस्थाओं को गहराई से प्रभावित किया। प्राचीन काल से ही भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन या कौशल–प्राप्ति न होकर, मानव का सर्वांगीण विकास, आत्मानुभूति, चरित्र निर्माण और समाजोपयोगी जीवन का निर्माण रहा है। वेद, उपनिषद, गीता, बौद्ध और जैन ग्रंथों में शिक्षा को आत्म–विकास और मोक्ष प्राप्ति का साधन बताया गया है। शिक्षा को 'सा विद्या या विमुक्तये' की परिभाषा दी गई, जिसका आशय यह है कि शिक्षा वह है जो मनुष्य को अज्ञान और बंधनों से मुक्त कर सके। इस दृष्टिकोण से भारतीय दर्शन ने शिक्षा को केवल बाह्य उपलब्धि न मानकर, अंतःकरण की शुद्धि, विवेक, वैराग्य और आत्म–ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया बताया। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में शिक्षा को पवित्र कर्म, गुरु को परम पूज्य और शिष्य को साधक माना गया।

भारतीय दर्शन की अवधारणा और विकास

भारतीय दर्शन की जड़ें अत्यंत प्राचीन हैं और इसकी विशेषता यह है कि यह केवल सैद्धांतिक चिंतन नहीं बल्कि जीवन जीने की व्यावहारिक कला का मार्गदर्शन करता है। यदि पश्चिमी दर्शन मुख्यतः तर्क, ज्ञानमीमांसा और

अस्तित्वमीमांसा तक सीमित रहा है, तो भारतीय दर्शन का मूल स्वरूप आध्यात्मिक और मोक्षकेंद्रित रहा है। यहाँ दर्शन को "दर्शनेन आत्मनो मोक्षोपायः" कहा गया, अर्थात वह साधन जिससे आत्मा का बंधनमुक्त मार्ग दिखाई देता है। भारतीय चिंतन में दर्शन का लक्ष्य केवल सत्य की खोज या ज्ञान प्राप्ति नहीं, बल्कि उस ज्ञान को आचरण में उतारकर आत्मा की मुक्ति और लोककल्याण सुनिश्चित करना है। यही कारण है कि भारतीय दर्शन को शास्त्रीय परिभाषा में 'दर्शन' कहा गया जिसका आशय 'देखना' या 'प्रत्यक्ष अनुभव करना' है।

भारतीय दर्शन के विकास को व्यापक रूप से दो धाराओं में बाँटा गया है–आस्तिक दर्शन और नास्तिक दर्शन। आस्तिक दर्शन वे हैं जो वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार करते हैं, जबकि नास्तिक दर्शन वे हैं जो वेदों को प्रमाण नहीं मानते। आस्तिक दर्शन के अंतर्गत छह शास्त्रीय प्रणालियाँ आती हैं– सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत। वहीं नास्तिक दर्शन में बौद्ध, जैन और चार्वाक प्रमुख हैं। प्रत्येक दर्शन ने अपने ढंग से जीवन, ज्ञान, परमात्मा, आत्मा और मोक्ष की व्याख्या की और शिक्षा के उद्देश्यों को परिभाषित किया।

भारतीय दर्शन का विकास केवल इन शास्त्रीय प्रणालियों तक सीमित नहीं रहा। भक्ति आंदोलन ने भी शिक्षा के उद्देश्यों को प्रभावित किया। कबीर, तुलसीदास, मीरा, नानक आदि संतों ने शिक्षा को सरल भाषा, भक्ति और नैतिकता के माध्यम से समाज तक पहुँचाया। वेद, उपनिषद और गीता से निकले विचारों को उन्होंने लोकभाषा में गाकर जनसाधारण तक पहुँचाया। इसी प्रकार इस्लामी और सूफी परंपरा के आगमन ने भारतीय शिक्षा और संस्कृति को बहुलतावादी स्वरूप दिया।

भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि उसने सदैव सिद्धांत और व्यवहार में संतुलन बनाए रखा। जहाँ पश्चिमी चिंतन अधिकतर बौद्धिक तर्क तक सीमित रहा, वहाँ भारतीय चिंतन ने ज्ञान और जीवन दोनों को एक–दूसरे से जोड़कर देखा। शिक्षा प्रणाली में यह स्पष्ट झलकता है। गुरुकुल पद्धति में छात्र केवल वेद–पाठ ही नहीं करते थे, बल्कि आत्मानुशासन, श्रम, सेवा और जीवनोपयोगी कौशल भी सीखते थे। शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर, समाजोपयोगी और ईश्वराभिमुख बनाती थी।

आधुनिक काल में भी भारतीय दर्शन के मूल तत्त्वों की प्रासंगिकता बनी हुई है। महात्मा गांधी ने शिक्षा को आत्मनिर्भरता और नैतिकता से जोड़ा, टैगोर ने इसे प्रकृति और सृजनशीलता से, वहीं श्री अरविंद ने इसे आध्यात्मिक विकास और 'संपूर्ण मानव' निर्माण से संबद्ध किया। इन विचारकों ने भारतीय दर्शन के शाश्वत आदर्शों को आधुनिक शिक्षा की आवश्यकताओं के साथ जोड़ने का प्रयास किया।

भारतीय संस्कृति : मूल तत्त्व और शिक्षा से संबंध

भारतीय संस्कृति का मूल स्वरूप बहुलता में एकता, अध्यात्म–प्रधानता और जीवन के समग्र दृष्टिकोण पर आधारित है। यहाँ संस्कृति केवल कला, साहित्य या परंपराओं का संकलन नहीं बल्कि जीवन का ऐसा व्यापक दृष्टिकोण है जो धर्म, दर्शन, नैतिकता, विज्ञान और समाज सभी को जोड़ता है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख तत्त्व–सत्य, अहिंसा, धर्मपालन, करुणा, सहयोग, परिवार–केन्द्रित जीवन, प्रकृति के साथ सामंजस्य और आध्यात्मिक उत्थान–शिक्षा से प्रत्यक्ष जुड़े रहे हैं। संस्कृति के संरक्षण और संवाहन का सबसे प्रभावी माध्यम शिक्षा ही रही है। पीढ़ी–दर–पीढ़ी संस्कार, आदर्श और मूल्य शिक्षा के द्वारा ही स्थानांतरित हुए। वैदिक युग की शिक्षा प्रणाली ने वेद, उपनिषद और धर्मशास्त्रों के माध्यम से सत्य और धर्म की अवधारणा को सिखाया। बौद्ध और जैन परंपराओं ने करुणा, तप और अपरिग्रह की संस्कृति को शिक्षा के माध्यम से समाज में स्थापित किया। भारतीय संस्कृति का मूल यह रहा कि शिक्षा केवल ज्ञानार्जन नहीं बल्कि जीवन जीने की कला और समाजोपयोगिता का साधन बने। इसी कारण से शिक्षा और संस्कृति एक–दूसरे के पूरक बने रहे, जहाँ संस्कृति ने शिक्षा को मूल्य और दिशा दी और शिक्षा ने संस्कृति को संरक्षण और प्रसार।

शिक्षा में भारतीय दार्शनिक आधार

भारतीय शिक्षा–व्यवस्था का मूल दार्शनिक आधार अध्यात्म, आत्मज्ञान और नैतिकता पर टिका रहा है। भारतीय दर्शन की विभिन्न शाखाओं–सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदांत ने शिक्षा को जीवन के अंतिम उद्देश्य यानी मोक्ष की प्राप्ति से जोड़ा। शिक्षा को केवल भौतिक उपलब्धि का साधन न मानकर आत्मा के उत्थान और समाज की भलाई का माध्यम बताया गया। उपनिषदों ने शिक्षा को आत्म–विद्या कहा और इसे 'सा विद्या या विमुक्तये' की परिभाषा दी। भगवद्गीता ने शिक्षा को धर्म, कर्मयोग और लोकसंग्रह का साधन माना। बौद्ध दर्शन ने शिक्षा के द्वारा मध्यमार्ग

और करुणा को समाज में स्थापित करने पर बल दिया। जैन दर्शन ने शिक्षा को तप, संयम और अहिंसा के साथ जोड़ा। इन दार्शनिक आधारों ने भारतीय शिक्षा को विशिष्ट बनाया, जहाँ शिक्षा का केंद्र केवल बुद्धि का विकास नहीं बल्कि हृदय और आत्मा का भी निर्माण रहा।

वेद, उपनिषद, गीता, बौद्ध व जैन दर्शन

भारतीय शिक्षा–व्यवस्था के स्त्रोतों में वेद, उपनिषद और गीता का विशेष स्थान है। वेदों ने ज्ञान, विज्ञान, संगीत, चिकित्सा और प्रकृति के अध्ययन को शिक्षा का अंग बनाया। उपनिषदों ने ब्रह्म और आत्मा के ज्ञान को सर्वोच्च माना और शिक्षा को आत्मानुभूति का साधन बताया। भगवद्गीता ने शिक्षा को धर्म पालन, निष्काम कर्म और योग के साथ जोड़ा, जहाँ जीवन को संघर्ष और कर्मभूमि मानकर शिक्षा को आचरण में उतारने पर बल दिया गया। बौद्ध दर्शन ने चार आर्य सत्यों और अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से शिक्षा को दुःख–निवारण और करुणा पर आधारित जीवन की ओर अग्रसर किया। जैन दर्शन ने अपरिग्रह, अहिंसा और सत्य के मूल्यों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया। इन सभी ग्रंथों और दार्शनिक परंपराओं ने शिक्षा को केवल भौतिक सफलता तक सीमित न रखकर आध्यात्मिक और नैतिक उत्थान का मार्ग बताया।

गुरुकुल परंपरा एवं शिक्षा-पद्धति

भारतीय शिक्षा का प्राचीन स्वरूप गुरुकुल परंपरा में देखा जा सकता है। यहाँ शिक्षा का केंद्र गुरु थे, जो शिष्य को केवल ग्रंथों का ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवनोपयोगी संस्कार और अनुशासन भी प्रदान करते थे। छात्र गुरुकुल में रहकर आत्मनिर्भरता, श्रम, सेवा और सामूहिक जीवन के मूल्य सीखते थे। शिक्षा का उद्देश्य केवल स्मरण और बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों स्तरों पर संतुलित विकास करना था। गुरुकुल प्रणाली में शिक्षक–शिष्य का संबंध केवल औपचारिक नहीं बल्कि आत्मीय और संस्कारमय था। इस परंपरा ने भारतीय संस्कृति के मूल्यों–सत्य, अनुशासन, सेवा, करुणा और आत्मसंयम को प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा में शामिल किया।

संस्कृति और शिक्षा का अंतर्संबंध

संस्कृति और शिक्षा का संबंध अविभाज्य है। संस्कृति मूल्यों, आदर्शों और जीवनशैली की वाहक होती है, जबकि शिक्षा इन सबका संवाहक और संवर्धक माध्यम है। भारतीय परंपरा में शिक्षा ने संस्कृति को संरक्षित कर अगली पीढ़ी तक पहुँचाया। साहित्य, कला, संगीत, नृत्य, नाटक और लोकाचार को शिक्षा के माध्यम से सिखाया गया और समाज में प्रतिष्ठित किया गया। शिक्षा के बिना संस्कृति का संरक्षण संभव नहीं और संस्कृति के बिना शिक्षा निरर्थक। यही कारण है कि भारतीय परंपरा में दोनों को सदैव एक–दूसरे के पूरक माना गया।

आधुनिक शिक्षा में भारतीय दर्शन और संस्कृति की भूमिका

आज वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के युग में शिक्षा का लक्ष्य प्रायः रोजगार और कौशल तक सीमित हो गया है। प्रतिस्पर्धा और व्यावसायिकता ने शिक्षा के मूल्यों को कहीं न कहीं प्रभावित किया है। ऐसे समय में भारतीय दर्शन और संस्कृति की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। आधुनिक शिक्षा नीति में भारतीय भाषाओं, कला, संस्कृति और मूल्यों को पुनः शिक्षा से जोड़ने का प्रयास किया गया है। यदि शिक्षा में भारतीय दर्शन और संस्कृति का समावेश किया जाए तो यह केवल कुशल मानव संसाधन ही नहीं, बल्कि नैतिक, जिम्मेदार और संवेदनशील नागरिक भी तैयार करेगी। योग, ध्यान, नैतिक शिक्षा और सांस्कृतिक अध्ययन आज भी शिक्षा में संतुलन और समरसता स्थापित कर सकते हैं।

निष्कर्ष

भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा का इतिहास यह प्रमाणित करता है कि तीनों सदैव एक–दूसरे के पूरक और संवाहक रहे हैं। भारतीय दर्शन ने शिक्षा को आत्मज्ञान और मोक्ष की दिशा दी, संस्कृति ने उसे मूल्य और आदर्श दिए और शिक्षा ने दोनों का संरक्षण कर समाज को दिशा प्रदान की। प्राचीन गुरुकुल परंपरा से लेकर आधुनिक विश्वविद्यालयों तक, भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य केवल रोजगार नहीं बल्कि चरित्र निर्माण और लोककल्याण रहा है। आज जब शिक्षा में व्यावसायिकता और प्रतिस्पर्धा का प्रभाव बढ़ रहा है, तब भारतीय दर्शन और संस्कृति के आदर्श शिक्षा को मानवीय, नैतिक और समाजोपयोगी बनाने में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि

आधुनिक शिक्षा–व्यवस्था अपने दार्शनिक और सांस्कृतिक मूल्यों को आत्मसात करे और उन्हें नई परिस्थितियों के अनुरूप विकसित करे। यही भविष्य की शिक्षा का सशक्त आधार बन सकता है।

संदर्भ सूची

1. गुप्त सुरेन्द्र दास (1972) : भारतीय दर्शन का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।
2. जैन हीरा लाल (1975) : भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान मध्य प्रदेश शासन साहित्य परिसर।
3. नानेश आचार्य (1985) : विशेष के लिए द्रष्टव्य क्षमता दर्शन और व्यवहार, बीकानेर।
4. कमल के.एल. (1996) : गांधी चिन्तन जयपुर पब्लिशिंग, जयपुर।
5. सागर आचार्य सुनील (2005) : मानवता के आठ सूत्र, संस्कृति शोध संस्थान इन्दौर।
6. श्री कनक नन्दी (1996) : सर्वोदयी शिक्षा मानो विज्ञान, धर्म दर्शन सेवा संस्थान उदयपुर।
7. शर्मा रामचन्द्र (1985) : प्रमाणिक हिन्दीकोष, लोक भारती प्रकाशन।
8. तुलसी आचार्य (1945) : आचार्य तुलसी का अमर संदेश, कोलकत्ता।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद : समकालीन भारत के लिए एक वैकल्पिक विकास मॉडल

सोहन लाल
शोधार्थी,इतिहास विभाग
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
नारायण सिंह
शोधार्थी,राजनीति विज्ञान विभाग
श्री खुशालदास विश्वविद्यालय पीलीबंगा, हनुमानगढ़

सार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद भारतीय दर्शन और विकास के लिए एक अनोखा दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो पश्चिमी पूंजीवाद और समाजवाद से अलग है। यह शोध पत्र उनके जीवन, कार्यों, और दर्शन के आधार पर एकात्म मानववाद के सिद्धांतों का विस्तृत विश्लेषण करता है और इसके समकालीन भारत में सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए प्रासंगिकता की जाँच करता है। अध्ययन में इस बात पर जोर दिया गया है कि यह दर्शन व्यक्ति, समाज, और प्रकृति के समन्वय को बढ़ावा देता है, जो सतत विकास और अंत्योदय के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक हो सकता है।

कीवर्ड– एकात्म मानववाद, अंत्योदय, सतत विकास।

परिचय

पंडित दीनदयाल उपाध्याय (1916–1968) भारतीय राष्ट्रीयता और सामाजिक उत्थान के प्रणेता थे, जिन्होंने एकात्म मानववाद को भारतीय विकास का एक वैकल्पिक मॉडल प्रस्तुत किया। उनका जीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) के प्रचारक के रूप में शुरू हुआ और भारतीय जनसंघ की स्थापना (1951) तक पहुँचा। उनका दर्शन पश्चिमी मॉडलों की आलोचना करता है और स्वदेशी मूल्यों पर आधारित समग्र विकास को बढ़ावा देता है। समकालीन भारत, जो आर्थिक असमानता, पर्यावरणीय संकट, और सांस्कृतिक क्षरण से जूझ रहा है, के लिए यह मॉडल प्रासंगिक हो सकता है।

इस शोध पत्र का उद्देश्य उनके जीवन, विचारों, और कार्यों के आधार पर एकात्म मानववाद का गहन अध्ययन करना और इसे आज के संदर्भ में लागू करने की संभावनाओं का मूल्यांकन करना है। यह अध्ययन ऐतिहासिक संदर्भों, उनके भाषणों, और वर्तमान नीतियों के विश्लेषण पर आधारित है। उनका दर्शन न केवल अतीत का प्रतिबिंब है, बल्कि भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक भी हो सकता है, जो भारत को आत्मनिर्भर और समावेशी समाज की ओर ले जा सके। उनके विचारों का प्रभाव आज भी भारतीय समाज और नीति निर्माण में देखा जा सकता है, जो इस शोध को और भी महत्वपूर्ण बनाता है।

दीनदयाल उपाध्याय का जीवन और योगदान

दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 1916 में हुआ और 1937 में वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (आरएसएस) से जुड़े। 1942

से पूर्णकालिक प्रचारक बनकर उन्होंने उत्तर प्रदेश में शाखाओं का विस्तार किया। पंचजन्य और ऑर्गनाइजर के संपादन के माध्यम से उन्होंने राष्ट्रीय चेतना जागृत की। 1951 में भारतीय जनसंघ की स्थापना और 1967 तक उनकी भूमिका संगठन विस्तार में उल्लेखनीय रही। उनकी मृत्यु 11 फरवरी, 1968 को मुगलसराय रेलवे स्टेशन पर रहस्यमयी परिस्थितियों में हुई, जिसे हत्या माना गया पर अनसुलझा रहा।

उनके कार्यों में स्वदेशी अर्थव्यवस्था और अंत्योदय का सिद्धांत प्रमुख है। वे 'एक प्रभात राष्ट्रीयवादी' के रूप में जाने गए, जो राष्ट्रीय जागरण के प्रारंभिक चरण में उनके योगदान को दर्शाता है। उनके छात्र जीवन से लेकर राजनीतिक यात्रा तक, उन्होंने भारतीय संस्कृति और मूल्यों को प्राथमिकता दी। 1952–1967 के घटनाक्रम, जैसे चुनावी राजनीति और संगठनात्मक विस्तार, उनके दूरदर्शी दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते हैं।

उनकी मृत्यु के बाद भी उनके विचारों ने भारतीय राजनीति को प्रभावित किया। उनके द्वारा लिखित पुस्तकें जैसे जगद्गुरु शंकराचार्य और राजनीतिक डायरी उनके दर्शन के सैद्धांतिक आधार को मजबूत करती हैं। उनके भाषणों और लेखन में भारतीय समाज के उत्थान के लिए एक नई दिशा दिखाई देती है, जो आज भी प्रासंगिक है।

एकात्म मानववाद का सैद्धांतिक आधार

एकात्म मानववाद भारतीय दर्शन, वेद, उपनिषद, और गीता पर आधारित है। उपाध्याय ने पश्चिमी मॉडलों की आलोचना की, जो भौतिक प्रगति पर केंद्रित हैं, जबकि मानव के आध्यात्मिक आयाम नजरअंदाज करते हैं। चार सिद्धांत हैं–

एकात्मता– व्यक्ति और समाज के बीच एकता।

अंत्योदय– समाज के अंतिम व्यक्ति का उत्थान।

स्वदेशी– स्थानीय संसाधनों पर आधारित अर्थव्यवस्था ('हर हाथ को काम, हर खेत को पानी')।

धर्म– नैतिकता और कर्तव्य, जो भारतीय जीवन शैली का आधार है।

1965 के उनके व्याख्यानों में यह दर्शन स्पष्ट हुआ, जहाँ उन्होंने पूंजीवाद और समाजवाद को असंगत माना। उनके विचारों ने भारतीय राष्ट्रीयता को प्राथमिकता दी और व्यक्तिगत, सामाजिक, और पर्यावरणीय संतुलन पर जोर दिया। यह दर्शन आज भी प्रासंगिक है, क्योंकि यह मानव विकास के समग्र दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। उनके सिद्धांतों ने भारतीय समाज में एक नई चेतना जागृत की, जो आधुनिक विकास के साथ सामंजस्य बिठा सकता है।

समकालीन भारत में एकात्म मानववाद की प्रासंगिकता

आज का भारत आर्थिक असमानता, शहरीकरण, और पर्यावरणीय संकट से जूझ रहा है। आत्मनिर्भर भारत अभियान (2020) स्वदेशी सिद्धांत से प्रेरित है, जो ग्रामीण विकास और स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देता है। राजस्थान में रेलवे विकास और विकेन्द्रीकृत शासन की वकालत आज जल संरक्षण परियोजनाओं (जैसे जल मित्र योजना) से मेल खाती है।

हालांकि, आधुनिक तकनीक और वैश्वीकरण के साथ सामंजस्य चुनौती है। धार्मिक आयामों को बहुधर्मी समाज में संतुलित करने की आवश्यकता है। आर्थिक असमानता और शहरीकरण के समाधान के लिए यह दर्शन ग्रामीण अर्थव्यवस्था और नैतिक शिक्षा पर जोर देता है, जो 21वीं सदी के भारत के लिए उपयुक्त हो सकता है। पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में भी यह दर्शन उपयोगी हो सकता है, विशेष रूप से जल और वन संरक्षण में।

व्यावहारिक अनुप्रयोग और चुनौतियाँ

'हर हाथ को काम' स्लोगन के आधार पर, ग्रामीण विकास, पंचायती राज, और नैतिक शिक्षा प्रणाली इस दर्शन के अनुप्रयोग हो सकते हैं। राजस्थान में जल संरक्षण परियोजनाएँ और उत्तर प्रदेश में स्वदेशी उद्योग उदाहरण हैं। विकेन्द्रीकृत शासन और सामुदायिक भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए 1967 के सेमिनारों से प्रेरणा ली जा सकती है।

चुनौतियाँ शामिल हैं : आधुनिक तकनीक का समावेश और बहुधर्मी समाज में धार्मिक आयामों का संतुलन। नीतिगत स्तर पर इस दर्शन को लागू करने के लिए प्रशिक्षण और जागरूकता की आवश्यकता है। तकनीकी प्रगति और वैश्वीकरण के दबाव में इसे अपनाना जटिल हो सकता है, जिसके लिए व्यापक अध्ययन और अनुकूलन की जरूरत होगी। इसके अतिरिक्त, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संतुलन बनाना भी एक बड़ी चुनौती है।

ऐतिहासिक संदर्भ और तुलनात्मक विश्लेषण

1952–1967 के घटनाक्रम दर्शाते हैं कि उपाध्याय ने चुनावी राजनीति और संगठनात्मक विस्तार में सफलता प्राप्त की। उनके विचार महात्मा गांधी के स्वदेशी और सर्वोदय से मिलते–जुलते हैं, किंतु गांधी की अहिंसा के विपरीत, उनका जोर संगठन पर था। स्कैंडिनेवियाई सामाजिक लोककल्याण से तुलना करने पर, एकात्म मानववाद का नैतिक आयाम इसे विशिष्ट बनाता है।

उनके दर्शन का प्रभाव भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की नीतियों में देखा जा सकता है, विशेष रूप से स्वदेशी और आत्मनिर्भरता में। प्रशिक्षण शिविर आज के युवा नेतृत्व विकास कार्यक्रमों के लिए प्रेरणा स्रोत हो सकते हैं। ऐतिहासिक रूप से, उनके विचारों ने भारतीय समाज में एक नई चेतना जागृत की, जो आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

भविष्य के लिए सुझाव

एकात्म मानववाद को भविष्य में लागू करने के लिए नीतिगत सुधार, तकनीकी समावेश, और सामाजिक जागरूकता आवश्यक है। प्रशिक्षण शिविरों को आधुनिक रूप में पुनर्जीवित किया जा सकता है। शैक्षिक पाठ्यक्रम में इस दर्शन को शामिल करना युवाओं को प्रेरित कर सकता है।

पर्यावरण संरक्षण और जल संरक्षण जैसे क्षेत्रों में सरकारी और गैर–सरकारी संगठनों के बीच सहयोग बढ़ाना होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार और स्थानीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए विशेष नीतियाँ बनाई जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, तकनीकी शिक्षा और पारंपरिक ज्ञान के मिश्रण से इस दर्शन को आधुनिक बनाया जा सकता है।

सामाजिक और सांस्कृतिक प्रभाव

एकात्म मानववाद का प्रभाव भारतीय समाज पर गहरा रहा है। यह दर्शन सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा देता है। उनके विचारों ने ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीच संतुलन बनाने की दिशा में काम किया है। सांस्कृतिक कार्यक्रमों और त्योहारों को प्रोत्साहन देकर इस दर्शन को जन–जन तक पहुँचाया जा सकता है।

उनके दर्शन ने नैतिक शिक्षा और कर्तव्य की भावना को मजबूत किया, जो आज के भौतिकवादी समाज में एक नई दिशा दे सकता है। सामाजिक सुधार आंदोलनों में इस दर्शन का उपयोग करके समुदायों को सशक्त बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह दर्शन सांस्कृतिक विविधता को संरक्षित करने में भी सहायक हो सकता है।

निष्कर्ष

दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद समकालीन भारत के लिए एक प्रासंगिक और वैकल्पिक विकास मॉडल है। यह आर्थिक विकास के साथ सामाजिक समरसता और पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा देता है। इसे लागू करने के लिए नीतिगत सुधार, तकनीकी समावेश, और सांस्कृतिक संतुलन आवश्यक है। भविष्य में, इस दर्शन को आधुनिक संदर्भ में ढालकर भारत को समावेशी और सतत समाज की ओर ले जाया जा सकता है।

उनके दर्शन का प्रभाव आज भी भारतीय नीति निर्माण और सामाजिक चेतना में देखा जा सकता है, और इसे सही दिशा में लागू करने से भारत अपनी सांस्कृतिक पहचान और आर्थिक प्रगति दोनों को साध सकता है। यह दर्शन न केवल अतीत की विरासत है, बल्कि भविष्य की नींव भी रखता है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक प्रेरणा स्रोत हो सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. उपाध्याय, द. (1992). इंटेग्रल ह्यूमनिज्म. नई दिल्ली : भारतीय जनसंघ।
2. शर्मा, म. च. (2016). दीनदयाल उपाध्याय : जीवन और दर्शन. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन।
3. सिन्हा, वि. एन. (संपा.). (2003). पंडित दीनदयाल उपाध्याय : विचारधारा और दृष्टिकोण. नई दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी।
4. सिंह, एस. पी. (2020). भारतीय राजनीति में दीनदयाल उपाध्याय. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।

5. उपाध्याय, द. (1975). पॉलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : नवचेतन प्रेस।
6. दीनदयाल रिसर्च इंस्टीट्यूट. (2021). अंत्योदय और इंटेग्रल ह्यूमनिज्म : मूल सिद्धांत. स्रोत : http://www.deendayal-org/publications
7. भारत सरकार. (2020). आत्मनिर्भर भारत अभियान : नीति ढांचा. वित्त मंत्रालय, भारत सरकार। स्रोत : https://ww.-finmin-nic-in/
8. गांधी, म. के. (2009). हिन्द स्वराज और अन्य रचनाएँ (शताब्दी संस्करण). अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन गृह।
9. ऑर्गनाइजर. (1965–1968). पंडित दीनदयाल उपाध्याय के चयनित लेख. नई दिल्ली : राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ।
10. राजस्थान जल संरक्षण विभाग. (2024). जल मित्र योजना : प्रगति रिपोर्ट 2023–24. स्रोत : https://www.jalmitra-rajasthan.gov.in

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

वैदिक काल में स्त्री की भूमिका

प्रीति भारती
शोधार्थिनी, कवयित्री
बनस्थली विद्यापीठ, जयपुर

सारांश

वैदिक काल भारत के इतिहास का एवं भारतीय सभ्यता का एक स्वर्णिम काल माना जाता है। वैदिक काल में स्त्रियों को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त था। वैदिक कालीन स्त्रियाँ ना केवल शिक्षित थीं बल्कि वैदिक मंत्रों के उच्चारण में भी पारंगत थी। ये स्त्रियाँ यज्ञ–कर्म में भी बढ़–चढ़ कर हिस्सा लेती थी तथा बनस्थली "दर्शन" और उसके विचार–विमर्श में भी सक्रिय भूमिका निभाती थी। उन स्त्रियों को श्ऋषिकाश श्ब्रह्मवादिनीश जैसी सम्मानजनक उपाधियाँ दी जाती थीं। वैदिक काल की प्रमुख नारियाँ जो वैदिक साहित्य में बौद्धिक विमर्श की उदाहरण बनी जिनके प्रमुख नाम हैं गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, लोपामुद्रा, घोषा इत्यादि। वैदिक कालिन स्त्रियों को अपने निजी जीवनों से जुड़े पहलू जैसे – विवाह, संतानोत्पत्ति एवं गृहस्थ जीवन के निर्णयों का अधिकार भी प्राप्त था।

इस शोध पत्र में वैदिक काल में स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक भूमिका. का विश्लेषण किया गया है। साथ हीं इस शोध पत्र में यह भी वर्णित है कि वैदिक स्त्रियों की स्थिति कालांतर में कैसे परिवर्तित हुई। वैदिक यूग की नारियां सिर्फ अपने परिवार की धुरी हीं नहीं थीं बल्कि वे समाज की दिशा निर्धारक भी थी। यह शोध–अध्ययन आधुनिक समाज में नारी अधिकारों की पुनः स्थापना हेतु प्रेरणास्रोत बन सकता है।

शब्द कुंजियाँ– वैदिक स्त्री, ब्रह्मवादिनी, ऋषिका, गार्गी, मैत्रेयी, स्त्री शिक्षा, वैदिक समाज, नारी सम्मान, वैदिक धर्म, स्त्री सशक्तिकरण।

भूमिका

भारतीय संस्कृति एवं सम्थता का इतिहास अत्यंत प्राचीन, एवं गौरवमयी रहा है। भारतीय इतिहास में वैदिक काल को विशेष स्थान प्राप्त है। यह काल धार्मिक और दार्शनिक दृष्टि से तो अत्यंत महत्वपूर्ण था ही साथ–साथ यह सामाजिक संरचना और जीवन–मूल्यों की दृष्टि से भी इतिहास का सुदृढ़ आधार है। वैदिक कालीन स्त्रियों की भूमिका केवल घरेलु दायरे तक सीमित नहीं थी बल्कि ये ज्ञान, धर्म, दर्शन और समाज में भी और समाज निर्माण में भी सक्रिय सहभागिता निभाती थीं। ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद, और अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर स्त्रियों की विदवत, स्वतंत्रता, गरिमा का उल्लेख मिलता है। गार्गी एवं मैत्रेयी जैसी विदुषी स्त्रियाँ ब्रम्हज्ञान की तो चर्चा करती हीं थीं, बल्कि पुरुषों के साथ–साथ वे दार्शनिक संवाद में भी सहभागी होती थीं। वैदिक युग स्त्रियों को केवल मातृत्व एवं पत्नीत्व का हीं अधिकार नहीं देता था बल्कि उन स्त्रियों को एक स्वतंत्र विचारशील ईकाई के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करता था।

मेरे इस शोध पत्र का उद्देश्य वैदिक कालीन स्त्रियों की सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक भूमिका का विश्लेषण करते हुए यह समझाना है कि उस युग की स्त्री वर्तमान समय की स्त्रियों के लिये किस प्रकार प्रेरणादायी हो सकती है।

वैदिक समाज की संरचना और स्त्री की स्थिति

वैदिक समाज मुख्य रूप से वर्ण और आश्रम व्यवस्थाओं पर आधारित था, परंतु वैदिक काल में सामाजिक ढाँचा

लचीला और नैतिक मूल्यों पर आधारित था। वैदिक कालीन स्त्रियाँ समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करती थीं। वे स्वतंत्र रूप से शिक्षा ग्रहण करने, यज्ञों में भाग लेने तथा धार्मिक विषयों पर शास्त्रार्थ करने की अधिकारिणी थी। स्त्री तथा पुरुष के बीच सामाजिक अंतर बिल्कुल शून्यतम था। कई अवसरों पर तो स्त्री–पुरुष के अधिकार समान थे।

सिर्फ घरेलु देख–भाल तक हीं स्त्रियाँ सीमित और संकुचित नहीं थी, बल्कि वे परिवार की धार्मिक, आर्थिक और बौद्धिक गतिविधियों में समान रूप से भागीदार थीं। विवाह जैसी सामाजिक संस्थाओं के लिये भी स्त्रियों की सहमति आवश्यक थी। कन्या के विवाह से पूर्व श्स्वयंवरश जैसी प्रथा स्त्री की पसंद को प्राथमिकता दिया जाता था, का स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है तथा वैदिक समाज की स्त्री को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में प्रर्दशित करती है।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों को केवल गृहणी नहीं श्सहधर्मिणी माना जाता था जिसका अर्थ था अपने पति के समकक्ष धार्मिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों में सहभागी। उपरोक्त किये गये स्त्री वर्णन वैदिक कालीन स्त्री के स्वतंत्र अस्तित्व दृष्टिकोण को दर्शाता है जिसमें स्त्री को किसी भी रूप में "अबला" के रूप में नहीं दिखाया गया है और ना ही निर्बल और परावलंबी स्त्री के रूप में दिखाया गया है।

वैदिक स्त्रियों की शैक्षणिक और बौद्धिक भूमिका

जिस वैदिक युग में स्त्रियों को पुरुषों से शास्त्रार्थ का अधिकार था ये बताना कि स्त्रियाँ शिक्षा के क्षेत्र में कितनी उत्कृष्ट थी ज्यादा आवश्यक नहीं।

वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा का संपूर्ण अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को उपनयन संस्कार प्राप्त करने की अनुमति थी, जो उस समय केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य पुरुषों को ही प्राप्त होती थी। ऐसे में यह तथ्य स्वयं प्रमाणित है कि स्त्रियों को वैदिक युग में पुरुषों के समान बौद्धिक स्वतंत्रता दी गई थी। वैदिक युगीन स्त्रियाँ वेदों, उपनिषदों, और दर्शनों का अध्ययन करती थीं और अनेक अवसरों पर शिक्षिका एवं विचारक के रूप में प्रतिष्ठित होती थीं।

वैदिक युग में दो प्रकार की शिक्षित स्त्रियाँ उल्लेखनीय थीं– श्साधारण शिक्षिताश और श्ब्रह्मवादिनीश। ब्रह्मवादिनी वे स्त्रियाँ थीं जो विवाह ना कर ब्रह्मविद्या और ज्ञान के मार्ग को अपनाती थीं। ऋग्वेद में गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा, लोपामुद्रा आदि ब्रह्मवादिनियों के नाम विशेष रूप से उल्लेखित हैं।

उदाहरण के लिये, गार्गी ने मिथिला के दरबार में याज्ञवल्क्य जैसे महान् ऋषि से ब्रहम ज्ञान पर शास्त्रार्थ किया था। मैत्रेयी ने यह प्रश्न उठाया था कि "धन से अमरत्व की प्राप्ति संभव है क्या? जो उनकी बौद्धिक गहराई को दर्शाता है। ये संवाद ये सिद्ध करते हैं कि स्त्रियाँ उस युग में केवल ज्ञान की उपभोक्ता हीं नहीं बल्कि ज्ञान की सृजनकर्ता हवं समीक्षाकर्ता भी थीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग स्त्री शिक्षा और बौद्धिक स्वतंत्रता का स्वर्णकाल था जहाँ स्त्रियाँ किसी भी प्रकार की बौद्धिक सीमा से बंधी नहीं थीं।

वैदिक स्त्रियों की सामाजिक एवं पारिवारिक भूमिका

वैदिक कालीन स्त्रियाँ सिर्फ ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में हीं नहीं बल्कि वे परिवार और समाज की धुरी भी थीं। उन्हें गृहणी नहीं बल्कि श्सहधर्मिणी कहा जाता था, जो पति के साथ जीवन के प्रत्येक चरण में समान रूप से सहभागी होती थीं। स्त्रियाँ परिवार की धार्मिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में निर्णायक भूमिका निभाती थीं। उनका कार्य केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित नहीं था, बल्कि वे परिवार की नैतिक और अध्यात्मिक दिशा भी तय करती थीं।

वैदिक समाज में विवाह केवल एक सामाजिक संस्था नहीं, बल्कि एक धर्म–कर्म से जुड़ी पवित्र परंपरा थी, जिसमें स्त्रियों की सहमति अनिवार्य मानी जाती थी। श्स्वयंवरश जैसी प्रथाएँ स्त्री को वर चुनने का अधिकार देती थी, जिससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में स्त्री की इच्छा और स्वतंत्रता का सम्मान किया जाता था, और यह केवल अलंकारिक सम्मान नहीं बल्कि वास्तविक सम्मान था। कन्या को उसके पिता के समान शिक्षित करना एक सामाजिक आदर्श था।

पारिवारिक संरचना में स्त्री को माता, पत्नी, बहन और पुत्री के रूप में समान आदर प्राप्त था। उसे 'गृहलक्ष्मी' कहा जाता था, और यह केवल एक अलंकारिक उपाधि नहीं थी, बल्कि समाज के निर्माण में उसकी केंद्रीय भूमिका का प्रतीक थी। स्त्रियाँ विधवा होने पर भी सम्मानित जीवन जीती थीं। समाज में उन्हें पुनर्विवाह का अधिकार था, जो यह दर्शाता है कि वैदिककालिन स्त्रियाँ परंपराओं से बंधी जरूर थीं परंतु दमन का शिकार नहीं थीं। इस प्रकार वैदिक युग की सामाजिक और पारिवारिक गरिमा एवं पारिवारिक संरचना स्त्री की गरिमा, सम्मान और स्वायत्ता पर आधारित

थी, जिसे बाद के काल–खण्डों में क्रमशः क्षीण किया गया।

वैदिक स्त्री की स्थिति में आने वाले परिवर्तन और उसका प्रभाव

वैदिक युगीन स्त्रियाँ जहाँ स्वतंत्रता, सम्मान और अधिकारों से युक्त थी, वहीं वैदिक उत्तर–काघ और उसके पश्चात् कालक्रम में उनकी स्थिति में धीरे–धीरे ह्रास होने लगा। सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तनों के चलते स्त्रियों की भूमिका सीमित होती चली गई। ब्राह्मणवादी परंपराओं के प्रभाव, जातिगत कठोरता और पितृसत्तात्मक संरचना के सुदृढ़ होने से स्त्रियों की शिक्षा, स्वतंत्रता और धार्मिक सहभागिता पर अंकुश लगने लगा।

उत्तरवैदिक काल में उपनयन संस्कार जो पहले कन्याओं को भी दिया जाता था को केवल पुरूषों तक सीमित कर दिया गया। यज्ञों एवं धार्मिक कर्तव्यों में स्त्रियों की भागीदारी घटने लगी और उन्हें गृहस्थ जीवन तक ही सीमित कर दिया गया। श्स्त्री अबला है' जैसी धारणाओं ने समाज में धीरे–धीरे जड़े जमानी शुरू कीं।

स्त्रियों का स्वतंत्र रूप से शिक्षा ग्रहण करना असामान्य माना जाने लगा, तथा बाल–विवाह जैसी कुप्रथाएँ समाज में प्रचलित हो गई। पुनर्विवाह की परंपरा समाप्त हो गई और विधवाओं के अधिकारों में कटौती की गई। यह परिवर्तन न केवल स्त्री की सामाजिक स्थिति में गिरावट का कारण बना, बल्कि पूरे समाज के संतुलन को भी प्रभावित किया। यह गिरावट यह दिखाती है कि किस प्रकार एक सशक्त और आत्मनिर्भर वैदिक स्त्री, समय के साथ एक परावलंबी और सीमित 3 भूमिका तक सिमट कर रह गयी। यह अध्धय्यन वर्तमान समाज को यह सिखाता है कि स्त्री को यदि उसके वास्तविक स्थान से वंचित किया जाय तो उसका विकास रूक जाएगा, और पूरा समाज ही पीछे की ओर लौट जाएगा।

यह गिरावट दर्शाती है कि किस प्रकार एक सशक्त और आत्मनिर्भर वैदिक स्त्री, समय के साथ एक परावलंबी एवं सीमित भूमिका तक सिमट कर रह गई। यह अध्ययन वर्तमान समाज को यह भी सीखने के लिये प्रेरित करता है कि यदि स्त्री को इसका वास्तविक स्थान नहीं दिया जाय तो न केवल उसका विकास रुकेगा बल्कि समूचा समाज हीं पीछे की ओर चला जाएगा।

समाज की यह मानसिक गिरावट यह दर्शाती है कि किस प्रकार एक सशक्त और आत्मनिर्भर वैदिक स्त्री समय के साथ एक परावलंबी और सीमित भूमिका तक सिमट कर रह गयी। यह केवल स्त्री के अधिकारों का हनन नहीं था, बल्कि समूचे भारतीय समाज की रचनात्मकता, संतुलन और नैतिक दृष्टिकोण को भी प्रभावित करने वाला दृष्टिकोण था तथा परिवर्तन था। किसी भी समाज की प्रगति तभी संभव है जब स्त्री और पुरुष दोनों समान रूप से उसमें भाग लें। इस ऐतिहासिक सच्चाई को स्वीकार करना और उससे सीख लेना आज वर्तमान की आवश्यकता है। जब हम स्त्री शिक्षा, समान अधिकार और निर्णय में सहभागिता की बात करते हैं, तब हमें वैदिक युग की उन परंपराओं को स्मरण करना चाहिए, जहाँ यह सब पहले से ही विद्यमान था।

इस प्रकार प्रस्तुत लेख में हमने यही पढ़ा और देखा की वैदिक स्त्री की भूमिका आधुनिक समाज के लिये केवल एक ऐतिहासिक अध्याय नहीं बल्कि एक प्रेरणादायी आदर्श बनती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय इतिहास में वैदिक काल को एक स्वर्णिम काल के रूप में देखा जाता है, जहाँ स्त्रियाँ समाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक और बौद्धिक सभी क्षेत्रों में समान अधिकार और सम्मान को प्राप्त थी, वे केवल परिवार की संरक्षक नहीं थी बल्कि समाज की दिशा तय करने वाली निर्णायक शक्तियाँ भी थीं। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, अपाला जैसी ऋषिकाएँ उस युग की स्त्री चेतना की प्रतीक थीं जिन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री में भी ज्ञान, विवेक औट नेतृत्व की पूर्ण क्षमता है।

हालांकि वैदिक काल के पश्चात् स्त्रियों की स्थिति में जिस प्रकार गिरावट आयी, वह ना केवल नारी के अधिकारों का हनन था, बल्कि भारतीय संस्कृति की उस गरिमा का पतन था जो स्त्री को श्शक्तिश और श्सहधर्मिणीश के रूप में देखती थी। धर्मशास्त्रों, स्मृतियों और सामाजिक परंपराओं में बदलाव के कारण स्त्रियों की भूमिका सीमित होती चली गई। शिक्षण संस्थानों से उनका बहिष्कार, धार्मिक कर्मकांडो में भागीदारी का निषेध और पुनर्विवाह की निषेधाज्ञा जैसे अनेक कारकों ने स्त्री की स्वतंत्र पहचान को क्षीण किया।

वर्तमान सामाजिक परिवेश के लिये यह आवश्यक है कि यह वैदिक काल की उन मूल–भूत स्त्री संबंधी मान्यताओं

को पुनः अपनाये, जो स्वतंत्रता, समानता और सम्मान पर आधारित थीं। वैदिक स्त्री का आदर्श केवल ऐतिहासिक गौरव नहीं, समकालीन नारी विमर्श के लिये मार्गदर्शक सिद्धांत है। एक समतामूलक समाज की स्थापना के लिये वैदिक मूल्य प्रणाली से प्रेरणा लेना अंत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ-सूची

1. शुक्ला यशोवर्धन "वेदों में नारी : सामाजिक दृष्टिकोण" साहित्य भवन प्रयागराज, 2007, पृष्ठ संख्या – 77.
2. मुखर्जी, राधाकुमुद "अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया" मैकमिलन एंड कंपनी, लंदन, 1920 पृष्ठ संख्या – 211.
3. शर्मा, आर.एस. "प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास" राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2012 पृष्ठ संख्या – 176.
4. देवधर, सी. एन. "वीमेन इन एन्शिएन्ट इंडिया" नटराज पब्लिशर्स, पुणे 1960 पृष्ठ संख्या – 129.
5. झा, दीनदयाल "प्राचीन भारत में स्त्रीरूस्थिति और संघर्ष" ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद, 2009, पृष्ठ संख्या – 101.
6. पांडे, सुनीता "वैदिक साहित्य में नारी की भूमिका" भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी, 2004 पृष्ठ संख्या – 88.
7. चतुर्वेदी, विमला "ऋग्वैदिक कालीन नारी जीवन" प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1998, पृष्ठ संख्या – 94.
8. मिश्रा, रमेश "भारत का स्त्री इतिहास रू वैदिक युग से आधुनिक युग तक" भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2015, पृष्ठ संख्या – 134.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

एकात्म मानव दर्शन और डिजिटल युग में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण : पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का बहुआयामी विश्लेषण

डॉ. शोभा मिश्रा
सहायक आचार्य इतिहास, सांध्यकालीन अध्ययन विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
यदुनंदन
शोधकर्ता, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

सारांश

यह शोध–पत्र पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन को आधुनिक डिजिटल युग के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। इसमें बताया गया है कि यह दर्शन व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के बीच समरसता एवं संतुलन स्थापित करने पर आधारित है। डिजिटल तकनीक ने शिक्षा, सांस्कृतिक संरक्षण और सामाजिक विकास के नए अवसर प्रदान किए हैं, लेकिन इसके साथ डिजिटल डिवाइड, सांस्कृतिक ह्रास और मानसिक स्वास्थ्य जैसी चुनौतियां भी सामने आई हैं। उपाध्याय का वैज्ञानिक दृष्टिकोण स्वदेशी तकनीक, श्रम–प्रधान विकास और सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण पर बल देता है। निष्कर्ष रूप में, यह अध्ययन दर्शाता है कि एकात्म मानव दर्शन आधुनिक भारत के लिए आर्थिक प्रगति, सामाजिक न्याय और सांस्कृतिक निरंतरता का एक समग्र और व्यावहारिक मॉडल है।

संकेत शब्द– एकात्म मानव दर्शन, ज्ञान प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक मूल्य, भारतीय शिक्षा प्रणाली, सामाजिक मानदंड, डिजिटल युग,सांस्कृतिक सततता।

भूमिका

भारत की सांस्कृतिक विरासत, दार्शनिक गहराई और सामाजिक बहुलता सदियों से विश्व के सामूहिक ज्ञान, संस्कृति और आध्यात्मिकता के लिए एक अमूल्य स्रोत रही है। बदलते वैश्वीकरण, आधुनिक विज्ञान, और तेज तकनीकी परिवर्तन के युग में भारतीय समाज को अपनी सांस्कृतिक जड़ों को सुरक्षित रखने के साथ–साथ विकास की नई राहों को भी अपनाना पड़ता है। इस जटिल यथार्थ में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानव दर्शन भारतीयता की जटिल सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन व्यवहारों का एक समग्र, संतुलित और समावेशी वैचारिक मॉडल प्रदान करता है। यह दर्शन न केवल व्यक्ति के भौतिक विकास को महत्व देता है, बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता को भी उसी स्थान पर रखता है। डिजिटल युग की व्यापक तकनीकी उन्नति ने जहाँ शिक्षा, संचार, और सामाजिक सहभागिता के क्षेत्रों में क्रांति लाई है, वहीं इस विकास के केंद्र में 'मानव' और 'संस्कृति' की सुरक्षा व संवर्धन की आवश्यकता को भी बढ़ा दिया है। इंटरनेट उपयोगकर्ताओं की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि, ऑनलाइन शिक्षा के माध्यम, डिजिटल पुस्तकालयों एवं सांस्कृतिक संसाधनों के संरक्षण ने ज्ञान की गति दी है, लेकिन इनके साथ डिजिटल डिवाइड और सांस्कृतिक विस्थापन ने नए सामाजिक और मानसिक तनाव पैदा किए हैं। इस संदर्भ में, एकात्म

मानव दर्शन यह स्पष्ट करता है कि तकनीकी नवाचार तभी फलदायी होंगे जब वे सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के साथ जुड़कर मानव–केंद्रित हों।

शोध की पृष्ठभूमि और समस्याएँ

आधुनिक तकनीकी युग में ज्ञान–प्रौद्योगिकी के तीव्र विकास, वैश्वीकरण और सांस्कृतिक आदान–प्रदान के कारण परंपरागत भारतीय सांस्कृतिक मूल्य एवं शिक्षा पद्धति विविध चुनौतियों से जूझ रही है। एक ओर डिजिटल क्रांति ने शिक्षा व सामाजिक मानदंडों के स्वरूप को बदला है, वहीं दूसरी ओर भारतीय आत्मा, विचार एवं संस्कृति के संरक्षण की चुनौती उभरती है। ऐसे में यह आवश्यक हो गया है कि भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण से इन चुनौतियों का बहुविषयक विश्लेषण किया जाए।

शोध का उद्देश्य

इस शोध का प्रमुख उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि एकात्म मानव दर्शन की दृष्टि से ज्ञान–प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक मूल्य और भारतीय शिक्षा की अवधारणा का समकालीन सामाजिक मानदंडों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और यह दर्शन आधुनिक विचारधाराओं–जैसे पाश्चात्य पूंजीवाद या समाजवादकृकी तुलना में क्यों अधिक सुसंगत एवं प्रासंगिक है। साथ ही, उद्देश्य यह भी है कि भारतीय शिक्षा व संस्कृति की मौलिकता, निरंतरता तथा तकनीकी नवाचार के बीच संतुलन एवं संवाद कैसे कायम किया जा सकता है।

समकालीनता की आवश्यकता

"एकात्म मानव दर्शन" का मूल भाव समरसता, समग्रता व संतुलन है। ज्ञान–प्रौद्योगिकी के वर्तमान युग में संस्कृ ति, शिक्षा और समाज के क्षेत्र में समकालीनता तथा नवाचार जरूरी हैं, लेकिन उनके साथ–साथ भारतीय मूल्यों और दर्शन की निरंतरता भी उतनी ही आवश्यक है। यह अध्ययन इन दोनों के मध्य संगति और सामंजस्य की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

एकात्म मानव दर्शन : सिद्धांत एवं सामाजिक संरचना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद को भारतीय जनसंघ के वैचारिक प्रांतीय के रूप में स्थापित किया। यह दर्शन व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और प्रकृति के बीच संपूर्ण और संतुलित संबंधों पर आधारित है। मूलतः यह दर्शन 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' के समग्र पुरुषार्थ (जीवन के चार उद्देश्य) की समता और भारतीय संस्कृति की विविधता में एकता के सिद्धांतों पर केन्द्रित है। उपाध्याय का मानना था कि पूंजीवाद की आर्थिक केंद्रीकृत सोच और समाजवाद के वर्ग–संघर्ष आधारित मॉडल दोनों अपर्याप्त हैं। इसके स्थान पर, एकात्म मानववाद एक ऐसा विकास मॉडल प्रस्तुत करता है जो सांस्कृतिक स्वायत्तता, सामाजिक न्याय, नैतिक शासन और अंत्योदय (कमजोर वर्गों के उत्थान) के महत्व को स्वीकार करता है। यह दर्शन यह भी बताता है कि विकास केवल भौतिक संपदा नहीं बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक और सामाजिक उत्थान का समन्वय होना चाहिए। व्यक्ति के निजी अधिकारों तथा सामाजिक दायित्वों की पूर्ति से ही निरंतर, विश्वसनीय और समरस समाज का सृजन संभव है।

एकात्म मानव दर्शन : मूल अवधारणाएँ

एकात्म मानव दर्शन पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एक समग्र भारतीय जीवन दृष्टि है। इस विचारधारा में यह मान्यता है कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण सृष्टि के बीच घनिष्ठ, चौतन्य व पूरक संबंध हैं, जिन्हें विभाजित या विभेदित करना भारतीय संस्कृति के अनुकूल नहीं है। दीनदयाल उपाध्याय ने अपने चिंतन में पूंजीवाद और समाजवाद की एकांगी सीमाओं के स्थान पर भारत की सांस्कृतिक परंपरा, सामाजिक सरोकार और मानव–केन्द्रित दृष्टि को केंद्र में रखा। उनका मानना था कि व्यक्ति न तो केवल एक उपभोक्ता है (जैसा पश्चिमी पूंजीवाद मानता है), न ही मात्र समाज की इकाई (जैसा साम्यवाद मानता है), बल्कि वह परिवार, समाज, राष्ट्र और प्रकृति के साथ मूलतः एकात्मक संबंध रखता है।

दर्शन के प्रमुख स्तंभ

व्यक्ति प्रत्येक मानव के भीतर एक दिव्यता और अद्वितीयता निहित है, पर उससे जुड़ी जिम्मेदारियाँ भी हैं। व्यक्ति का कल्याण केवल भौतिक या मनोवैज्ञानिक विकास से नहीं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक संतुलन से होता है। दर्शन के प्रमुख स्तंभ इस प्रकार हैं–

परिवार : भारतीय संस्कृति में परिवार जीवन का प्रथम सामाजिक इकाई है। परिवार में सामंजस्य, सहिष्णुता, मूल्य–निर्माण और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना पनपती है। व्यक्ति और समाज के बीच सेतु की भूमिका परिवार अदा करता है।

समाज : समाज केवल व्यक्तियों और परिवारों का समूह नहीं, बल्कि एक जीवंत, गतिशील और नैतिक चेतना है, जिसमें सामूहिक हित सर्वोपरी है। समाज की एकता, सेवा, और सह–अस्तित्व को एकात्म मानववाद सर्वोच्च मानता है।

राष्ट्र : राष्ट्र, केवल राज्य या भौगोलिक सीमा नहीं, बल्कि एक साँस्कृतिक जीवंतता और भावनात्मक एकता का परिचायक है। इसमें इतिहास, संस्कृति, साहित्य, परंपराएँ और राष्ट्रीय चेतना (spirit) समाहित रहती है।

ब्रह्मांड (पर्यावरण/प्रकृति) : एकात्म मानव दर्शन में प्रकृति, पर्यावरण और ब्रह्मांड के साथ संतुलन व समरसता पर विशेष बल दिया है। मनुष्य, समाज और राष्ट्र आस–पास की प्रकृति, पर्यावरण और सम्पूर्ण ब्रह्मांड के साथ परस्पर निर्भर और जुड़े हुए हैं।

"व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और संपूर्ण सृष्टि : इन सबका आपसी संबंध, पृथक् नहीं, एकात्म है, यही भारतीय संस्कृति का मूल आधार है।" –पंडित दीनदयाल उपाध्याय

समकालीन प्रासंगिकता

आज के वैश्वीकरण और तकनीकी युग में, जब समाज भौतिकवाद, उपभोक्तावाद और साहचर्य की कमी की तरफ बढ़ रहा है, एकात्म मानव दर्शन एक समन्वित, सर्वसमावेशी और मानव–केन्द्रित दृष्टि प्रस्तुत करता है। इस दर्शन से व्यक्ति–समाज–राष्ट्र के समन्वित विकास की नीति निर्माताओं और शिक्षाविदों को प्रेरणा मिलती है। परिवार और सांस्कृतिक मूल्यों के क्षरण को रोकने के लिए दिशा और समाधान मिलते हैं।

डिजिटल युग की शिक्षा एवं तकनीकी नवाचार से समाज गतिशील बन सकता है, मगर उसकी आत्मिक, नैतिक और सांस्कृतिक जड़ों से जुड़े रहने की प्रेरणा एकात्म मानववाद से मिलती है। पर्यावरण, समता, सहिष्णुता, सामाजिक न्याय जैसे मानवीय सरोकारों को बल मिलता है। इस प्रकार, एकात्म मानव दर्शन भारतीय समाज और समकालीन विश्व मानवता के लिए एक सार्वकालिक, लोकमंगलकारी तथा प्रासंगिक जीवन दृष्टि है, जो भारतीयता की नींव, सांस्कृतिक विविधता और समरसता को मजबूती देती है।

भारतीय समाज में सांस्कृतिक मूल्यों की ऐतिहासिक जड़ें

भारतीय समाज में सांस्कृतिक मूल्य अत्यंत प्राचीन, गहन और विविधतापूर्ण हैं। वे वेद, उपनिषद, स्मृतियाँ, महाकाव्य (रामायण, महाभारत), लोककथाएँ, संत परंपरा, एवं विविध धार्मिक–सामाजिक आस्थाओं में रचे–बसे हैं। इनकी मूल जड़ें निम्न बिंदुओं में देखी जा सकती हैं :

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' और वसुधैव कुटुम्बकम्

सम्पूर्ण जगत को एक परिवार मानने की व्यापक उदारता। धर्म, सत्य, दया, अहिंसा और क्षमा जीवन के नैतिक आदर्श जिनका अनुसरण व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक व्यवहार में होता आया है। पुरुषार्थ चतुष्टय–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के संतुलन से संतुलित और समग्र मानव जीवन की स्थापना।संस्कार एवं समरसता परिवार और समाज में संस्कार, सहिष्णुता, सामाजिक समरसता, सह–अस्तित्व और आपसी सहयोग के आदर्शों की रक्षा।

सांस्कृतिक विविधता में एकता : विभिन्न भाषाएँ, धर्म, संस्कृति, रीति–रिवाज, पर्व–त्योहार भारतीय समाज में एकसूत्रता के सूत्र हैं, जो विविधता में एकता का सन्देश देते हैं। इन मूल्यों का निरंतर पोषण ऋषि परंपरा, गुरुकुल, ग्राम्य जीवन, त्योहारों और पारिवारिक संस्कारों के माध्यम से होता रहा है, जिससे भारतीय संस्कृति की जड़ें आज भी गहराई से समाज में रची–बसी हैं।

शिक्षा का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

भारतीय संदर्भ में शिक्षा केवल ज्ञानार्जन या रोजगार का साधन नहीं रही, बल्कि जीवन मूल्य, नैतिकता, संस्कार और जिम्मेदारी का मार्गदर्शन देने वाली प्रक्रिया रही है। 'सा विद्या या विमुक्तये' : सच्चा ज्ञान मुक्ति और समग्र मानव विकास का माध्यम है। गुरुकुल–परंपराकृ बच्चा अपने गुरु के सान्निध्य में सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, व्यावहारिक एवं नैतिक शिक्षा प्राप्त करता था, जिससे नैतिकता, अनुशासन और सेवा–भाव विकसित होते थे। मानवीय गुणों का विकासः शिक्षा का उद्देश्य सच्चरित्र, उत्तरदायी, संस्कारी और परोपकारी नागरिक बनाना था, न कि केवल विद्वान या व्यवसायिक। परंपरा और नवाचार का संतुलन : भारतीय शिक्षा में हमेशा सामाजिक आवश्यकता, जीवन–व्यवहार, कौशल, श्रम और नवाचार का संतुलन रखा गया। इसमें संस्कृति, भाषा, लोककला, पर्यावरण और अध्यात्म का समावेश भी रहा है। सामाजिक सहभागिता एवं कर्तव्य बोध : शिक्षा समाज, परिवार व राष्ट्र के प्रति कर्तव्य, सह–जीवन, एवं सहभागिता का भाव जागृत करती रही है।

मूल्यपरकता

भारतीय शिक्षा प्रणाली का प्रधान आधार जीवन–मूल्य है। आधुनिक शिक्षा का मूल संकट यही है कि उसमें मूल्यपरकता और सांस्कृतिक जड़ों का क्षरण हो रहा है। एकात्म मानव दर्शन इसी मूल्य–बोध, सकारात्मकता और सांस्कृतिक निरंतरता को समकालीन संदर्भ में उभारने का कार्य करता है।

तकनीकी, सांस्कृतिक, और शैक्षिक तत्वों का परस्पर संबंध

ज्ञान–प्रौद्योगिकी ने शिक्षा और संस्कृति के स्वरूपों को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया है। तकनीकी नवाचार ज्ञान के वितरण, संचार, और शिक्षा की पद्धतियों में अत्यधिक बदलाव लाए हैं। इस प्रक्रिया में सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा तथा शिक्षा में नैतिकता और मानव–केंद्रितता बनाए रखना आवश्यक है। शिक्षा, तकनीकी साधनों के माध्यम से ज्ञान को सुलभ बनाने का माध्यम है, जबकि संस्कृति वह आधार है जो मूल्य और सामाजिक मानदंडों को संरक्षित करता है। इसके कारण, तकनीक, संस्कृति एवं शिक्षा के ये तीन तत्व एक दूसरे के पूरक हैं और इनका संतुलित समन्वय समाज में सकारात्मक परिवर्तन लाने में सहायक होता है।

चुनौतियाँ एवं अवसर

सांस्कृतिक सततता और आधुनिक ज्ञान प्रौद्योगिकी में संतुलन की चुनौतियाँ डिजिटल युग में तीव्र बदलाव से सांस्कृतिक मूल्यों का क्षरण हो सकता है, जिससे सामाजिक मानदंड प्रभावित होते हैं। पारंपरिक शिक्षा पद्धति और मूल्यों की दीर्घकालिकता को नवाचारों के बीच बनाए रखना कठिन है। उच्च तकनीकी उपयोग से नैतिक शिक्षा और मूल्यपरकता कहीं पीछे चली जा सकती है, जिससे व्यक्ति के सामाजिक और आध्यात्मिक विकास में बाधा आ सकती है। तकनीकी असमानता और डिजिटल डिवाइड के कारण शिक्षा व ज्ञान तक पहुँच में सामाजिक विषमताएँ बढ़ सकती हैं, जो सामाजिक एकता के लिए चुनौति है। मूल्य–आधारित शिक्षा और तकनीकी नवाचार के समन्वय में संभावनाएँ एकात्म मानव दर्शन के सन्दर्भ में तकनीकी नवाचारों का उपयोग शिक्षा को अधिक समावेशी, संवादात्मक और संस्कृति–संवेदक बनाने में किया जा सकता है। तकनीक माध्यम से सांस्कृतिक शिक्षा को युवाओं तक पहुँचाना, उन्हें भारतीय मूल्य और दर्शन से जोड़ना संभव है। मूल्य–आधारित शिक्षा के लिए आधुनिक तकनीकें जैसे डिजिटल लर्निंग, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, और सामाजिक नेटवर्क का नैतिक और कल्याण–केंद्रित उपयोग किया जा सकता है। सामुदायिक शिक्षा और लोक–कला, संस्कृति को संरक्षित और पुनर्जीवित करने के लिए तकनीकी मंचों का विकास अवसर प्रदान करता है।

निष्कर्ष

इस शोध से स्पष्ट होता है कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानव दर्शन की दृष्टि से ज्ञान–प्रौद्योगिकी, सांस्कृतिक मूल्य और शिक्षा की अवधारणा समकालीन सामाजिक मानदंडों में एक संतुलित और समन्वित भूमिका निभा सकती है। तकनीकी प्रगति के साथ–साथ भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है, ताकि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का समग्र विकास संभव हो सके। शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि बहुपरिप्रेक्ष्यीय दृष्टिकोण से शिक्षा,

समाज और तकनीक के तत्वों को संतुलित करते हुए एक ऐसा मॉडल विकसित किया जा सकता है जो आधुनिक युग की चुनौतियों का सामना करते हुए भारतीयता की संजीवनी बनाए रखे।

संदर्भ

1) उपाध्याय, दीनदयाल. (2014). एकात्म मानववाद. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार। (मूल व्याख्यान 22–25 अप्रैल, 1965, मुंबई)
2) पर्मिला, एवं सिंह, जे. (2021). पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद दर्शन. अंतर्राष्ट्रीय बहुविषयक प्रवृत्तियाँ पत्रिका, 3(2), 152–154.
3) ठाकुर, आर. (2023). एकात्म मानववाद : हिन्दू विचार में सामाजिक–राजनीतिक पहचान की खोज। शोधकोश : दृश्य और प्रदर्शन कलाओं की पत्रिका, 4(4), 72–81.
4) धर्मलिंगम, बी. (2024). दीनदयाल उपाध्याय का पुनर्परीक्षण : समकालीन भारतीय राजनीति के लिए एक रूपरेखा के रूप में एकात्म मानववाद. शोधकोश : दृश्य और प्रदर्शन कलाओं की पत्रिका, 5(5), 1219–1226.
5) मिश्रा, आर. (2018). एकात्म मानववाद और भारतीय सामाजिक–राजनीतिक चिंतन. नई दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी।
6) शर्मा, आर. के. (2016). भारत में अंतःस्थ मानववाद और सामाजिक–राजनीतिक विकास. भारतीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका, 23(3), 201–220.
7) पटेल, एस. (2021). प्रौद्योगिकी और समाजरू नवाचार को सांस्कृतिक नैतिकताओं के साथ संतुलित करना. अंतर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी नैतिकता पत्रिका, 9(3), 102–118.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

आदिवासी साहित्य का समाज दर्शन

अविनाश बनर्जी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

आदिवासी साहित्य वह विशिष्ट साहित्यिक विधा है जो आदिवासी समुदाय के सामाजिक ताने–बाने, सांस्कृतिक मूल्यों, परंपरागत मान्यताओं, संघर्षों और जीवन–दर्शन को उनकी अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करती है। यह साहित्य मुख्यधारा की स्थापित मान्यताओं से इतर, आदिवासी अनुभवों और चिंतन को केंद्रीय महत्व प्रदान करता है। समकालीन विमर्शों में आदिवासी साहित्य न केवल अस्मिता की खोज का विषय है, अपितु इसमें राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विमर्श भी अंतर्निहित हैं। यद्यपि, गैर–आदिवासी लेखक भी आदिवासी विषयों पर लेखन कार्य कर रहे हैं, तथापि, उनकी रचनाओं में आदिवासी दर्शन और मूल्यों की गहन समझ का अभाव प्रायः दृष्टिगत होता है। यह साहित्य कई बार बाह्य दृष्टिकोण से लिखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप आदिवासी जीवन की विकृत अथवा भ्रामक छवि प्रस्तुत होने की संभावना बनी रहती है। आदिवासी साहित्य को समुचित रूप से समझने के लिए उसकी समृद्ध मौखिक परंपरा को स्वीकार करना अनिवार्य है। यह साहित्य किसी शास्त्रीय संरचना में आबद्ध नहीं होता, बल्कि अनुभव–आधारित होता है। आदिवासी साहित्य केवल सौंदर्यबोध या आत्म–संतुष्टि के लिए लेखन नहीं है, वरन यह एक प्रतिबद्ध साहित्य है, जो परिवर्तन और संघर्ष की चेतना से अनुप्राणित है।

हिंदी साहित्य के संदर्भ में यह प्रश्न प्रेमचंद से अधिक प्रेमचंद की परंपरा के वाहकों से है कि प्रेमचंद से छूट गया आदिवासी आज भी उनकी परंपरा से क्यों बहिष्कृत है? परंतु, इस प्रश्न का उत्तर न मिलता देख विगत दशकों में इस रिक्तता की पूर्ति हेतु स्वयं आदिवासियों को आगे आना पड़ा। इस शून्य की पूर्ति हेतु आदिवासी समाज के भीतर से ही साहित्य सृजन का कार्य आरंभ हुआ। महाश्वेता देवी ने आदिवासियों के जीवन और संघर्षों को अपने लेखन का विषय बनाया। उन्होंने आदिवासियों की समस्याओं को उजागर किया और उनके अधिकारों के लिए आवाज उठाई। इसके अतिरिक्त, कई अन्य आदिवासी लेखकों ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति, परंपराओं और संघर्षों को अभिव्यक्त किया है। इन लेखकों ने न केवल अपनी पहचान को स्थापित किया है, बल्कि मुख्यधारा के साहित्य को भी समृद्ध किया है। आदिवासी साहित्य का उद्‌भव एक महत्वपूर्ण घटना है, जिसने हाशिये पर खड़े समुदाय को अपनी आवाज उठाने का अवसर प्रदान किया है। यह साहित्य न केवल आदिवासी समाज के लिए, बल्कि समग्र भारतीय साहित्य के लिए भी एक मूल्यवान योगदान है। यह हमें याद दिलाता है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन ही नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और न्याय की स्थापना भी है। आदिवासी साहित्य हमें एक अलग दृष्टिकोण प्रदान करता है और हमें समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने में मदद करता है। यह हमें सिखाता है कि विविधता में एकता ही हमारी शक्ति है और हमें सभी समुदायों के अधिकारों और सम्मान की रक्षा करनी चाहिए। आदिवासी साहित्य का विकास और प्रसार आवश्यक है ताकि उनकी आवाज को और अधिक मजबूती मिल सके और वे समाज में समानता और न्याय प्राप्त कर सकें।

बीज शब्द – आदिवासी दर्शन, राँची का घोषणा, जीवनवादी साहित्य, सहानुभूति तथा स्वानुभूति।

प्रस्तावना

आदिवासी साहित्य, वह साहित्यिक अभिव्यक्ति है जो आदिवासी जीवन, समाज, और उनके विशिष्ट दर्शन को

प्रतिबिंबित करती है। यह साहित्य, आदिवासियों के अनुभवों, संघर्षों, आशाओं, और आकांक्षाओं को वाणी देता है, उनकी संस्कृति, परंपराओं, रीति–रिवाजों, और मान्यताओं को उजागर करता है। विश्व स्तर पर, आदिवासी साहित्य को विभिन्न नामों से जाना जाता है, जो उनकी विशिष्ट पहचान और संदर्भ को दर्शाते हैं। यूरोप और अमेरिका में इसे श्नेटिव अमेरिकन लिटरेचरश, श्कलर्ड लिटरेचरश, श्स्लेव लिटरेचरश तथा श्अफ्रीकन–अमेरिकन लिटरेचरश जैसे नामों से पुकारा जाता है, जो उनके ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों को प्रदर्शित करते हैं। अफ्रीकी देशों में इसे श्ब्लैक लिटरेचरश के नाम से जाना जाता है, जो उनकी नस्लीय पहचान को रेखांकित करता है। ऑस्ट्रेलिया में इसे श्एबोरिजिनल लिटरेचरश कहा जाता है, जो वहाँ के मूल निवासियों की साहित्यिक परंपरा को दर्शाता है। अंग्रेजी में इसे श्इंडीजिनस लिटरेचरश, श्फर्स्ट पीपुल लिटरेचरश एवं श्ट्राइबल लिटरेचरश जैसे नामों से संबोधित किया जाता है, जो उनके मूल निवासी होने के तथ्य पर जोर देते हैं। भारतीय भाषाओं में, सामान्यतः श्आदिवासी साहित्यश शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो उनकी सांस्कृतिक और सामाजिक पहचान को स्पष्ट करता है।

बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में भारतीय समाज में नवीन सामाजिक आंदोलनों का आविर्भाव हुआ। महिलाओं, दलितों और आदिवासियों के नवीन सामूहिक प्रयासों ने ऐसी अपेक्षाएँ और विषय प्रस्तुत किए जिन्हें स्थापित सिद्धांतों और राजनीतिक दृष्टिकोणों से समझना और समाधान करना संभव नहीं था। इन विशिष्ट पहचानों ने अपने ऊपर होने वाले शोषण के लिए अपनी विशिष्ट अस्मिता को आधार बनाते हुए, शोषण और भेदभाव के विरुद्ध संघर्ष हेतु समान अस्मिता वाले समुदायों को संगठित कर अपनी मुक्ति और अधिकारों की रक्षा के लिए सामूहिक अभियान प्रारंभ किए। वंचित वर्ग के शोषण के विरुद्ध आरंभ हुए इन प्रयासों में सामाजिक–राजनीतिक आंदोलनों के साथ–साथ साहित्यिक आंदोलनों ने भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्त्रीवादी साहित्य और दलित साहित्य इसी चेतना के परिणामस्वरूप उभरे हैं।

आदिवासी साहित्य एक जीवनवादी साहित्य है जो आदिवासियों को उनके मूलभूत अधिकारों से वंचित करने वाली सभ्यता के विरुद्ध विद्रोह और अपने अस्तित्व एवं अस्मिता की रक्षा के प्रयास के रूप में प्रकट हुआ है। इस साहित्य ने आदिवासियों की जीवनशैली, उनके संघर्षों और उनकी आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का एक मंच प्रदान किया। यह साहित्य उनकी संस्कृति, परंपराओं और मान्यताओं को संरक्षित करने का भी एक माध्यम बना। आदिवासी साहित्य ने न केवल उनकी समस्याओं को उजागर किया बल्कि उनके समाधान के लिए भी रास्ते सुझाए। इसने समाज के अन्य वर्गों को आदिवासियों की जीवनशैली और उनके संघर्षों को समझने में मदद की। इस प्रकार, बीसवीं सदी के अंत में उभरे ये सामाजिक और साहित्यिक आंदोलन भारतीय समाज में परिवर्तन के महत्वपूर्ण वाहक बने। इन्होंने न केवल वंचित वर्गों की आवाज को बुलंद किया बल्कि समाज के अन्य वर्गों को भी उनकी समस्याओं के प्रति जागरूक किया। ये आंदोलन एक अधिक न्यायसंगत और समतामूलक समाज के निर्माण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम साबित हुए। इन आंदोलनों ने स्थापित मान्यताओं को चुनौती दी और समाज में व्याप्त असमानताओं को दूर करने का प्रयास किया। इस प्रकार, ये आंदोलन भारतीय समाज के विकास और परिवर्तन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं और आगे भी निभाते रहेंगे।

आदिवासी समुदायों में साहित्य समेत विविध कला रूपों का विकास तथाकथित मुख्यधारा से पूर्व ही हो चुका था, किंतु वहाँ साहित्य सृजन की परंपरा लिखित न होकर मौखिक रही। शुद्ध जनभाषा में होने और सत्ता प्रतिष्ठानों से दूरी के कारण यह साहित्य भी आदिवासी समाज की भाँति उपेक्षित रहा। आदिवासी जीवन परंपरा और समाज में 'साहित्य' जैसी कोई रूढ़िगत श्रेणीबद्ध परंपरा विद्यमान नहीं है। स्वाभाविक रूप से वाचिक रहे आदिवासी समाज एक ऐसी सत्ता विहीन सभ्यता और संस्कृति के वाहक हैं जिसमें 'वायदे', 'करार', 'दस्तावेज' आदि के लिए लिखित साहित्य की आवश्यकता अनुभव नहीं की गई। आदिवासी समाज में ज्ञान का संचरण पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक परंपराओं, गीतों, कहानियों, लोककथाओं और अनुष्ठानों के माध्यम से होता रहा है। यह मौखिक साहित्य उनके इतिहास, दर्शन, जीवन मूल्यों, रीति–रिवाजों और सामाजिक संरचना को दर्शाता है। यह साहित्य न केवल उनके जीवन का अभिन्न अंग है, बल्कि उनकी पहचान और अस्तित्व का भी प्रतीक है। आधुनिक युग में लिखित साहित्य के प्रसार के साथ आदिवासी साहित्य को भी लिपिबद्ध करने के प्रयास हो रहे हैं ताकि यह बहुमूल्य ज्ञानराशि सुरक्षित रहे और भावी पीढ़ियों तक पहुँच सके। इसके संरक्षण और संवर्धन के लिए निरंतर प्रयास आवश्यक हैं ताकि इसकी समृद्ध विरासत को सम्मान और पहचान मिल सके। आदिवासी साहित्य भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण धरोहर है और इसे मुख्यधारा में लाने से भारतीय संस्कृति और भी समृद्ध होगी। इस संदर्भ में वाहरू सोनवणे कहते हैं कि – "लिखित ही केवल साहित्य

होता है यह कहना ही आदिवासियों की दृष्टि से असंगत है। साहित्य और कला, साहित्य और जीवन के बीच जो दीवारें खड़ी हैं, उन दीवारों का आदिवासी समाज में कुछ भी स्थान नहीं है। इन व्याख्याओं को बदलना जरूरी है क्योंकि आज आदिवासी समाज में कई प्रथाएँ, लोकगीत और नाटक तथा अनेक अन्य कलाएँ विद्यमान हैं जिसे शब्दबद्ध नहीं किया गया है। हजारों वर्षों से चली आ रही परंपराएँ कभी थमी नहीं। वे परंपराएँ आज भी मौलिक रूप में आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रही हैं।"[1]

किसी भी साहित्यिक आंदोलन का आरंभ किसी विशिष्ट तिथि से अचानक नहीं होता है। उसके उद्‌भव और विकास में विविध परिस्थितियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। भारत सरकार की नवीन आर्थिक नीतियों ने आदिवासी शोषण–उत्पीड़न की प्रक्रिया को तीव्र कर दिया, परिणामस्वरूप उनके प्रतिरोध का स्वर मुखर हुआ। गंगा सहाय मीणा समकालीन आदिवासी लेखन और विमर्श का प्रारंभ नब्बे के दशक के पश्चात मानते हुए उल्लेख करते हैं कि – "1991 के बाद आर्थिक उदारीकरण की नीतियों से तेज हुई आदिवासी शोषण की प्रक्रिया के प्रतिरोधस्वरूप आदिवासी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा के लिए राष्ट्रीय स्तर पर पैदा हुई रचनात्मक उर्जा आदिवासी साहित्य है।"[2]

इस संदर्भ में सरिता देवी का मानना है कि– "हिन्दी में आदिवासी साहित्य का व्यवस्थित रूप विकास सन 1990 के पश्चात् हुआ इससे पूर्व तक साहित्य के क्षेत्र में भी आदिवासी समाज पर बहुत ही कम लिखा गया था। स्वतंत्रता से पहले जो आदिवासी साहित्य लिखा गया है उसमें आदिवासी जीवन की जाँच–पड़ताल बहुत सतही एवं रोमानी दृष्टि से की गई। इस कारण आदिवासी समाज का प्रत्येक संदर्भ रेखांकित नहीं हो पाया। लेकिन बीसवीं सदी के सातवें–आठवें दशक तक आदिवासी साहित्य में जो बदलाव आया तथा उस बदलावों को चित्रित करने वाले साहित्यकारों में कुछ साहित्यकारों ने अथक प्रयास किया है एवं आदिवासी साहित्य को समाज में एक नया मोड़ दिया है।"[3]

आदिवासी साहित्य के माध्यम से आदिवासियों के प्रति अन्याय, अत्याचार और शोषण के विरुद्ध उनकी आवाज बुलंद हुई। आदिवासी समाज की विपरीत परिस्थितियों ने उन्हें अपनी संस्कृति, भाषा और अस्मिता की रक्षा के लिए संघर्ष करने हेतु प्रेरित किया। इस प्रकार आदिवासी लेखन अपने अधिकारों और पहचान की मांग का माध्यम बना। यह लेखन आदिवासी समाज की आंतरिक पीड़ा, संघर्ष और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त करता है। साथ ही, यह उनके जीवन, दर्शन, परंपराओं और मान्यताओं को भी दर्शाता है। यह साहित्य उनकी सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करने और भावी पीढ़ी तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण माध्यम बन गया है। आदिवासी लेखन ने अपनी विशिष्ट भाषा, शैली और विषय–वस्तु के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। यह मुख्यधारा के साहित्य से अलग अपनी एक स्वतंत्र पहचान बना चुका है।

रमणिका गुप्ता कहती हैं कि – "आदिवासियों को गैर आदिवासियों ने जंगली, काहिल, जाहिल, मूरख, सीधा–साधा, भोला (अपमानजनक अर्थों में) या बुद्धू कह कर, एक हीन भावना भर दी कि वे पिछड़े हैं और किसी काबिल भी नहीं हैं। धीरे–धीरे उनमें यह हीन ग्रन्थि विकसित होती गई। आदिवासी साहित्य उन्हें इस ग्रन्थि से मुक्त कराने का हथियार है।"[4]

आदिवासी साहित्य के क्षेत्र में सहानुभूति तथा स्वानुभूति के विषय पर निरंतर विचार–विमर्श जारी है। सहानुभूति के आधार पर रचना करने वाले साहित्यकार भी स्वानुभूति को अधिक महत्त्व प्रदान करते हैं, अतः वे वास्तविक अनुभवों पर आधारित लेखन को अधिक प्रामाणिक मानते हैं। सहानुभूति और स्वानुभूति के विवाद के संदर्भ में दो प्रमुख अवधारणाएँ उभरकर सामने आती हैं – प्रथम, अनुभवकर्ता की पीड़ा और अनुभूति की प्रामाणिकता, तथा द्वितीय, परिस्थिति के प्रति करुणा और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण। अनुभूति की प्रामाणिकता को स्पष्ट करते हुए भीष्म साहनी जी उल्लेख करते हैं कि – "मेरी नजर में उसी रचना में खरापन होगा, जिसके सृजन में लेखक का समूचा सर्जनात्मक व्यक्तित्व यानी उसका संवेदन, उसकी कल्पना, उसका चिंतन और उसकी दृष्टि सक्रिय होते हैं। पर जहाँ तक लेखक के सृजन का सवाल है, किसी सीमा तक ही इन अपेक्षाओं की उपयोगिता रहती है। क्योंकि मूलतः लेखक का संवेदन ही उसे रास्ता सुझाता है। लेखक का सर्जनात्मक व्यक्तित्व इन अपेक्षाओं से नहीं बनता, वह उसके अपने संस्कारों, अनुभवों, चिंतन, पठन–पाठन और उसकी सूझ से बनता है। हाँ, जिस माहौल में वह जीता और साँस लेता है, उस माहौल के प्रति वह निश्चय ही उत्तरोत्तर सचेत होता जाता है।"[5]

आदिवासी समुदाय के हितों को ध्यान में रखकर रचित साहित्य ही वास्तविक अर्थों में आदिवासी साहित्य की श्रेणी में आता है, चाहे वह स्वयं के अनुभवों पर आधारित हो अथवा सहानुभूति पर। परंतु आदिवासी लेखक एवं विचारक

इस विचार से पूर्णतः सहमत नहीं हैं। वे गैर–आदिवासी लेखकों द्वारा रचित साहित्य को श्आदिवासी चेतनाश या आदिवासी सहानुभूति का साहित्य मानने से इनकार करते हैं। इसके पीछे उनका तर्क यह है कि आदिवासी समुदाय के व्यक्ति द्वारा अनुभव की गई पीड़ा, दुःख और वेदना को केवल वही समझ सकता है और पूर्ण ईमानदारी के साथ उसे अभिव्यक्त कर सकता है। गैर–आदिवासी लेखकों की रचनाओं में देखने वाले की सहानुभूति और करुणा की भावना तो हो सकती है, किंतु उसमें अनुभव करने वाले की पीड़ा और अनुभूति की सच्चाई नहीं हो सकती। इसके लिए आदिवासी जीवन शैली की गहरी समझ और दृष्टिकोण का विकसित होना अत्यंत आवश्यक है। इस संदर्भ में रमणिका गुप्ता का कथन उल्लेखनीय है। वे कहती हैं कि – "गैर–आदिवासी भी संवेदना और सहानुभूति से उनके लिए साहित्य लिखे, तो कौन मना करता है उन्हें ? पर यह उनका अनुभवजन्य साहित्य प्रामाणिक आदिवासी साहित्य नहीं माना जा सकता है। इसे उनके महसूस करने की, उनके अहसासों की अभिव्यक्ति माना जा सकता है, सहानुभूति का साहित्य कहा जा सकता है।"[6]

आदिवासी साहित्य, रचाव–बचाव का साहित्य होने के साथ, आदिवासी जीवन–दर्शन को दर्शाता है और कई मायनों में अन्य साहित्य से अलग है। यह विविध परंपराओं और कला रूपों का समुच्चय है, जिसमें सभी कला विधाओं के साथ प्रकृति की भी प्रमुख भूमिका है। सभी कलाएँ एक–दूसरे पर आश्रित हैं। इस संदर्भ में वंदना टेटे का कहना है कि – "आदिवासी साहित्य मूलतः सृजनात्मकता का साहित्य है। यह इंसान के उस दर्शन को अभिव्यक्त करने वाला साहित्य है जो मानता है कि प्रकृति सृष्टि में जो कुछ भी है, जड़–चेतन, सभी कुछ सुंदर है। ...वह दुनिया को बचाने के लिए सृजन कर रहा है। उसकी चिंताओं में पूरी सृष्टि, समष्टि और प्रकृति है। जिसका एक प्रमुख अंग इन्सान भी है।"[7]

आदिवासी लेखन विविधतापूर्ण है और समृद्ध मौखिक परंपरा से लाभान्वित है। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, यात्रा वृत्तांत जैसी विधाओं में आदिवासी और गैर–आदिवासी लेखकों ने आदिवासी जीवन और समाज का चित्रण किया है। आदिवासी समाज व्यक्तिगतता से ज्यादा सामूहिकता को महत्व देता है, इसलिए उसकी परंपरा, संस्कृति, इतिहास, शोषण और प्रतिरोध सभी में सामूहिक जीवन की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श की तरह आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन कोई प्रमुख विधा नहीं है। इस संदर्भ में गंगा सहाय मीणा का मानना है कि – "आदिवासी लेखन में आत्मकथात्मक लेखन केन्द्रीय स्थान नहीं बना सका क्योंकि स्वयं आदिवासी समाज 'आत्म' से अधिक समूह में विश्वास करता है।"[8]

आदिवासी समाज एवं जीवन–दर्शन के अध्ययन हेतु 14–15 जून, 2014, को राँची में आयोजित 'आदिवासी दर्शन और समकालीन आदिवासी साहित्य सृजन' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय संगोष्टी के समापन सत्र में वंदना टेटे द्वारा प्रस्तुत 15 सूत्री श्राँची घोषणा–पत्रश एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। इस घोषणा–पत्र के अनुसार, आदिवासी साहित्य का स्वरूप आदिवासी दर्शन के अनुरूप होना आवश्यक है। इसके मूलभूत तत्व निम्नलिखित हैं–

"1. प्रकृति की लय–ताल और संगीत का जो अनुसरण करता हो। 2. जो प्रकृति और प्रेम के आत्मीय संबंध और गरिमा का सम्मान करता हो। 3. जिसमें पुरखा–पूर्वजों के ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल और इंसानी बेहतरी के अनुभवों के प्रति आभार हो। 4. जो समूचे जीव जगत की अवहेलना नहीं करें। 5. जो धनलोलुप और बाजारवादी हिंसा और लालसा का नकार करता हो। 6. जिसमें जीवन के प्रति आनंदमयी अदम्य जिजीविषा हो। 7. जिसमें सृष्टि और समष्टि के प्रति कृतज्ञता का भाव हो। 8. जो धरती को संसाधन की बजाय माँ मानकर उसके बचाव और रचाव के लिए खुद को उसका संरक्षक मानता हो। 9. जिसमें रंग, नस्ल, लिंग, धर्म आदि का विशेष आग्रह न हो। 10. जो हर तरह की गैर–बराबरी के खिलाफ हो। 11. जो भाषाई और सांस्कृतिक विविधता और आत्मनिर्णय के अधिकार के पक्ष में हो। 12. जो सामंती, ब्राह्मणवादी, धनलोलुप और बाजारवादी शब्दावलियों, प्रतीकों, मिथकों और व्यक्तिगत महिमामंडन से असहमत हो। 13. जो सहअस्तित्व, समता, सामूहिकता, सहजीविता, सहभागिता और सामंजस्य को अपना दार्शनिक आधार मानते हुए रचावबचाव में यकीन करता हो। 14. सहानुभूति, स्वानुभूति की बजाय सामूहिक अनुभूति जिसका प्रबल स्वर–संगीत हो। 15. मूल आदिवासी भाषाओं में अपने विश्वदृष्टिकोण के साथ जो प्रमुखतः अभिव्यक्त हुआ हो।" [9]

निष्कर्ष

आदिवासी साहित्य विविधतापूर्ण है। आदिवासी साहित्यकारों को एक समृद्ध मौखिक परंपरा का लाभ प्राप्त हुआ है। स्त्री साहित्य एवं दलित साहित्य की भांति आदिवासी साहित्य की कोई एक केंद्रीय विधा नहीं है, जैसे

आत्मकथात्मक लेखन। आदिवासी रचनाकारों ने अपनी अस्मिता और अस्तित्व के संघर्ष में कविता को प्रमुख माध्यम के रूप में अपनाया है। आदिवासी साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन केंद्रीय स्थान प्राप्त नहीं कर सका क्योंकि आदिवासी समाज स्वयं श्आत्मश के बजाय श्समूहश में विश्वास रखता है। अधिकांश आदिवासी समुदायों में निजी और निजता की अवधारणाएँ देर से विकसित हुईं। परंपरा, संस्कृति, इतिहास, कला से लेकर विद्रोह तक, सभी कुछ सामूहिक है और समूह की अभिव्यक्ति आत्मकथा की तुलना में जनकविता में अधिक प्रभावी ढंग से होती है। आदिवासी साहित्य बिरसा, सिदो कान्हू, सिनगी दई, फूलो झानो, माकी मुंडा, गोंड रानी दुर्गावती और अन्य आदिवासी पूर्वजों के जीवन और आंदोलनों से प्रेरणा और चेतना प्राप्त करते हुए आगे बढ़ रहा है। आदिवासी साहित्य में प्रकृति, जीवन, मृत्यु, संघर्ष, प्रेम, श्रम, उत्पीड़न, शोषण, परंपरा, संस्कृति, रीति–रिवाज, त्यौहार, पर्व, देवी–देवता, पूजा–पाठ, जन्म–मरण, विवाह, भूत–प्रेत, जादू–टोना आदि से जुड़े विषयों का विशद चित्रण मिलता है। यह साहित्य मौखिक और लिखित दोनों रूपों में उपलब्ध है। लोकगीत, लोककथाएँ, कहानियाँ, कविताएँ, नाटक आदि विधाओं में आदिवासी जीवन के विविध रंग देखने को मिलते हैं। आदिवासी साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति, परंपरा और पहचान को बचाए रखने का प्रयास करते हैं। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं और शोषण, उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाते हैं।

आदिवासी साहित्य न केवल आदिवासी समाज के लिए बल्कि समूचे मानव समाज के लिए महत्वपूर्ण है। यह हमें प्रकृति के साथ जीवन जीने की कला सिखाता है, साथ ही हमें मानवीय मूल्यों और संवेदनाओं से भी जोड़ता है। यह साहित्य हमें विविधता में एकता का संदेश देता है और एक बेहतर समाज के निर्माण की प्रेरणा प्रदान करता है। डॉ. नाजिश बेगम लिखती है कि – "आदिवासी साहित्य में आत्मसजग अभिव्यक्तियों का एक ऐसा प्रखर स्वर सम्मिलित है, जो दीर्घ समय से शोषित, उत्पीड़ित और वंचित आदिवासी समाज की चेतना को दिन ब दिन तीव्र और प्रखर बना रहा है। लेखकों ने कविता–कहानी, उपन्यास और नाटकों में आदिवासी जन–जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए हैं।"[10]

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. आदिवासी दर्शन और साहित्य, वंदना टेटे, नोशन प्रेस, 2021, पृष्ठ सं. 19–20
2. आदिवासी साहित्य विमर्श, गंगा सहाय मीणा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ सं. 09
3. समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य, श्रवण कुमार मीणा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ सं. 70–71
4. कथाक्रम, अविनाश कुमार सिंह, अक्टूबर–दिसंबर 2011, पृष्ठ सं. 16
5. कसौटी, भीष्म साहनी, अंक :1, पृष्ठ सं. 13
6. दलित हस्तक्षेप, रमणिका गुप्ता, पृष्ठ सं. 19
7. आदिवासी साहित्य : परंपरा और प्रयोजन, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, 2013, पृष्ठ सं. 87–88
8. आदिवासी साहित्य विमर्श, गंगा सहाय मीणा, अनामिका प्रकाशन, दिल्ली, 2014, पृष्ठ सं. 10
9. आदिवासी दर्शन और साहित्य, वंदना टेटे, नोशन प्रेस, 2021, पृष्ठ सं. 49–50
10. समकालीन विमर्श : बदलते परिदृश्य, श्रवण कुमार मीणा, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ सं. 55

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

उत्तराखंड की राजनीति में महिलाओं की भूमिका
(विधान सभा निर्वाचन के सन्दर्भ में)

शिवानी
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर, पिथौरागढ़

सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात् भी राजनीति में महिलाओं का प्रतिनिधित्व अन्य क्षेत्रों के मुकाबले बहुत कम रहा है। राजनीति के क्षेत्र में महिलाओं के प्रतिधित्व को बढाने के उद्देश्य से 73 वें तथा 74 वें संविधान संसोधन अधिनियम के माध्यम से महिलाओं को स्थानीय निकायों में आरक्षण दिया गया है। कुछ राज्यों में यह सीमा 33ः है तो वही कुछ राज्यों में यह सीमा 50ः है। उत्तराखंड में भी सरकार के द्वारा पंचायतों में महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2008 में, उत्तरप्रदेश पंचायत राज (संसोधन) विधेयक 1994 में संसोधन करने के उद्देश्य से पंचायतों में महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए वर्ष 2008 में उत्तर प्रदेश पंचायती राज (संसोधन) विधेयक 1994 में संसोधन करने के उद्देश्य से पंचायती राज संसोधन विधेयक 2008 पारित किया। इस विधेयक के माध्यम से उत्तराखंड में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं को पचास प्रतिशत आरक्षण प्राप्त हुआ (https://panchayat-gov.in)।

सरकार द्वारा किये गये अनेक प्रयास के पश्चात् भी राजनीति में महिलाओं की संख्या, अन्य क्षेत्रों के मुकाबले नगण्य है। इस शोध पत्र के अंतर्गत उत्तराखंड राज्य के विधान सभा चुनावों में महिलाओं की भूमिका एवं प्रतिनिधित्व का अध्ययन किया गया है।

उत्तराखंड का भगौलिक परिचय

53,483 वर्ग किलोमीटर में फैला उत्तराखंड राज्य, 28–44′ से 31–28′ मिनट उत्तरी अक्षांश तथा 77–35′ से 81–1′ पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल, हिमालय के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल का 10.3ः है जो पश्चिम में टोंस नदी (यमुना की सहायक नदी) से लेकर पूर्व में काली नदी तक फैला हुआ है(नेगी,03:2012)।

उत्तराखंड का विधान सभा क्षेत्र

उत्तराखंड को प्रशासनिक दृष्टि से 2 मंडलों, कुमाऊँ और गढ़वाल तथा 13 जिलों में वर्गीकृत किया गया है। उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 के द्वारा उत्तराखंड राज्य के लिये विधानसभा सीटों की संख्या 70, लोकसभा सीटों की संख्या 05 तथा राज्यसभा में सीटों की संख्या 03 निर्धारित की गयी है। उत्तरप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 की धारा में इस बात का स्पष्ट प्रावधान किया गया है कि "उत्तरप्रदेश और उत्तरांचल राज्यों कि विधानसभा में स्थानों की संख्या क्रमशः 400 और 70 होगी"(उत्तरप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम– 2000,पृ.सं.–02)।

उत्तराखंड की अनंतिम विधान सभा

राष्ट्रपति के द्वारा विधेयक को अधिनियमित किये जाने के पश्चात् 9 नवम्बर 2000 का दिन उत्तरांचल राज्य के गठन के लिये तय किया गया था। 9 नवंबर से पूर्व राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के उद्देश्य

से सरकार का गठन करना आवश्यक था। उत्तरांचल राज्य का निर्माण, उत्तरप्रदेश राज्य के 13 पर्वतीय जिलों को मिलाकर किया गया था इसीलिये इन तेरह पर्वतीय जिलों के सभी राज्य विधान सभा एवं विधान परिषद के सदस्यों को मिलाकर अनंतिम विधानसभा का गठन किया गया(फोनिया,166:2013)। प्रायः उत्तरप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम 2000 में अनंतिम विधानसभा हेतु सदस्यों की संख्या 31 निर्धारित की थी (http://himwantuk.com)। विधान सभा के गठन से पूर्व उत्तरप्रदेश की विधान परिषद् के एक सदस्य का कार्यकाल पूरा हो जाने के कारण उत्तराखंड की अनंतिम विधान सभा में सदस्यों की संख्या तीस थी। तीस सदस्यों में से केवल दो महिलाओं इंद्रा हृदयेश और निरुपमा गौर को अनंतिम विधान सभा में शामिल किया गया था।

प्रथम विधान सभा चुनाव 2002

भारत निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित तिथि के अनुरूप 14 फरवरी 2002 को सम्पूर्ण राज्य में विधानसभा के सदस्यों के निर्वाचन में कुल उन्नतीस राजनीतिक दलों के नौ सौ सत्ताईस प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया कुल उन्नतीस राजनीतिक दलों के नौ सौ सत्ताईस प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। नौ सौ सत्ताईस प्रतिभागियों में से निर्वाचन में प्रतिभाग करने वाली महिला प्रतिभागियों की संख्या मात्र बहत्तर थी। वर्ष 2002 के निर्वाचन में महिलाओं की भागीदारी की स्थिति का वर्णन निम्न है।

(a) महिला प्रतिभागियों की संख्या : 72	
(b) मतदाताओं की स्थिति	महिला
मतदाताओं की संख्या	25,57,028
मतदाता जिन्होंने मतदान किया	13,45,902
मतप्रतिशत	52.64%

स्रोत– STATISTICAL REPORT ON GENERAL ELECTION, 2002 TO THE LEGISLATIVEASSEMBLY OF UTTARANCHAL

वर्ष 2002 के निर्वाचन में, सत्तर विधान सभा क्षेत्रों में कुल बहत्तर महिलाओं ने भाग लिया जिसमें से केवल चार महिलाओं को जनता का प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। बिरौखाल विधान सभा क्षेत्र (इस निर्वाचनक्षेत्र को वर्ष 2012 के परिसीमन के बाद समाप्त कर दिया गया) से अमृता रावत, केदारनाथ विधान सभा क्षेत्र से आशा देवी, हल्द्वानी विधान सभा क्षेत्र से इंद्रा हृदयेश एवं यमकेश्वर विधानसभा क्षेत्र से विजया बर्थवाल को 2002 के निर्वाचन में प्रतिनिधित्व प्राप्त।

वर्ष 2007 का विधान सभा चुनाव

21 फरवरी 2007 को सम्पूर्ण उत्तराखंड राज्य में, विधान सभा सदस्यों के निर्वाचन के लिये प्रत्यक्ष मतदान का आयोजन किया गया। इस निर्वाचन में कुल 785 प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। जिसमें से महिला प्रतिभागियों की संख्या मात्र 56 थी।

(a) प्रतिभागियों की संख्या : 56	
(b) मतदाताओं की स्थिति	महिला
मतदाताओं की संख्या	2946311
मतदाता जिन्होंने मतदान किया	1751589
मतप्रतिशत	59.45%

स्रोत– STATISTICAL REPORT ON GENERAL ELECTION, 2007 TO THE LEGISLATIVE ASSEMBLY OF UTTARANCHAL, PAGE NO- &04

वर्ष 2007 के निर्वाचन में कुल सत्तर विधान सभा निर्वाचन क्षेत्रों में छपन्न महिलाओं ने प्रतिभाग किया। इस वर्ष निर्वाचन में प्रतिभाग करने वाली महिलाओं की संख्या, वर्ष 2007 में निर्वाचन में प्रतिभाग करने वाली महिलाओं से अधिक

थी। सत्तर सीटों में छ्पन्न महिलाओं में से केवल चार महिलाओं को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ था। यमकेश्वर विधान सभा क्षेत्र से विजया बर्थवाल को, बीरोंखाल विधान सभा क्षेत्र से अमृता रावत को, केदारनाथ विधान सभा क्षेत्र से आशा देवी को एवं चम्पावत से वीना महराना को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ।

वर्ष 2012 का विधान सभा चुनाव

वर्ष 2007 से लेकर 2012 तक के पाँच वर्ष के कार्यकाल के दौरान उत्तराखंड में लगातार तीन बार मुख्यमंत्री बदले गये। इस राजनीतिक अस्थिरता के साथ उत्तराखंड में भाजपा सरकार ने अपना पाँच वर्षों का कार्यकाल पूरा किया।निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित की गयी तिथि 30 जनवरी 2012 को मतदान कराने के लिये 12 जनवरी 2012 को निर्वाचन में प्रतिभाग करने वाले प्रत्याशियों का नामाकंन किया गया। नामांकन की प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् 30 जनवरी 2012 को राज्य में होने वाले विधानसभा चुनाव कुल 788 प्रत्याशियों ने प्रतिभाग किया। 788 प्रत्याशियों में से निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रत्याशियों की संख्या मात्र 63 थी। इस वर्ष निर्वाचन में, वर्ष 2007 की तुलना में महिला प्रतिभागियों की संख्या में वृद्धि हुई थी। वर्ष 2012 के विधान सभा निर्वाचन में महिलाओं की मतदाता के रूप में एवं प्रतिनिधि के रूप में स्थिति का वर्णन अधोलिखित है।

महिला प्रतिभागियों की संख्या– 63	
मतदाताओं के प्रकार	महिला
मतदाता की कुल संख्या	29,93,610
मतदाता जिन्होंने मतदान किया	20,60,723
कुल	5054333
मतदान प्रतिशत	65.74%

स्रोत – Chief electoral Officer Uttarakhand

इस वर्ष महिला मतदाताओं का मतदान प्रतिशत, वर्ष 2007 की तुलना में अधिक रहा। वर्ष 2012 में सत्तर विधान सभा सीटों में पाँच महिलाओं को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ। पिछले दो पंचवर्षीय चुनावों से इस वर्ष महिला के प्रतिनिधित्व में हुई थी। केदारनाथ विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से शैलानी रावत को, यमकेश्वर विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से विजय बर्थवाल को, नैनीताल विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से सरिता आर्या को, हल्द्वानी विधान सभा क्षेत्र से इंद्रा हृदयेश को एवं रामनगर विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से अमृता रावत को जनता का प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

वर्ष 2017 का विधान सभा चुनाव

वर्ष 2016 में राज्य में राष्ट्रपति शासन, राजनीतिक अस्थिरता को झेलते हुये कांग्रेस की सरकार ने अपना पाँच वर्ष का कार्यकाल पूरा किया। नई विधान सभा के गठन हेतु निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित कार्यक्रम के अनुरूप 27 जनवरी 2017 को, निर्वाचन में भाग लेने वाले प्रत्याशियों का नामांकन किया गया। नामांकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया पूरी होने के पश्चात् 15 फरवरी 2017 को राज्य में होने वाले निर्वाचन में 221 राष्ट्रीय और राज्य राजनीतिक दल के 115 रजिस्ट्रीकृत राजनीतिक दलों के (राष्ट्रीय और राज्य राजनीतिक दलों से भिन्न) के तथा 257 निर्दलीय प्रत्याशियों ने प्रतिभाग किया। इस प्रकार निर्वाचन में कुल 637 प्रत्याशियों ने भाग लिया। 637 प्रत्याशियों में से निर्वाचन में भाग लेने वाली महिला प्रत्याशियों की संख्या मात्र 62 थी। वर्ष 2017 के निर्वाचानमें महिलाओं की राजनीति में भागीदारी का वर्णन निम्न है।

(a) प्रत्याशी	महिला
प्रतिभागी प्रत्याशी	62
विजयी प्रत्याशी	05
(b) मतदाताओं का विवरण	
मतदाताओं के प्रकार	महिला

सामान्य मतदाताओं की संख्या	3572029
सर्विस मतदातों की संख्या	30772
कुल	3602801
महिलाओं का मतदान प्रतिशत	68.72%

स्रोत – constituency wise report of electors in the final roll- 2017 (as on 10è01/2017)

वर्ष 2017 में महिलाओं का मतदान प्रतिशत, वर्ष 2012 से अधिक रहा। महिलाओं के मतदान प्रतिशत के लगातार बढ़ने के पश्चात् भी विधान सभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में बढ़ोत्तरी नहीं हुई। विगत पंचवर्षीय चुनाव की तरह इस वर्ष भी विधान सभा में केवल पाँच महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।भगवानपुर विधान सभा सीट से ममता राकेश, यमकेश्वर विधान ससभा सीट से ऋतु खंडूरी, गंगोलीहाट विधान सभा सीट से मीना गंगोला, सोमेश्वर विधान सभा सीट से रेखा आर्या एवं हल्द्वानी विधान सभा सीट से इंद्रा हृदयेश को विधान सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ।

वर्ष 2022 का विधान सभा चुनाव

20 मार्च 2017 को गठित राज्य विधानसभा का कार्यकाल 23 मार्च 2020 को पूरा होने वाला था। इस 5 वर्ष के कार्यकाल को तीन मुख्यमंत्रियों के माध्यम से पूरा किया। भारतीय संविधान के प्रावधानों के अनुरूप सरकार के पाँच वर्ष के कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व निर्वाचन आयोग के द्वारा उत्तराखंड राज्य की विधान सभा के लिए निर्वाचन की घोषणा की गयी। निर्वाचन आयोग के द्वारा निर्धारित तिथि के अनुरूप, वर्ष 2012 में हुये परिसीमन के आधार पर निर्धारित 70 विधान सभा सीटों के लिए सम्पूर्ण राज्य में 14 फरवरी 2022 को निर्वाचन आयोजित किया गया। वर्ष 2022 के निर्वाचन में महिलाओं की भागीदारी का विवरण निम्न है।

(a) मतदाताओं की संख्या	
मतदाताओं के प्रकार	महिला
कुल मतदाता	39,32,995
मतदाता जिन्होंने मतदान किया	26,53,642
(b) मतदान प्रतिशत	62.60%
(c) महिला प्रत्याशी	63
(d) विजयी महिला प्रत्याशी	08

वर्ष 2022 के निर्वाचन में महिलाओं का मतदान प्रतिशत पुरुषों की तुलना में अधिक था लेकिन वर्ष 2017 के निर्वाचन में महिलाओं के मतदान प्रतिशत से कम था। राज्य गठन के पश्चात् वर्ष 2022 में सर्वाधिक महिलाओं को जनता का प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ। इस वर्ष कुल 8 महिलों को जनता का समर्थन प्राप्त हुआ। केदारनाथ विधान सभा निर्वाचन क्षेत्र से शैलानी रावत, देहरादून कांट से सरिता कपूर, भगवानपुर से ममता राकेश, हरिद्वार ग्रामीण से अनुपमा रावत, यमकेश्वर से रेनू बिष्ट, कोटद्वार से ऋतु खंडूरी, सोमेश्वर से रेखा आर्या एवं नैनीताल से सरिता आर्या को जन समर्थन प्राप्त हुआ।

निष्कर्ष

उत्तराखंड राज्य के गठन के बाद राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था को सुचारू रूप से सम्पन्न कराने के उद्देश्य से गठित विधान सभाओं में महिलाओं की भागीदारी और प्रतिनिधित्व के उपरोक्त वर्णित आकड़ों के आधार पर यह स्पष्ट है कि जहाँ आज महिलाएं अपने मताधिकार को लेकर जागरूक हैं उनका मतदान प्रतिशत पुरुषों से बढ़ा हैं वहीं विधान सभा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व में कोई विशेष बदलाव नहीं आया है। आज जहाँ हर क्षेत्र में महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कन्धा मिलाकर चल रही हैं वहीं महिला प्रतिनिधित्व के संदर्भ में राजनीति का क्षेत्र महिलों के अत्यंत पिछड़ा हुआ है। जिस तरह स्थानीय निकाय के निर्वाचन में महिला प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए सरकार के द्वारा 50ः आरक्षण को लागू किया गया हैं, जिसका सकारात्मक परिणाम हमें स्पष्ट दिखाई देता है उसी प्रकार राज्य विधान सभा

में महिलाओं के प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देने के लिए भी सरकार को, निर्वाचन आयोग को अनेक कदम उठाने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. फोनिया, केदार सिंह : उत्तरांचल से उत्तराखंड ...के 12 वर्ष :2013 : इदा फोनिया, नेहरू कॉलोनी, देहरादून।
2. नेगी, वी.डी.एस. : कुमाऊँ (मध्य हिमालय) समाज एवं संस्कृति : 2012 : मल्लिका बुक्स दिल्ली।
3. उत्तरप्रदेश पुनर्गठन अधिनियम– 2000,पृ.सं.–02
4. STATISTICAL REPORT ON GENERAL ELECTION-2002 TO THE LEGISLATIVE ASSEMBLY OF UTTARANCHAL, PAGE NO.- 04?
5. STATISTICAL REPORT ON GENERAL ELECTION, 2007 TO THE LEGISLATIVE ASSEMBLY OF UTTARANCHAL, PAGE NO. -04?
6. Constituency Wise Report of Electors in the Final Roll- 2017 (as on 10/01/2017)
7. Chief electoral Officer Uttarakhand-2017 ?
8. Chief electoral Officer Uttarakhand-2022 ?
9. https://panchayat.gov.in Adhigaman date 7/10/2024?
10. http://himwantuk.com Adhigaman date - 15/10/2024?

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर के रूप में मां हाट कालिका शक्ति पीठ

अमन कुमार
शोधार्थी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर, परिसर पिथौरागढ़

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र ''सामाजिक–सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर के रूप में मां हाट कालिका मंदिर" से संबंधित है, जिसमें 8वीं शताब्दी के दौरान आदि गुरु शंकराचार्य द्वारा 'तंत्र शास्त्र' एवं 'रूद्रयामल' विधि द्वारा मां भगवती (हाट कालिका) की शक्तियों को कीलित करने के पश्चात् यहाँ मंदिर के निर्माण का कार्य किया था, जिसकी जानकारी मंदिर के गर्भ गृह में स्थित शंकराचार्य द्वारा ताम्र धातु से निर्मित 'महाकाली यंत्र' से प्राप्त होती है, मध्यकाल में चंदकालीन मणकोटी राजाओं द्वारा स्थापित शिलालेख एवं जहानवी नौला ताम्रपत्र के साथ–साथ मण राजा द्वारा 'गुंठ भूमि' (मंदिर को दान दी गई भूमि) से संबंधित ताम्र–पत्रों के माध्यम से जानकारी एकत्र करके शोध–पत्र का कार्य किया गया है।

मुख्य शब्द – हाट कालिका, शक्तिपीठ, भोग व्यवस्था, अभिलेख, ताम्रपत्र

मां हाट कालिका शक्ति पीठ



काली काली महाकाली भद्रकाली नमोस्तुते।
उग्रतारा हाट काली, भैरव काली नमोस्तुते।।
(पर्वत प्रेरणा, 6 : 24 अगस्त 2015)

मां हाट कालिका का पावन मन्दिर गंगोलीहाट बाजार के उत्तर–पूर्व में सुरम्य देवदार वृक्षों के मध्य स्थित है, मुख्य बाजार से मन्दिर कि दूरी सड़क मार्ग से लगभग 800 मीटर है तथा मंदिर में पहुचने हेतु अन्य दो पैदल मार्ग भी है, यह दोनों पैदल मार्ग प्राचीन एवं ऐतिहासिक है, क्योंकि इन पैदल मार्गों का मिलन जिस स्थान पर होता है वहां प्राचीन मन्दिरों का एक समूह है, जिसे जहान्वी देवी नौला (जन देवी नौला) या राम मन्दिर समूह कहते है, कहा जाता है कि 1961 से पूर्व यहीं गंगावाली क्षेत्र का मुख्य बाजार 'हाट' एवं प्राचीन संस्कृत विद्यालय स्थित था, इस मन्दिर समूह से लगभग 400 मीटर की दूरी पर ही मां हाट काली का 'शक्तिपीठ' स्थित है। यह मन्दिर 29^0 39^0 26^0 उत्तरी अक्षांश रेखा और 80^0 02^0 50^0 पूर्वी देशांतर रेखा पर स्थित है तथा समुद्र सतह से 1684 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है।(नरसिंह, 287 : 2017)

देवी भागवत और मार्कण्डेय पुराण में इस स्थल को 'मणिद्वीप' कहा गया है, देवी से संबन्धित गाथा इसी मन्दिर से जुड़ी है। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि सरयू और रामगंगा के मध्य स्थित होने के कारण इस क्षेत्र के लिये 'गंगावाली' और 'मणिद्विप' शब्द का प्रयोग किया गया होगा। (उनियाल, 374 : 2014) इसके अलावा महाकाली मन्दिर का वर्णन यों तो अनेक ग्रंथो में उपलब्ध है परंतु स्कन्दपुराण के 'मानसखण्ड' के अध्याय 96 में विशेष रूप से

इसका उल्लेख किया गया है –

शैलोद्देशे महाभागाः क्षेत्रं काल्याः प्रशस्यते। कालिकेति च विख्याता शैलोद्देशेऽतिशोभने।३।
वधाय दितिजेन्द्राणां कौशिकी याऽभवत् पुरा। तया चण्डश्च मुण्डश्च निहतौ दातवोत्तमौ।४।
रक्तबीजस्य रुधिरं यया पीतं तपोधनाः। शैलोद्देशे महापुण्या कालिका कालनागिनी।५।
घोररूपा विशालाक्षी भक्तानां परिरक्षिणी। शैलस्य पूर्वभागे वं पूजिता देवनायकैः।६।
तत्रावासं चकाराशु शैले देवप्रपूजिते। शक्तिभिर्देवमुख्यानां तथा षोडशमातृभिः।७।
तथा विद्याधरैर्देवी पूजिता मुनिसत्तमाः। पापात्मानो महाकालीं न द्रष्टुं शकनुवन्ति हि।८।

(पाण्डेय, 413 : 1989)

अर्थात 'शैल' पर्वत के उत्तर–प्रदेश में कालिका विराजमान हैं। उन्होंने ही पहले 'कौशिकी' नाम से 'चण्ड मुण्ड' वध तथा 'रक्तबीज' का रुधिर–पान किया था। वह काल को भी कलित करने वाली एवं दैत्यों का नाश करने वाली 'काली' 'शैल' पर्वत पर विराजमान हैं। वही देवी 'त्रिशूल','पट्टिश', 'पाश', 'मुद्गगर', 'शक्ति' एवं 'प्रास' (वछी) आदि धारण करने वाली घोररूपा विशालाक्षी होने के साथ ही भक्तों के लिए वरदा 'काली' हैं। उहोंने 'शैल' पर्वत के पूर्व भाग में वास किया है। वह देवताओं की मुख्य शक्तियों, सोलह 'मातृकाओं' तथा 'विद्याधरों' से सेवित हैं। उनके समक्ष पापात्मा नहीं जा सकते। उन 'कालिका' के स्मरण–मात्र से कलि–कल्मषों का नाश, बालग्रहों तथा बलवान् ग्रहों का निराकरण हो जाता है। राक्षस भाग जाते हैं। मानवों को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वह देवों से सेवित हैं। प्रसन्न होने पर अभीष्ट प्रदान करती हैं, रुष्ट होने पर विनाश भी कर देती है। (पाण्डेय, 413 : 1989)

किवदंती है कि महिषासुर, चंडमुंड सहित शुम्भ–निशुम्भ जैसे राक्षसों का वध करने के बाद भी महाकाली का जब यह रौद्र रूप शांत नहीं हुआ और महाकाली ने इस क्षेत्र में महा विकराल ज्वाला का रूप धारण कर तांडव मचा दिया था तब महाकाली ने जगन्नाथ व भुवनेश्वर नाथ को आवाज लगानी शुरू कर दी, कहा जाता है कि यह आवाज जिस किसी के कान में भी पढ़ती थी वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। (उनियाल, 110 : 2005)

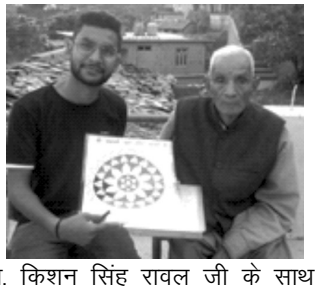
8वी शताब्दी में आदि गुरु शंकराचार्य अपने भारत भ्रमण के दौरान पशुपतिनाथ मंदिर से केदारनाथ मंदिर की पैदल यात्रा कर रहे थे उस समय शंकराचार्य को ज्ञात हुआ कि दारूगिरी के 'शैल' पर्वत क्षेत्र में महाकाली उग्र ज्वाला के रूप में विद्यमान है (लेख–किशन सिंह रावल,04) शंकराचार्य को इस क्षेत्र में आने की इच्छा जागृत हुई लेकिन शंकराचार्य के इस स्थान पर पहुँचने पर जब आदि शंकराचार्य ने मां महाकाली के उग्र स्वरूप और वहाँ प्रचलित नरबलि की परंपरा की कथा सुनी, तो उन्होंने इस देवी स्थल की मान्यता को स्वीकार करने से पूर्णतया इंकार कर दिया। परंतु कुछ समय बाद जब वे मां महाकाली की अद्भुत शक्ति और महिमा से परिचित हुए, तो अपने कटु वचनों के लिए उन्हें गहरा पश्चाताप हुआ। उन्होंने देवी से क्षमा याचना की, जिसके उपरांत महाकाली के रौद्र रूप को शांत किया गया। जिस स्थान से ज्वालाएँ प्रकट होती थीं, उसे 'तंत्र शास्त्र' और 'रुद्रयामल' की विधियों के अनुसार कीलित किया गया। (उनियाल, 110 : 2005)

मान्यता है कि जिस स्थान पर यह शक्तिपीठ स्थित है, वहाँ आज भी माँ महाकाली ज्वाला स्वरूप में विद्यमान हैं। देवी को सात कढ़ाई से आच्छादित किया गया है। वास्तविक शक्तिपीठ ताम्रकुंड के मध्य में अवस्थित है, जहाँ लगभग डेढ़ फीट ऊँची अर्धगोलाकार प्रस्तर शिला रखी है, जिसे शालिग्राम शिला कहा जाता है। उसके ऊपर ताम्र धातु से निर्मित महाकाली यंत्र प्रतिष्ठित है, जिसे 8वीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य ने स्थापित किया था।(लेख–किशन सिंह रावल,05)

शंकराचार्य द्वारा ताम्रपत्र पर निर्मित महाकाली यंत्र







स्व. किशन सिंह रावल जी के साथ
शोधार्थी 18 / 04 / 2023

महाकाली यंत्र में चिन्हित आकृतियों का अर्थ :-



1. सर्वप्रथम इस ताम्रधातु से निर्मित कालिका यंत्र के मध्य में त्रिकोणीय आकृति बनी हुई है।



2. इसके बाद षडकोण की आकृति बनी हुई है जो नकारात्मकता को रोकती है मूल यंत्र में स्पष्ट नजर नहीं आती ।



3. इसे षडकोणीय सितारा (स्टार ऑफ़ डेविड) भी कहा जाता है भारतीय परम्परा में शिव-शक्ति के मिलन का प्रतीक बन जाता है यह तांत्रिक विधि को परिलक्षित करता है।



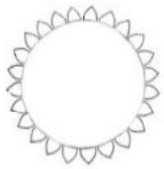
4. ताम्रधातु से निर्मित कालिका यंत्र में दोहरी गोलाकार परिधि की आकृति प्रतीत होती है।



5. सर्प दस कमल को वृत्त से रक्षित किया गया है ।

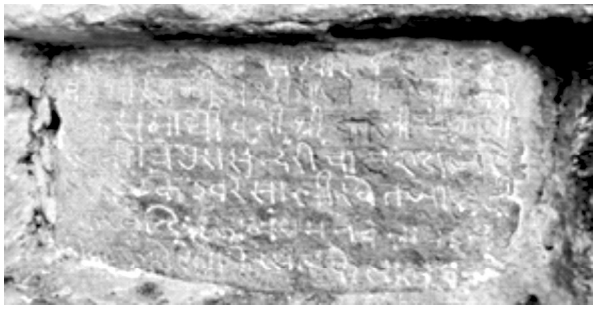


6. दस कमल के पश्चात् गोलाकार आकृति के भीतर 17 पुष्प कमल दल हैं जिसमें चार,चार,चार फिर पांच अनुलोम-विलोम अवस्था में त्रिकोण की आकृति बनी हुई है।



7. अंतिम स्थान पर चतुर्विंशति (24) पुष्प कमल दल कि आकृति बनी हुई। है

नागा संप्रदाय के विख्यात संत श्री 1008 जंगम बाबा शंकर गिरी भी शक्तिपीठ के दर्शन हेतु यहां रुद्र दत्त पंत के साथ आए थे, कठिन तपस्या एवं साधना से उन्होंने हाट कालिका मंदिर का निर्माण करायाप मंदिर निर्माण से संबंधित एक कहानी यह प्रचलित है कि जब मंदिर परिसर के क्षेत्र में पत्थरों की भारी कमी होने के कारण मंदिर निर्माण कार्य बाधित हुआ तब जंगम बाबा इस संदर्भ में विचार कर रहे थे कि उन्हें मां भगवती के साक्षात्कार हुए और मंदिर परिसर के कुछ ही दूरी पर पत्थरों की खान दिखाई दी, यह बात उन्होंने उपस्थित भक्तों से कही तो मां के द्वारा बताये गये स्थान पर जब स्थानीय लोगों द्वारा निरीक्षण किया गया तो वहां पर्याप्त मात्रा में पत्थरों की खान मिली, जिससे मंदिर निर्माण कार्य सुचारू रूप से चल गया। बताते हैं कि उसके बाद वह पत्थरों की खान स्वयं ही लुप्त हो गयी। (पर्वत प्रेरणा, 6 : 24 अगस्त 2015)



जंगम बाबा शंकर गिरी का प्रस्तर लेख

यह प्रस्तर लेख देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा में लिखा गया है। यह प्रस्तर लेख सात पंक्तियों का है। प्रथम पंक्ति में तिथि लिखी गई है, दूसरी पंक्ति में जंगम बाबा का नाम तथा तीसरी पंक्ति में काली मंगला लिखा गया है। इस प्रस्तर लेख के पांचवीं पंक्ति के अंत में 'जान्हवी' शब्द लिखा गया है। अर्थात यह एक प्रामाणिक प्रस्तर लेख है, जिसमें जाह्नवी नाम उत्कीर्ण है। प्रस्तर लेख की अंतिम दो पंक्तियां को स्पष्ट रूप से नहीं पढ़ सकते हैं। इस प्रस्तर लेख में जान्हवी के स्थान पर जाह्नवी लिखा गया है। सम्पूर्ण लेख निम्नलिखित प्रकार से है–"श्री स्वामी लक्ष्मण जंगम जी यह समाधि बनी श्री काली मंगला त्रिपुरा सुन्दरी चामुण्डा जदे केरवर साली खते जान्हवी" ।(नरसिंह, 287 : 2017)

मां हाट कालिका को कुमाऊँ रेजिमेंट की आराध्य देवी के रूप में जाना जाता है और मन्दिर निर्माण के सर्वाधिक कार्यों को भी कुमाऊँ रेजिमेंट के द्वारा ही कराया गया है। वर्त्तमान समय में हाट कालिका मन्दिर में स्थापित मूर्ति का निर्माण भी कुमाऊँ रेजिमेंट के द्वारा किया गया है। यह मूर्ति 3 फुट ऊँची तथा काले संगमरमर की बनी है, जिसमें मां काली दाएं पांव को शिव पर रखे है। निकट नन्दी हैं, दायें गणेश और भैरव भी हैं, सामने श्री यंत्र है जिसके ऊपर त्रिशूल खड़ा है। इसके ऊपर रजत छत्र 'चाँदी का छत्र' लटका हुआ है। प्रवेश द्वार के बाईं ओर गवाक्ष में चतुर्भुज विष्णु हैं, इस मन्दिर की सर्वश्रेष्ठ प्रतिमा दाईं ओर के गवाक्ष में 'शिव–पार्वती परिवार' की है, यह मूर्ति 1.5 फुट ऊँची है, जिसमें शिव के ऊपरी बायें हाथ में तीन फनवाला नाग अदभुत है। (नैथाणी, 398 : 1995)

1. जान्हवी (जनदेवी) नौला, शिलालेख एवं संस्कृत महाविद्यालय

गंगोली क्षेत्र से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्य दर्शाते हैं, कि तेरहवीं सदी में गंगोली में एक राजवंश विद्यमान था। इसका प्रमाण गंगोलीहाट स्थित 'जान्हवी' नौला अभिलेख है, जो नागरी लिपि में है। 'जान्हवी' नौले की बाहरी दीवार पर एक विशिष्ट पत्थर में उत्कीर्ण यह अभिलेख स्थापित किया गया है। एटकिंसन के अनुसार 1264 ई. में निर्मित इस नौले में 'सोमती' नाम उत्कीर्ण है। (एटकिंसन, 540 : 1998) शिव प्रसाद डबराल का मानना है, कि रामचन्द्रदेव ने 1264 ई. में गंगोलीहाट में 'जाह्नवी' नौला एवं मन्दिर निर्माण का कार्य आरंभ किया, जो कई वर्षों तक चला। (डबराल : 48 : 1970) स्व. पूर्णानन्द कोठारी जो स्थानीय खणकट्या नामक स्थान में रहते थे,उनके द्वारा हाट कालिका में संस्कृत विद्यालय की नींव रखी गयी थी। लेकिन विडम्बना की बात यह है कि यह संस्कृत महाविद्यालय 1972 से बंद पड़ा है। (पर्वत प्रेरणा, 6 : 24 अगस्त 2015)



जान्हवी (जनदेवी) नौला, शिलालेख एवं संस्कृत महाविद्यालय

जान्हवी (जनदेवी)नौला शिलालेख निम्नवत् पढ़ा गया है–

1. स्वस्ति गणपति प्रसादात् अतिप्रतार्घ सीधर्थं पूजितो त्यस्य सुरैरणि
2. सर्वविघ्नछिदे तस्मै। गणाधिपतये नमः।। संवत्सर 1321 मासानी 4 वार 5
3. सिलानीश सं आरम्भ।। श्री साके 1199 मा 3 वा न पुष्य ती भये 2
4. 1200 साधी गढण संउम षयं भयं स्त्री साके 1197 मा 1 व मतीया
5. 1200 यतव्यं गंध्रि विहार पत्नी उदमाता
6. टताई ले त्यावः।। श्रिराजनराजा क्षपतीसुः।। अशोक न मंडलीक उद थाना
7. घं तारामयंकः। सि रामचंद्रदेवश्चिरं जयतुः।।
8. छ क्षये गडीत। राजनपुत्रवंसे कया वंसे
9. सुभ्रं भऊतुः

अर्थ– गणपति की कृपा से कल्याण हो। जिसके प्रताप से सिद्धि प्राप्त होने से देवताओं द्वारा भी उनकी पूजा की जाती है, उस समस्त विघ्नों को दूर करने वाले गणेश जी को नमस्कार है। विक्रम संवत् 1321 (1321–57–1264 ई.) के चौथे महीने आषाढ़ (के पांचवे शुक्रवार) को इस स्थान पर शिलान्यास किया गया। श्रीशाके 1199 (119978=1277 ई.) के तीसरे माह ज्येष्ठ माह (ज्येष्ठ मास) के तीसरे वार (बुधवार) को पुष्य नक्षत्र की उभय तिथि में 1200 कार्यकर्ताओं ने इस गंधविहार को तैयार किया। राजाओं के राजा अशोक ने इसकी व्यवस्था के लिए माण्डलीक की नियुक्ति की। राजा रामचन्द्रदेव चिरकाल तक विजयी रहें। इस राजा के वंशज अथवा अन्य राजवंशों में उत्पन्न शासकों को हमेशा इस विहार की व्यवस्था करनी चाहिए। सबका कल्याण हो। (भट्ट,चौहान : 69–70 रू2010)

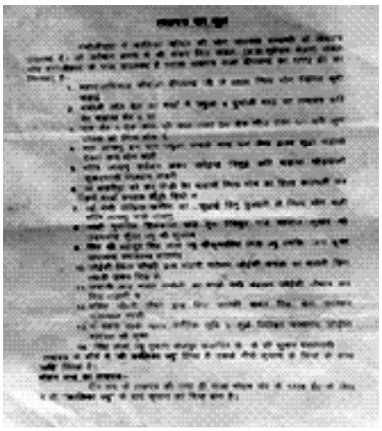
कालिका मन्दिर व्यवस्था

महाकाली पूजा प्रबंध का दायित्व रावल जाती के लोगों को दिया गया है, जो निकटवर्ती गांव रावल गांव में निवास करते हैं पूजा–पाठ संकल्प हेतु चंद काल से ही अग्रौन गावं के पंत ब्राहमण को नियुक्त किया गया था, तेल,जौ बुंगली गावं के लोगों द्वारा लाया जाता था, मन्दिर में भोग हेतु भोजन, पत्तलों का कार्य पतारबाड़ा गांव के लोगों का दायित्व था, मन्दिर का जीर्णोधार, साफ–सफाई का कार्य रणकोट के लोगों द्वारा किया जाता था, लकड़ी व ढोल व्यवस्था का दायित्व पुनौली ग्राम के लोगों द्वारा किया जाता था। (नरसिंह, 291–292 : 2017)

गंगोलीहाट के महाकाली मन्दिर के बारे में प्रसिद्ध है कि पहले महाकाली की वार्षिक पूजा (नवरात्रियों की अष्टमी) के अवसर पर यहां सिमलकोट के मेहता (मौत) जाती के लोगों में किसी व्यक्ति की बलि दी जाया करती थी। किन्तु 8वीं शताब्दी में जब आदि शंकराचार्य जी यहां आये तो लोगों की प्रार्थना पर उन्होंने महाकाली की मूर्ति को, जो कि नरबलि की पुकार किया करती थी, अपने मंत्रबल से कीलित कर दिया। तब से यह प्रथा बन्द हो गयी। पशुबलि अभी भी दी जाती है और प्रतेक 12 वर्ष में यहाँ महापूजा का आयोजन किया जाता है। (शर्मा, 78 : 2025)

गंगोलीहाट में कालिका मन्दिर की भोग व्यवस्था सम्बन्धी दो ताम्रपत्र उपलब्ध है।



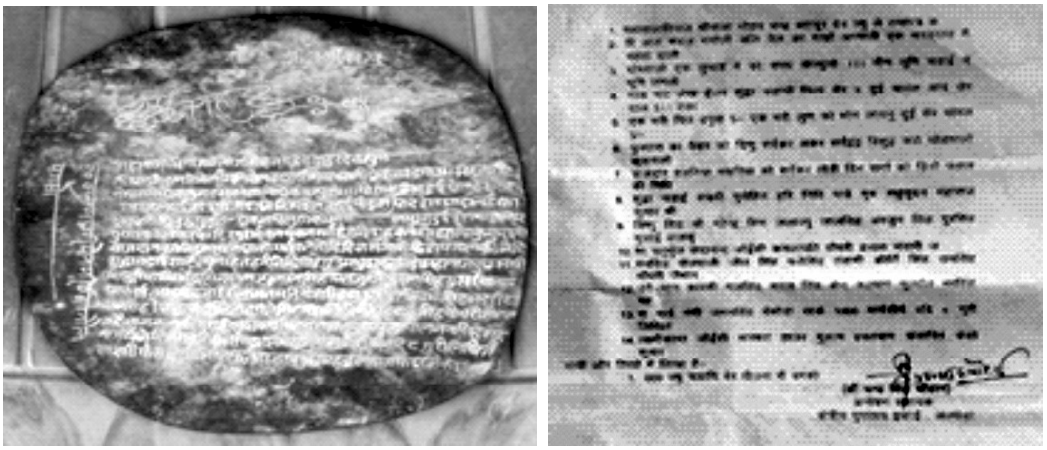


दीपचन्द्र का 1772 ई. का ताम्रपत्र

ताम्रपत्र का मूल

1. महाराजाधिराज श्रीचाजा दीपचन्द्र जी ले 0000 नित्य भोग निमित्त भूमि चढ़ाई
2. गंगोली तलि बेल का गर्खा में ज्युला ४ वुगोंली गाउ का तमापत्र करि वेर चढाया
3.वल सेर 9 एक मास की दाल टका`= येक घीउ टका`= भरी लुण योतक को नित्य भोग दे
4. वता लायणु इन चार ज्युला लगतो गाड़ घट लेख इजर सुद्धा चढायो देवता कन भोग भली
5. भांति लायणु सर्वकर अकर सर्वद्वन्द्व विशुद्ध करि चड़ाया घोडयालो कुकरयालो वाजदार वजनी
6.या बखरीया को कर तोड़ी वेर चड़ायों नित्य भोग का हिसा कउपली कर सर्व गर्खा सरहक तोड़ी दियो ग
7. खाँ नेगी लेखिया कमीण का छुढाई दिनु पुज्यारी ले नित्य भोग भली भाँति लायणु जयो वाचणु
8. साक्षी पुरोहित शिक्षकान्त पाडे गुरु विरसुर पांडे महराज कुमार श्री उदयचन्द्र कुँवर ज्यू श्री सुजान
9. सिंह श्री बहादुर सिह लला ज्यु श्रीकृष्णसिह लला ज्यु वगसि जय कृष्ण जयानन्द रमाकान्त सदानंद
10.जोईसी चिंता चौधरी द्रव्य भंडारी नरोत्तम जोईसी कपड़ा का भंडारी विमा त्याडी जमन सिंह से
11.जवाली आई मंडल गंगोली का गर्खा नेगी नंदराम जोईसी जैभान रूप सिंह तड़ागी :
12. पसिह चौधरी जैमन इन्द्र सिंह कारकी सबल सिंह बोरा कल्यान फुडत्याल नरसी
13. ग महरा साके १३७४ कार्तिक सुदि ५ सुक्रे लिखित परमानंद जोईसि मारफत श्री कृष्ण
14 सिंह लला ज्यू मुकाम राजपुर कांडारित के के सी सुनार परवानगी

ताम्रपत्र के शीर्ष में 'श्री कालिका ज्यू' लिखा है उसके नीचे कृपाण के चिन्ह के साथ 'सहि' लिखा है। (शंकर सिंह रावल, 19–04–2023)



मोहनचन्द्र का 1778 ई. का ताम्रपत्र

1. महाराजाधिराज श्रीराजा मोहन चन्द्र बहादुर देव ज्यु ले तमापत्र क
2. रि आठ मंडल गंगोली मलि बेल का गर्खा अध्याली एक भवडयाउ मै महता बाली
3. घोध्यालो एक तुनाड़ में वरे वाला वाज्यूलो।।। पौण भूमि चडाई ये भूमि लगतो
4. गाड घट लेख ईजर शुद्वा चड़ायों नित्य सेर २ दुई चावल आद सेर दाल ऽ।। टका
5. एक भरी घिउ ढपुवा ऽ– एक भरी लुण को भोग लायनु दुई सेर चावल ऽ =
6. पुज्यारा का वैकर को दिणु सर्वकर अकर सर्वद्वद्ध विशुद्ध करो घोड्यालो कुकरालो
7. वाजदार वजनिया वखरिया को सर्वकर तोडी दिन सर्गा को ढिडो पताल की निधि
8. शुद्वा चड़ाई साक्ष्यी पुरोहित हरि निधि पाडे गुरु मधुसूदन महाराज कुमार श्री
9. विष्णु सिह श्री महेन्द्र सिंह ललाज्यु लालसिह अरजुन सिंह पुरसिंह गुसाई बाल–
10. ष्न चतुर्भुज सदानन्द जोईसी कमलापति चौधरी द्रव्यक भंडारी ज
11 मनसिंह सेजवाली जीत सिंह फतेसिंह तड़ागी कीर्ति्त सिंह रामसिंह चौधरी जैभान

12. उदै भान कारकी गजसिंह सबल सिंह बोरा कल्याण फुर्त्याल नरसिंह मह

13. रा गर्ख नंगी जमनसिंह भैंसोड़ा साके १७०० मार्गशीर्ष वदि ८ गुरौ लिखितं

14. लक्ष्मीकान्त जोईसी मारफत हाजर मुकाम हवलबाग कंडारित केसो सुनार

दायी और तिरछे में लिखा है– 000 ज्यु चडायि वेर धीउना रौ वगसो

राजा मोहनचन्द्र के 1778 ई. के ताम्रपत्र में 'कालिका ज्यू' के बाद कृपाण का चिन्ह है (शंकर सिंह रावल, 19–04–2023)

निष्कर्ष

मां हाट कालिका गंगोलीहाट मंदिर केवल एक धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि उत्तराखंड की सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का सजीव प्रतीक है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि मंदिर की स्थापना, ताम्रपत्र, शिलालेख एवं अभिलेखों के माध्यम से प्राप्त प्रमाण, इसकी प्राचीनता और ऐतिहासिक महत्ता को प्रमाणित करते हैं। शक्तिपीठ के रूप में इसकी मान्यता, तांत्रिक साधनाओं और पूजापाठ की विधियाँ मंदिर की आध्यात्मिक गहराई को दर्शाती हैं। समाज में इसकी भूमिका केवल धार्मिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक एकता, परंपराओं के संरक्षण और सामूहिक आस्था को पोषित करने की भी रही है। मंदिर की भोग व्यवस्था और पूजा पद्धतियाँ स्थानीय जनजीवन और लोकपरंपराओं से गहराई से जुड़ी हैं। अतः यह मंदिर एक ऐसा स्थल है, जहाँ इतिहास, संस्कृति, धर्म और लोकजीवन का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1. एटकिन्सन,एडविन टीः हिमालयन गजेटियर ग्रन्थ 1 भाग एक : 1998 : उत्तराखण्ड प्रकाशन हिमालय संचेतना संस्थान आदिबदरी,चमोली
2. डबराल, शिवप्रसादः कुमाऊँ का इतिहास : 1970 : वीर–गाथा प्रकाशन, दो गडा,गड़वाल
3. पाण्डेयः,आचार्य गोपालदत्त (अनु.) : 'मानसखंड' स्कन्दपुराण : 1989 : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू. ए.,बंगलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली
4. चौहान,चन्द्रसिंह,भट्ट, मदन चंद्र,: मल्ल और मध्यकालीन उत्तराखण्ड : 2010 : पहाड़ परिक्रमा, तल्लाडांडा, तल्लीताल नैनीताल।
5. नरसिह : "सरयू–पूर्वी रामगंगा दोआब का एक ऐतिहासिक अध्ययन" (प्रारम्भ से बीसवीं शदी तक) : 2017 : अप्रकाशित शोधग्रंथ कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल
6. नैथानी, शिवप्रसाद : उत्तराखण्ड के तीर्थ एवं मन्दिर : पवेत्री प्रकाशन भगलियाना, पौड़ी रोड श्रीनगर गढ़वाल (उ.प्र.)
7. उनियाल,हेमा : कुमाऊँ के प्रसिद्ध मन्दिर (धर्म, संस्कृतिएवं वास्तुशिल्प) : 2005 : तक्षशिला प्रकाशन नई दिल्ली
8. उनियाल,हेमा : मानसखण्ड (कुमाऊँ–इतिहास, धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन) : 2014 : उत्तरा बुक्स बी–4ध्310 सी, केसवपुरम, दिल्ली
9. शर्मा,डी. डी. : उत्तराखण्ड के लोक देवता : 2025 : अंकित प्रकाशन चन्द्रावती कलोनी पीलीकोठी हल्द्वानी
10. रावल, किशन सिंह : महामाया महाकाली : गंगोलीहाट : 18–04–2023
11. पर्वत प्रेरणा पत्रिका : 24 अगस्त 2015 :
12. रावल, किशन सिंह : 95 वर्ष : ग्राम रावल गांव : 18–04–2023 : गंगोलीहाट पिथौरागढ़
13. रावल, शंकर सिंह : 56 वर्ष : ग्राम–रावल गांव : 19–04–2023 : गंगोलीहाट पिथौरागढ़

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

काली आंधी उपन्यास में पारिवारिक विघटन

डॉ. सविता
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश

कमलेश्वर का 'काली आंधी' उपन्यास नायिका प्रधान उपन्यास है क्योंकि उपन्यास की संपूर्ण कथा मालती के ही इर्दगिर्द घूमती है। मालती और जगदीश उर्फ जग्गी बाबू का प्रेम विवाह हुआ है। उनको एक बेटी होती है जिसका नाम है लिली! लेकिन मालती के पिता प्रतापराय जो कि एक नेता हैं वो चाहते हैं कि उनकी बेटी उनसे भी बड़ी नेता बने। प्रारम्भ में मालती राजनीति में आने से कतराती है परन्तु बाद में पिता की बात मान लेती है। यहाँ मानव–मूल्यों का ह्रास होता नजर आता है कि जिस पिता को यह पता है कि उनकी पुत्री का एक हँसता खेलता परिवार है तो उसके पारिवारिक जीवन में खलल क्यों डाला जाये। लेकिन हस्तक्षेप होता है और मालती नेता बनने की तैयारी में जुट जाती है। जग्गी बाबू जो कि अच्छे पति के रूप में नजर आते हैं वे अपनी पत्नी मालती की उन्नति में बाधा नहीं बनना चाहते हैं और यहाँ तक कि पहले भाषण की तैयारी मालती को स्वयं करवाते हैं। लेकिन मालती इस राजनीति की दलदल में इस कदर धंसती चली जाती है कि फिर उसको संभलने का मौका ही नहीं मिलता है उसको चुनाव प्रचार के लिए जाना पड़ता है। और इस चुनाव, राजनीति और ऊँचे मुकाम को हासिल करने के चक्कर में वह आंधी की तरह से तेज गति से उड़ती ही चली जाती है कि उससे उसके पति, बेटी और परिवार सभी पीछे छूट जाते हैं। इस तरह से एक हँसता–खेलता परिवार दो भागों में बंट जाता है। एक तरफ माँ (मालती) दूसरी तरफ पति (जग्गी बाबू) और बेटी (लिली)।

बीज शब्द – परिवार, विघटन, जरूरत, भाषण, नशा, सफलता, संवेदना और चुनाव–प्रचार।

शोध की प्रस्तावना

'काली आंधी' उपन्यास कमलेश्वर जी का बहुत ही बेहतरीन उपन्यास रहा है जो कि 1974 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में लेखक ने राजनीति का समाज पर, परिवार पर क्या प्रभाव पड़ता है यह समझाने की कोशिश की है। यह उपन्यास उस समय में राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार को भी प्रस्तुत करता है। उस समय भी राजनीति में अवसरवादिता, लोगों से किये गये खोखले वादे जो कभी पूरे नहीं होंगे। चुनाव प्रचार के समय ऐसे ही बड़े–बड़े वादे किये जाते थे परन्तु चुनाव जीतने के बाद बिल्कुल उसका उल्टा ही होता था। जनहित का पैसा नेता ही हजम कर जाते थे। आज भी देखा जाये तो राजनीति की स्थिति वैसी ही है। इसलिए यह उपन्यास आज के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक बना हुआ है। 'काली आंधी' उपन्यास राजनीति के दिखावटीपन को चित्रित करने में सफल रहा है। राजनीति का हाल ठीक उस कहावत जैसा हे कि "हाथी के दांत खाने के और दिखाने के और" अगर हम कहें तो वर्तमान संदर्भ में 'काली आंधी' उपन्यास राजनीतिक भ्रष्टाचार, नैतिक मूल्यों का ह्रास, पारिवारिक विघटन अर्थात् बिखराव, दर्शन और जीवन मूल्यों को ताक पर रख देना आदि समस्याओं से जूझता हुआ लगता है। और यह सभी समस्याएँ जस की तस बनी हुई हैं समाज में। इसलिए कमलेश्वर का 'काली आंधी' उपन्यास वर्तमान समय में भी सार्थक और प्रासंगिक है।

अब हम नजर डालते हैं इस उपन्यास के उन अंशों पर जहाँ हमें पारिवारिक विघटन साफ–साफ नजर आता है।

जब पहली बार मालती ने घर से बाहर कदम रखा तो जग्गी बाबू बहुत खुश थे। कुछ लोगों ने जग्गी बाबू से कहा कि इस चुनाव में आपको खड़ा होना चाहिए था। तो वे तपाक से कहते थे – "देश के निर्माण में औरतों को भी आगे आना चाहिए। औरतें यानी हमारी आधी जनसंख्या, जब तक इस तामीर में हाथ नहीं बंटाएगी, तब तक हर काम की स्पीड आधी रहेगी ... यह बेहद जरूरी है कि हमारे घरों की औरतें आगे आएं और हर काम में मर्दों का हाथ बंटाएं. .."[1] जब मालती पहली बार स्पीच देने से डरती है तो जग्गी बाबू उन्हें हिम्मत बंधाते हैं और कहते हैं – "अरे स्पीच देने में क्या रखा है? ये देखो मैंने तुम्हारी स्पीच लिख दी है ... इसे रट लो, बस ..."[2]

इस प्रकार जग्गी बाबू ने अपनी पत्नी का राजनीति में पूरा सहयोग दिया परन्तु मालती प्रारम्भ में सिर्फ भाषण देने में घबरायी उसके बाद वे बेझिझक भाषण देती गई उनकी आवाज गूंजती गई और ये आवाज इतनी गहराती गई कि जग्गी बाबू इस फैलती आवाज के साथ–साथ पीछे छूटते चले गये। और धीरे–धीरे जग्गी बाबू और मालती के रिश्तों में दरार पड़नी शुरू हो जाती है। उपन्यास के कुछ अंश उसी ओर इशारा करते हैं –

मालती जग्गी बाबू से कहती हैं– "क्यों, मेरे साथ मेरे काम में हाथ नहीं बंटा सकते? इतने गैर लोग साथ रहकर काम करते हैं। कितनी चीजों को संभालना पड़ता है। आप दस कमेटियों के मैंबर हो सकते हैं ... गैर लोग मुझसे फायदा उठा सकते हैं पर आपके लिए मैं किसी लायक नहीं?" – मैं तुम्हारा पति हूँ ... फायदा उठा सकने वाला गैर आदमी नहीं ... मैं तुमसे फायदा उठाऊंगा? सोचो, क्या बात कही है तुमने?"[3] जग्गी बाबू ने कहा – "सही बात कहूँ मालती अब तुम्हें रिश्तों की जरूरत हीं नहीं रह गई है। ... खामख्वाह इन्हें ढोते जाने से अब तुम्हें कुछ हासिल होने वाला नहीं है।"[4]

मालती ने जग्गी बाबू की ओर गुस्से में देखा और बोली – "खैर यह सब डिस्कस करने का वक्त मेरे पास नहीं है। चीफ मिनिस्टर छतरपुर आने वाले हैं और उनके आने से पहले मुझे तमाम काम पूरे करने हैं ... सात–आठ दिन छतरपुर रूककर मैं पन्ना चली जाऊंगी और चलते–चलते मालती ने कहा – "मैं होटल वाले की बीवी कहलाती रहूँ ... यह आपको गवारा है तो ठीक है।"[5]

इस प्रकार राजनीति में प्रवेश करने के बाद मालती और जग्गी बाबू के रिश्ते में दरार पड़नी शुरू हो गई ये संवाद नहीं नौक–झौंक भी नहीं पति–पत्नी के रिश्तों की तकरार को बयान करते हुए अंश हैं।

एक और अंश इस उपन्यास का देखते हैं जिसको पढ़कर लगता है कि मालती को अपनी राजनीतिक कामयाबी के आगे अपनी बच्ची लिली तक की भी परवाह नहीं है।

जग्गी बाबू कहते हैं – "मैं सोचता हूँ लिली को किसी होस्टल में डाल दूँ ताकि हमारी रोज–रोज की चटखती और टूटती जिदगी की तकलीफ की छाया से वह अलग रह सके।"[6]

मालती जवाब देती है – "हर बार लिली का वास्ता देकर मुझे कमजोर बनाने का जरिया आपने खूब ढूंढ रखा है? जब देखो तब लिली! अपनी मर्जी की बात मनवाने के लिए आप हर बार लिली को आगे कर देते हैं। आइन्दा से आप लिली को पासंग बनाना बंद कीजिए!"[7]

जग्गी बाबू फिर कहते हैं – "तुम, समझती हो मैं धमकी देता हूँ! मैं बेचारा हूँ ... पर मैं कहे देता हूँ, मैं तो जाऊंगा ही, लिली को भी तुम्हारी जिन्दगी से कहीं बहुत दूर लेकर चला जाऊंगा ... इसका जवाब मालती देती है – काश! वह दिन देखने को मिलता!"[8]

इन अंशों को पढ़कर कहा जा सकता है कि पारिवारिक क्लेश इतना बढ़ गया है कि मासूम बच्ची लिली तक की परवाह भी एक माँ को नहीं रही है। वाकई राजनीति का नशा ही ऐसा है। जो इसमें धंस गया उसको फिर कुछ और नहीं दिखाई देता है।

इस तरह राजनीतिक सफलता की आंधी में मालती उड़ती ही चली गई और ऊँचाईयों के मुकाम छूती चली गई एक सफलता के बाद दूसरी फिर तीसरी सफलता। परिणाम स्वरूप् परिवार, तहस–नहस हो गया रिश्ते टूटकर बिखर गये। "सफलता कितनी क्रूर होती है, कितनी जालिम होती है, इसका नशा कितना गहरा होता है, और खुद अपनी सफलता में व्यक्ति कैसे कैद हो जाता है, इसका जीता–जागता उदाहरण है मालती। दुख और त्याग कितना जालिम होता है और इसमें व्यक्ति कैसे बुझ जाता है, इसका जलता हुआ उदाहरण हैं जग्गी बाबू!"[9]

इन सबके बावजूद भी जग्गी बाबू के मन में मालती के लिए प्रेम है और परवाह भी है। इस उपन्यास में इस बात को साबित करते हुए मालती के प्रति जग्गी बाबू के प्रेम की झलक को प्रस्तुत करते हुए गुरूसरन जी बताते हैं ये 'काली आंधी' उपन्यास में मालती के असिस्टेंट और जग्गी बाबू के दोस्त हैं। गुरूसरन ने देखा था – "जग्गी बाबू ने सबकी आँख बचाकर पीले गुलाब की एक कली फुल प्लेट और क्वार्टर प्लेट के बीच में रख दी थी, उस सीट पर जहाँ मालती

जी बैठने वाली थीं।"[10] मालती को पीला गुलाब पसंद था इसलिए जग्गी बाबू ने ऐसा किया था इससे पता चलता है कि अलग–अलग रहने के बाद भी जग्गी बाबू को उनसे प्रेम है।

इसी तरह जब मालती चुनाव प्रचार के सिलसिले में जग्गी बाबू जिसमें मैनेजर हैं नरसी सेठ के होटल गोल्डन सन में रूकती हैं। वहाँ भी मालती का गला खराब हो जाता है तो ये देखकर जग्गी बाबू परेशान हो जाते हैं और सोचते हैं कि मालती भाषण कैसे देगी। इसलिए जग्गी बाबू इशारे से गुरूसरन को बुलाकर कहते हैं – "नमक के गरारे करवा दीजिए। नही तो गला एकदम बैठ जाएगा ... यहाँ का पानी भारी है। रात में गले में लपेट लें कुछ या सेक लें तो ठीक रहेगा।"[11] यहाँ जग्गी बाबू की मालती के लिए परवाह है वे काफी समय से अलग रहने के बाद भी मालती की परवाह करते हैं।

मालती को जब यह पता चलता है कि जिस होटल में वो ठहरी हैं उस होटल का मैनेजर उनका पति जगदीश वर्मा ही है तो वे जग्गी बाबू को अपने कमरे में बुलाती हैं उनसे कुछ खास बात करने के लिए ये कुछ उन बातों के अंश –

"मालती बोली – मैं चाहती हूँ कि ...

– आपके चाहने के मुताबिक मैंने हर काम किया है। जो–जो आप चाहती गई हैं, वह–वह होता गया है! (जग्गी बाबू बोले)

मालती कहती हैं ... मेरा और आपका रिश्ता यहाँ के लोगों को ...

जग्गी बाबू बोले – ओह समझा! यहाँ के लोगों को न मालूम पड़े! ... हूँ ... मेरा और आपका रिश्ता है क्या? मैंने तो लिली तक को कभी इस रिश्ते के बारे में नहीं बताया ... क्या आप समझती हैं कि जो बाप अपनी बच्ची से एक टूटे हुए रिश्ते के बारे में छुपाता रहा है, वह औरों को बताता फिरेगा?"[12]

इस राजनीतिक सफलता ने मालती को इतना अंधा बना दिया है कि वह अपने पति के और अपने रिश्ते को भी समाज से बताना नहीं चाहती है। जग्गी बाबू मालती के सवालों जवाबों से तंग होकर यही कहते हैं – "देखो मालती, मेरी बात का बुरा मत मानना ... तुमने हमेशा वह सब लिया है जो चाहा है! जो तुम्हें सीधे–सीधे मांगने से नहीं मिला वह तुमने प्यार से हासिल किया, जो प्यार से नहीं मिला, वह तुमने जिद से लिया जो जिद से नहीं मिला, उसे तुमने हक से लेना चाहा और जहाँ तुम हक से कुछ हासिल नहीं कर पाईं, वहां तुमने आंसुओं से सब कुछ पाना चाहा ... ! प्यार, जिद, हक और आंसू ... ये सब मिलकर भी तुम्हें नहीं दे पाएंगे, वह भी मैं तुम्हें दूंगा! बेफिक्र रहो ... जो रिश्ता कभी था, उसे जो लोग जानते होंगे, वे कम से कम मेरी तरफ से नहीं जान पाएंगे, यह मैं कर सकता हूँ ...और यही करूंगा।"[13]

ऐसे अंश पढ़कर हमारा मन द्रवित हो उठता है कि सफलता के फेर में पड़कर राजनीति के जंजाल में फंसकर मालती ने अपने रिश्ते को क्या से क्या मोड़ दे दिया जो इन दोनों का रिश्ता प्रेम विवाह से आरंभ हुआ था और आज किस मोड़ पर आ गया है। ऐसी सफलता से कोई फायदा नहीं जो परिवार को ही तोड़ दे वह इस उपन्यास से हमें सीखने को मिलती है। 'काली आंधी' उपन्यास में जब मालती दंगाग्रस्त क्षेत्र में जाने की तैयारी कर रही होती हैं तब जग्गी बाबू मालती से कहते हैं –

"वह इलाका बहुत खतरनाक है। मेरे ख्याल से आपको वहाँ नहीं जाना चाहिए। मैं अपने को रोक नहीं पाया इसलिए कह रहा हूँ। यूं मुझे कोई हक नहीं है कि कुछ भी कहूँ या राय दूं ...।"[14]

जग्गी बाबू की ये बात सुनकर मालती भी भावुक हो जाती हैं और अपने आंसुओं को चश्मा लगाकर छुपाती हैं। जग्गी बाबू का अपने प्रति इतना प्रेम देखकर मालती भी जग्गी बाबू से प्रेम जताना चाहती हैं लेकिन वह जिस मुकाम पर पहुँच चुकी हैं उनका वहाँ से लौटकर पीछे हटना मुमकिन नहीं हो पाता है। क्योंकि मालती एक सफल नेता बन चुकी हैं अब वो खुद भी पीछे हटना चाहेंगी तो नहीं हट सकती हैं क्योंकि जनता को उनसे अपेक्षाएं हैं, पार्टी भी उन्हें नहीं छोड़ सकती है।

चुनाव प्रचार के दौरान अपॉजिशन पार्टी द्वारा मालती के ऊपर बहुत ही अभद्र इल्जाम लगाये जाते हैं। शहर का माहौल भी बहुत खराब हो जाता है। उधर पंचमढ़ी में मदर मिरांडा स्कूल की प्रिंसिपल जग्गी बाबू को बार–बार फोन करके लिली की छुट्टियाँ पड़ गई उसको घर ले जाने के लिए कहती हैं। लेकिन जो वर्तमान माहौल लिली के माता–पिता यानि मालती और जग्गी बाबू के रिश्ते को लेकर छींटाकशी शहर में चल रही थी, ऐसे माहौल में जग्गी बाबू नहीं चाहते थे कि उनकी बेटी यह सब देखे। इसलिए जग्गी बाबू गुरूसरन से कहते हैं – "मैं अपनी बच्ची को आपकी इस गलीज

दुनिया से दूर रखना चाहता हूँ ... और आपकी मालती जी के नाम पर मुझे लेकर कीचड़ उछाला जाए, यह भी मैं नहीं चाहता ... बारह बरस पहले जो खुला रास्ता उसे देकर मैं दूसरी तरफ चला आया था ... उस रास्ते से मैं अपनी छाया तक को नहीं आने देना चाहता ... मैं होटल की मैनेजरी से रिजाइन कर रहा हूँ और यहां से जा रहा हूँ।"[15]

जग्गी बाबू के रिजाइन करने की बात सुनकर मालती उनसे रिजाइन करने के लिए मना करती हैं। लेकिन इसमें मालती का अपने पति जग्गी बाबू से कोई प्रेम है इसलिए मालती जग्गी बाबू को मना करती है। यह वजह नहीं है उनको रिजाइन करने से रोकने की वजह सिर्फ इतनी थी कि मालती पर जग्गी बाबू को लेकर जो गंदे आरोप लगाये थे लोगों ने। यदि जग्गी बाबू वहाँ से चले गये तो वे आरोप सच साबित हो जाते। लेकिन जग्गी बाबू मालती की बात का जवाब देते हैं – "कोई रास्ता पलटता नहीं मालती ... रास्ते तो, अपनी राह चले जाते हैं ... आदमी पलट जाता है ... लेकिन मैं अब आदमी कहां रह गया हूँ ... मैं अब सिर्फ एक रास्ता रह गया हूँ ... वह भी केवल लिली के लिए। उसे अभी मेरी जरूरत है। जब उसे भी जरूरत नहीं रहेगी तो रास्तों की तरह ही मैं अपनी राह चला जाऊंगा ... "[16]

ऐसे कई भावुक दृश्य की झांकी 'काली आंधी' उपन्यास में है जो हमारी आंखें नम कर देती हैं। जग्गी बाबू जितने सीधे, सच्चे, ईमानदार और स्वाभिमानी इंसान हैं मालती उतनी ही तेज, मौका परस्त, अवसरवादी महिला हैं। जग्गी बाबू को लेकर जो आरोप मालती पर समाज के लोगों ने लगाए उनको मालती चुनाव–प्रचार के भाषण में मंच पर जग्गी बाबू को बुलाकर जनता के समक्ष अपनी चारित्रिक पवित्रता का प्रमाण देते हुए समाज के सामने मंच पर अपने पति जग्गी बाबू को खड़ा करके कहती हैं लोगों के सामने – "पूछा गया है कि गोल्डन सन के मैनेजर मेरे पति हैं, या प्रेमी हैं या ... या ... यार। आप ही बताइए, यह जबान क्या हमारे घरों की है? लेकिन खैर ...मैं इसका जवाब भी दूंगी। भाइयो और बहनो ... खासतौर से मेरी बहनो! जी! यहीं हैं मेरे पति। पति परमेश्वर, मेरे दोस्त, मेरे प्रेमी और मेरे यार। जो कुछ भी हैं यही हैं। और ये मेरे साथ आपकी अदालत में मौजूद हैं।"[17] यह मालती की चतुर बुद्धि और मौका परस्ती है कि वे अपनी घटिया राजनीति के खेल में सफल होने के लिए अपने रिश्तों को भी इस्तेमाल करने से बाज नहीं आती हैं।

उधर जग्गी बाबू और मालती की बच्ची लिली पंचमढ़ी स्कूल के होस्टल में अकेली थी क्योंकि उसके स्कूल के बाकी सारे बच्चे अपनी छुट्टियों में अपने घर जा चुके थे। परन्तु यहाँ तो जग्गी बाबू बेटी को इस वजह से नहीं ला पाये ताकि उनकी बेटी उनके पारिवारिक कलह का और समाज में जो चल रहा था उसका बेटी को पता न चले। यदि लिली हॉस्टल में अकेली है तो बच्ची का मानसिक शोषण तो हो ही रहा है। थक हारकर आखिर जग्गी बाबू लिली को पंचमढ़ी होस्टल से घर ले आते हैं। लेकिन लिली का बचपन जो माता–पिता के साथ बीतना चाहिए था वह अकेले एकांत में बीत रहा था होस्टल में। इस पारिवारिक विघटन का असर और प्रभाव सबसे ज्यादा उस मासूम बच्ची लिली पर पड़ा। जब मालती सात हजार वोटों से जीती और लिली मंच पर जाकर अन्य बच्चों की कतार में खड़ी होकर मालती का ऑटोग्राफ लेकर आई तब उस बच्ची को यह तक पता नहीं था कि यही उसकी माँ है। लिली बेधड़क मंच पर चली गई थी और उसने मालती जी की ओर अपनी ऑटोग्राफ–बुक बढ़ाते हुए कहा था – "मैडम, योर ऑटोग्राफ प्लीज!"[18]

यह बहुत ही भावुक दृश्य था इस उपन्यास का। 'काली आंधी' उपन्यास में एक तरफ मालती की राजनैतिक जीत हुई थी लेकिन दूसरी तरफ रिश्तों की हार हुई थी। परिवार टूटकर बिखर गया था पूरी तरह विघटित हो गया था। जब गुरूसरन ने मालती से बताया कि लिली आई हुई है एक दो दिन बाद वापस स्कूल चली जाएगी। और कल जो मंच पर ऑटोग्राफ लेने आई थी वह लिली ही थी। तब मालती कहती हैं – "मेरी जिन्दगी क्या हो गई है!"[19]

तदुपरांत मालती लिली से मिलती है और कहती है कि तुम मेरी बेटी हो मैं तुम्हारी माँ हूँ। लेकिन लिली अभी बच्ची थी उसने अभी तक पिता को ही देखा था क्योंकि उसको पालने वाले पिता ही थे।

इसलिए उसने जब अभी तक माँ को देखा ही नहीं था ना जाना था तो वह मालती की गोद से निकलकर चली जाती है। तब जग्गी बाबू मालती से कहते हैं – "एक दिन लिली के सामने मुझे सब साफ करना था। इसे बताना था कि तुमने इसे जन्म दिया है, पर तुम इसकी माँ नहीं हो। अच्छा हुआ कि वह वक्त आज ही आ गया ... इस एकाएक और अकस्मात् आ गए अंधड़ के बाद फिर किसी नतीजे पर पहुंचना जरूरी हो गया था ..."[20]

इस तरह मालती की एक सफलता ने पूरा परिवार बिखेर दिया था। जग्गी बाबू ने मालती को साफ–साफ कह दिया था – "और तुम मुझे पूरी तरह इस्तेमाल कर लेना चाहती हो ... देखो मालती, अब मेरी पूर्ति ... मेरे जीवन की मंजिल लिली के सफर में ही पूरी होगी। मुझे अपनी पूर्णता लिली के जरिए ही मिलेगी ... और तुम्हारी मंजिल की यात्रा में न लिली की कोई जगह है, न मेरी।"[21]

तदुपरांत जग्गी बाबू मालती को समझाते हुए कहते हैं – "देखो मालती, जिंदगी में हर चीज नहीं मिलती। आदमी को चुनाव करना पड़ता है कि उसे क्या चाहिए ... इस चुनाव में जो चीजें छूट जाती हैं, उनके लिए दुःख नहीं करना चाहिए! तुमने जो ठीक समझा ... उसे चुन लिया था। मैंने जो ठीक समझा, वह चुन लिया था। अब पछताना कैसा?"[22]

'काली आंधी' उपन्यास के अंतिम पड़ाव में लिली के साथ पंचमढ़ी जाने से पहले जग्गी बाबू ने मालती से कहा – "मालती ... इतने दिनों अकेले रहकर मैंने यही सोचा है। तुम्हें अपनी बेरफ्तार दौड़ती जिन्दगी में सोचने का वक्त ही कहां मिला है? मशीनें नहीं सोचती, मशीनों के लिए आदमी सोचता है। और सफलता ... सफलता सिर्फ एक मशीन है। अब तुम एक औरत नहीं ... एक सफलता बन गई हो! अब तुम भी कुछ नहीं हो सिर्फ एक सफलता रह गई हो ... अब तुम्हारी मुक्ति और ज्यादा सफल होते जाने में है ... और कोई रास्ता नहीं है। यही तुम्हारा एकमात्र रास्ता है ..."[23]

जग्गी बाबू से ये शब्द सुनकर आँखों मे आंसु भरकर लिली का मूंह–चूमकर जग्गी बाबू से नमस्ते करके अपने आंचल को अपने मूंह में दबाकर रोती हुई बाहर चली आई थीं। इस प्रकार मालती ने अपनी अस्मिता को चुना और उसके लिए अपने परिवार का त्याग करके मानो अपना अस्तित्व ही मिटा दिया। अगले दिन जग्गी बाबू और मालती अपने अलग–अलग रास्तों की ओर अलग–अलग चले गये थे।

इस उपन्यास के विषय में स्वयं कमलेश्वर जी ने कहा – "यही कथ्य मुझे सच संगत और यथार्थ दिखाई देने लगा, तभी मैंने इस उपन्यास को लिखा कि – "सफलता की शर्त है सफल होते जाना' और सफलता की यह प्रतियोगितामूलक आंधी ऐसी है, जो यह नहीं देखती कि वह अपने साथ क्या उजाड़ जाती है और कितना अंधेरा छोड़ जाती है।"[24] डॉ० रामदरश मिश्र कहते हैं – "यह कथा द्वि–आयामी है अर्थात् राजनीति की सफलता और पारिवारिक प्यार के तनाव को लेकर चलती है, इस क्रम में जग्गी बाबू और मालती के संबंधों का तनाव जगह–जगह मूर्त हो उठा है। ये क्षण बहुत गहरे और प्रभावकारी हैं। और सच पूछिए तो तनाव के ये क्षण ही इस उपन्यास को गहरा बनाते हैं अन्यथा यह राजनीति के दाँव–पेंच का एक चित्र बनकर रह जाता। वास्तव में राजनीति की विभीषिका जीवन की समस्तता में व्याप्त होकर उसे कुरूप और असहाय बना रही है। वह एक ओर सामाजिक जीवन में आर्थिक विषमता और अभाव भर रही है तो दूसरी ओर हमारे सामाजिक और सांस्कृतिक संबंधों तथा मूल्यों को विघटित कर रही है और तीसरी ओर वह हमारी मानवीय संवेदनाएँ छीनकर हमें यान्त्रिक बना रही है।"[25]

निष्कर्ष

परिवार दो हिस्सों में बँट गया एक राजनैतिक काली आंधी आयी जो जग्गी बाबू को लिली के साथ पंचमढ़ी और मालती को दिल्ली उड़ाकर ले गई। यही इस उपन्यास की विडंबना है कि परिवार बिखर गया। तिनके की भांति तितर–बितर हो गया। इसी उपन्यास पर आधारित गुलजार द्वारा निर्देशित फिल्म 'आंधी' बनी थी जो 1975 में प्रदर्शित की गई थी। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि इस उपन्यास से हमें एक सीख मिलती है कि जो मनुष्य स्त्री के रूप में हो चाहे पुरूष के रूप में हो उसको इतनी ऊँची उड़ान भी नहीं भरनी चाहिए कि वे धरती पर ही न टिक सके क्योंकि ऊँचाई छूने वाले लोग अक्सर जमीन से अलग हो जाते हैं अर्थात् सफलता चुनिए पर इतनी नहीं कि परिवार ही बिखर जाए। जीवन में हर दायित्व का निर्वाह करना अनिवार्य होता है और परिवार को साथ लेकर चलना हमारा सामाजिक दायित्व है। सफलता और कैरियर भी जरूरी है लेकिन उससे कहीं अधिक जरूरी हमारी संतान है जो हमारा भविष्य है। पति–पत्नी का रिश्ता जो ईश्वर की दृष्टि में भी पवित्र माना जाता है और हम उसको धन–दौलत, राजनीतिक सफलता की अंधी दौड़ में अपने परिवार और उससे जुड़े दायित्व को भूल जाते हैं। दरकिनार कर देते हैं जो कि अनुचित है। मालती में एक अच्छी नेता की छवि उभरकर आती है। सफलता उनके कदम चूमती नजर आती है। परन्तु मालती का अपने परिवार के प्रति एक पत्नी और माँ का फर्ज वह पीछे छोड़ देती है। जीत ऐसी नहीं होनी चाहिए जिसमें हम अपना परिवार ही हार जाएं। यह उपन्यास हमें यही शिक्षा देता है कि हमें अपने सामाजिक और पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए अपना मानव जीवन सफल बनाना है और अपने पारिवारिक मूल्यों का ह्रास होने से बचाना है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. काली आंधी, कमलेश्वर, संस्करण 2000, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली द्वारा प्रकाशन, पृ० सं० –5
2. वही, पृ.सं.–5

3. वही, पृ.सं.–8
4. वही, पृ.सं.–8
5. वही, पृ.सं.–8
6. वही, पृ.सं.–9
7. वही, पृ.सं.–9
8. वही, पृ.सं.–9
9. वही, पृ.सं.–12
10. वही, पृ.सं.–41
11. वही, पृ.सं.–46
12. वही, पृ.सं.–49
13. वही, पृ.सं.–50
14. वही, पृ.सं.–55–56
15. वही, पृ.सं.–76
16. वही, पृ.सं.–81
17. वही, पृ.सं.–89–90
18. वही, पृ.सं.–112
19. वही, पृ.सं.–114
20. वही, पृ.सं.–117
21. वही, पृ.सं.–118
22. वही, पृ.सं.–118
23. वही, पृ.सं.–119
24. आधुनिक हिन्दी उपन्यास – 1, संपा० डॉ० भीष्म साहनी, डॉ० रामजी मिश्र, भगवतीप्रसाद निदारिया, राजकमल प्रकाशन, पृ० सं०– 415
25. वही, पृ.सं.–419

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

कुषाण साम्राज्य, रेशम मार्ग और सांस्कृतिक परिदृश्य

शुभम कुमार
शोधार्थी
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

सारांश

इतिहास में कुछ घटनाएं ऐसी होती हैं जो अपने अस्तित्व और महत्त्व के कारण अमर हो जाती हैं। वैसे तो बहुत सी ऐतिहासिक वास्तुकलाएँ, साहित्य, सड़कें और कलाकृतियाँ प्रसिद्ध हैं जिन्होंने मानवीय इतिहास की दशा और दिशा को निर्धारित किया है। एक ऐसा ही ऐतिहासिक मार्ग है, जिसे इतिहास में रेशम मार्ग की संज्ञा दी जाती है जो एशिया, यूरोप और अफ्रीका को जोड़नेवाले प्राचीन व्यापारिक मार्गों(स्थल मार्ग एवं जल मार्ग दोनों) का एक नेटवर्क है। लगभग 6500 किलोमीटर से अधिक तक फैले हुए इस रेशम मार्ग का उपयोग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से मध्य एशिया के माध्यम से यूरोप के लिए चीनी रेशम के परिवहन के लिए किया जाता था, परन्तु चौथी शताब्दी ई० के बाद रेशम के साथ–साथ अन्य वस्तुओं का व्यापार भी इसी मार्ग से होने लगा। यह सिर्फ व्यापार तक सीमित नहीं रहा बल्कि दुनिया की बड़ी आबादी ने पहली बार इस मार्ग के माध्यम से बड़े पैमाने पर विचारों का आदान–प्रदान शुरू किया। एशिया और यूरोप के लगभग सभी प्राचीन व्यापारिक मार्ग किसी समय रेशम मार्ग के साथ विलय हो गए और व्यापारिक मार्गों का यह पूरा नेटवर्क दुनिया की पहली सांस्कृतिक घटना बन गयी। एक ऐसी ही महत्वपूर्ण घटना प्रथम शताब्दी ई०पू० के अंतिम चरण में घटी जब पश्चिमोत्तर भारत में कुछ मध्य एशियाई जातियों का आगमन हुआ जिसमें कुषाण सर्वाधिक शक्तिशाली थे जिन्होंने उत्तर भारत के एक विशाल क्षेत्र पर अपना साम्राज्य स्थापित किया और साथ ही केवल भारतीय संस्कृति को अपनाया ही नहीं बल्कि इन्हीं रेशम मार्गों के माध्यम से भारतीय संस्कृति का प्रसार मध्य एशिया, चीन एवं रोम तक किया।

मुख्य–शब्द– कुषाण साम्राज्य, रेशम मार्ग, मध्य एशिया, बौद्ध धर्म, ऐतिहासिक–सांस्कृतिक संपर्क।

भूमिका

भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखंडों की समीक्षा की जाए तो हमें यह पता चलता है कि प्राचीन समय से ही भारत का संबंध यूरोप एवं मध्य एशियाई साम्राज्यों से रहा है और ये सारे संबंध रेशम मार्ग के माध्यम से स्थापित थे। जिन यात्रियों ने भी इन रेशम मार्गों से होकर भारत की यात्रा की इन्होंने भारत को 'गोल्डेन स्पेरो' अर्थात् 'सोने की चिड़ियाँ' कहकर पुकारा। अतः रेशम मार्ग ने मानवीय सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया।यह रेशम मार्ग मानव सभ्यता के इतिहास में प्रथम अंतर महाद्विपीय व्यापारिक मार्ग था जिसने अफ्रीका, यूरोप और एशिया में निवास करने वाले लोगों के विभिन्न धर्मों, परंपराओं एवं संस्कृतियों को जोड़ा। साथ ही इसने इजिप्ट, मेसोपोटामिया, पर्शिया, चीन और भारत की मानवीय सभ्यताओं के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।[1]

रोमिला थापर ने अपनी पुस्तक "द हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया : फ्राम द ओरिजिन टू 1300 ए०डी०" में बताया कि जिन मार्गों से होकर ग्रीक सेना पश्चिमी भारत आयी,इन्होंने सिर्फ पश्चिमोत्तर भारत पर अधिकार ही नहीं किया बल्कि जाने– अनजाने में कई मार्गों की खोज कर दी। रोमिला थापर बताती हैं कि मध्य एशिया की जनजातीय आदिवासी जैसे वैक्ट्रियन, पर्शियन, इन्डो–ग्रीक, शक, कुषाणों ने पश्चिमोत्तर भारत आने के लिए जिन मार्गों का इस्तेमाल किए

वे रेशम मार्ग की शाखाएँ थीं जिनमें समरकन्द, ताशकन्द, काशगर, और यारकन्द के मार्ग प्रमुख थें।[2]

कुषाणों द्वारा रेशम मार्ग को अपने आधिपत्य में करने और इसके माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रसार की विवेचना करने से पूर्व रेशम मार्ग की उत्पत्ति, प्रसार और महत्ता के विषय में जान लेना आवश्यक है।

रेशम मार्ग प्राचीन काल का व्यस्तम व्यापारिक मार्ग हुआ करता था। इसका नाम रेशम मार्ग इसलिए पड़ा क्योंकि चौथी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसवी तक इस मार्ग से व्यापार होने वाली मुख्य वस्तु सिल्क थी लेकिन धीरे–धीरे इसका इस्तेमाल अन्य वस्तुओं के व्यापार हेतु भी होने लगा।इस रेशम मार्ग के माध्यम से होने वाले व्यापार का आयाम और तीव्रता दोनों ही इतना ज्यादा था कि इकीसवीं शताब्दी में भी इस मार्ग पर अपनी पहुंच बनाना एक महत्वपूर्ण भू–राजनीति अकांक्षा बनी हुई है। आज जब हम नवपरिवर्तन और व्यापार की बात करते हैं तो पश्चिमी दुनिया का योगदान हमें सबसे पहले नजर आता है लेकिन रेशम मार्ग शायद इस पश्चिमी आधिपत्य को चुनौती दे सके। ऐसा इसलिए क्योंकि " चार्ल्स सी मैन" कहते हैं कि एशिया में हुए कई नवपरिवर्तन जैसे पेपरस, गन पाउडर, स्टिरप और मोल्ड–बो–प्लाव के वजह से ही यूरोप में बड़े पैमाने पर तकनीकि बदलाव आए और ये तकनीक रेशम मार्ग से ही यूरोप पहुँची थी। ये वो दौर था जब पूर्व, पश्चिम की तुलना में काफी ज्यादा विकसित था। वेनिस यात्री मार्कोपोलो जिन्होंने 1271 ई० से 1295 ई० के बीच रेशम मार्ग से ही यात्राएँ की। वो कहते हैं कि उन्होंने जो पूर्व में देखा उसका आधा भी वो बता नहीं सकते क्योंकि वो जानते थे उनका कोई विश्वास ही नहीं करेगा।[3]

रेशम मार्ग कई मार्गों जिनमें स्थल मार्ग और जल मार्ग दोनों ही शामिल थे का एक विशाल नेटवर्क था जो पूर्व और पश्चिम को जोड़ता था। यह पूर्वी एशिया को द०पू० एशिया, पर्शिया, अरब प्रायद्वीप, पूर्वी अफ्रीका व दक्षिणी यूरोप से जोड़ता था। इस मार्ग में कई प्राचीन शहर अवस्थित थें जो यहाँ हो रहे व्यापार की वजह से काफी समृद्ध थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण थें समरकन्द एवं बुखारा। समरकन्द तो मध्य एशिया के बड़े शहरों में से एक थी। 1365 ई० में तैमूर ने समरकन्द को अपनी राजधानी भी बनायी थी। इसकी महत्ता के कारण ही 1494 ई० से 1512 ई० के बीच मुगल शासक बाबर ने इस पर कई बार अधिकार करने की कोशिश की। साथ ही दक्षिण में यह रेशम मार्ग उत्तरापथ से जुड़ा था जो काबुल के माध्यम से चीन के बड़े शहरों जैसे बीजिंग और शंधाई से भी जुड़ी थी जो शायद इस मार्ग का सबसे पूर्वी स्थल था। पश्चिम में टर्की का कांस्टेनटिनोपुल रेशम मार्ग का एक बड़ा केन्द्र स्थल था इसलिए 1453 ई० में जब ऑटोमन ने इस पर कब्जा किया तो यह विश्व इतिहास का "वाटर शेड इवेंट" बन गया और यूरोप की कई शक्तियों ने एक वैकल्पिक मार्ग को खोजने की जद्दोजहद शुरू कर दी।

रेशम मार्ग शब्द एक जर्मन शब्द 'साइडेनस्ट्रास' से लिया गया है जिसे 1877 ई० में "फर्डिनेंड वान रिचटोफेन" नाम के एक जर्मन यात्री और भू–वैज्ञानिक ने सर्वप्रथम प्रसिद्ध किया अर्थात ऐसा कोई नाम 200 ई० पू० से 300 ई० के बीच प्रचलित नहीं था।[4] इन्होंने चीन का सात बार दौरा किया था। दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से अठारहवीं शताब्दी ईस्वी तक रेशम मार्ग ने कई देशों के बीच आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और धार्मिक सम्मिश्रण को प्रोत्साहित किया। इस मार्ग ने विचारों के आदान–प्रदान को भी प्रोत्साहित किया। खासकर भारतीय संदर्भ में बौद्ध दर्शन को, इसलिए यह एक सांस्कृतिक–व्यापारिक मार्ग भी था। इसके सांस्कृतिक महत्त्व के कारण 2014 ई० में यूनेस्को ने रेशम मार्ग के चेंगान–त्यान–सान कोरिडोर को वर्ल्ड हेरिटेज साइट का दर्जा भी दिया।

रेशम मार्ग की उत्पत्ति

130 ई० पू० में हान साम्राज्य और उनके राजदूत झयांग चियान के परामर्श से रेशम मार्ग की शुरूआत की गयी। झयांग चियान ने जब फगाना और ट्रांस आक्सियाना अर्थात् वर्तमान के मध्य एशियाई क्षेत्र का भ्रमण किया तो उसे यहाँ चायनीज व्यापार को बढ़ाने का आर्थिक क्षेत्र मिल गया। हान साम्राज्य ने "वार ऑफ द हेवनली हार्सेस" को जीतकर अपनी पहुंच मध्य एशिया के फरगना घाटी में बना लिया जिससे रेशम मार्ग को और बढ़ावा मिला। निःसंदेह इस युद्ध का एक उद्देश्य उन्नत नश्ल की घोड़ों को मध्य एशियाई क्षेत्र से प्राप्त करना था। इन घोड़ों की नश्ल इतनी अच्छी थी कि चायनीज इन्हें "स्वर्गीय घोड़ा" कहते थे। इन घोड़ों की वजह से चायनीज सेना में काफी तीव्रता आ गयी। प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में समुद्री रेशम मार्ग का द्वार भी खोल दिया गया। यह मार्ग वियतनाम से शुरू हुआ जो उस समय चायनीज आधिपत्य में था। यह समुद्री मार्ग भारत और श्रीलंका से होते हुए लाल सागर और रोमन साम्राज्य तक जाता था। इस समय रेशम की मांग इसलिए ज्यादा थी कि यह मुद्रा की तरह काम करती थी और हल्के वजन के कारण इसे किसी भी विषम परिस्थितियों में ढोना आसान था। रेशम मार्ग पर ज्यादातर व्यापार विदेशी व्यापारी द्वारा होता था

परन्तु इस मार्ग की सुरक्षा चाइनीज शक्तियों द्वारा की जाती थी और कर के माध्यम से राजस्व एकत्रित किया जाता था।

रेशम मार्ग का विकास

रेशम मार्ग का विकास कई चरणों में हुआ। बीच में कई चरण भी आए जब इस मार्ग का व्यापार क्षेत्रीय शक्तियों के उद्‌भव की वजह से या फिर एक संगठित शक्ति की पतन् की वजह से कम भी हुआ। रोमन साम्राज्य ने तेरहवीं शताब्दी ई० पू० में इजिप्ट को जीता जो यूरोप, एशिया, और अफ्रीका को आपस में जोड़ता था। इससे इन क्षेत्रों के बीच व्यापार और बढ़ गया। रोमन साम्राज्य की वजह से मध्य एशिया के रेशम मार्ग को भारत के पश्चिमी सागर तट का संभवतः श्रेष्ठ बंदरगाह नर्मदा के मुहाने पर स्थित भृगुकच्छ या मरुगच्छ(यूनानी रचनाओं में बारुगाजा नाम से प्रसिद्ध) और सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित "बारबारिकम" के बंदरगाहों से जोड़ा गया था।[5] इस हिंद महासागरीय व्यापारिक मार्ग को 60 ईस्वी के ग्रीक ट्रेवल गाइड "पेरिप्लस ऑफ द इरिथ्रियन सी" में भी लिखा गया है। रोमन साम्राज्य में चायनीज सिल्क की मांग इतनी बढ़ गयी थी कि यहाँ राज्य के द्वारा कई शाही आदेश पारित किए गए जिसके हिसाब से चायनीज सिल्क को पहनना ही अनैतिक घोषित कर दिया गया था। पश्चिमी रोमन साम्राज्य के पतन के दौरान पश्चिमी भारत के कुषाण साम्राज्य ने रेशम मार्ग पर अपनी प्रभुता कायम रखी तथा भारत एवं मध्य एशियाई संबंधों को बढ़ावा दिया। इसी दौर में ग्रीक संस्कृति का प्रभाव भारतीय उपमहाद्वीप में देखने को मिलता है जहाँ इंडो–ग्रीक सांस्कृतिक कला जैसे– गांधार कला का विकास हुआ।[6] चायनीज सिल्क की महत्ता इस कदर बढ़ गयी थी कि पूर्वी रोमन साम्राज्य अथवा बैजन्टाइन साम्राज्य ने सिल्क को उत्पन्न करने के रहस्य को जानने हेतु रेशम मार्ग पर अपने गुप्तचर भेजे। इन गुप्तचरों का काम था चाइना से सिल्क वर्म के अण्डों को चुराना। इसके बाद बैजन्टाइन साम्राज्य में भी सिल्क बनने लगा पर चायनीज सिल्क की उत्कृष्ठता ज्यादा बेहतर रही। चीन की तांग साम्राज्य ने सातवीं शताब्दी में रेशम मार्ग को पुनः प्रोत्साहित किया। इस समय रेशम मार्ग अपने स्वर्णिम काल में पहुंच चुका था।1207 ई० से 1360 ई० के मध्य मंगोलों का उद्‌भव हुआ जिन्होंने एशिया महाद्वीप में राजनीतिक स्थिरता कायम की और रेशम मार्ग को बढ़ावा दिया। परंतु तेरहवीं शताब्दी में मंगोलों के पतन के बाद एशिया में पहले से कायम राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिरता काफी कमजोर पड़ गयी। कई छोटे–छोटे राज्यों और शासकों का उदय हुआ जिन्होंने अपने क्षेत्रों में रेशम मार्ग को अवरुद्ध किया। इस कारण रेशम मार्ग पर होने वाले व्यापार को काफी नुकसान हुआ और एक लंबे समय तक रेशम मार्ग की महत्ता कम हो गयी।

भारतीय क्षेत्र जो रेशम मार्ग से जुड़े हुए थे-

आधुनिक शोध के अनुसार भारत में 12 ऐसे स्थल हैं जो रेशम मार्ग से जुड़े थे और व्यापारिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे। कुछ महत्वपूर्ण स्थल जैसे इन्द्रप्रस्थ, श्रावस्ती, कौशाम्बी, कुशीनगर, वैशाली, विक्रमशिला, अरिकमेडु, कावेरीपट्टनम और नाला सुपारा आदि हैं। फिलहाल ये स्थल यूनेस्को की वर्ल्ड हेरिटेज साइट्स की अनिश्चित श्रेणी में शामिल हैं। अतः विश्व इतिहास में रेशम मार्ग का सबसे बड़ा योगदान कुछ वस्तुओं का व्यापार नहीं था बल्कि एशिया, यूरोप, और अफ्रीका के बीच विचारों, कला और विज्ञान का आदान–प्रदान थी।

कुषाण साम्राज्य एवं रेशम मार्ग

प्राचीन काल में भारत से मध्य एशिया एवं चीन तक जाने वाले तीन महत्वपूर्ण मार्ग थे जिसके द्वारा दोनों देशों के बीच व्यापारिक आदान–प्रदान होते रहते थे। पहला अफगानिस्तान से हिन्दुकुश को पार करता हुआ बैक्ट्रिया और मध्य एशिया होते हुए चीन तक जाने वाला मार्ग, दूसरा पूर्वी भारत से वर्मा होता हुआ चीन के द० प० भागों तक पहुंचने वाला मार्ग और तीसरा समुद्र मार्ग था।[7] इन्हीं मार्गों से भारतीय सांस्कृतिक एवं औपनिवेशिक प्रसार अन्य देशों में हुआ होगा। संभवतः यह सभी मार्ग मौर्य काल में ही विकसित थे जो शक– कुषाणों के आगमण के साथ ही व्यापार के लिए खुल गए। भारतीय व्यापारियों ने मध्य एशिया में यारकन्द, खोतान, मीरन, कुची, करध, तुरफान आदि स्थानों पर अपनी व्यापारिक केंद्र बना लिए थे।[8] ये नगर रोम से चीन तक जाने वाले रेशम मार्ग जो मध्य एशिया से होकर गुजरता था के उत्तरी एवं दक्षिणी मार्गों पर बसे हुए थें। इस प्रकार भारत रेशम मार्ग के बीच मध्यस्थ का कार्य करता था। मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। यहाँ से भारतीय लिपि में लिखे गए अनेक लेख तथा कलाकृत्तियाँ

प्राप्त हुई हैं।[9] विदेशी अन्वेषकों में आरलस्टीन, लीकांग, पियोस्वेहेड्रीन तथा अन्य विद्वानों द्वारा मध्य एशिया के नगरों से प्राप्त प्रामाणों के आधार पर यह निश्चित किया गया है कि किसी समय पंजाब और कश्मीर के भारतीय, तारीय नदी की घाटियों में जाकर बस गये थे और उन्होंने वहाँ नगरों का निमार्ण किया था। आरलस्टीन ने वहाँ फैली भारतीय संस्कृति के संबंध में लिखा है कि " मुझे वहाँ ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मैं पंजाब के किसी गाँव में विचरण कर रहा हूँ, यद्यपि पंजाब से मैं लगभग 2000 मील की दूरी पर था"। जिस प्रकार मध्य एशिया में भारतीय लोग जाकर बस गए थे और अपनी संस्कृति का प्रसार किया था उसी प्रकार उस काल में मध्य एशिया से कुछ जातियों का संक्रमण भारत की ओर हुआ। ये जातियाँ शक और कुषाण थीं जो अपने मूल निवास स्थान को छोड़कर किसी स्थायी निवास की खोज में भारत आयी। इन जातियों का आगमन प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम चरण में हुआ था। ये मध्य एशियाई जातियाँ भारतीय इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं जिन्होंने भारत के विभिन्न हिस्सों पर अपना अधिकार किया और भारतीय सीमाओं को मध्य एशिया तक जोड़ दिया। कुषाण शासक कनिष्क ने मध्य एशिया से ही शासन किया। खोतान में स्थापित पहला भारतीय राज्य " विजय स्तंभ" के नाम से जाना जाता है। अतः प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण कालखंडों में कुषाण काल काफी प्रसिद्ध रहा है। साम्राज्य के विस्तार, कला के विविध पक्षों के उत्कर्ष, मुद्रा के क्षेत्र में नवीन प्रयोग, सामाजिक गतिशीलता, धार्मिक सहिष्णुता, व्यापार–वाणिज्य के विकास, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक तथा साहित्यिक संरचना की दृष्टि से यह काल अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। इस काल में भारत का संपर्क रोम और चीन के साथ था और कुषाण शासकों के संरक्षण में भारतीय संस्कृति रोम से लेकर मध्य एशिया और द० पू० एशिया तक फैल गयी।[10]

काफी कम समय में कुषाण शासकों ने मध्य एशियाई प्रदेशों जैसे– यारकंद, खोतान, काशगर आदिय पूर्वी भारत में मथुरा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, साँची, बिहार, उत्तरी बंगाल तथा पश्चिमोत्तर भारत में सुई बिहार(निचली सिंघु घाटी पंजाब क्षेत्र), जेद्दा(पेशावर) जैसे विशाल क्षेत्र पर अधिकार कर लिया था। इनकी पुष्टि इन क्षेत्रों से प्राप्त कुषाणकालीन सिक्कों एवं अभिलेखों से होती है। हेनसांग कपिशा में कनिष्क के अधिकार की पुष्टि करता है। कल्हण की राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि कनिष्क का कश्मीर पर अधिकार था तथा उसने वहाँ कनिष्कपुर नामक नगर बसाया। अतः कनिष्क ने भारतीय इतिहास में प्रथम अंतरराष्ट्रीय साम्राज्य की स्थापना की।[11] उसका साम्राज्य उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में विंध्य पर्वत तक तथा पश्चिम में उत्तरी अफगानिस्तान से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा चम्पा(बिहार) तक विस्तृत था।

मध्य एशिया से भारत के लिए कश्मीर एक द्वार की तरह था क्योंकि कश्मीर की सीमाएँ रेशम मार्ग की रणनीतिक और महत्वपूर्ण भाग पर अवस्थित थी। यह रेशम मार्ग कश्मीर में जोजिला दर्रा से होते हुए लद्दाख तक जाती थी फिर यह मार्ग मध्य एशिया तक जाती थी। जर्नल ऑफ आर्कियोलोजिकल साइंस के मुख्य लेखक डॉ० अनुपम शर्मा के अनुसार लद्दाख में जो गुफाएँ मिलीं हैं उनमें से अधिकांश ग्यारहवीं शताब्दी से पहले से उपयोग में थीं। इन गुफाओं का उपयोग बौद्ध भिक्षुओं एवं यात्रियों द्वारा किया जाता होगा। जब रेशम मार्ग संपन्न रहा होगा तब मध्य और दक्षिण एशिया के बीच लददाख अभिसरण बिंदु रहा होगा। सह–लेखक डॉ० अमृतपाल सिंह ने कहा कि " हिमालयी अर्थव्यवस्था मध्य एशिया और चीन के साथ अपने व्यापार पर निर्भर थी"। अतः पुरावात्विक खोजों के द्वारा यह साबित होता है कि कश्मीर में बौद्ध धर्म का काफी प्रसार था और कालान्तर में इण्डो– बैक्ट्रियन, ग्रीक, शक, पर्शियन और कुषाणों ने भी बौद्ध सिद्धांतों के विकास में योगदान दिया। कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत खासकर कनिष्क के शासनकाल में कश्मीर सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से मध्य एशिया के काफी करीब आ गया। कनिष्क ने अपनी सीमाएँ अफगानिस्तान, काशगर, यारकन्द और खोतान तक फैलायी। कश्मीर में हुई चतुर्थ बौद्ध संगीति में जो बौद्ध भिक्षु आए और गए उन्होंने इन्हीं रेशम मार्गों का इस्तेमाल किया था। संपूर्ण कुषाण साम्राज्य के अन्तर्गत बौद्ध धर्म ने काफी प्रगति की और इन्हीं रेशम मार्गों के माध्यम से कुषाण सम्राटों ने कई मिशनों को दुनिया के विभिन्न भागों में भेजा। कुषाणों के बाद भी इन्हीं मार्गों से कई बौद्ध विद्वानों और यात्रियों का भारत और मध्य एशिया के बीच आना–जाना लगा रहा। चीन का प्रसिद्ध तीर्थयात्री हेनसांग इन्हीं रेशम मार्गों से होते हुए कश्मीर पहुंचा था और घाटी में प्रवेश कर बारामुला आया जहाँ उसने बड़े–बड़े पत्थर के दरबाजों को देखा था।[12] छठी शताब्दी के प्रारंभ में भारतीयों की संख्या चीन में 3000 से ज्यादा हो गयी थी और बौद्ध मंदिरों की संख्या तेरह हजार के आस–पास पहुँच गयी थी।[13] इस प्रकार कुषाण शासक जो मध्य एशिया से भारत आए और भारतीय संस्कृति में सिर्फ घुले मिले ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति का प्रचार–प्रसार भी मध्य एशिया, चीन, अफगानिस्तान आदि देशों तक किया। कुषाण शासकों ने लंबी अवधि तक रेशम मार्ग के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर अपना अधिकार बनाए रखा एवं इन मार्गों से होने वाले व्यापार–वाणिज्य एवं सांस्कृतिक फैलाव

में सहयोग प्रदान किया।

निष्कर्ष

भारतीय सभ्यता, जो विचारों में दृढ, स्वभाव से स्थिर तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण की थी, उसमें विदेशियों के संपर्क में आने से नये विचारों एवं मूल्यों का समावेश हुआ। अखामनी युग में भारत का पश्चिमोत्तर भाग अखामनी साम्राज्य का अंग बना और भारतीय ईरानियों के साथ–साथ उच्च कोटि की सभ्यता और संस्कृति के प्रतिनिधि यूनानियों के संपर्क में आए। द्वितीय शताब्दी ई० पू० में पश्चिमी एशियाई यवन जातियों के आगमन से भारतीय समाज में यूनानी सभ्यता का प्रभाव पड़ा जिसकी प्रतिक्रिया गांधार कला तथा अन्य क्रियाकलापों के क्षेत्रों में दिखाई देती है। ईरानी और यूनानी सभ्यता को अपने साथ समेटकर आने वाली मध्य एशियाई जातियों ने इसे और भी गति प्रदान की। कुषाणों ने भारत को विश्व शक्ति का दर्जा दिया और उसे नये व्यापारिक मांगों के लिए खोल दिया। निःसन्देह पश्चिमी एवं मध्य एशिया से आने वाली विभिन्न जातियों में कुषाण प्रमुख थे जो आचार–विचार और संस्कृति में भारतीयों से भिन्न थी, दोनों में पारस्परिक प्रतिक्रियाओं का होना स्वभाविक था। इन जातियों की सामाजिक परम्परायें, दृष्टिकोण, धार्मिक एवं दार्शनिक विचार तथा भाषा आदि भारतीय समाज के लिए पहेली थी। भारतीय संस्कृति विविधता में एकता जिसकी विशेषता रही है, ने इस चुनौती को स्वीकार करने के साथ ही सभी जातियों को भी अपने में समाहित कर लिया। भारतीय समाज की इस रचनात्मकता ने कलान्तर में भारतीय सभ्यता और संस्कृति को पहले से कहीं ज्यादा विशद्ता, विविधता और निरंतरता प्रदान की।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. एलिसीफ, वादीम. "द सिल्क रोड : हाईवेज ऑफ कल्चर एंड कॉमर्स". यूनेस्को पब्लिशिंग, 2000. पृष्ठ 1–2.
2. थापर, रोमिला. "द हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया : फ्रॉम द ओरिजिन टू 1300 ए.डी.". द पेंगुइन प्रेस, लंदन, 2002. पृष्ठ 217–222.
3. मरे, ह्यू. "द ट्रैवल्स ऑफ मार्को पोलो". ऑलिवर एंड बॉयड द्वारा मुद्रित, लंदन. पृष्ठ 6–8.
4. चक्रवर्ती, रणवीर. "भारतीय इतिहास आदिकाल : प्राचीनतम पर्व से 600 ई० तक". ओरिएंट ब्लैकस्वान पब्लिकेशन, 2012. पृष्ठ 243–244.
5. वही. पृष्ठ 244.
6. रोसेनफील्ड, जॉन एम. "द डायनास्टिक आर्ट्स ऑफ द कुषाण्स". यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले और लॉस एंजिलिस, 1967. पृष्ठ 41.
7. मजूमदार, आर. सी. और दासगुप्ता, के. के. "ए कॉम्प्रिहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया ए.डी. 300–985, वॉल्यूम–3, पार्ट–1". पीपुल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली. पृष्ठ 111–127.
8. पेंल्टी, आल्टो. "ऑन द रोल ऑफ सेंट्रल एशिया इन द स्प्रेड ऑफ इंडियन कल्चरल इन्फ्लुएंस". इन चंद्रा, लोकेश (सम्पादक). "इंडिया'स कॉन्ट्रिब्यूशन टू द वर्ल्ड थॉट एंड कल्चर". विवेकानंद केंद्र प्रकाशन, चेन्नई 1970. पृष्ठ 249–260.
9. वर्मा, उषा. "मध्य एशिया के खरोष्ठी अभिलेखों में जीवन, समाज और धर्म". संस्कृति प्रकाशन, वाराणसी, 1995. पृष्ठ 9–16.
10. पुरी, बी. एन. "इंडिया अंडर द कुषाण्स". मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशिंग, बॉम्बेय 1965. पृष्ठ 44–47.
11. प्रजापत, पप्पु सिंह. "प्राचीन भारत : नवीन सर्वेक्षण (पाषाण काल से 1200 ई० तक)". रॉयल पब्लिकेशन, जोधपुर, 2021. पृष्ठ 444.
12. भट्ट, जी. एम. और नवचो, इर्शाद एच. "सेंट्रल एशिया एंड कश्मीर : पास्ट एंड प्रेजेंट लिंक्स". सेंटर ऑफ सेंट्रल एशियन स्टडीज, कश्मीर विश्वविद्यालय, 1989. पृष्ठ 17.
13. बी. एल., सैमुअल. "ट्रैवल्स ऑफ फाहियान एंड सुंग–यू फ्रॉम चाइना टू इंडिया (400–500 ए.डी.)". लॉ प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली, 1969. पृष्ठ 17.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

चंदकालीन ऐतिहासिक धरोहर : बालेश्वर मंदिर

बबीता बोहरा
शोधार्थी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़

सारांश

यह शोध–पत्र उत्तराखंड राज्य के जनपद चम्पावत में स्थित बालेश्वर मंदिर के ऐतिहासिक, स्थापत्य और सांस्कृतिक महत्व का अध्ययन प्रस्तुत करता है। चंद शासकों द्वारा निर्मित यह मंदिर शिल्प परंपराओं का सुंदर संगम है। इसकी मूर्तिकला, अलंकरण और धार्मिक स्थापत्य उस काल की कला–संवेदनशीलता और धार्मिक चेतना को अभिव्यक्त करते हैं। यह मंदिर केवल पूजा–स्थल ही नहीं, बल्कि चम्पावत की सांस्कृतिक पहचान और सामाजिक जीवन का केंद्र भी रहा है। शोध–पत्र में बालेश्वर मंदिर के ऐतिहासिक, स्थापत्य, सांस्कृतिक तथा संरक्षण संबंधी पहलुओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, ताकि इस अमूल्य धरोहर के महत्व और इसके संरक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डाला जा सके।

मुख्य शब्द – ऐतिहासिक धरोहर, बालेश्वर मंदिर,इतिहास, शिलालेख, ताम्रपत्र

प्रस्तावना

ऐतिहासिक धरोहर किसी भी समाज और क्षेत्र के अतीत का दर्पण होते हैं। ये न केवल उस काल की राजनीतिक परिस्थितियों को उजागर करते हैं, बल्कि सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक आस्थाओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों की सजीव झलक भी प्रस्तुत करते हैं। उत्तराखंड के चंपावत नगर में स्थित बालेश्वर मंदिर इसी परंपरा का अनुपम उदाहरण है। यह चंदकालीन स्थापत्य, मूर्तिकला और धार्मिक धरोहर के रूप में विशेष महत्व रखता है। यह न केवल धार्मिक आस्था के केंद्र होते हैं बल्कि हमारे इतिहास,कला और संस्कृति के जीवंत प्रमाण भी होते हैं। उत्तराखंड राज्य के चम्पावत जिले में स्थित बालेश्वर मंदिर समूह एक ऐसा ही स्थल है जो अपनी ऐतिहासिक गरिमा और सांस्कृतिक महत्व के कारण प्रसिद्ध है। यह मंदिर चन्दवंश की स्थापत्य कला, धार्मिक श्रद्धा और लोक संस्कृति का अद्‌भुत संगम है। यह प्राचीन मंदिर भगवान शिव को समर्पित है और स्थानीय लोगों के साथ–साथ दूर–दूर से आने वाले श्रद्धालुओं के लिए आस्था और विश्वास का केंद्र रहा है। यह मंदिर इस क्षेत्र की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विरासत का भी एक अनमोल हिस्सा है।

बालेश्वर मंदिर

बालेश्वर मंदिर उत्तराखंड राज्य के चम्पावत नगर में स्थित है और इसे कुमाऊँ की सबसे महत्वपूर्ण चंदकालीन धरोहरों में गिना जाता है। इसके निर्माण के विषय में अनेकों मत प्रचलित है। इस मंदिर के संबंध में स्कंद पुराण के मानसखंड में कहा गया है कि इनकी स्थापना वानर राज बाली के द्वारा की गई थी।

बालीश्वरं च सम्पूज्य तथा भोगीश्वरं हरम्
देवगन्धर्व मनुजैः सेविती सुमनोहर बालिना वानरेन्द्रेण स्थापिती देवसेवितौ

(पांडे, 278–1989)

अर्थात बालेश्वर तथा भोगीश्वर दोनों मंदिर वानरराज बाली द्वारा प्रतिष्ठापित रहे तथा देव, गंधर्व, मानव आदि से पूजित हुए हैं।

बालेश्वर मंदिर की प्राचीनता तथा इसके स्थापत्य और अलंकरण के आधार पर इतिहासकारों द्वारा इस मंदिर का निर्माण काल नवीं से दसवीं सदी माना जाता है। समय–समय पर विभिन्न शासकों के द्वारा किए भूमि दान से संबंधित ताम्रपत्र तथा उत्कीर्ण अभिलेखों से इसकी प्राचीनता ज्ञात होती है जिनमें से उल्लेखनीय है कि कत्यूरी शासक देशटदेव का दसवीं शताब्दी का ताम्रपत्र जिसमें बताया गया है कि उसके द्वारा बालेश्वर मंदिर को भूमि प्रदान की गई (डबराल, 306–1970)। इसके पश्चात नेपाल शासक क्रांचल्ल देव का 1223 ई. का ताम्र लेख जिसे उसने कत्यूरी शासक देशटदेव के ताम्रपत्र पर ही अंकित करके भूमि को बालेश्वर मंदिर के पूजाधिकारी बंगज ब्राह्मण भट्ट नारायण को दे दिया (डबराल,30–1977)। इन ताम्रपत्रों के अतिरिक्त मंदिर प्रांगण में मिले शिलालेखों से भी इस मंदिर की प्राचीनता के बारे में ज्ञात होता है इन शिलालेखों की कुछ पंक्तियां निम्न है–

ऊं स्वस्ति स्रि शाके १३९२ स्रि राजा ज्ञान
चंद्र विजये नारू दिपु ले देवल करायो
शुमंम स्तु।



बालेश्वर मंदिर शिलालेख

इसका आशय है ऊं कल्याण हो श्री शाके 1392(1470ई.) में श्री राजा ज्ञानचंद के विजये (राज्य में) नारू, दियु ने देवालय का निर्माण किया (करवाया), शुभ हो।

शाके १२९३ राजा श्री
राजा श्री अभ
(य)। चंद्रः बिजु
पठ्यार कि
ति खं भ य
लायो जिउ
ला २



बालेश्वर मंदिर बिरखम लेख

यह लघु स्तंभ लेख साधारण शिला पर लिखा गया है जिसमें लिखा है कि राजा अभयचन्द ने शाके 1293 (1371ई॰) में चौगर्खा के बिजू पठयार राजा को विजित करने पर कीर्तिस्तंभ स्थापित किया और दो जीउला भूमि चढ़ाई (सिंह, 321–2002)।

इसके प्रधान मंदिर के प्रवेश मंडप में मिश्रत धातुओं का एक भारी भरकम घंटा निलंबित है जिस पर लिखा है "श्री संवत 1552 साल कार्तिक 10 गते माह, श्री जिमीदार कर्ण धोजचंद ले श्री लाई कुल्ल रक्षा निमित्त गर चढ़ा ये को घंटा।"

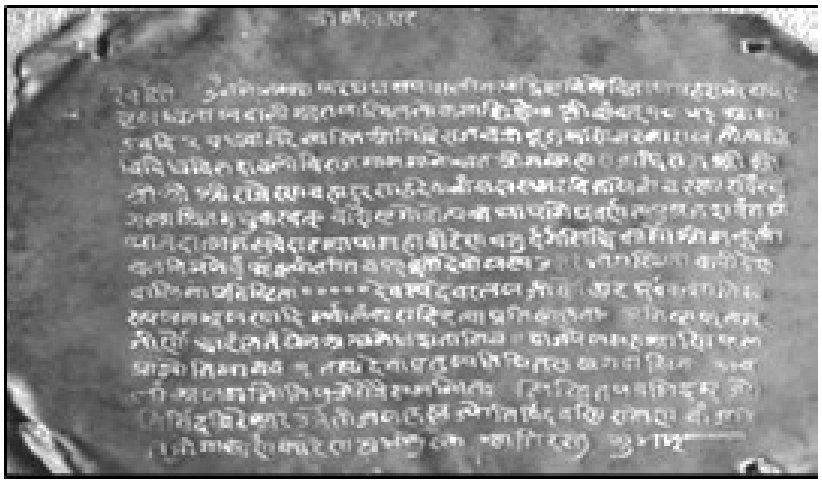
इसके अतिरिक्त समय–समय पर चन्द शासकों द्वारा इसकी देखभाल एवं जीर्णोद्धार किया गया। राजा ध्यानचंद ने बालेश्वर के प्राचीन शिव मंदिर का जीर्णोद्धार किया। प्रतापी सम्राट रूद्र चंद्र का बालेश्वर मंदिर से विशेष संबंध रहा है उसके शासनकाल में रामदत्त नामक एक साधु ने आकर कहा राज्य के संकट तब दूर होंगे जब बालेश्वर के पास धरती में गड़े हुए महादेव जी को ऊपर निकला जाएगा। रुद्रचन्द ने उस स्थान की खुदाई करवाई, जिसमें एक विशाल शिवलिंग निकाला और जिसकी बालेश्वर मंदिर में प्रतिष्ठा की गई (डबराल,100–1970) रुद्रचंद ने आदेश दिया की रामदत्त गिरी को मंदिर का पुजारी नियुक्ति किया जाये और उनके जीवन निर्वाह के लिए भूमि दान दिया जाए, इसके साथ साथ निकटवर्ती गांव को फसल के बाद एक नाली प्रति परिवार भेंट चढ़ाने का आदेश दिया। इस आदेश के संबंध

में प्रचलित एक लोकोक्ति है

जो रूद्रचंद के आली, तो रामदत्त के नाली

(वैष्णव, 210–1977)

इसके बाद भी समय–समय पर यहाँ के शासकों द्वारा मंदिर की देख–रेख और मरम्मत की व्यवस्था की जाती रही है। बालेश्वर ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि अंतिम मरम्मत सन् 1796 में गोरखा सूबेदार महावीर थापा के द्वारा कराई गई थी। जिसकी जानकारी बालेश्वर ताम्रपत्र से प्राप्त होती है।



बालेश्वर ताम्रपत्र

ताम्रपत्र इस तथ्य की पुष्टि करता है कि नेपाल शासनकाल में राजा रणबहादुर साहदेव के आदेश पर कुमाऊँ में नियुक्त सूबेदार महावीर द्वारा बालेश्वर मंदिर का जीर्णोद्धार कराया गया। ताम्रपत्र में जीर्णोद्धार का उल्लेख तो मिलता है, किंतु यह स्पष्ट नहीं है कि किन–किन मंदिरों का कार्य हुआ। संभवतः वर्तमान में पूजा–अर्चना हेतु प्रयुक्त हो रहा मुख्य मंदिर ही इस जीर्णोद्धार का केंद्र रहा होगा। किंतु इस जीर्णोद्धार की गुणवत्ता अत्यंत निम्न स्तर की रही है। मंदिर की मूल स्थापत्य और कलात्मक संरचना की पूर्ण उपेक्षा करते हुए सामान्य कोटि के कारीगरों द्वारा मात्र पत्थरों को चुनकर कार्य संपन्न कर दिया गया। परिणामस्वरूप मंदिर की मूल कलात्मकता और प्राचीन स्थापत्य शैली आंशिक रूप से नष्ट हो गई। यही नहीं, इस काल में हुए जीर्णोद्धार कार्यों के दौरान मंदिरों से संबंधित कई प्राचीन अभिलेख भी संरक्षित नहीं रह सके। उनके केवल कुछ आंशिक अंश छोटे–छोटे टुकड़ों के रूप में यहाँ–वहाँ बिखरे हुए प्राप्त होते हैं, जो उस समय के विध्वंस और उपेक्षा की ओर संकेत करते हैं (सिंह, 359:2002)।



बालेश्वर-सुग्रीवेश्वर मंदिर

बालेश्वर मंदिर में उत्कृष्ट कलाकृति देखने को मिलती है इसकी शिल्प कला कुमाऊँ के अन्य मंदिरों से विशिष्ट है। यह एक संयुक्त मंदिर है जिसमें कभी दो मंदिर (बालेश्वर–सुग्रीवेश्वर) रहे होंगे। यह मंदिर तलछंद में द्विपुरुष–शैली अर्थात द्वि गर्भगृह युक्त है (उनियाल, 442–2014)। यह मंदिर शैवमत को समर्पित है। मंदिरों के गर्भगृह में लिंग की

स्थापना की गई है। चंदवंश के शासकों द्वारा समय–समय पर इस मंदिर का जीर्णोद्वार कराया तथा इसके बाद गोरखा काल में भी इसमें कुछ परिवर्तन किए गए। पूर्वी भाग के रंगमंडप को गोरखा कल में जीर्णोद्वारित करके ढालू छत वाले पर्वतीय भवन का स्वरूप दे दिया गया, जिसके पश्चिमी भाग का रंगमंडप लगभग अपने मूल स्वरूप में विद्यमान है। पूर्वी भाग का रंगमंडप भी पश्चिमी रंगमंडप की समरुप प्रतिकृति का रहा होगा (पंत,57–2022)। बालेश्वर मंदिर समूह को भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण द्वारा राष्ट्रीय विरासत स्मारक के रूप में संरक्षित किया गया है। मंदिर के बाहरी व भीतरी हिस्से में शिलाओं का रासायनिक उपचार कर उन्हें सहेजने का काम किया जाता रहा है। हाल ही में सावन माह में बालेश्वर महादेव मंदिर के मुख्य शिवलिंग को पीतल का आवरण प्रदान किया गया यह महाराष्ट्र में तैयार किया गया था और विधिसम्मत पूजा अर्चना के बाद चढ़ाया गया जो संरक्षण और धार्मिक आस्था का सम्मिलित उदाहरण है।

निष्कर्ष

बालेश्वर मंदिर चंद कालीन गौरवशाली विरासत का अनुपम उदाहरण है। यह केवल पूजा–अर्चना का स्थल नहीं, बल्कि उस युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और कलात्मक चेतना का केंद्र भी रहा है। मंदिर की मूर्तिकला, स्थापत्य और शिलालेख हमें तत्कालीन शासकों की धार्मिक नीति, कला–प्रेम और जनता की आस्था का बोध कराते हैं। आज जब आधुनिकता की तेज रफ्तार हमारी प्राचीन धरोहरों को पीछे छोड़ती जा रही है, तब बालेश्वर मंदिर हमें यह स्मरण कराता है कि सांस्कृतिक पहचान और ऐतिहासिक गौरव को सुरक्षित रखना उतना ही आवश्यक है, जितना वर्तमान को संवारना। वर्तमान समय में भी इस मंदिर के संरक्षण और प्रचार–प्रसार को एक सांस्कृतिक प्रयास के रूप में देखा जा सकता है। स्थानीय समुदाय, सरकार और पर्यटकों की सहभागिता से यह धरोहर न केवल संरक्षित रह सकती है, बल्कि उत्तराखंड की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर भी अपनी पहचान सुदृढ़ कर सकती है।अतः इसके संरक्षण के लिए वैज्ञानिक प्रयास, सामुदायिक सहयोग और सांस्कृतिक पर्यटन से जोड़ना आवश्यक है। अतः इस धरोहर के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए स्थानीय समाज, शासन और शोधकर्ताओं की संयुक्त भूमिका अनिवार्य है। इस दृष्टि से बालेश्वर मंदिर केवल चंपावत ही नहीं, पूरे कुमाऊँ और उत्तराखंड की ऐतिहासिक आत्मा का प्रतीक है। यह धरोहर हमें अतीत से जोड़कर भविष्य की ओर प्रेरित करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डबराल, शिव प्रसाद : उत्तराखण्ड का इतिहास (10) : 1977 : वीरगाथा प्रकाशन दोगडा गढ़वाल।
2. डबराल, शिव प्रसाद : उत्तराखण्ड का इतिहास (11) : 1987 : वीरगाथा प्रकाशन दोगडा गढ़वाल।
3. पाण्डेय, आचार्य गोपालदत्त(अनु.) : स्कन्दपुराण 'मानसखंड' : 1989 : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान 38 यू. ए.,बंगलोरोड, जवाहरनगर, दिल्ली।
4. पंत, विवेक : पत्थरों में धड़कती कला (कुमाऊँ हिमालय का चंदकालीन स्थापत्य) : 2022 : पहाड़ 'परिक्रमा', तल्लाडांडा,तल्लीताल, नैनीताल।
5. सिंह,राम : राग–भाग काली कुमाऊँ : 2002 : पहाड़ प्रकाशक तल्लाडांडा, नैनीताल।
6. उनियाल, हेमा : मानसखण्ड (कुमाऊँ इतिहास, धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन) : 2014: उत्तरा बुक्स, बी 4/310 सी, केशवपुरम दिल्ली।
7. वैष्णव, यमुनादत्त : कुमाऊं का इतिहास (खस जाति के परिप्रेक्ष्य में) : 1977 : मॉडर्न बुक स्टोर दी माल, नैनीताल।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रेमचंद के साहित्य में तात्कालिक समाज का समाजशास्त्रीय एवं साहित्यिक अवलोकन

मुकुंद शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर
ए. एस. पी. जी. कॉलेज, मवाना
डॉ. कोमल देवी
असिस्टेंट प्रोफेसर
ए. एस. पी. जी. कॉलेज, मवाना

सारांश

प्रेमचंद (1880–1936) हिंदी साहित्य के ऐसे युगप्रवर्तक कथाकार हैं जिन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से भारतीय समाज के यथार्थ को सशक्त और जीवंत रूप में प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में तात्कालिक समाज का बहुआयामी चित्रण दिखाई देता है, जिसमें सामाजिक विषमता, जातिगत भेदभाव, स्त्री की दशा, किसान और श्रमिक वर्ग की दुर्दशा, आर्थिक शोषण, राष्ट्रीय चेतना तथा नैतिक मूल्यों का समावेश है। प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास तत्कालीन समाज का आईना हैं। ठाकुर का कुआँ और सद्गति जैसी कहानियाँ जातिवाद और छुआछूत की समस्या का भयावह यथार्थ सामने लाती हैं। निर्मला और सेवासदन जैसी कृतियाँ स्त्री विमर्श को स्वर देती हैं, वहीं गोदान और पूस की रात में किसान जीवन और आर्थिक शोषण की सच्चाइयाँ उद्घाटित होती हैं। साथ ही प्रेमचंद ने अपने साहित्य को राष्ट्रीय चेतना से भी जोड़ा। रंगभूमि, प्रेमाश्रय और महाजनी सभ्यता जैसी रचनाएँ स्वाधीनता आंदोलन की भावना को जन–जन तक पहुँचाती हैं। नमक का दरोगा और शतरंज के खिलाड़ी जैसी कहानियों में शहरी जीवन, मध्यमवर्ग की विडंबनाएँ और अंग्रेजी शासन का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि प्रेमचंद का साहित्य तात्कालिक समाज का जीवंत प्रतिबिंब है। उनकी रचनाओं में समाजशास्त्र के कई आयाम समाहित हैं– आर्थिक विषमता पर मार्क्सवादी दृष्टि[3],, जातिगत भेदभाव पर वेबर का सामाजिक स्तरीकरण[4],, स्त्री विमर्श में नारीवादी दृष्टिकोण और नैतिक चेतना में दुर्खीम का सामाजिक एकता सिद्धांत'[5], स्पष्ट रूप से झलकता है। यही कारण है कि प्रेमचंद का साहित्य आज भी समाज अध्ययन और साहित्यिक अनुसंधान दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से प्रासंगिक है।

प्रस्तावना

मुंशी प्रेमचंद हिंदी जगत के महत्वपूर्ण कथाकारों में से एक हैं और अपनी अप्रतिम कहानियों और उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं। उनके साहित्य में भारतीय जनमानस के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं का सशक्त और जीवंत दृष्टिकोण ही उनकी रचनाओं को अन्य रचनाओं से भिन्न बनाता है। समाज प्रेमचंद की कहानियों व उपन्यासों का मुख्य केंद्र है। प्रेमचंद की रचनाओं को पढ़कर तात्कालिक समाज के जीवंत दृश्यों को देखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में समाज के दलित तथा पिछड़ी जातियों के कई पात्रों को लेकर उनकी यथार्थ स्थिति को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। नारी विमर्श और नारियों के जीवन में पीड़ा तथा वेदना को

भी प्रेमचंद की कहानियों में देखा जा सकता है। प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में समाज की विविधता और जटिलता को गहराई से उकेरा है। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में जब भारतीय समाज औपनिवेशिक शासन, आर्थिक विषमता, जातिगत मतभेद, धार्मिक विभाजन और नैतिक पतन जैसी चुनौतियों से जूझ रहा था, तब प्रेमचंद की रचनाएँ समाज के उस यथार्थ को सामने रख रही थीं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद ने भारतीय समाज की "संरचना और संघर्ष" (Structure and Conflict)'[6], दोनों को अपनी लेखनी में सजीव रूप दिया।

साहित्य समीक्षा

प्रेमचंद पर हिंदी आलोचना का एक विस्तृत संसार मौजूद है। अनेक विद्वानों ने उनके साहित्य को समाज और यथार्थ के संदर्भ में विश्लेषित किया है।

नामवर सिंह'[7], अपनी कृति प्रेमचंद का समाज दर्शन में प्रेमचंद को भारतीय किसान जीवन और वर्गीय संघर्ष का प्रतिनिधि लेखक मानते हैं।

रामविलास शर्मा'[8], ने हिंदी कथा साहित्य का समाजशास्त्र में प्रेमचंद की कहानियों को भारतीय समाज की सामाजिक–आर्थिक संरचना का प्रतिबिंब बताया है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी'[10], ने प्रेमचंद को 'मानवता का कवि' कहा है, जो साहित्य को समाज के सुधार का साधन बनाते हैं।

अमृत राय की Premchand: His Life and Works,[9], में लेखक के जीवन, विचारों और रचनाओं के सामाजिक संदर्भों का गहरा अध्ययन है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से, युगेंद्र सिंह और आंद्रे बेटेय के समाज परिवर्तन और वर्ग–संरचना से जुड़े विचार प्रेमचंद के पात्रों को समझने में सहायक हैं।

नारी विमर्श के संदर्भ में सिमोन द बोउवार की The Second Sex'[13],में प्रस्तुत "स्त्री की सामाजिक निर्माण" की अवधारणा निर्मला और सेवासदन जैसी रचनाओं पर लागू होती है।

पूर्ववर्ती शोधों में प्रेमचंद को प्रायः या तो साहित्यिक दृष्टि से या समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखा गया है, परंतु प्रस्तुत अध्ययन का प्रयास इन दोनों दृष्टियों को एक साथ रखकर प्रेमचंद के साहित्य में समाज की बहुस्तरीय उपस्थिति का विश्लेषण करना है।

इन सभी पूर्व अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद के साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने की अपार संभावनाएँ हैं, जिन्हें यह शोध पत्र विस्तार देता है।

बीज शब्द – प्रेमचंद, समाज, साहित्य, समाजशास्त्र, वर्ग–संघर्ष, जाति, सामाजिक विषमता, नारीवाद, नैतिकता, राष्ट्रीयता, कहानी, उपन्यास।

शोध विस्तार

प्रेमचंद का साहित्य केवल भावनाओं की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज की आत्मा का दर्पण है। उनकी लेखनी में शब्द मात्र कहानी नहीं कहते, बल्कि उस युग के सामाजिक तंत्र, आर्थिक संरचना और मानवीय संवेदनाओं का गहन विश्लेषण भी करते हैं। जहाँ एक ओर वे पात्रों की मनोवैज्ञानिक गहराइयों को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर समाजशास्त्रीय दृष्टि से वर्ग, जाति, लिंग और नैतिकता की जटिलताओं को भी सामने लाते हैं। इस प्रकार प्रेमचंद का साहित्य साहित्यिक सौंदर्य और समाजशास्त्रीय यथार्थ दोनों का संगम बन जाता है।

1. सामाजिक विषमता–

प्रेमचंद की रचनाओं में समाज की विषमताओं को स्पष्ट देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर पूस की रात जैसी कहानियों में हल्कू जैसे पात्र अपनी दरिद्रता और असमर्थता के चलते रात भर ठंड से जूझते हैं, वहीं शतरंज के खिलाड़ी जैसी कहानियों में नवाबों की अय्याशी और अंग्रेजों की कूटनीति को भी बखूबी दिखाया गया है। प्रेमचंद के उपन्यास और कहानियों में गरीबी और सामाजिक विषमताओं का यथार्थ चित्रण है। समाज की इन विषमताओं का चित्रण न केवल उनकी रचनाओं के पात्रों की क्रियाकलापों में देखने को मिलता है, बल्कि पात्रों के नामों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। घोर दरिद्रता और शोषण से जूझ रहे पात्रों के नाम हल्कू, समझू, झगड़ू, होरी, गोबर आदि जैसे साधारण होते हैं। वहीं दूसरी ओर उनकी रचनाओं में जो पात्र ऊँची जाति, पद, व्यवसाय या बौद्धिकता से जुड़े होते हैं, उनके नामों में

यह भाव भी झलकता है, जैसे पंडित लीलाधर चौबे, पंडित मोटेराम शास्त्री, पंडित मोहन स्वरूप शुक्ल, डॉक्टर चड्ढा आदि।यह वही विषमता है जिसे कार्ल मार्क्स ने "वर्ग–संघर्ष" कहा है– जहाँ समाज दो वर्गों में बँटा हैरू शोषक और शोषित। "गोदान" में होरी का संघर्ष इसी आर्थिक असमानता का प्रतीक है।ख1, ख5, ख14, ख15, ख18, प्रेमचंद ने दिखाया कि सामाजिक असमानता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय असमानता का भी रूप ले चुकी थी।'[14]

2. जातिवाद और छुआछूत–

प्रेमचंद ने तात्कालिक भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव और छुआछूत की समस्या को भी अपनी रचनाओं में दर्शाया है। प्रेमचंद की बहुत–सी रचनाएँ तो जातिवाद और छुआछूत पर ही केंद्रित हैं। ये रचनाएँ न केवल उच्च वर्ग की संकीर्ण मानसिकता को उजागर करती हैं, बल्कि दलित वर्ग की पीड़ा को भी व्यक्त करती हैं। ठाकुर का कुआँ कहानी में छुआछूत जैसी समस्या की विभीषिका को उजागर किया गया है। जोखू और गंगा का जातिवाद के प्रति विद्रोह इस कहानी का मुख्य केंद्र है। इसी प्रकार सद्गति जैसी कहानियों में छुआछूत के भयावह दृश्य को दिखाया गया है। वहाँ दुखी नामक दलित पात्र ऊँची जाति वाले पंडित और पंडिताइन की सेवा निष्ठाभाव से करता है और अंत में जब वह मरता है तो उसे भी सम्मानपूर्वक अंत्येष्टि नसीब नहीं होती। जातिवाद और छुआछूत का जो घिनौना दृश्य प्रेमचंद की रचनाओं में देखने को मिलता है, वह अन्य रचनाओं में विरला ही मिलता है। यहाँ मैक्स वेबर की सामाजिक स्तरीकरण की अवधारणा पूरी तरह लागू होती है। समाज में जाति और धर्म के आधार पर बने पदानुक्रम ने समानता और मानवता को कुचल दिया था।, जोखू और गंगा का संघर्ष इस अन्यायपूर्ण सामाजिक संरचना का प्रतीक है। प्रेमचंद ने इन कहानियों में दिखाया कि किस तरह समाजशास्त्रीय स्तर पर धर्म और जाति ने एक सामाजिक असमानता की संस्थागत व्यवस्था बना ली थी।'[15]

3. स्त्री विमर्श

प्रेमचंद ने स्त्रियों की स्थिति और उनके संघर्षों का चित्रण बहुत ही संवेदनशील तरीके से किया है। उनकी रचनाओं में न केवल नारी के जीवन की पीड़ा का चित्रण है, बल्कि उसे शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने की प्रेरणा भी है। प्रेमचंद की बहुत–सी रचनाएँ जैसे निर्मला, सेवासदन, गबन आदि उपन्यासों में दहेज प्रथा, स्त्री की विवशता, वेश्यावृत्ति, स्त्री की सामाजिक दशा, स्त्री की इच्छाएँ, परिवार पर आर्थिक बोझ, स्त्री का आत्मसम्मान, स्त्री के त्याग की वेदना और स्त्री–पुरुष में असमानता को दिखाया गया है। जहाँ एक ओर निर्मला उपन्यास में दहेज प्रथा और स्त्री की विवशता का मार्मिक चित्रण है, वहीं सेवासदन उपन्यास में वेश्यावृत्ति जैसे दुष्कृत्यों के माध्यम से स्त्री की सामाजिक दशा का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मंगलसूत्र कहानी में स्त्री के आत्मसम्मान और त्याग की संवेदना को बखूबी दिखाया गया है।यहाँ प्रेमचंद का दृष्टिकोण नारीवादी सिद्धांत के बहुत करीब है।, उन्होंने स्त्री को केवल पीड़िता नहीं, बल्कि परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया। "बड़े घर की बेटी" में स्त्री के स्वाभिमान और "सेवासदन" में वेश्यावृत्ति के माध्यम से स्त्री की सामाजिक स्थिति का विश्लेषण स्त्री–स्वतंत्रता के समाजशास्त्रीय आयामों को उजागर करता है। प्रेमचंद के यहाँ स्त्री अपने जीवन की "सामाजिक निर्माण" को चुनौती देती है।

4. ग्रामीण जीवन और किसान समस्या

ग्रामीण जीवन और उससे जुड़ी समस्याओं का वर्णन तो प्रेमचंद के साहित्य में अप्रतिम रूप से दिखाई देता है। गाँव के जीवन का मनोहर दृश्य तथा साथ ही ग्रामीण परिवेश में व्याप्त समस्याएँ प्रेमचंद के उपन्यासों का मूल केंद्र हैं। प्रेमचंद की रचनाओं में समाज का सीधा–सीधा प्रभाव कथानक पर पड़ता है। गोदान उपन्यास में किसानी जीवन और शोषण का विश्वसनीय चित्रण है। प्रेमचंद के साहित्य में ग्रामीण जीवन के बहुआयामी चित्र देखने को मिलते हैं। जहाँ एक ओर गोदान जैसे उपन्यास में होरी के माध्यम से किसान के जीवन और शोषण का चित्रण है, वहीं पूस की रात कहानी में हल्कू द्वारा अपनी दुर्दशा को स्वीकार करके रात भर सर्दी में बिताने का वर्णन है। ईदगाह कहानी में गरीब होते हुए भी हामिद अपनी दादी के प्रति प्रेम और संवेदना प्रकट करता है। इसी प्रकार बड़े घर की बेटी कहानी में ग्रामीण स्त्रियों के मन में पारिवारिक झगड़ों से निपटने और पारिवारिक प्रेम को दर्शाया गया है। यहाँ समाजशास्त्रीय दृष्टि से प्रेमचंद का दृष्टिकोण मार्क्सवादी आर्थिक संरचना सिद्धांत से मेल खाता है। भूमि, पूँजी और श्रम के असमान वितरण ने ग्रामीण जीवन को असंतुलित बना दिया।'[14] पूस की रात और ईदगाह जैसी कहानियाँ न केवल संवेदना का चित्रण करती हैं, बल्कि वे इस बात को भी दिखाती हैं कि सामाजिक संस्थाएँ (जमींदारी, महाजनी प्रथा) किस प्रकार ग्रामीण समाज को शोषित बनाए रखती हैं।'[12]

5. आर्थिक विषमता और शोषण

प्रेमचंद की कहानियाँ और उपन्यास तात्कालिक समाज की आर्थिक विषमता और शोषण के साक्ष्य हैं। यह आर्थिक विषमताएँ समाज को शोषित और असमर्थ बना देती हैं। आर्थिक विषमता दरिद्र व्यक्ति को संवेदनहीन बना देती है। 'कफन' कहानी में दरिद्रता और अमानवीयता का भयावह रूप दिखाई देता है। इसी प्रकार 'गुल्ली–डंडा', 'दूध का दाम' और 'घासवाली' जैसी कहानियाँ भी आर्थिक विषमता और सामाजिक विभाजन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं। तात्कालिक समाज में शराब और दरिद्रता अपने चरम पर थी, कफन कहानी इस बात की साक्षी है। कहानी में माधव और उसके पिता का संवेदनशीलता से परे हो जाना उनकी गरीबी का ही दुष्प्रभाव था। इसी प्रकार गुल्ली–डंडा कहानी आर्थिक विषमता से बचपन और बड़प्पन में आई दूरी की गहरी झलक है। तात्कालिक समाज में आर्थिक विषमता एक ऐसी दीवार हुआ करती थी जो अमीर–गरीब के मध्य अलगाव पैदा करती थी। आर्थिक विषमता और शोषण का यही प्रमाण प्रेमचंद की अन्य कहानियों जैसे दूध का दाम, घासवाली आदि में भी देखा जा सकता है।यह वह स्थिति है जिसे समाजशास्त्री जोहान गॉलटुंग ने "संरचनात्मक हिंसा" कहा कृ जब समाज की व्यवस्था ही ऐसी हो जाए कि गरीबों के पास जीवन की बुनियादी सुविधाएँ न रहें।ख्4,ख्17, प्रेमचंद ने यह दिखाया कि आर्थिक विषमता केवल धन की कमी नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं का पतन भी है।

6. राष्ट्रीय चेतना

प्रेमचंद की साहित्य–साधना का दौर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का दौर था। प्रेमचंद का साहित्य भी भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की चिंगारी से अछूता नहीं था। बल्कि प्रेमचंद का साहित्य तो अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हथियार के रूप में ही सामने आया। प्रेमचंद पहले ष्नवाबरायष् उपनाम से लिखते थे, जिनकी कहानी–संग्रह सोज–ए–वतन को अंग्रेजी हुकूमत ने देशविरोधी बताकर प्रतिबंधित कर दिया। अंग्रेजी पराधीनता के चलते प्रेमचंद को ष्नवाबरायष् नाम का त्याग करना पड़ा, परंतु उनके नए नाम प्रेमचंद और उनकी रचनाओं में भी आजादी की चिंगारी रह–रहकर उमड़ती रही। प्रेमचंद के अनेक उपन्यास जैसे रंगभूमि, प्रेमाश्रय, महाजनी सभ्यता आदि तथा कहानियाँ स्वदेश–प्रेम और स्वतंत्रता की गूँज से भरी हुई हैं। उनकी रचनाएँ तात्कालिक समाज और किसानों में राष्ट्रीय चेतना और संगठित प्रतिरोध का बीजारोपण करती हैं।'[16] प्रेमचंद के साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन की भावना गहराई से जुड़ी हुई है। उनकी रचना 'महाजनी सभ्यता' में ब्रिटिश पूंजीवादी सभ्यता की तीखी आलोचना है। 'नमक का दरोगा' में ईमानदारी और देशप्रेम का उत्कृष्ट उदाहरण है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में अंग्रेजी शासन की कूटनीति और भारतीय अभिजात वर्ग की निष्क्रियता को दर्शाया गया है। प्रेमचंद की अधिकांश कहानियों में समाज ब्रिटिश हुकूमत के प्रभाव से अछूता नहीं था। ब्रिटिश हुकूमत और अंग्रेजी शासन के प्रभाव और दुष्प्रभाव प्रेमचंद के समाज में स्पष्ट रूप से देखे जा सकते थे।यह दुर्खीम की सामाजिक एकता की अवधारणा के अनुरूप है, जिसमें नैतिक एकजुटता ही समाज की स्थिरता का आधार होती है।'[18] प्रेमचंद के पात्रों में यह नैतिकता और सामूहिक कर्तव्य–बोध स्पष्ट झलकता है। उनकी कहानियाँ व्यक्ति को समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी बनाती हैं।

7. शहरी जीवन और मध्यवर्ग

अंग्रेजी हुकूमत के प्रभाव के चलते शहरीकरण, शहरी जीवन और पश्चिमी सभ्यता की शिक्षा भारत में फैल रही थी। पश्चिमी सभ्यता के फायदे और नुकसान दोनों भारतीय समाज में दिखाई दे रहे थे। इसलिए मध्यमवर्गीय परिवारों में शहरीकरण और पश्चिमी सभ्यता के प्रति द्वंद्व और संघर्ष दिखाई देता था। 'नमक का दरोगा' कहानी मध्यमवर्गीय नौकरीपेशा लोगों की ईमानदारी बनाम भ्रष्टाचार की साक्षी है।'शतरंज के खिलाड़ी' में शहरी अभिजात वर्ग की निष्क्रियता और अंग्रेजी शासन का प्रभाव दिखाया गया है। कर्मभूमि जैसे उपन्यासों में शहरों के युवाओं और छात्रों में राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस तरह प्रेमचंद का संपूर्ण साहित्य तात्कालिक समाज के मध्यवर्गीय जनजीवन की विडंबनाओं को दर्शाता है।यह स्थिति वेबर के "Protestant Ethic and Capitalism" सिद्धांत की तरह है जहाँ नैतिकता और भौतिक सफलता के बीच संघर्ष समाज के चरित्र को निर्धारित करता है।'[15], प्रेमचंद ने इस द्वंद्व को भारतीय परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया।

8. नैतिकता और मानवीय मूल्य

प्रेमचंद के साहित्य में नैतिकता और मानवीय मूल्यों की पराकाष्ठा है। प्रेमचंद ने अपने साहित्य में मानवीय करुणा, नैतिकता और मूल्यों को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। 'ईदगाह' में हामिद की संवेदनशीलता और त्याग प्रेमचंद के मानवीय

मूल्यों का प्रतीक है 'दो बैलों की कथा' में पशु–हृदय में भी वफादारी और नैतिक मूल्य हैं। और 'पंच परमेश्वर' में न्याय और सत्य के आगे मित्रता का बलिदान है। प्रेमचंद के साहित्य में हृदय–परिवर्तन इस हद तक व्याप्त है कि उनकी रचनाएँ आदर्शवाद की ओर बढ़ जाती हैं। गोदान में होरी के भाई का हृदय–परिवर्तन, दो बैलों की कथा में झुरी की पत्नी का हृदय–परिवर्तन, बूढ़ी काकी कहानी में भी हृदय–परिवर्तन के भाव यथोचित रूप से उभरकर आते हैं।यहाँ उनका दृष्टिकोण दुर्खीम के नैतिक एकीकरण सिद्धांत से मेल खाता है– प्रेमचंद का समाज नैतिक मूल्यों के बिना टिक नहीं सकता।'[16]

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रेमचंद का साहित्य तात्कालिक समाज का सबसे सशक्त और प्रामाणिक अवलोकन है। उन्होंने अपने समय के समाज को न केवल देखा, बल्कि उसे अपनी रचनाओं में इस प्रकार उतारा कि पाठक तत्कालीन जीवन की समस्त जटिलताओं, संघर्षों और भावनाओं से रूबरू हो सके।

प्रेमचंद ने समाज के सभी वर्गोंकृ किसान, श्रमिक, दलित, स्त्री और मध्यमवर्ग की समस्याओं को अपने साहित्य का आधार बनाया। ठाकुर का कुआँ, सद्गति और निर्मला जैसी रचनाओं से हमें जातिवाद, छुआछूत और स्त्री–जीवन की विवशताओं का यथार्थ स्वरूप देखने को मिलता है। गोदान और कफन जैसी कृतियाँ किसानों और दरिद्र वर्ग के शोषण तथा आर्थिक विषमता को उजागर करती हैं। इस प्रकार प्रेमचंद ने उन मुद्दों को साहित्य के केंद्र में लाया जिन्हें प्रायः समाज अनदेखा कर देता था। उनकी रचनाओं में केवल सामाजिक यथार्थ ही नहीं, बल्कि नैतिकता और मानवीय मूल्यों की झलक भी मिलती है। ईदगाह, दो बैलों की कथा और पंच परमेश्वर जैसी कहानियाँ मानव–जीवन में करुणा, त्याग, वफादारी और न्याय की भावना को स्थापित करती हैं। उनके साहित्य में वर्ग–संघर्ष, जातिवाद, स्त्री–विमर्श, ग्रामीण जीवन, राष्ट्रीयता और नैतिकता ये सभी समाजशास्त्रीय आयामों के साथ गुँथे हुए हैं। मार्क्स, वेबर, दुर्खीम और नारीवादी चिंतन की दृष्टि से देखें तो प्रेमचंद का लेखन केवल साहित्य नहीं, बल्कि समाजशास्त्र की एक जीवंत प्रयोगशाला है।प्रेमचंद ने अपनी कलम से उस समाज को आवाज दी जिसे इतिहास ने मौन कर दिया था। इसीलिए उनका साहित्य न केवल अतीत का साक्ष्य है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के सामाजिक निर्माण की दिशा भी देता है।

संदर्भ सूची

1. प्रेमचंद, गोदान, सरस्वती प्रेस, बनारस, संस्करण 1936, पृ.सं. 1–300
2. प्रेमचंद, सेवासदन, सरस्वती प्रेस, लाहौर, संस्करण 1918, पृ.सं. 45–189
3. प्रेमचंद, निर्मला, सरस्वती प्रेस, बनारस, संस्करण 1928, पृ.सं. 10–210
4. प्रेमचंद, कफन और अन्य कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2010, पृ.सं. 55–70
5. प्रेमचंद, रंगभूमि, सरस्वती प्रेस, बनारस, संस्करण 1925, पृ.सं. 1–350
6. प्रेमचंद, सोज–ए–वतन, सरस्वती प्रेस, लाहौर, संस्करण 1908, पृ.सं. 12–40
7. नामवर सिंह, प्रेमचंद का समाज दर्शन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृ.सं. 98
8. रामविलास शर्मा, हिंदी कथा साहित्य का समाजशास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2005, पृ.सं. 112
9. अमृत राय, Premchand: His Life and Works, People's Publishing House] New Delhi, 1962, p- 175
10. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का आदर्शवाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2012, पृ.सं. 67
11. आंद्रे बेटेय, Caste, Class and Power: Changing Patterns of Stratification in a Tanjore Village, Oxford University Press, New Delhi, 1991, p- 84
12. सिमोन द बोउवार, The Second Sex (अनुवाद : महादेवी वर्मा), पेंगुइन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2006, पृ.सं. 155
13. कार्ल मार्क्स, दास कैपिटल, प्रोग्रेस पब्लिशर्स, मॉस्को, संस्करण 1983, पृ.सं. 88
14. मैक्स वेबर, The Protestant Ethic and the Spirit of Capitalism,Allen - Unwin, London, 1930, p- 120
15. एमिल दुर्खीम, The Division of Labour in Society, The Free Press, New York, 1964, p- 99
16. जोहान गॉलटुंग, Violence, Peace and Peace Research, Journal of Peace Research, Vol- 6, No- 3, 1969, p- 167
17. डॉ. सुरेश चंद्र पांडेय, प्रेमचंद और समाजशास्त्रीय दृष्टि, साहित्य विमर्श प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2019, पृ.सं. 56
18. राजेन्द्र यादव (संपा.), प्रेमचंद रचनावली खंड–2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1996, पृ.सं. 245

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्रौद्योगिकी का कल्याणकारी योजनाओं पर प्रभाव

आस्था तिवारी
शोधार्थी
प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

लेख में यह प्रस्तुत किया गया है कि कैसे प्रौद्योगिकी सुचना प्रसार, लाभार्थी में जागरुकता में वृध्दि, प्रक्रिया तंत्र से सुधार और स्थानीय भुगतान में देरी को कम करके कल्याण कार्यक्रम की प्रभावशीलता को बढाती है। प्रौद्योगिकी कल्याणकारी कार्यक्रमों को जनता के लिए अधिक सुलभ बनाने के नए अवसर प्रस्तुत करता है। कल्याण सेवाओं की डिलीवरी को बेहतर बनाने के लिए डिजिटल प्रौद्योगिकी का प्रभावी ढंग से उपयोग किया है। इसका उद्देश्य पारंपरिक कल्याण वितरण प्रणाली में अक्षमताओं को दूर करना है। यह सामाजिक विकास कार्यक्रमों को बढ़ावा देने में प्रौद्योगिकी की भूमिका की जांच करता है, जिसमें नवाचार से लेकर समावेशन तक शामिल है।

मुख्य शब्द– कल्याणकारी कार्यक्रम, प्रौद्योगिकी का प्रभाव।

प्रस्तावना

जितनी अधिक प्रौद्योगिकी उन्नत होती जाती है, उतना ही अधिक यह हमारे जीवन पर नियंत्रण रखती हुई प्रतीत होती है। आज, प्रौद्योगिकी का उपयोग हमारे समाज में व्यापक रूप से उपलब्ध है और जोरदार तरीके से प्रचारित किया जाता है। जबकि प्रौद्योगिकी लोगों के लिए जीवन को आसान बनाती है, यह हमारे समाज के लिए कुछ समस्याएं भी पैदा करती है, जैसे कि सामान्य सामाजिक व्यवहारों में गिरावट। फिर भी, आधुनिक समाजों ने बौद्धिक प्रौद्योगिकी के महत्व को समझा है, जो एक नए ज्ञान का रूप है जो लक्ष्यों को प्राप्त करता है या कई समस्याओं का समाधान करता है।

'प्रौद्योगिकी' शब्द दो भागों से मिलकर बना है – 'टेक्नो' का अर्थ है अनुप्रयोग, कला या कौशल, और लॉजी का अर्थ है विज्ञान और सीखना। इस प्रकार, शब्द प्रौद्योगिकी का भाषाई अर्थ है– वे तरीके और उपकरण जो एक समाज ने अपनी व्यावहारिक समस्याओं के समाधान को सुविधाजनक बनाने और समुदाय के लिए आवश्यक आवश्यकताओं को प्रदान करने के लिए विकसित किए हैं। चूंकि मानव स्वभाव से सामाजिक होते हैं, इसलिए आजकल के संबंध आधुनिक प्रौद्योगिकियों जैसे कि सोशल मीडिया के उपयोग से अधिक प्रभावित होते जा रहे हैं, जो दूरियों को कम करता है, इसके बावजूद इसके मानव संबंधों और परिवार पर नकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं। वर्तमान में, लोग मानते हैं कि आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उपयोग जीवन की एक आवश्यकता है और समुदाय की सांस्कृतिक जागरूकता का एक संकेत है। उनकी प्रमुख भूमिकाएं हैं जो इस युग की आवश्यकताओं में से एक हैं, जहाँ वे जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रवेश करते हैं ताकि सेवाएं प्रदान की जा सकें, जीवन की गुणवत्ता में सुधार हो और संचार और संबंधों में वृद्धि हो, क्योंकि यह एक विकसित संस्कृति है जो समुदाय की संस्कृति को दर्शाती है।

यह लेख आधुनिक प्रौद्योगिकियों का कल्याणकारी योजनाओं पर प्रभावों को दर्शाता है और लोगों को आधुनिक प्रौद्योगिकियों का उचित तरीके से उपयोग करने के प्रति जागरूक करने में योगदान करेगा। क्योंकि आधुनिक प्रौद्योगिकियां लोगों के जीवन और भविष्य की संभावनाओं में एक प्रमुख भूमिका निभाती हैं।

कल्याणकारी कार्यक्रमों को आजकल कुशलतापूर्वक और प्रभावी ढंग से संचालित करने की आवश्यकता है। डिजिटल प्रौद्योगिकी इस स्पष्ट संघर्ष से निपटने में सहायता कर सकती है। उदाहरण के लिए, कंप्यूटर प्रलेखन की सुविधा प्रदान करते हैं, उन्नत शोध तकनीकों के उपयोग को प्रोत्साहित करते हैं, और व्यवसायियों को कागजी कार्रवाई से मुक्त करते हैं, ताकि बढ़ी हुई सेवाएं प्रदान की जा सकें। तदनुसार, इस प्रौद्योगिकी का उपयोग सामाजिक सेवाओं के वितरण में सुधार के लिए किया जा सकता है।

प्रौद्योगिकी सार्वजनिक सेवाओं और सामाजिक समर्थन तंत्र के परिदृश्य को तेजी से बदल रहा है। डिजिटल प्रौद्योगिकी, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, बिग डेटा एनालिटिक्स और ब्लॉकचेन जैसी प्रौद्योगिकी में प्रगति सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता, दक्षता और पहुंच को बढ़ाने के लिए नए अवसर प्रदान करती है। तकनीकी और संगठनात्मक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तनों को संबोधित करने और मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए नए शानदार अवसर पैदा करते हैं। सामाजिक कल्याण में प्रौद्योगिकी के संभावित लाभ बहुआयामी हैं। यह वास्तविक समय डेटा संग्रह और विश्लेषण को सक्षम करके, संसाधनों के बेहतर लक्षित करने को सुविधाजनक बनाकर और विभिन्न सेवा प्रदाताओं के बीच समन्वय को बढ़ाकर सेवा वितरण में सुधार करता है।

सामाजिक कल्याण में प्रौद्योगिकी

प्रौद्योगिकी के विकास ने न केवल मानव और प्रकृति के बीच संबंधों में परिवर्तन लाया है, बल्कि लोगों के एक दूसरे के साथ बातचीत करने के तरीके को भी बदला है। कंप्यूटर और इंटरनेट द्वारा प्रतिनिधित्व की जाने वाली आधुनिक प्रौद्योगिकी ने एक सीधा चौनल स्थापित किया है जो लोगों को संवाद करने और अपनी जानकारी प्रतिक्रिया देने में मदद करता है। इन नवाचारों से संबंधित कुछ प्रत्यक्ष लाभ हैं–

स्वास्थ सेवा

स्वास्थ्य सेवा में डिजिटल प्रौद्योगिकी ने स्वास्थ्य सेवाओं को प्रदान करने और उन तक पहुँचने के तरीके में क्रांति ला दी है। टेलीमेडिसिन और रिमोट पेशेंट मॉनिटरिंग प्रौद्योगिकियाँ दूरस्थ परामर्श को सक्षम बनाती हैं, विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित समुदायों के लिए स्वास्थ्य सेवा तक पहुँच में बाधाओं को कम करती हैं। इलेक्ट्रॉनिक स्वास्थ्य रिकॉर्ड और आंतर–कार्यशील प्रणालियाँ स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं के बीच सूचना साझा करने और समन्वय में सुधार करती हैं, रोगी की सुरक्षा और देखभाल की निरंतरता को बढ़ाती हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम प्रारंभिक रोग का पता लगाने, व्यक्तिगत उपचार योजनाओं और भविष्य कहनेवाला विश्लेषण के लिए डेटा विश्लेषण को सक्षम करते हैं। वियरेबल डिवाइस और मोबाइल स्वास्थ्य एप्लिकेशन व्यक्तियों को अपने स्वास्थ्य की निगरानी करने, फिटनेस लक्ष्यों को ट्रैक करने और पुरानी स्थितियों को प्रबंधित करने के लिए सशक्त बनाते हैं। ये नवाचार न केवल स्वास्थ्य परिणामों में सुधार करते हैं, बल्कि लागत बचत, दक्षता और व्यक्तियों के लिए समग्र कल्याण में भी योगदान करते हैं।

शिक्षा

ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल सामग्री वितरण सामाजिक कल्याण के डिजिटल परिवर्तन में, नवाचार ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म और डिजिटल सामग्री वितरण के रूप में उभरे हैं। इन प्रगतियों ने शिक्षा और कौशल विकास में क्रांति ला दी है, जिससे सुलभ और इंटरैक्टिव सीखने के अनुभव प्राप्त होते हैं। ई–लर्निंग प्लेटफॉर्म विभिन्न पाठ्यक्रम, संसाधन और सहयोगी उपकरण प्रदान करते हैं, जिससे व्यक्ति दूरस्थ रूप से ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकते हैं। डिजिटल सामग्री वितरण शैक्षिक सामग्री तक आसान पहुँच सुनिश्चित करता है, जिससे आजीवन सीखने के अवसरों को बढ़ावा मिलता है और विशेष रूप से वंचित समुदायों में शैक्षिक अंतर को पाटने में मदद मिलती है।

रोजगार

डिजिटल जॉब प्लेटफॉर्म और गिग अर्थव्यवस्था श्रमिकों के रोजगार वर्गीकरण का निर्धारण करता हैय क्योंकि पारंपरिक श्रम कानून उन्हें पर्याप्त रूप से कवर नहीं कर सकते हैं। श्रमिक सुरक्षा सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण हो जाता है, जिसमें लाभ, स्वास्थ्य देखभाल और आय सुरक्षा तक पहुंच शामिल है। सरकारें और प्लेटफॉर्म रोजगार और आय की संभावनाओं को बढ़ाने के लिए कौशल विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रदान करने में सहयोग कर सकते हैं।

वाणिज्य संस्थान

प्रौद्योगिकी ने व्यापार और वाणिज्य क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। E-commerce, Online Payment, Digital Marketing, Optimized Supply Chain, Organizational Operations और Latest Business Tools का उपयोग करके व्यापार की गतिविधियों में सुधार हुआ है। यह व्यापारियों को उत्पादों और सेवाओं को आसानी से विक्रय करने, ग्राहकों के साथ बेहतर संवाद स्थापित करने, और कारोबार के लिए रणनीति विकसित करने की संभावनाएं प्रदान करता है।

सामाजिक सहायता कार्यक्रम

सामाजिक सहायता कार्यक्रमों ने महत्वपूर्ण डिजिटलीकरण किया है, जिसमें डिजिटलीकृत लाभ आवेदन और प्रसंस्करण, एआई–आधारित पात्रता निर्धारण और धोखाधड़ी रोकथाम, और वित्तीय समावेशन में सुधार के लिए डिजिटल भुगतान प्रणाली जैसी प्रौद्योगिकियों को शामिल किया गया है। ये प्रगति आवेदन प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करती है, कागजी कार्रवाई को कम करती है और लाभार्थियों के लिए पहुंच में सुधार करती है। डिजिटल भुगतान प्रणाली, जैसे कि सीधे जमा, मोबाइल वॉलेट और प्रीपेड कार्ड, लाभों के सुरक्षित वितरण की सुविधा प्रदान करते हैं, वित्तीय समावेशन को बढ़ावा देते हैं और नकद संचालन जोखिमों को कम करते हैं। प्रौद्योगिकी के द्वारा समान पहुंच, डिजिटल विभाजन को समाप्त करना और लाभार्थियों को सशक्त बनाने के लिए डिजिटल साक्षरता कार्यक्रमों में निवेश करना शामिल है।

निष्कर्ष

प्रौद्योगिकी ने कल्याणकारी कार्यक्रमों को प्रभावित और पुनः आकार दिया है। इसमें चिकित्सा सेवा और शिक्षा के मूलभूत सिद्धांतों और दृष्टिकोणों में परिवर्तन शामिल है। प्रस्तुत लेख में यह बताया गया है कि प्रौद्योगिकी के प्रभाव से सार्वजनिक विकास, शिक्षा, स्वाथ्य देखभाल में पहुँच, और गुणवत्ता में सुधार हुआ है।

सन्दर्भ सूची

1. बाकर, नार्वियर सी. (1986) दि इम्प्लिकेशन्स ऑफ कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी इन द डिलिवरी ऑफ ह्युमन सर्विसेज, The Journal of Sociology & Social Welfare: Vol- 13:Iss-1,Article 5-Available at: https://scholarworks-wmich-edu/jssw/vol13/iss1/5

2. राय, शिवानी. (2023) डिजिटल ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सोशल वेल्फेयरः एक्सप्लोरिंग इनोवेशन्स एंड पॉलिसी इम्प्लिकेशन्स, International Journal of Humanities,Art and Social Studies (IJHAS), Vol- 8, No-3,August 2023

3. डॉ. जाधव, आर.जी. (2018) वेल्फेयर प्रोग्राम्स इन इंडियाः ए रिव्यू 2018 IJCRT | Volume 6, Issue 1 February 2018 | ISSN: 2320-2882- International Journal of Creative Research Thoughts (IJCRT) www.ijcrt.org

4. मोहम्मद बानी यूनुस, सामेर अल–जौबी. (2015) दि इम्पैक्ट ऑफ टेक्नोलॉजीज ऑन सोसाइटीः ए रिव्यू, IOSR Journal of HumanitiesAnd Social Science (IOSR-JHSS) Volume 20, Issue 2, Ver- V (Feb- 2015), PP 82-86 e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845- www.iosrjournals.org

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा

दिनेश कुमार पटेल
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर, राज.,
अध्यापक –रा. उ. मा. वि. गोरण, झाड़ोल (फ.) जि. उदयपुर,राजस्थान

सार-संक्षेप

स्त्री–पुरुष समानता एक ऐसी सामाजिक–आर्थिक अवधारणा है जिसमें महिलाओं और पुरुषों को लिंग के आधार पर भेदभाव किए बिना समान अधिकार, अवसर, संसाधन और सम्मान प्राप्त होते हैं। सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं की स्थिति पर गंभीरता से विचार हुआ हैं। उन्हें पुरुषों के समान अधिकार तथा सुरक्षा प्रदान करने के संबंध में अनेक नियम–कानून बनाए गए हैं तथा बनाए जा रहे हैं। परंतु क्या दर्जनों कानून बनाने के बाद भी, और ज्यादा कानून बनाने की आवश्यकता हैं या फिर किसी अन्य तत्व की आवश्यकता हैं जो इस दिशा में बेहतर परिणाम दे सके ? भारतीय संस्कृति में विभिन्न वर्गों में एकात्मकता एवं स्त्री समानता की अवधारणा मिलती हैं। भारत में प्राचीनकाल में स्त्रियों का सम्माननीय, आदर्शात्मक एवं मर्यादायुक्त स्थान था। विवाह में स्त्री–पुरुष को चयन का समान अधिकार तथा स्त्री सम्मान की परंपरा मिलती है। स्त्री–पुरुष समानता के मामले मे भारत के प्राचीन साहित्य से पर्याप्त मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता हैं।

संकेताक्षर– समानता, संस्कृति, सम्मानजनक, मर्यादा, मीमांसा, भारतीय साहित्य, जागरूकता, एकात्मता।

सामाजिक-आर्थिक अवधारणा के प्रमुख पहलू

समान अधिकार : सभी व्यक्तियों को, चाहे वे पुरुष हो या महिला, शिक्षा, रोजगार, राजनीति, कानूनी प्रक्रिया और संपत्ति जैसे सभी क्षेत्रों मे समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए।

समान अवसर : महिलाओं और पुरुषों को समान अवसर मिलने चाहिए ताकि वे अपनी क्षमता और योग्यता के अनुसार आगे बढ़ सकें, चाहे वे किसी भी क्षेत्र में हो।

समान सम्मान : सभी का सम्मान समान रूप से किया जाना चाहिए, और लिंग के आधार पर कोई भी भेदभाव या पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए। वर्तमान समाज में स्त्री पुरुष की समानता का बहुत महत्व है। यह समानता एक न्यायपूर्ण समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। इससे न केवल समाज में दंगे और असमानता कम होती है, बल्कि समाज की संरचना में भी सुधार होता है। स्त्री पुरुष की समानता से, स्त्री और पुरुष दोनों को न्याय के साथ व्यवहार किया जाता है। समाज में स्त्रियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और सपंत्ति के साथ –साथ पुरुषों के बराबर मौके मिलते हैं। इससे समाज की संपत्ति और समृद्धि भी बढ़ती है। स्त्री पुरुष की समानता का अभाव समाज में दंगे, असंतुलन और असमानता उत्पन्न करता है जो कि न्याय के साथ व्यवहार करने से समाज को नुकसान पहुंचाता है। स्त्री पुरुष की समानता से समाज में समान अधिकारों, समान वेतन और समान मौकों के लिए संघर्ष किया जाता है जो कि समाज की समृद्धि के लिए बहुत आवश्यक है।

आर्थिक भागीदारी : महिलाओं को आर्थिक गतिविधियों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में समान भागीदारी मिलनी चाहिए और उन्हें अपने परिश्रम के फल का समान रूप से आनंद लेना चाहिए।

समाज के स्वस्थ विकास के लिए स्त्री–पुरुष समानता की अवधारणा विकसित की गई है। उनके संबंधों मे संतुलन

बैठाना आवश्यक प्रतीत होता है। स्त्रियाँ समाज के एक बड़े वर्ग का निर्माण करती हैं। अतः आवश्यक है कि स्त्रियों और पुरुषों में समानता की स्थिति विध्यमान रहे द्य यह सही है कि सम्पूर्ण विश्व में महियाओं की स्थिति पर गंभीरता से विचार हुआ है। उन्हें समान अधिकार प्रधान करने, सामाजिक– आर्थिक समानता प्रदान करने, सुरक्षा प्रदान करने के संबंध मे विश्व के विभिन देशों में अनेक नियम–कानून बनाए गए है एवं बनाए जा रहे हैं। इस दिशा में निरंतर प्रयास जारी है, फिर भी विश्व के किसी न किसी हिस्से से महिलाओं के प्रति अपराध और दुर्व्यवहार की घटनाएँ घटित होने की खबरें आती ही रहती है। भारत में भी महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए उन्हें पुरुषों के समान सम्मानजनक स्थिति, सुरक्षित एवं स्वतंत्र वातावरण और अधिकार प्रदान करने के लिए प्रयास निरंतर जारी है। इन सभी प्रयासों के बावजूद स्त्रियों को वह अपेक्षित स्थान प्राप्त नहीं हो पाया है जो यथार्थ मे हम चाहते है। तो क्या किया जाए ? कहाँ से समाधान ढूँढने का प्रयास किया जाए ? उत्तर के रूप एक आसान सा समाधान सामने आता है–नए कानून बनाए जाए, उन्हें कठोरतापूर्वक लागू किया जाए, सही ढँग से निगरानी की जाए और कानून के प्रति लोगों को जागरूक किया जाए।

व्यावसायिक संगठनों मे अनुसंधान करते हुए डील एवं कैनेडी ने यह जाना कि मनुष्य संगठन के मुख्य संसाधन हैं परंतु उन्हें कंप्यूटर की रिपोर्टों के जरिए नियंत्रित नहीं किया जा सकता द्य किन्तु, उनकी संस्कृति को पहचान कर उन्हें नियंत्रित किया जा सकता हैं। सशक्त संस्कृति उनके व्यवहार को दिशा प्रदान करती है।

यदि इस परिपेक्ष्य में हम भारतीय प्राचीन संस्कृति को गहराई से समझने का प्रयास करें, तो आशा की किरण दिखाई देती हैं। जहाँ स्त्रियों की स्थिति न सिर्फ सम्मानजनक थी अपितु उन्हें पूजनीय होने का स्थान भी दिया गया था। प्राचीन काल में भारत में स्त्रियों का स्थान सम्मानीय आदर्शात्मक और मर्यादायुक्त था। वे अपने मनोनुकुल विकास और आत्मोत्थान कर सकती थीं उन्हें शिक्षा, संपति और व्यवहार के संबंध में अधिकार प्राप्त थे द्य भारतीय संस्कृति में नारी सर्वशक्ति –सम्पन्न मानी गई और विध्या,विनयशील,ममता,यश और संपति की अधिष्ठात्री समझी गई द्य शिक्षा, धर्म,व्यक्तितत्व और सामाजिक विकास में स्त्री का महान योगदान था। वह स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी और स्वच्छंदतापूर्वक, विचरण करती थी। शिक्षा,दर्शन और आध्यामिक उन्नति में उनका विशेष योगदान एवं सम्माननीय स्थान रहा है। विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में से एक ऋग्वेद की ऋचाओं के रचयिता ऋषि और ऋषिकाएँ हैं। ऋग्वेद संहिता का गहनता से अध्ययन करने पर लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता, घोषा, अपाला, निवावरी, रोमशा जैसी लगभग 20 महिला ऋषिकाओं के नाम ज्ञात होते हैं जो अनेक मंत्रों की दृष्टा हैं। ऋग्वेद संहिता जैसे महत्वपूर्ण और सम्मानित ग्रंथ में महिला ऋषिकाओं का होना तत्कालीन समाज में महिलाओं की सम्मानीय स्थिति को प्रदर्शित करता है और उनका मंत्रदृष्टा के रूप में होना उनके गहन आध्यात्मिक–ज्ञान और तपस्या का परिचायक है। यदि महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता, आत्मोत्थान का अवसर नहीं मिलता तो ऋग्वेद में ऋषिकाओं के नाम नहीं होते। ऋग्वेद काल के पश्चात् भी अनेक विदुषी महिलाओं के नाम का उल्लेख मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण में कुमारी गंधर्वगृहीता का उल्लेख आता हैं जिसे परम विदुषी और वक्तृता में अत्यंत प्रवीण कहा गया है। बृहदारण्यक उपनिषद के अनुसार मैत्रेयी याज्ञवल्क्य ऋषि की पत्नी थीं जिनकी रुचि सांसारिक सुख भोग में न होकर आध्यात्मिक चिंतन में थी। उनके मुख से यह कहलाया गया है कि उन अलंकारों तथा भौतिक सुखों को लेकर में क्या करूँ जिससे मुझे अमरत्व प्राप्त नहीं हो सकता द्य क्योंकि वह भौतिक संपत्ति के स्थान पर आध्यात्मिक ज्ञान को अधिक महत्त्व देती थीं।

स्त्रियाँ न केवल यज्ञ में सम्मिलित होती थी अपितु गंभीर शास्त्रार्थों में भी समान रूप से भाग लेती थीं। प्राचीन काल में छात्राओं के 2 वर्ग सामने आते हैं। एक सद्योवधू और दूसरी ब्रह्मवादिनी। सद्योवधू वे छात्राएँ थीं जो विवाह के पूर्व वर्षों तक कुछ वेदमंत्रों और याज्ञिक प्रार्थनाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं तथा ब्रह्मवादिनी वे थीं जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने में अपना जीवन लगा देती थीं। ऋषि कशध्वज की कन्या वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। काशकृत्सनी नामक स्त्री ने मीमांसा जैसे क्लिष्ट और गूढ़ विषय पर पुस्तक का प्रणयन किया था जो बाद में उन्हीं के नाम पर विख्यात हुई द्य इस वर्ग के अध्येता काशकृत्सनी कहे गए।

स्त्रियाँ अपने तप,अध्ययन, आध्यात्मिक ज्ञान और चिंतन सम्पूर्ण समाज में बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त करती रही थीं। और उनका यह स्थान दीर्घकाल तक बना रहा था जो बाद में भी दिखाई देता रहा। मंडन मिश्र और शंकर के बीच हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मंडन मिश्र की विदुषी पत्नी थी जो तर्क, मीमांसा, वेदांत और साहित्य में पूर्ण पारंगत थीं शंकराचार्य तथा मंडन मिश्र जैसे विद्वानों के शास्त्रार्थ का निर्णय करना सामान्य विद्वान के बस की बात नहीं हो सकती द्य इससे सिद्ध होता है की उनकी योग्यता किस स्तर की रही होगी द्य विवाह के संबंध में स्त्री और पुरुष को भी परस्पर

चयन का अधिकार दिया गया था। अथर्ववेद में उल्लेख आता है कि कन्या पति को स्वयं वरण करे और पति भी कन्या को वरे द्य दोनों का परस्पर अभिलाषा से विवाह हो–

आइयमगन् पति कामा जनिकामोहममागम (213015 अर्थववेद)

रामायण एवं महाभारत काल में भी स्वयंवर के उदाहरण मिलते हैं भगवती सीता एवं द्रोपदी का विवाह भी स्वयंवर के द्वारा हुआ था परंतु उसका स्वरूप परिवर्तित था। पति –पत्नी दोनों के संबंध को दृढ़ बनाने के लिए कामना की गई कि पत्नी –पति को इतना चाहे कि वह पति को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास न जाए और पति भी उससे ऐसा प्रेम करे कि वह दूसरे को मन में ना रखे–

एवा मथ्नामि ते मनः।
यथा मां कामिनी असि।
यथा मत न अपगा असः। (213011 अर्थववेद)

दोनों के लिए निर्देश थे –पति –पत्नी एक दूसरे का वरण करे अर्थात विवाह करें, दोनों की धन संपत्ति एक हो,धर्म –कर्म ऐश्वर्य सब एक हों, वे एक होकर रहें और प्रेम से एक दूसरे को चाहते हुए रहें।

सं चेन्नायाथ : आश्विनौं कमिनौ संच वक्षथ।
सं वां भंगास : अग्मत। सम चित्तानि सम उ व्रता। (213012 अथर्ववेद)

महाभारत में पितामह भीष्म कहते हैं – स्त्री को सर्वदा पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना चाहिए। जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवताओं का निवास होता है और उसकी अनुपस्थिति में सभी पूर्ण कार्य अपवित्र हो जाते हैं। (महाभारत, अनु. 46.5) इसी में बताया गया है की जहाँ स्त्रियों का आदर होता है वहाँ देवता लोग प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं तथा जहाँ उनका अनादर होता है वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती है–

स्त्रियों यत्र पूज्यंते रमते तत्र देवता
अपूत्रिताश्च यत्रैताः सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः। (महाभारत, श्लोक .54,620)

महाभारत में ही अन्यत्र कहा गया हैं कि–

पितृभि भार्तभिश्रचापि श्वशुरैरथ देवरैः।
पूज्या भूयितत्यारच बहुकल्याणमीप्सुभिः। (महाभारत,श्लोक. 3 पृ. 619)

बहुविधि कल्याण की इच्छा रखने वाले पिता,भाई,ससुर और देवरों को उचित है कि वे नववधू का पूजन वस्त्र –आभूषण द्वारा करें।

महाभारत में ही बताया गया है कि जब कुल की बहु–बेटियां दुःख मिलने के कारण शोकमग्न होती हैं, तब उस कुल का नाश हो जाता है, वे खिन्न होकर जिन घरों को शाप दे देती हैं, वे नष्ट हुए के समान उजाड़ हो जाते हैं। पृथ्वीनाथ श्रीहीन गृह न तो शोभा पाते हैं और न उनकी वृद्धि ही होती है तदा–

चौतत् कुलम् नास्ति शोचति जामयः।
जामिशप्तानि गेहानि निकृत्तानीय कृत्यया।
नैव भाँति व वर्धन्ते श्रिया हीनानि पार्थिवा।। (महाभारत श्लो. 7 पृ. 620.)

मनु को महाभारत में उद्धृत किया है।

स्त्रीयस्तु मानमर्हति ता मानयत मानवाः। (महाभारत, श्लो. 9 पृ. 620.)

स्त्री सम्मान पाने के योग्य हैं, अतः तुम सब लोग उनका सम्मान करो द्य यदि तुम लोग स्त्रियों का सम्मान करोगे तो तुम्हारे सब कार्य सिद्ध होंगे–

सम्मानन्यमानाश्रचैता सर्वकार्याण्य वाप्स्यथा। (महाभारत, श्लो. 12 पृ. 620.)

वर्तमान परिपेक्ष्य मे नारीवाद

नारीवाद स्त्री–पुरुष के समान अधिकारों का पक्ष लेने वाला राजनीतिक सिद्धांत हैं। वे स्त्री या पुरुष नारीवादी कहलाते हैं, जो मानते हैं कि स्त्री– पुरूष के बीच की अनेक असमानताएँ तो नैसर्गिक है न ही आवश्यक। नारीवादियों का मानना है कि इन असामानताओं को बदला जा सकता है और स्त्री– पुरुष एक समतापूर्ण जीवन जी सकते हैं।

नारीवाद के अनुसार, स्त्री– पुरुष असमानता 'पितृसत्ता' का परिणाम है। 'पितृसत्ता' से आशय एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था से हैं, जिसमें पुरुष को स्त्री से अधिक महत्व और शक्ति दी जाती हैं। पितृसत्ता इस

मान्यता पर आधारित है कि पुरुष और स्त्री प्रकृति से भिन्न है और यही भिन्नता समाज में उनकी असमान स्थिति को न्यायोचित ठहराती है। नारीवादी इस नजरिये पर सवालिया निशान लगाते हैं। इसके लिए वे स्त्री– पुरुष के जैविक विभेद और स्त्री– पुरूष के बीच सामाजिक भूमिकाओं के विभेद के बीच अंतर करने का आग्रह करते हैं। जैविक या लिंग – भेद प्राकृतिक और जन्मजात होता है, जबकि लैंगिकता समाजजनित है। इसे यूँ भी समझा जा सकता है कि मनुष्य का नर या मादा के रूप में जन्म होता है, लेकिन औरत या मर्द को जिन सामाजिक भूमिकाओं में हम देखते हैं, उन्हें समाज गढ़ता है। उदाहरण के लिए यह जीवविज्ञान का एक तथ्य है कि केवल औरत ही गर्भधारण करके बालक को जन्म दे सकती हैं, लेकिन जीवविज्ञान के तथ्य में यह निहित नहीं है कि जन्म देने के बाद केवल स्त्री ही बालक का लालन– पालन करें। लेकिन घरेलू कामकाज की पूरी जिम्मेदारी केवल स्त्रियों के कंधों पर है। नारीवादी इसे स्त्रियों के कंधे पर " दोहरा बोझ " बताते हैं। हालांकि इस दोहरे बोझ के बावजूद स्त्रियों को सार्वजनिक क्षेत्र के निर्णयों में ना के बराबर महत्व दिया जाता है। नारीवाद का मानना है कि निजी ६ सार्वजनिक के बीच का यह विभेद और समाज या व्यक्ति द्वारा गढ़ी हुई लैंगिक असमानता के सभी रूपों को मिटाया जा सकता है और मिटाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

उक्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि भारतीय प्राचीन संस्कृति में स्त्रियों का स्थान न केवल पुरुषों के समान था। अपितु उनसे ज्यादा आदरणीय था। यदि संपूर्ण संस्कृति को ध्यान से समझा जाए, उससे नई पीढ़ी को अवगत कराया जाए, उसे व्यवहार में लाया जाए तो संपूर्ण समाज में समरसतापूर्ण स्थिति स्थापित हो सकती है। संस्कृति व्यक्ति के अंदर से उसे सुसंस्कृत बनाती है, उसे व्यवहार करना सिखाती है, उसका मार्गदर्शन करती है। स्त्रियों के संबंध में वस्तुतः क्या स्थिति होनी चाहिए और उसे व्यवहार में कैसे लाया जाए ? यह भारतीय प्राचीन संस्कृति से भलीभांति सीखा जा सकता है। आवश्यकता भारतीय संस्कृति को सही ढंग से जानने की और अपनाने की है।

संदर्भ ग्रंथ

1. बृहद्धारण्यक उपनिषद्, तृतीय अध्याय
2. अथर्ववेद, 2, 30, 5
3. अथर्ववेद, 2, 30, 1
4. अथर्ववेद, 2, 30, 2
5. ऋग्वेद, 10 दृ 85, 46
6. महाभारत, श्लोक 5, पृष्ठ . 620
7. महाभारत, श्लोक 3, पृष्ठ . 619
8. महाभारत, श्लोक 7 पृष्ठ . 620
9. महाभारत, श्लोक 9 पृष्ठ . 620
10. राजनीति सिद्धांत कक्षा–11 अध्याय–3 पृष्ठ–42 (2025–26) छब्त्ज, मानव विकास रिपोर्ट –2005, यूनाइटेड, नेशंस डेवलपमेंट प्रोग्राम
11. GENDER EQVALITY UNFPA - United Nations Population Fund web . archive . org . 2019 - 05 - 20

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

गांधार तथा मथुरा मूर्तिकला पर महायान बौद्ध दर्शन का प्रभाव

लवकुश कुमार मिश्रा
शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

आमुख

भारतीय मूर्ति कला के इतिहास में मथुरा तथा गांधार मूर्तिकला का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन दोनों ही कला शैलियों पर बौद्ध दर्शनों का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। प्रारम्भिक बौद्ध दर्शनों में सिद्धार्थ गौतम किसी ईश्वरीय गुण से संपन्न नहीं बल्कि एक प्रबुद्ध व्यक्ति हैं जिन्होंने ज्ञान प्राप्ति के द्वारा दुःख से निर्वाण का मार्ग खोजा और उसे आम जन मानस के लिए सुलभ बनाया। उनका स्वरूप एक शिक्षक, एक चिकित्सक की तरह है, जिन्होंने मानव जीवन की वास्तविकताओं की पहचान की और उनके निवारण के उपाय बताए विशेष रूप से चार आर्य सत्यों और अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से। यही कारण है कि जहाँ एक ओर हीनयान बौद्ध दर्शन के अंतर्गत बुद्ध के प्रतीकात्मक रूपों की पूजा की जाती थी वहीं महायान बौद्ध दर्शन के अंतर्गत बुद्ध के मानव स्वरूप का चित्रण होने लगा। मौलिकता तथा रचनात्मकता में पूर्ण रूप से भिन्न मथुरा तथा गांधार मूर्तिकला, दोनों ही शैलियों ने भारतीय मूर्ति कला के नए युग का निर्माण किया। यद्यपि मथुरा प्राचीनतम हिंदू धर्म की आस्था का प्रमुख केंद्र रहा है किंतु देवी देवताओं का मानवीय चित्रण पहली बार मथुरा मूर्ति कला की ही देन है। मथुरा तथा गांधार मूर्ति कला के अंतर्गत प्राथमिक रूप से बौद्ध मूर्तियों का निर्माण किया गया। विषय वस्तु की साम्यता के बावजूद इन दोनों कला शैलियों में रचनात्मक भिन्नता दृष्टिगोचर होती है जो उनके प्रमुख दार्शनिक सिद्धांतों का प्रभाव है। एक ओर गांधार मूर्ति कला में यथार्थवादी और ग्रीको–रोमन प्रभाव प्रदर्शित होता है जिसमें बुद्ध को मानवीय रूप में चित्रित किया गया वहीं दूसरी ओर मथुरा कला विशुद्ध भारतीय थी, जिसमें बुद्ध को आध्यात्मिक और दैवीय गुणों से संपन्न प्रतीकात्मक रूप में दर्शाया गया। मथुरा कला में शांत मुद्राओं और प्रतीकात्मक वेशभूषा के माध्यम से आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त किया गया। दोनों शैलियों ने मिलकर बौद्ध मूर्ति कला को एक सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया जिसमें स्वदेशी आध्यात्मिकता और विदेशी सौंदर्यशास्त्र दोनों का संगम हुआ। जातक कथाओं के महत्व के कारण जनसामान्य में श्रद्धा एवं भक्ति का समायोजन बौद्ध दर्शन में देखने को मिला।

गांधार एवं मथुरा कला में ग्रीक कला के प्रभाव से महात्मा बुद्ध की प्रतिमाएं बनना प्रारंभ हुई। इस प्रकार लोकोत्तर बुद्ध, बोधिसत्व एवं भक्ति आदि तत्वों ने बौद्ध धर्म में प्रवेश किया और बौद्ध धर्म को एक लोकप्रिय मूर्तिमान स्वरूप प्रदान किया।

बीज शब्द– गांधार कला, मथुरा मूर्ति कला, महायान, दर्शन, ग्रीको–रोमन, जातक कथाएं, यथार्थ वाद, आध्यामिक भावाभिव्यक्ति, परिमसति, सुवण्णवण्णो, उण्हीससीसो।

निर्गुण निराकार की भक्ति नहीं की जा सकती है ना ही उनकी शरण में जाया जा सकता है शरणागत के लिए ईश्वर का सगुण और साकार होना आवश्यक है। बुद्ध–भक्ति का समावेश महायान बौद्ध दर्शन की एक आधारभूत विशेषता है। भगवान् बुद्ध को महायान ने एक उपास्य देव के रूप मे स्वीकार किया और उसे अपनी साधना का एक विशिष्ट अंग बनाया।[1]

स्थविर–वाद बौद्ध दर्शन के वुद्ध बड़े निर्मम हैं। वे कर्म चाहते हैं शरण नही। स्थविर–वाद में बुद्ध अपने शरीर को उसी प्रकार गन्दी काया (पूति काय) समझते थे जिस प्रकार किसी सामान्य व्यक्ति का शरीर। यही कारण है उन्होने वक्कलि से कहा था–किं ते इमिना पूतिकायेन दिट्ठेन? (सं. नि. 2.3.87, वक्कलिसुत्त) इस गन्दी काया को देखने से क्या लाभ ? इस प्रकार कहने वाले वुद्ध कभी यह नही चाह सकते थे कि उनके शरीर की मूर्तियाँ बनाई जाय और उनकी पूजा की जाय। प्रसेनजित् भगवान् के पैरों में पड़ कर एक आर्त्त भक्त की तरह उनकी पूजा करता था, परन्तु निर्मम वुद्ध उसमे पृछते थेश तू क्या देखकर इस शरीर में इतना आदर प्रदर्शित करता है ? इस प्रकार पूछने वाले वुद्ध कभी यह अनुमति नही दे सकते थे कि उनके शरीर की पूजा की जाय ? यही तथागत महायान बौद्ध दर्शन में आकर गीता के कृष्ण की तरह उपदेश देते हुए कहते हैं– मैं इस जगत का पिता हूं, मुझमे ही सब कुछ प्रवर्तित हुआ है, मुझमें मन लगाओ, मुझमें बुद्धि को प्रविष्ट करो, मैं तुम्हें मुक्ति दूंगा– मेरा नाम जपो मुझे प्रणाम करो। इस प्रकार महायान दर्शन के मूर्तिमान बुद्ध ने शरणागति को अत्यधिक महत्त्व दिया है।[2]

वैदिक साहित्य में महापुरुष के शरीर–लक्षण का एक अलग शास्त्र हुआ करता था उस शास्त्र में महापुरुष के बत्तीस शारीरिक लक्षणों का स्पष्ट उल्लेख था। इस शास्त्र के अनुसार जिस व्यक्ति के शरीर में बत्तीस महापुरुष लक्षण हों वह गृही रहने पर सागर–पर्यंत पृथ्वी का एक–छत्र चक्रवर्ती सम्राट होता और गृह–त्यागी होने पर परम विमुक्त सम्यक सम्बुद्ध। भगवान बुद्ध के 32 लक्षणों का उल्लेख त्रिपिटक के पाली धर्मकोष में मिलता है, विशेष रूप से दीघनिकाय के श्लक्खन सुत्तश में इनका विस्तृत वर्णन है। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध में रुपकाया एवं धर्मकाया के आधार पर बत्तीस महापुरुष लक्षण बताए गए हैं। इन्हीं लक्षणों के आधार पर महायान बौद्ध दर्शन में बौद्ध मूर्तियों का निर्माण किया गया। यहां उन 32 लक्षणों में से कुछ प्रमुख लक्षणों के उदाहरण प्रस्तुत हैं जिनकी विशेषताएं बौद्ध मूर्तियों में परिलक्षित होती हैं–[3]

- पादलतेसु चक्कानि जातानि सहस्सारानि सनेमिकानि सनाभिकानि सब्बाकारपरिपूरानि– पैरों के दोनों तलवों में चक्र अंकित होते हैं ये नाभि, नेमी तथा सहस्त्रारों सेअलंकृत सर्वाकार परिपूर्ण होते हैं।
- परिमसति परिमज्जती – आजानुबाहु।
- सुवण्णवण्णो (सुवर्ण वर्ण) त्वचा कंचनवर्णी होती है।
- अभिनीलनेत्तो – अलसी के फूल जैसे सुन्दर नेत्र।
- गोपखुमो – गाय की सी बड़ी–बड़ी सुन्दर पलकें होती हैं।
- ओदाता उण्णा – श्वेत उर्णा दोनों भोहों के बीच श्वेत, सुन्दर, कोमल रुई सदृश रोमावली होती है।
- उण्हीससीसो – उष्णीष शीर्ष अर्थात सिर के ऊपर बीचोबीच उठा हुआ एक 'उप–शीश' होता है जैसे सिर पर एक जटा–मुकुट–नुमा पगड़ी बँधी हो। इस एक चिन्ह के कारण आज भी कोई बुद्ध–मूर्ति अन्य ध्यानावस्थित मूर्तियों से स्पष्टतया भिन्न दिखती है।[4]

इन समस्त लक्षणों को महायान बौद्ध संप्रदाय के अंतर्गत बनाई गयी मूर्तियों में दिखाने का प्रयास किया गया है। कुषाण सम्राटों के संरक्षण में बौद्ध धर्म की महायान शाखा का विकास हुआ और बुद्ध मूर्तियों का निर्माण प्रारंभ हुआ। मथुरा में मुख्य रूप से यक्ष प्रकार के आधार पर बुद्ध और बोधिसत्वों की कई प्रतिमाएँ निर्मित की गईं जबकि गांधार प्रतिमा कुछ बाह्य रूपों में अपोलो से मिलती–जुलती प्रतीत हो सकती है, तथा वस्त्रों में ग्रीको–रोमन की तरह दिखती है, लेकिन वहां भी अधिकांश प्रतिमाएं बुद्ध को विशिष्ट भारतीय योग मुद्रा में बैठे हुए दर्शाती हैं, जो कला की हेलेनिस्टिक परंपरा के लिए पूर्णतः अज्ञात विशेषता है। बुद्ध और बोधिसत्व के बीच के अंतर को इस प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं– बुद्ध वह हैं जिन्हें सर्वोच्च ज्ञान की प्राप्ति हो गई है, जबकि बोधिसत्व अभी भी इसके लिए एक उम्मीदवार हैं।[5]

कुषाण कालीन बोधिसत्व मैत्रेय तथा पद्मपाणि (गांधार कला)

बोधिसत्व मैत्रेय को कुषाण काल (लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ईस्वी) के दौरान सबसे अधिक बार दर्शाया गया है। उनके बालों में जूड़ा लगा हुआ है तथा बाएं हाथ में कमंडल लिए हैं। अवलोकितेश्वर (पद्मपाणि) जो बाद की शैलियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध बोधिसत्व हैं इनको कमल धारण किए हुए दर्शाया गया है।

Left: Standing Bodhisattva Maitreya (Buddha of the Future), c- 3rd century, schist, 80-7 x 29-2 x 15-2 cm, Gandhara (Pakistan) (The Metropolitan Museum ofArt); right: Seated Bodhisattva Padmapani, 2nd–3rd century, schist, 54 x 31-4 x 12-5 cm, Gandhara (Pakistan) (© Trustees of the British Museum)




मैत्रेय तथा पद्मपाणि को शरीर की विभिन्न भाव भंगिमाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। कई मूर्तियों में मैत्रेय को धर्मचक्र मुद्रा में दर्शाया गया है। लोटस सूत्र में रत्नजड़ित कमल के सिंहासन पर बैठे दर्शाया गया है। हेलेनिस्टिक कला में मैत्रेय को एक ज्ञान लब्ध व्यक्ति के रूप में दर्शाया गया है, जो अपने बाएँ हाथ में कुंभ (कमण्डलु) या ज्ञान कलश धारण किए हुए हैं। मैत्रेय असीम करुणा, दया, परोपकार, स्नेह और सद्भावना के प्रतीक हैं। ऐसा माना जाता है कि वे एक ऐसे रक्षक हैं जो सत्वों को आत्मज्ञान प्राप्त करने में सहायता करते हैं। उन्हें हजारों वर्ष से अनेक प्रतिमाओं और चित्रों में चित्रित किया जाता रहा है।

पद्मपाणि का अर्थ है जिसके हाथ में कमल है। यह बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का एक और रूप है। पद्मपाणि बौद्ध धर्म के करुणामय गुण के प्रतीक हैं। यह पवित्रता, ज्ञान और सांसारिक दुखों से मुक्ति का प्रतीक है।पद्मपाणि बोधिसत्व महायान बौद्ध धर्म में एक प्रमुख व्यक्तित्व हैं, जिन्हें अक्सर अवलोकितेश्वर के रूप में भी जाना जाता है।[6]

स्थानक बुद्ध (गांधार कला)



Standing Bodhisattva Maitreya (Buddha of the Future), c- 3rd century, gray schist, 163-2 x 53-3 x 20-3 cm, Gandhara (Pakistan) (The Metropolitan Museum ofArt)

इस प्रकार की गांधार बौद्ध मूर्तियों में बुद्ध को एक योगी की भांति प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार की मूर्तियों में बुद्ध को स्थानक प्रतिमा के रूप में प्रदर्शित करते हुये उनके मुख पर मूछें तथा शांत भाव प्रदर्शित किया है। बालों में ऊष्णीश, कन्धों से पैरों तक लम्बा वस्त्र जिसमें अत्यधिक सलवटें पड़ी हुई हैं। गांधार मूर्ति कला में बुद्ध मूर्तियों में ग्रीक देवता अपोलो के गुणों का समावेश प्राप्त होता है।[7]

मथुरा बुद्ध मूर्ति कला

मथुरा कला के अंतर्गत बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म संबंधी मूर्तियों का निर्माण समान रूप से किया गया। मथुरा कला के अंतर्गत बुद्ध की प्रारंभिक मूर्तियां का निरूपण यक्ष मूर्तियों का अनुकरण करते हुए किया गया है। इन बौद्ध मूर्तियों में महायान दर्शन में वर्णित महापुरुषों के 32 लक्षणों को उकेरने का प्रयास किया गया है।

मथुरा बुद्ध मूर्तियों की कुछ सामान्य विशेषताएं इस प्रकार हैं–

मथुरा कला के अंतर्गत निर्मित प्रसन्न मुद्रा में बुद्ध पालथी मारकर बैठे हैं और अपने बाएं हाथ की बंद मुट्ठी अपने बाएँ घुटने पर रखे हुए हैं। उनके बाएँ हाथ और कंधे पर पहने हुए वस्त्र की इकट्ठी परतें उनकी पीठ पर सुंदर ढंग से लटक रही हैं। उनकी छाती और पिंडलियों (पिंडली निचले पैर के पीछे का हिस्सा है जो घुटने से शुरू होकर टखने तक फैला होता है) तक घुमावदार वस्त्र की सलवटें हैं। बुद्ध अपना दाहिना हाथ अभय मुद्रा में उठाए हुए हैं जो समस्त मानव जाति की सुरक्षा और आश्वासन का संकेत है। चक्र उनके हाथ की हथेली और पैरों पर अंकित है और उनके पैरों में अंकित कमल बुद्ध की दिव्यता की घोषणा करते हैं। उनकी ईश्वरीयता के अन्य प्रतीक जैसे–उष्णीष (बालों में जूड़ा) और ऊर्णा सुशोभित हो रहे हैं। संबोधि से पहले बुद्ध का राजकुमार के रूप में प्रदर्शन उनके लंबे कानों से मिलता है ये उनके द्वारा पहने जाने वाले कर्ण आभूषणों के कारण बने होंगे। बैठे हुए बुद्ध की मूर्ति में लाल बलुआ पत्थर का धब्बेदार लाल रंग आकर्षक है। जिसमें मूर्तिकारों द्वारा सूक्ष्म नक्काशी की गई है। बुद्ध को ध्यान से देखने पर उनके बाएँ हाथ की उँगलियों की रूपरेखा, एक सुंदर विस्तृत अंगूठा और नाखून, घुटनों और कलाइयों का यथार्थवादी चित्रण, और एक कोमल आकृति वाला पेट दिखाई देता है। प्रसन्न चित्त मुख विशेष रूप से आकर्षक है। इस मुद्रा में बुद्ध की ठुड्डी को लगभग ऊपर उठते हुए देखा जा सकता है।



भारतीय मूर्ति कला में देवी–देवताओं के साथ अक्सर उनके अनुचर होते हैं। यहाँ बुद्ध के साथ दो अनुचर हैं। अनुचर अपने बाएं हाथ में एक चंवर लिए हुए हैं जो बुद्ध के प्रति उनकी सेवा का संकेत है।[8]

निष्कर्ष

महायान बौद्ध दर्शन के अंतर्गत गांधार तथा मथुरा कला शैलियों ने सामूहिक रूप से बौद्ध कला को समृद्ध किया है। जिसमें जहाँ एक ओर भारतीय आध्यात्मिकता का संचय है वहीं दूसरी ओर यूनानी (हेलेनिस्टिक) सौंदर्यबोध का उत्कृष्ट मिश्रण है। मथुरा की आध्यात्मिक शक्ति और गांधार की यथार्थवादी उत्कृष्टता ने भारतीय बौद्ध कला के सार्वभौमिक आकर्षण की नींव रखी। इन दोनों मूर्ति कलाओं ने सिद्धार्थ गौतम का एक राजकुमार से भगवान बुद्ध बनने तक का मार्ग प्रशस्त किया। महायान दर्शन की समृद्ध विरासत से भारत ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ।

सन्दर्भ सूची

1. बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन – भरत सिंह उपाध्याय पृष्ठ 586
2. वही पृष्ठ 595
3- Sangha Kaya Foundation
4- Sangha Kaya Foundation
5- https://ccrtindia-gov-in
6. महायान का उद्‌भव एवं विकास : एक ऐतिहासिक अध्ययन, डॉ कामाख्या नारायण तिवारी।
7. https://mapacademy.io/article/gandharan-sculpture/
8. https://smarthistory.org/gandharan-sculpture/

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारत एवं नेपाल की साझी संस्कृति को संजोता चैतोला मेला

सत्यवीर खनका
शोधार्थी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़

सारांश

किसी भी राष्ट्र की संस्कृति एवं सभ्यता वहाँ मनाये जाने वाले मेलों, पर्वों, त्यौहारों एवं उत्सवों में समाहित होती है। उत्तराखंड राज्य के कुमाऊँ अंचल में विभिन्न पर्वों पर मेलों का आयोजन किया जाता है जिनमें कुमाऊँनी संस्कृति के साथ–साथ अंतराष्ट्रीय सीमा से लगे देश नेपाल की संस्कृति का स्वरूप भी उजागर होता है। दोनों देशों के धर्म, संस्कृति और कला में व्यापक सामंजस्य होने के कारण इस क्षेत्र में मनाये जाने वाले उत्सवों का स्वरूप कलात्मक होता है। कुमाऊँनी भाषा में इन मेलों के लिए कौतिक शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस अंचल में मनाये जाने वाले कुछ मेले स्थानीय देवी–देवताओं के सम्मान में आयोजित किये जाते हैं तो कुछ मेले व्यापारिक उद्देश्य से मनाये जाते हैं। स्थानीय देवता के सम्मान में एवं व्यापारिक उद्देश्य से मनाये जाने वाले यह मेले दोनों देशों के सांस्कृतिक एवं आर्थिक सम्बन्धों को मजबूती प्रदान करते हैं।

भारत एवं नेपाल दोनों देशों के मध्य प्राचीन काल से रोटी–बेटी का सम्बन्ध होने के कारण अनेक स्थानीय देवी–देवता साझे रूप में पूजे जाते हैं और इन देवी–देवताओं के सम्मान में दोनों देशों में अनेक मेले आयोजित किये जाते हैं। मेलों की श्रृंखला में से एक भारत– नेपाल के सीमान्त क्षेत्र गुमदेश में मनाया जाने वाला प्रसिद्ध पौराणिक मेला है–चैतोला। इस शोध पत्र के अंतर्गत चैतोले मेले की पौराणिकता के साथ–साथ गुमदेश क्षेत्र की ऐतिहासिकता का भी अध्ययन किया गया हैं।

गुमदेश क्षेत्र का भौगोलिक परिचय

चम्पावत जिला मुख्यालय से पैतीस किलोमीटर की दूरी पर स्थित गुमदेश क्षेत्र, भारत की नेपाल के साथ सीमा साझा करता है। यह चम्पावत जिले के लोहाघाट तहसील में स्थित है। गुमदेश के भौगोलिक क्षेत्र के सन्दर्भ में राम सिंह अपनी पुस्तक 'राग–भाग काली कुमाऊँ' में लिखते हैं कि "पश्चिम में खिलपति पट्टी, उत्तर में रेगड़ूबान, उत्तर से पूर्व की ओर प्रवाहित सरयू नदी, दक्षिण में तल्ला देश और एकदम पूर्व में काली नदी के बीच का क्षेत्र गुमदेश पट्टी का है"(सिंह, 202:2002)। पूर्व दिशा में प्रवाहित काली नदी गुमदेश क्षेत्र को नेपाल से पृथक करती है इसकी उत्तर दिशा में प्रवाहित सरयू नदी पिथौरागढ़ जिले के साथ इसकी सीमा बनाती हैं तो वहीं पश्चिम में हबेडिया(घ्वेडिया) की गाड़ इसे बाराकोट ब्लाक से पृथक करती है।

गुमदेश नाम का उद्भव

गुमदेश, यह क्षेत्र अनेक प्रकार की पौराणिक मान्यताओं को अपने अन्दर संजोये हुआ है। इसके नाम के सन्दर्भ में अनेक किवदंतियां प्रचलित हैं। एक प्रचलित मान्यता के अनुसार लगभग इग्यारहवीं शदी के आस–पास यहाँ पर एक

गुणकोटी नाम से बोट्या राजा का शासन था। यह राजा वर्तमान जाख गाँव के पास स्थित पहाड़ी की छोटी पर विशाल किलेनुमा भवन में निवास करता था और पूरे क्षेत्र का प्रशासन चलाता था। जाख गाँव की परथोली जाति के लोग, राजा के यहाँ सिपाही नियुक्त किये जाते थे। एक बार जब चौत्र नवरात्री के अवसर पर चौमू देवता की डोला यात्रा निकली जा रही थी तो दूर पहाड़ी से यात्रा को देख राजा ने अपनी रानी से पूछा कि "वह सामने के टीले में डोले में चढ़ा व्यक्ति (डगरिया) सुन्दर लग रहा है या राजा, राजा की बात सुन रानी ने जवाब दिया कि इस समय तो डोले में चढ़ा वह व्यक्ति ज्यादा सुन्दर लग रहा है। तब राजा ने क्रोधित होकर अपने सिपाहियों को बुलाया और डोले में चढ़े व्यक्ति को सिंहासन से नीचे उतारने का आदेश दिया। राजा के आदेश का पालन करते हुए सिपाहियों ने डोले में विराजमान व्यक्ति (जिसमें चौमू देवता अवतरित हुए थे) को सिंहासन से नीचे उतरवा दिया। राजा के इस कृत्य से क्रोधित होकर चौमू देवता ने राजा को श्राप दिया कि छरू महीने के अन्दर उसका यह किलेनुमा भवन ध्वस्त हो जायेगा। लोगों का मानना है कि चौमू देवता के श्राप के अनुरूप राजा का महल ध्वस्त हो गया। तभी से उसके इस किले का नाम गुमकोट पड़ा और राजा द्वारा शासित क्षेत्र गुमदेश कहलाने लगा (साक्षात्कार)। राम सिंह अपनी पुस्तक राग भाग काली कुमाऊँ में लिखते हैं कि गुमदेश पट्टी, प्राचीन काल से ही डोटी, नेपाल के साथ आवागमन का एक क्षेत्र रहा है। इसके नाम के आगे गुम शब्द के लगे होने का यह केवल एक मात्र कारण यहीं होगा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है क्यों कि गुम उपसर्ग लगा हुआ एक गाँव गुम गरसाड़ी एवं गुमखाल भी है (सिंह, 2013 :2002)।

जाख गाँव की पहाड़ी पर स्थित वीरखम जिनमें कुछ आकृतियाँ बनी है और पहाड़ी की एक तरफ स्थित चट्टानों और छोटे–छोटे खंडहरों से इस बात का पता चलता है कि प्राचीन समय में यहाँ पर कोई ना कोई किला अवश्य होगा।




जाख गाँव की पहाड़ी पर स्थित खंडहरों कि संरचनाएं एवं पहाड़ी के मार्ग में बने स्तम्भ

वर्तमान समय में इस पहाड़ी की चोटी पर एक मंदिर स्थित है जहाँ प्रतिवर्ष शरद नवरात्रियों की नवमी तिथि को डोला यात्रा निकाली जाती है। इस क्षेत्र में गाये जाने वाले लोकगीतों में भी इस घटना का वर्णन आता है।

"गुमकोट का बोट्या राजा, चमू सों बैर।
बैरे ले यो पड्यों, तैका कोट में पैर"।।

अर्थात् गुमकोट के बोट्या राजा जब चौमू देवता के साथ ईर्ष्या एवं द्वेष भाव से रहने लगा तो उससे देवता को उनके सिंहासन से उतरवा दिया जिससे क्रोधित होकर चौमू देवता ने दंड स्वरुप उसका सम्पूर्ण महल ही नष्ट कर दिया(साक्षात्कार)।

चैतोला मेला

गुमदेश के इतिहास को जानने के बाद इस क्षेत्र में प्रति वर्ष चौत्र नवरात्र में नवमी, दशमी एवं इकाद्शी तिथि को मनाये जाने वाले चैतोले मेले का इतिहास भी अत्यंत रोचक है। एक किवदंती के अनुसार आज से लगभग हजारों वर्ष पूर्व बकासुर नाम का एक राक्षस पिथौरागढ़ के बड़ाबे, सेल, सल्ल नामक स्थानों से भ्रमण करता हुआ यहाँ पहुँचा। यहाँ पहुँचने पर उसने अपने स्वभाव के अनुरूप आतंक मचाना शुरू कर दिया। लोगों को मारकर खाने लगा जिस कारण लोग भयभीत होकर पलायन करने लगे। कुछ समय पश्चात् दानव ने यह व्यवस्था की कि उसके भोजन के लिए प्रत्येक

दिन एक परिवार से एक आदमी आएगा तब से यह एक परम्परा बन गयी रोज एक घर से एक व्यक्ति राक्षस के भोजन के लिए जाता था। इस घटना का वर्णन यहाँ पर गाये जाने वाले लोकगीतों (ढूस्कों) में सुनने को मिलता है।

"दैतासुर रोज खाँछ, यो मानुष भारी, वी पापी ले लगा दीछि रोजै की बारी" (साक्षात्कार)।

अर्थात् राक्षस ने अपने प्रत्येक दिन के भोजन के लिए रोज एक आदमी की बारी लगा दी थी।

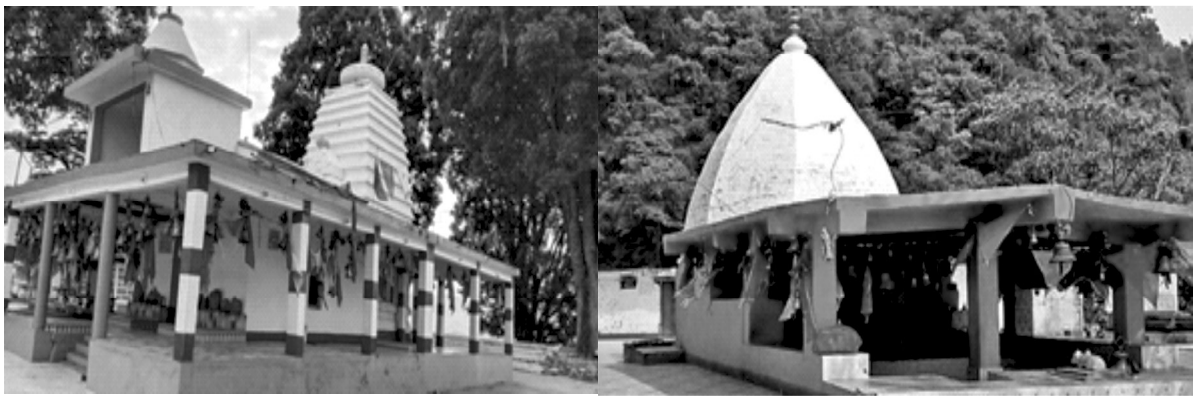
प्रचलित लोकगाथाओं के अनुसार राक्षस को भोजन भेजने के क्रम में एक दिन कोकिला नाम की बुढ़िया के परिवार की बारी थी। उसके परिवार में केवल उसका एक नाती (पौत्र) था जो दूसरे दिन राक्षस का भोजन बनने वाला था।

"कोकिला नामै की बुढ़िया तीकि आ बारी, एकलो यो नाती वीको आब जाँछ मारी"।

बुढ़िया यह सोच कर अत्यंत दुखी हो गयी। इसी समय नेपाल के राजा के सात पुत्र जन सेवा के उद्देश्य से भ्रमण हेतु निकले हुए थे। सातों भाईयों में से एक भाई चौमू उस समय चमदेवल (जिसे उस समय एकाचक्र नगरीध्दूबाचौड़ी के नाम से जाना जाता था) पांडवों द्वारा स्थापित शिवलिंग का आराधना कर रहे थे। बुढ़िया सहायता के लिए चौमू के पास गयी और उन्हें अपनी सारी व्यथा सुनाई। बुढ़िया ने चौमू से यह आग्रह किया कि यदि वह लोगों को इस राक्षस के अत्याचार से मुक्त करा देंगे तो वह उनकी अपने प्रथम आराध्य के रूप में पूजा करेंगे और एक अद्भुद भोग लगाकर उसे अधिक से अधिक लोगों के मध्य वितरित करेंगे। चौमू देवता बुढ़िया की बात सुनकर अत्यंत द्रवित हो उठे और सहायता के लिए पिथौरागढ़ में स्थित केदार (थल केदार, बड़ाबे गाँव) के पास गये और सारी बात उन्हें बताई। केदार ने चौमू की सहायता के लिए अपने पुत्रों लाटा, भर्गाणा एवं रूद्र को चौमू के साथ भेजा। अगले दिन प्रातः काल से राक्षस और सर्वप्रथम भर्गाणा के मध्य युद्ध हुआ जिसमें भर्गाणा युद्ध में पैर कट जाने के कारण घायल हो गये। दूसरे दिन रूद्र और राक्षस के मध्य युद्ध हुआ जिसमें रूद्र की आखें चली गयी। अंत में केदार के तीसरे पुत्र लाटा ने युद्ध में भाग लिया। लाटा एवं राक्षस के मध्य भीषण युद्द हुआ और अंत में लाटा देवता ने राक्षस को पराजित कर दिया। राक्षस पराजित होकर जब युद्ध भूमि से भागने लगा तब लाटा ने राक्षस के अंग भंग कर दिए(साक्षात्कार)।

इस प्रकार बुढ़िया के नाती की जान बच गयी और तब बुढ़िया ने चौमू देवता को अपना ईष्ट मानकर उनकी पूजा अर्चना करना प्रारंभ कर दिया, उनकी भव्य डोला यात्रा निकाली और चावल के आटे की लेप के पापड़ बनाकर उनका चौमू देवता को भोग लगाया और उन्हें प्रसाद के रूप में वितरित किया। आज भी इस मेले के अवसर पर चावल के आटे से पापड़ बनाये जाते हैं और उन्हें भोग के रूप में चढ़ाने के बाद लोगों में प्रसाद के रूप में वितरित किये जाते हैं। चावल के पापड को गुप्त रूप से बंद कमरे में महिलाओं द्वारा बनाया जाता है। यह भोग केवल धौनी, परथोली एवं पाटनी जाति की महिलाओं द्वारा बनाया जाता हैं और भोग लगाने के पश्चात् अन्य लोगों में वितरित किया जाता है।

प्राचीन समय में इस मेले के अवसर पर भोग को चढ़ाने एवं पूजा अर्चना के लिए चौमू देवता के पुजारी पिथौरागढ़ में स्थित थलकेदार के मंदिर में पैदल पंचेश्वर के रास्ते जाया करते थे। पैदल यात्रा के समय सरयू नदी पार करनी पडती थी। जब केदार में भोग चढ़ता, पूजा अर्चना होती उसके बाद गुमदेश के लोग अपने घरों में प्रसाद वितरित करते और चौमू देवता की डोला यात्रा निकालते थे। वर्तमान समय में थल केदार चोटी के ठीक सामने शिलिंग गाँव की चोटी में केदार के मंदिर की स्थापना कर इसी स्थान पर भोग लगाया जाता है और इसके बाद चौमू देवता की भव्य डोला यात्रा निकाली जाती है।



चमदेवल एवं पंचेश्वरमें स्थित चौमू देवता के मंदिर

यह मान्यता है कि चौमू देवता नेपाल से पंचेश्वर होते हुए यहाँ आये थे। इनका मूल मंदिर पंचेस्वर में सरयू और काली के संगम पर स्थित है। यहाँ पर इन्हें चेड़ (शमशान) के चौमू के रूप में पूजा जाता हैं। चौमू देवता का मंदिर पंचेश्वर के साथ–साथ गुमदेश क्षेत्र के मड़ गाँव, चमदेवल, पिथौरागढ़ एवं नेपाल में भी स्थित है।

डोला यात्रा

चैतोले मेले की शुरुवात नवरात्रि के प्रथम दिन से हो जाती है। लोग अपने घरों की साफ सफाई करने लगते हैं। भोग के लिए प्रसाद का निर्माण करने हेतु चावल का आटा बनाया जाता है। नवरात्रि की नवमी तिथि के दिन सबसे पहले तुरही (बरगोली गाँव का) जत्था सबसे पहले चमदेवल में स्थित मंदिर की परिक्रमा करता है। तूरी ज्यूला एक प्रकार का वाद्ययन्त्र होता हैं जो चौखाम बाबा की डोला यात्रा में बजाया जाता था। वर्तमान समय में इस गाँव के लोगों ने यह वाद्य यन्त्र बजाना बन्द कर दिया है। लाटा, भरगाड़ा, रूद्र एवं चौमू के चार मंदिर होने के कारण इन चारों देवताओं के समूह को चौखाम बोला जाता है। बरगोली गाँव के पश्चात् मड़ गाँव में स्थित चौमू देवता के मंदिर परिसर से इस गाँव के लोगों का जत्था चमदेवल के लिए प्रस्थान कर, चमदेवल में स्थित मंदिर की परिक्रमा करता है। इसी प्रकार अपने क्रमानुसार बारह गाँव के जत्थे मंदिर परिसर की परिक्रमा करते हैं।



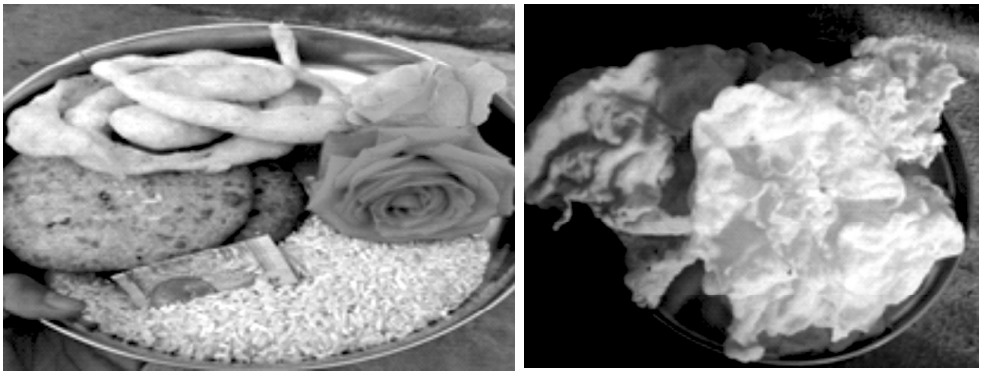

प्रथम दिवस मड़ गाँव डोला लेने जत्था बनाकर पारंपरिक तरह से जाते श्रद्धालु

सायंकाल में सभी गाँवों की परिक्रमा पूरी होने के पश्चात् मंदिर से विशाल डोले को निकाला जाता है और उसे मड़ गाँव ले जाया जाता है। इस पूरे क्रम को स्थानीय भाषा में जमानी बोला जाता है। चमदेवल से डोले को आधे रास्ते तक मड़ गाँव के लोगों को छोड़कर अपने अपने निर्धारित स्थान तक अन्य गाँव के लोग ले जाते हैं। आधे रास्ते तक डोले को पहुचने के पश्चात् विश्राम स्थल(स्थानीय भाषा में इस स्थान को जमानी गड बोला जाता है) से धौनी गाँव के लोग वापस अपने घर को लौट जाते हैं। इसके पश्चात् डोले को केवल मड़ गाँव के लोग ले जाते हैं। विश्राम स्थल के पश्चात् अन्य गाँव के लोग इस दिन इस डोला यात्रा में शामिल नहीं होते हैं। सूर्यास्त के समय डोला मड़ गाँव में स्थित चौमू देवता के मंदिर में पहुचता हैं और डोले की पूजा–अर्चना और फाग गा कर रात भर मंदिर में जागरण किया जाता है।




डोले को मड़ गाँव को ले जाते एवं सायंकालीन संध्या आरती

दूसरे दिन प्रातः मंदिरों मंदिरों में लोगों के द्वारा श्रद्धानुसार चढ़ावा चढ़ाया जाता हैं, पूजा अर्चना की जाती है, मंदिर के लिए भोग बनाया जाता है। धौनी जाति के लोग भोग के रूप में चावल के पापड़ बनाते हैं और उन्हें मड़ गाँव में स्थित भगवती के मंदिर में चढ़ाने के लिए आते हैं। केदार एवं मड़ गाँव में स्थित भगवती के मंदिर में चढ़ाने के पश्चात् चावल के पापड़ों को प्रसाद के रूप में वितरित किया जाता हैं। यह बात ध्यान रखने वाली हैं कि चावल के पापड़ों के निर्माण केवल धौनी जाति के लोगों द्वारा किया जाता है।

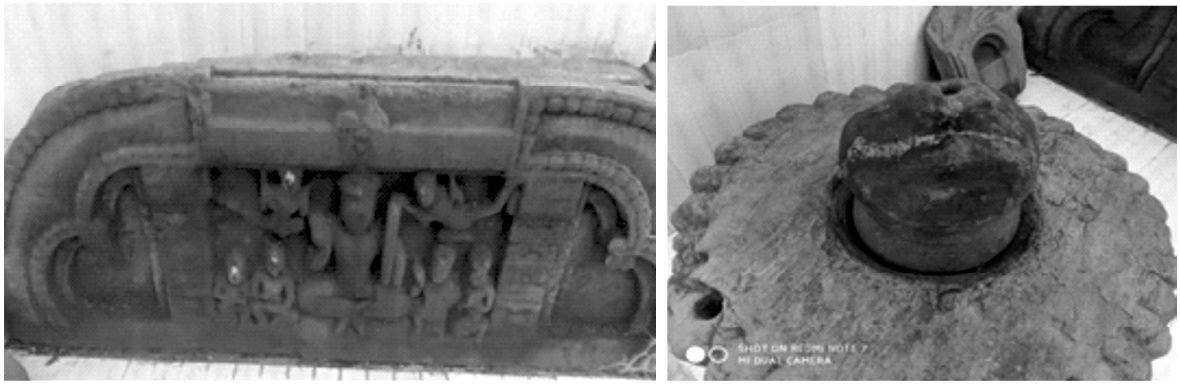


मंदिर में भोग के लिए बनाया गया पारंपरिक भोजन एवं चावल के पापड़

पूजा–अर्चना करने के बाद दिन में सभी गाँव के लोग मंदिर परिसर में स्थित होते हैं। नवमी तिथि को लाये गये डोले को सजाया जाता है और इस सिंहासन में चौमू देवता के डंगरियाँ विराजमान होते हैं और डोले को वापस विशाल सीढ़ीदार खेतों से होते हुए चमदेवल स्थित मंदिर में ले जाया जाता है। जब डोला यात्रा चौपता गाँव में पहुचती हैं तो इस गाँव में स्थित चौमू देवता के मंदिर में (जिसे चौमू खल बोला जाता हैं) में कुछ देरे डोले को नीचे उतारा जाता हैं। सिंहासन में विराजमान व्यक्ति में चौमू देवता अवतरित होकर दर्शन देते हैं एवं जलते हुए दीयों की ज्वाला का भोग लेते हैं।



चौपता गाँव में स्थित चौमू देवता के थान में स्थित वीरखम एवं मूर्तियाँ



कुछ समय बाद यात्रा पुनः प्रारंभ हो जाती है। उपरोक्त वर्णित गुमदेश के बोट्या राजा की कहानी में वर्णित वह स्थान जहाँ पर राजा ने चौमू देवता को उनके सिंहासन से उतारा था आज भी उस स्थान पर चौमू देवता अपने सिंहासन से उतर जाते हैं और उन्हें परथोली जाति (जो राजा के दरबार में सैनिक थे और जिन्हें राजा ने चौमू देवता को उनके सिंहासन से उतरवाने के लिए भेजा था) के लोग अपने कंधे पर ले जाते हैं एवं उनके पीछे खाली सिंहासन को ले जाया जाता है। एक चढ़ाई चढ़ने के उपरांत पुनः डंगरिया सिंहासन में विराजमान हो जाते हैं।

सूर्यास्त के समय डोला यात्रा चमदेवल स्थित मंदिर में पहुंचती है। मंदिर की परिक्रमा करने के बाद सिंहासन को उस स्थान पर रखा जाता है जिस स्थान पर बकासुर दैत्य का सिर दबाया गया था (साक्षात्कार)। इसके पश्चात् मड़ गाँव को छोड़कर अन्य सभी गाँव के लोग प्रथम दिन के अनुसार अपने–अपने जत्थे बनाकर मंदिर की परिक्रमा करते हैं।

मेले का तीसरे दिन को पूरे गुमदेश क्षेत्र में व्यापारिक मेले के रूप में मनाया जाता है लेकिन मड़ गाँव में इस दिन महिलाएँ सुबह दृसुबह गाँव से लगभग 200 मीटर की दूरी पर स्थित नौले से जल लाकर मंदिर परिसर में लोकगीत का गायन करती हैं जिसमें मेले के सम्पूर्ण इतिहास का वर्णन होता है और रात्री में पुरुषों द्वारा होली का गायन किया जाता है। होली गायन का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस गाँव में होलियों में अन्य गाँव के लोगों, सगे सम्बन्धियों का आना वर्जित है इस परम्परा का भी अपना एक इतिहास है।



लोकगीतों का गायन करती महिलाऐं

चमदेवल में स्थित मंदिर का निर्माण, कत्यूरी मंदिर निर्माण शैली में किया गया है। इसके शीर्ष पर बाघ की संरचना बनी है। मंदिर के गर्भ गृह के दरवाजे पत्थरों से बने हैं जिनमें सुन्दर कलाकृति की गयी हैं। वर्तमान समय में मंदिर की दीवारों पर सीमेंट कर दिए जाने के कारण इसका मूल स्वरूप समाप्त हो गया है।मड़ गाँव में स्थित चौमू के मंदिर के पास ही प्राचीन सूर्य मंदिर स्थित हैं जिसकी दीवारों में कुछ लिखा गया है।



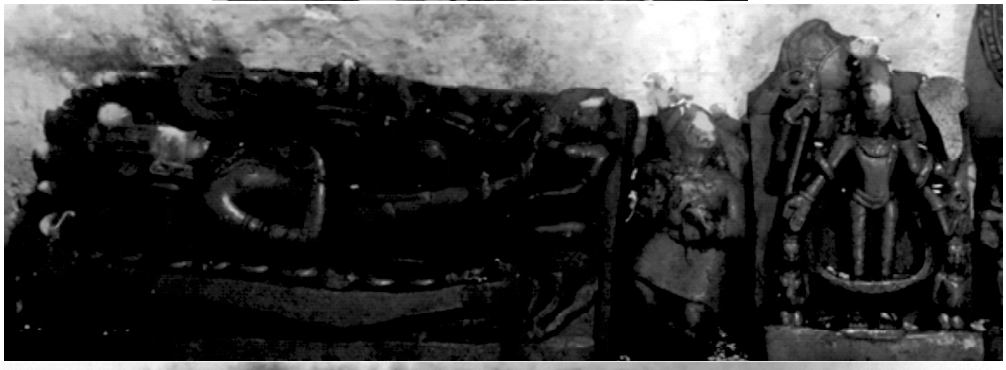


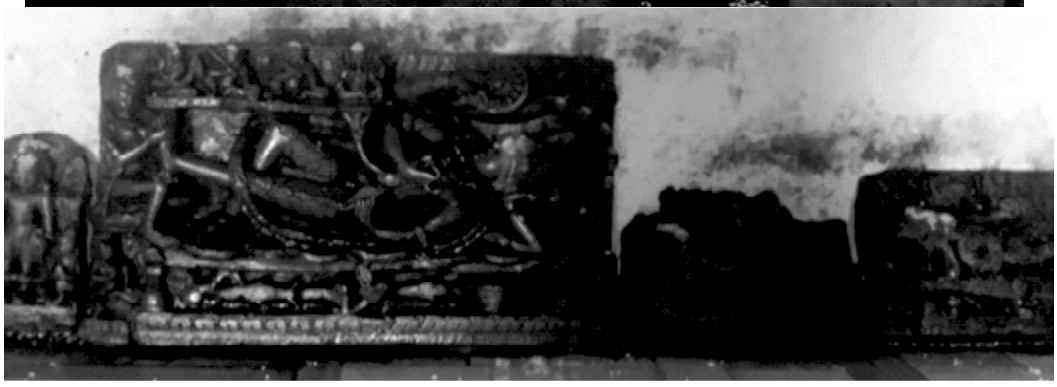
सूर्य मंदिर से दो सौ मीटर की दूरी में प्राचीन देवी भगवती का मंदिर है जहाँ पर पत्थरों में बनाई गयी बहुत सारे देवी–देवताओं को मूर्तियाँ स्थित हैं जो अपने आप में क्षेत्र के प्राचीन इतिहास को अपने अन्दर संजोये हुए है।



मड़ गाँव में स्थित भगवती का मंदिर एवं ताम्र पत्र







भगवती मंदिर में स्थित मूर्तियाँ

यह क्षेत्र अपनी ऐतिहासिकता, सांस्कृतिक विविधता के साथ–साथ अपनी काष्ठ स्थापत्य कला के लिए भी अत्यधिक प्रसिद्ध है।



गाँव के घरों में की गयी काष्ठ कला

जिस तरह की काष्ठ कला हमें अल्मोड़ा के लाल बाजार में देखने को मिलती है उसी तरह की काष्ठ कला यहाँ के प्रत्येक घर में दिखाई पड़ती है। जिसे संरक्षण की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. सिंह, राम : राग भाग काली कुमाऊँ : 2002 : पहाड़ परिक्रमा तल्ला डांडा नैनीताल।
2. वर्मा, इंद्र लाल : जनपद चम्पावत के दर्शनीय स्थल : 2014 : विनसर पब्लिशिंग देहरादून।

साक्षात्कार

1. चन्द्र, उमेश : 52 वर्ष, मड़ (गुमदेश) : 5–04–2025।
2. धौनी, हयात सिंह : 66 वर्ष, मड़ (गुमदेश) : 5–04–2025।
3. धौनी, युगल किशोर : 35 वर्ष, मड़ (गुमदेश) : 5–04–2025।
4. पुजारी, लक्ष्मण सिंह : 57 वर्ष, मड़ (गुमदेश) : 5–04–2025।
5. परथोली,गुमान सिंह : 64 वर्ष, जाख (गुमदेश) : 3–04–2025।

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय का विचार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अमूर्त

यह शोध पत्र भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय के विचार की विस्तृत खोज करता है, जिसमें प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। प्राचीन भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणा धर्म और कर्तव्य से जुड़ी थी, जबकि मध्यकाल में भक्ति और सूफी आंदोलनों ने समानता और न्याय की वकालत की। आधुनिक काल में गांधी, अंबेडकर और अन्य नेताओं ने सामाजिक न्याय के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया।भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के आदर्शों को शामिल किया गया है, लेकिन वास्तविकता में अभी भी बहुत कुछ हासिल करना बाकी है। शोध पत्र में सामाजिक न्याय के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों के बीच की खाई को उजागर किया गया है और इस बात पर जोर दिया गया है कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है।इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय के विचारों को ढूंढना, उनकी तुलना वर्तमान अवधारणा से करना और भारत में सामाजिक न्याय के सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्षों में अंतर को समझना है। शोध पत्र में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि सामाजिक न्याय की अवधारणा समय और परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है, लेकिन इसका मूल उद्देश्य व्यक्ति का कल्याण और समाज में समानता और न्याय की स्थापना करना है। निष्कर्ष रूप में, यह शोध पत्र इस बात पर जोर देता है कि सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए हमें भारतीय संविधान में निहित आदर्शों को लागू करने और सामाजिक न्याय के लिए निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है।

प्रस्तावना

भारत विश्व की सबसे तेज उभरती हुई अर्थव्यवस्था है। सरकार ने भी 2025 तक 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य रखा हैं। सेंटर फॉर इकोनॉमिक्स एंड बिजनेस की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था 2035 तक 10 ट्रिलियन की ओर पहुंचने को अग्रसर है। भारत विश्व की पांचवीं सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है, किंतु यह सिर्फ अर्थव्यवस्था के परिमानात्मक पक्ष को ही दर्शाता हैं, सामाजिक–आर्थिक विकास के मामले में वस्तुस्थिति कुछ और ही है। विश्व असमानता रिपोर्ट 2022 के अनुसार भारत में 1 फीसदी आबादी के पास राष्ट्रीय आय का 22 फीसदी तथा 10 फीसदी आबादी के पास 57 फीसदी हिस्सा है। वैश्विक भूख सूचकांक 2024 में भारत 127 देशों में 105वें स्थान परय विश्व लैंगिक अंतराल रिपोर्ट में 146 देशों में 129वें स्थान परय मानव विकास सूचकांक में 193 देशों में 134वें स्थान परयविश्व शांति सूचकांक में 163 में 116वें स्थान पर,विश्व खुशहाली सूचकांक में 126 में 118वें स्थान पर तथा पर्यावरण प्रदर्शन सूचकांक में भारत 180 में 176वें स्थान पर रहा है।

ऐसी परिस्थितियों में सर्वाधिक प्रभाव हाशिये पर स्थित, सामाजिक रूप से कमजोर लोगों पर पड़ता है अतः सामाजिक न्याय का प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है। अपने विस्तृत अर्थ में सामाजिक न्याय का मूल मंत्र

यह है कि, सामाजिक जीवन से जुड़े संपूर्ण संपदा, प्रतिष्ठा एवं शक्ति गिने चुने लोगों के हाथ में सिमटकर ना रह जाए, बल्कि सर्वसाधारण को विशेषता निर्बल और निर्धन वर्ग को उसमें से समुचित हिस्सा मिल सके, ताकि वह सामान्यतः सुखी सम्मानित और निश्चित जीवन जी सकें। (गाबा, 2021)

प्राचीन काल से ही सामाजिक न्याय का विचार भारतीय चिंतन का केंद्र बिंदु रहा है। वैदिक काल में सामाजिक न्याय की अवधारणा धर्म और कर्तव्य से जुड़ी थी। बौद्ध तथा जैन धर्म ने भी सामाजिक समानता एवं न्याय पर जोर दिया। अर्थशास्त्र में भी कौटिल्य द्वारा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को प्रस्तुत किया जो सामाजिक न्याय की अवधारणा को प्रत्याभूत करता है। मध्यकालीन भारत में भक्ति और सूफी आंदोलन ने मानव मात्र की समानता का समर्थन कर सामाजिक न्याय के विचार को प्रश्रय दिया। आधुनिक भारत में गांधी, अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया जैसे राष्ट्रीय नेताओं के चिंतन में भी सामाजिक न्याय का विचार केन्द्रीय बिंदु रहा। भारतीय संविधान स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के आदर्शों के साथ सामाजिक न्याय से ओत–प्रोत एक जीवंत दस्तावेज है।

उद्देश्य

यह शोध पत्र मुख्य रूप से भारतीय चिंतन की समृद्ध परंपरा में सामाजिक न्याय के विचारों को ढूंढने, उन विचारों की सामाजिक न्याय की वर्तमान अवधारणा से तुलना करने, एवं भारत में सामाजिक न्याय के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पक्ष में अंतराल की खोज करने पर केंद्रित होगा।

भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धांत

धर्म– प्राचीन भारत में धर्म समाज व्यवस्था का मेरुदंड था। धर्म से आशय वर्ण–आश्रम धर्म से था।जिसमें व्यक्ति को अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार दायित्वों का निर्वहन करना होता था। वस्तुत वर्ण की संकल्पना भी प्लेटों के न्याय की संकल्पना जैसी ही थी। जिसका मुख्य उद्देश्य अपने आत्मा के प्रधान गुण के अनुरूप अपने कर्तव्यों का संपादन करना एवं दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप न करना था। वर्ण व्यवस्था का विचार भी कार्य–विभाजन, कार्य–विशेषीकरण एवं सामाजिक अंतर–निर्भरता को लक्षित था। इसका भौतिक, नैतिक एवं अंतिम उद्देश्य सामाजिक सामंजस एवं सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था।

कर्म और पुनर्जन्म– प्राचीन भारतीय चिंतन में कर्म तथा पुनर्जन्म की अवधारणा अंतर–संबंधित थी। अर्थात निकृष्ट कर्म करने वाले को निकृष्ट योनि में तथा उत्कृष्ट कर्म करने वाले व्यक्ति को उत्कृष्ट योनि में पुनर्जनम मिलता था। यह अवधारणा सामाजिक व्यवहार, सामाजिक नैतिकता की नियंता थी। श्रीमद्भगवद गीता मे भी पुनर्जन्म की अवधारणा का आधार कर्म है, क्योंकि गीता की यह प्रबल मान्यता है कि जीव ईश्वर का अंश है। (सरस्वती, 2001)

अहिंसा– जैन तथा बौद्ध धर्म में अहिंसा का विचार नैतिक विचारों और सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करने वाला था जो प्राणी मात्र के प्रति दया और मानवीय गरिमा को उच्च स्थान देता था।

समानता और न्याय– उपनिषद मानव मात्र को एकता और समता का संदेश देते हैं। उपनिषदों का चरम लक्ष्य व्यक्ति को आत्मज्ञान का साक्षात्कार करवाना है। वृहदारण्यकोपनिषद में ऋषि स्पष्ट करते हैं कि चारों वर्ण ब्रह्म के ही रूप है। यह चारों परमात्मा द्वारा विभिन्न कर्म करने के लिए ही निश्चित किए गए हैं। वर्ण भेद के बहाने जाति भेद के लिए उपनिषदों में कोई स्थान नहीं है। (राजू, 2024) इस प्रकार उपनिषद सभी को आत्मज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति का अधिकारी मानते हैं।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन ने सामाजिक अधिक्रम को चुनौती दी और समानता और सामाजिक न्याय की वकालत की। इस आंदोलन ने जाति व्यवस्था, छुआछूत इत्यादि का विरोध कर सामाजिक न्याय के विचार को बढ़ावा दिया।

आधुनिक भारत में सामाजिक न्याय का विचार पुनर्जागरण के समय से ही राजा राममोहन राय, ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानंद,स्वामी विवेकानंद इत्यादि के विचारों में प्रखर रूप से अभिव्यक्त हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन के साथ–साथ पेरियार, गांधी तथा अंबेडकर जैसे नेताओं ने सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया। फुले दंपति ने बालिका शिक्षा के लिए अथक प्रयास किए। सामाजिक न्याय के विचार का सबसे बड़ा प्रवक्ता डॉ. अंबेडकर को माना जाता है। अंबेडकर के अनुसार स्वतंत्रता, समानता के साथ–साथ बंधुत्व भी सामाजिक न्याय का आधारभूत तत्व है। (गुप्ता, 2008) अंबेडकर का चिंतन तीन महापुरुषों में फुले, कबीर तथा बुद्ध से प्रभावित था। उनका मानना था कि जब तक समाज में जाति, धर्म, संप्रदाय, वर्ण, लिंग,जन्म स्थान के आधार पर सामाजिक–आर्थिक भेदभाव होता

रहेगा। तब तक हम सामाजिक न्याय की स्थापना का लक्ष्य नहीं प्राप्त कर पाएंगे। (वर्मा, 2019) उनके ही शब्दों में जाति व्यवस्था की नीव पर हम राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते। अतः जाति उन्मूलन का कार्य स्वराज से भी ज्यादा महत्वपूर्ण है। अंबेडकर के चिंतन का एक और महत्वपूर्ण पक्ष समाज में नारियों की स्थिति को लेकर के था। उन्होंने एक बार कहा था कि, "मैं समाज की प्रगति को उसे समाज के महिलाओं की प्रगति से नापता हूं।" (सिंह, 1998)

भारत मे सामाजिक न्याय के प्राचीन एवं अर्वाचीन दृष्टिकोण की तुलना

वास्तव में प्राचीन भारतीय चिंतन तथा आधुनिक चिंतन में सामाजिक न्याय का भिन्न दृष्टिकोण देखने को मिलता है। प्राचीन भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय की अवधारणा मुख्य रूप से धर्म पर आधारित थी। सामाजिक न्याय की अवधारणा कर्तव्यमूलक थी। अर्थात सामाजिक न्याय का अर्थ था कि प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपनी नियत भूमिका निभाये और अपने कर्तव्यों का पालन करें। जबकि आधुनिक भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय की अवधारणा पश्चिमी विचारों तथा भारतीय समाज सुधार आंदोलन से प्रेरित है। यह समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व के आदर्शों पर आधारित है। इसका लक्ष्य ऐसे समाज का निर्माण करना है जहाँ सभी नागरिकों को समान अवसर मिले और किसी के साथ भी जाति, लिंग, धर्म या जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव ना हो। सामाजिक न्याय की आधुनिक संकल्पना अधिकारमूलक है।

आधुनिक काल में भी हाशिये पर स्थित समुदायों की स्थिति कमोबेश य ही बनी रही। हालांकि धर्म सुधार एवं समाज सुधार आंदोलनो का उनकी सामाजिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव तो पड़ा, किंतु वह पर्याप्त नहीं था। ब्रिटिश शासन द्वारा सार्वजनिक शिक्षा के अवसर भारत मे सामाजिक न्याय का विचार और व्यवहार्यता।

भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय के विचार और व्यवहार में जमीन आसमान का अंतराल प्रतीत होता है। वस्तुतः प्राचीन भारत की समाज व्यवस्था सामाजिक न्याय से अधिक सामाजिक अन्याय की ओर इशारा करती है। (बैरवा, 20222) चौथा वर्ण उपनयन संस्कार का अधिकारी नहीं था। वह गायत्री मंत्र का उच्चारण नहीं कर सकता था, और यही से उपनयन का अभाव शूद्रों की दासता का द्योतक बन गया। (शर्मा, 1999) चारों वर्णों में सबसे खराब स्थिति शूद्रों की बताई गई। शूद्रों को अन्य वर्गों का सेवक बताया गया। उसे दूसरों की इच्छा के अनुसार काम करने वाला और मार खाने वाला बताया गया। (शर्मा, 1999) ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों की दशा अच्छी थी किंतु उत्तर वैदिक काल में उसकी स्थिति में गिरावट आई। यह कहा गया कि बिना स्त्री के कोई पुरुष पूर्ण नहीं होता। किंतु साथ ही पुत्री को कष्टों का मूल कारण भी बताया गया है। एक स्थान पर कहा गया है कि एक छोटा बालक भी स्त्रियों से श्रेष्ठ है। उसे संपत्ति का अधिकार नहीं दिया गया। इस समय समृद्ध लोगों में बहु विवाह का प्रचलन हुआ जिससे भी उनकी स्थिति में हीनता आई। (मिश्र, 1996)

मध्यकाल में भी शूद्रों की स्थिति में कोई खास परिवर्तन नहीं आया। इस काल में सामाजिक विभाजन और बढ़ा। तुर्क, भारतीय मुसलमान को अपने बराबर नहीं समझते थे। डॉक्टर आशीर्वादीलाल के अनुसार– तुर्क जाति भेद में विश्वास करते थे। उन्होंने भारतीय मुसलमान को अपनी शक्तियों से ही नहीं बल्कि सरकारी नौकरियों से भी वंचित रखा। तुर्कों द्वारा बड़े पैमाने पर जबरन धर्म परिवर्तन करवाया गया। आशीर्वादीलाल के शब्दों में हमारे देश के इतिहास में ब्रिटिश युग में भी मानव जीवन का इतना नृशंसतापूर्वक नष्ट नहीं किया गया जितना की तुर्क अफगान शासन के 250 वर्षों में किया गया। (श्रीवास्तव, 1995) शूद्रों को समाज में उपेक्षा की दृष्टि से ही देखा जाता था। इस्लाम की सामाजिक समानता से आकृष्ट होकर बड़े पैमाने पर शूद्रों ने इस्लाम धर्म को अपनाया। (ज्योति, 2018) मुगल काल में जनसाधारण वर्ग की स्त्रियों की स्थिति काफी दयनीय थी। समाज ने जो अधिकार पुरुषों को दिए थे स्त्रियों को उनसे वंचित रखा गया। समाज में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के जूते के समान समझी जाती थी। इस काल में कन्यावध, सतीप्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, बहुविवाह, पर्दाप्रथा बड़े पैमाने पर प्रचलित था। (पांडेय, 2021)

सभी वर्गों के लिए सुलभ कराए गए। आधुनिक न्याय प्रणाली, प्रेस, संचार के साधनों के विकास ने यद्यपि उनकी सामाजिक स्थिति पर अच्छा प्रभाव डाला, किंतु वहीं आर्थिक पिछड़ेपन, वंचना, निरक्षरता, अंधविश्वास और रूढ़ियों ने अपेक्षित लाभ नहीं होने दिया।

निष्कर्ष

निष्कर्ष के तौर पर हम कर सकते हैं कि, सामाजिक न्याय की संकल्पना भारत मे प्राचीन काल से ही विद्यमान

रही है। हालांकि इसके स्वरूप में परिवर्तन होता रहा है, फिर भी हर काल में इसका उद्देश्य व्यक्ति का कल्याण सुरक्षित करना ही रहा है – प्राचीन भारत में अपने कर्तव्यों के पालन द्वारा तथा आधुनिक युग में अधिकारों की प्राप्ति के माध्यम से। हर विचार देश,काल और परिस्थितियों के अनुसार समीचीन होता है। अतः वर्तमान में सामाजिक न्याय की प्राचीन परिभाषा नहीं अपनाई जा सकती। आधुनिक काल में फुले, गांधी, अंबेडकर, जयप्रकाश नारायण और राम मनोहर लोहिया जैसे अग्रणी चिंतकों ने जो विचार व्यक्त किए हैं वह भारतीय ज्ञान परंपरा की अमूल्य निधि हैं। भारतीय संविधान का आधारभूत दर्शन सामाजिक न्याय का दर्शन है जिसे सरकारित करने का जिम्मा हमारे कंधों पर है। समकालीन समाज में जिस तेजी से आर्थिक विभाजन, बेरोजगारी, महामारी, प्रदूषण, अपराध, महिलाओं का शोषण बढ़ रहा है उस से सामाजिक न्याय का प्रश्न निश्चय ही महत्वपूर्ण होता जा रहा है। हमारे पास सामाजिक न्याय का इतना समृद्ध चिंतन होने के बावजूद यह वास्तविकता के धरातल पर चरितार्थ होता क्यों नहीं दिख रहा है यह विचारणीय प्रश्न है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. आर एस शर्मा. (1999). प्राचीन भारत, पृष्ठ संख्या –94. नई दिल्ली : एनसीईआरटी.
2. ए एल श्रीवास्तव. (1995). दिल्ली सल्तनत, पृष्ठ संख्या 378. आगरा : शिवलाल एंड अग्रवाल कंपनी.
3. ओम प्रकाश गाबा. (2021). राजनीतिक सिद्धांत की रूपरेखा. दिल्ली : नेशनल पेपरबैक्स.
4. ज्योति. (2018). मध्यकालीन भारत में जाति व्यवस्था. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 279 .
5. डॉ अरुण कुमार वर्मा. (2019). डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के चिंतन में सामाजिक न्याय. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ पॉलिटिकल साइंस एण्ड गवर्नेंस, 18 .
6. डॉ गिरजा शंकर प्रसाद मिश्र. (1996). प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ संख्या–48. जयपुर : जयपुर पब्लिशिंग हाउस.
7. डॉक्टर गिरिराज प्रसाद बैरवा. (20222). भारत में सामाजिक न्याय की अवधारणारू एक विश्लेषणात्मक अध्ययन आमुख . इंटरनेशनल जनरल ऑफ रिसर्च ट्रेंड्स एंड इन्नोवेशन, 848.
8. डॉक्टर राजू. (2024). उपनिषदों की जीवन दृष्टि का सामाजिक प्रतिफलन. जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च, 847 .
9. डॉक्टर सीमा पांडेय. (2021). मध्यकाल में महिलाओं की स्थिति. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ आर्ट्स एंड एजुकेशन रिसर्च, 49 .
10. विश्व प्रकाश गुप्ता. (2008). भीमराव अंबेडकर : व्यक्ति, व्यक्तित्व और विचार. नई दिल्ली : राधा पब्लिकेशन.
11. शशि श्याम सिंह. (1998). बाबासाहब वांग्मय –खंड दो. 1998 .
12. स्वामी शिवानंद सरस्वती. (2001). कर्मयोग साधना. टिहरी गढ़वाल, उत्तरांचल : दिव्य जीवन संघ.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

भारतीय परम्पराओं की वर्तमान प्रासंगिकता : एक दार्शनिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण

डॉ. दीक्षिता अजवानी
सहायक आचार्या, इतिहास
केंद्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय, जयपुर परिसर

सारांश

भारतीय परम्पराएँ विश्व की सबसे प्राचीन और गहन सांस्कृतिक परम्पराओं में से हैं। इनका मूल दर्शन वसुधैव कुटुम्बकम् कृ "संपूर्ण विश्व एक परिवार है" के सिद्धांत पर आधारित है। भारत की परम्पराओं ने मानव जीवन को केवल भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक स्तर पर भी समृद्ध बनाया है। आधुनिकता, भौतिकवाद और वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ व्यक्ति अपनी जड़ों से कटता जा रहा है, वहीं भारतीय परम्पराएँ पुनः जीवन के संतुलन, सामंजस्य और स्थायित्व की ओर लौटने का मार्ग प्रदान करती हैं।

यह शोधपत्र भारतीय परम्पराओं के दार्शनिक, सामाजिक, पर्यावरणीय, शैक्षिक, आर्थिक और नैतिक पक्षों का अध्ययन कर उनकी वर्तमान युग में प्रासंगिकता को स्पष्ट करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि भारतीय परम्पराएँ अतीत का बोझ नहीं, बल्कि भविष्य की दिशा हैंय उनका सार विज्ञान, मानवता और अध्यात्म का ऐसा समन्वय है जो आज भी वैश्विक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द– भारतीय परम्पराएँ, ज्ञान परम्परा, आधुनिकता, पर्यावरण चेतना, सामाजिक एकता, शिक्षा प्रणाली, संस्कृति, वैश्विक प्रासंगिकता, वसुधैव कुटुम्बकम्, योग, आयुर्वेद।

भूमिका

भारतीय संस्कृति के केंद्र में सदैव "परम्परा" रही है। यह परम्परा केवल अनुष्ठानों और धार्मिक कर्मकांडों का समूह नहीं, बल्कि एक ऐसी जीवन प्रणाली है जिसमें ज्ञान, व्यवहार, धर्म, कला, विज्ञान और दर्शन– सब एक साथ समाहित हैं। 'परम्परा' शब्द का अर्थ है–श्रेष्ठ तत्वों का पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचरण। भारत ने इस परम्परा को स्थिर नहीं रहने दियाय उसने उसे निरंतर परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप अनुकूलित किया। यही कारण है कि भारतीय परम्पराएँ हजारों वर्षों से जीवित और सक्रिय हैं।

वर्तमान समय में जब भौतिकवाद और उपभोक्तावाद के कारण जीवन के मूल्य क्षीण हो रहे हैं, तब भारतीय परम्पराएँ पुनः मनुष्य को उसकी आत्मा से जोड़ने का कार्य कर सकती हैं।

भारतीय परम्पराओं का दार्शनिक आधार

भारतीय परम्पराओं की नींव वेदों और उपनिषदों में निहित है। तैत्तिरीयोपनिषद् कहता है–

"सत्यं वद। धर्मं चर।" अर्थात, सत्य बोलो और धर्म का पालन करो।

भारतीय जीवनदर्शन चार पुरुषार्थों–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पर आधारित है।

यह संतुलन आधुनिक जीवन के material–moral equilibrium का सर्वोत्तम उदाहरण है।

परम्परा का उद्देश्य आत्मा की उन्नति के साथ समाज की समृद्धि भी है।

सामाजिक परम्पराएँ और आधुनिक समाज

भारतीय समाज में परिवार, ग्राम, और समुदाय ही सामाजिक संरचना के केंद्र थे।

संयुक्त परिवार, गुरुकुल व्यवस्था, पंचायती परम्परा, त्योहारों की सामूहिकता–ये सब सामाजिक एकता के प्रतीक थे।

मनुस्मृति (4.138) "नात्यन्तं सर्वकार्येषु सर्वान् विश्वस्य सेवेत।"

अर्थात् मनुष्य को अपनी सीमाओं का ध्यान रखते हुए समाज के हित में कार्य करना चाहिए। आज जब परिवार टूट रहे हैं और सामाजिक अलगाव बढ़ रहा है, तब ये परम्पराएँ मानव–मानव के बीच पुनः संवाद और सहयोग की भावना विकसित कर सकती हैं।

पर्यावरणीय परम्पराएँ और स्थायित्व–

भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता का दर्जा दिया गया। अथर्ववेद (12.1.12) कहता है–

"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।" मैं पृथ्वी का पुत्र हूँ।

प्राचीन परम्पराएँ जैसे –वृक्षपूजन, नदी–स्नान, पर्वतों की आराधना, व्रत और त्योहारों में पौधरोपण–पारिस्थितिक संतुलन की दृष्टि से अत्यंत वैज्ञानिक थीं।

आधुनिक पर्यावरणीय संकटों के समाधान हेतु इन परम्पराओं का पुनरुद्धार आवश्यक है।

स्वास्थ्य और चिकित्सा परम्परा–

भारतीय परम्पराओं में शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्य ही स्वास्थ्य माना गया है।

चरकसंहिता कहती है–

"धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वास्थ्यं मूलमुत्तमम्।" अर्थात् –धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का आधार स्वास्थ्य है।

योग, ध्यान और आयुर्वेद न केवल चिकित्सा प्रणालियाँ हैं, बल्कि समग्र जीवनदर्शन हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) और संयुक्त राष्ट्र द्वारा योग को वैश्विक मान्यता मिलना भारतीय परम्पराओं की आधुनिक प्रासंगिकता का प्रमाण है।

शिक्षा परम्परा और आधुनिक मूल्य

गुरुकुल प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान नहीं, बल्कि चरित्र निर्माण था।

विद्या ददाति विनयं –ज्ञान विनम्रता देता है –यह सिद्धांत आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

वर्तमान में जब शिक्षा प्रणाली रोजगार–केंद्रित हो गई है, तब भारतीय परम्परा के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्य शिक्षा के वास्तविक उद्देश्य को पुनः स्थापित कर सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में Indian Knowledge Systems (IKS) को शामिल किया जाना इसी परम्परा का पुनर्जीवन है।

आर्थिक परम्परा और सतत् विकास

भारतीय परम्परा में अर्थ का लक्ष्य केवल उपभोग नहीं, बल्कि समाज कल्याण है।

ईशावास्योपनिषद् कहता है–

"त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः।" –त्याग से ही अमरत्व प्राप्त होता है।

ग्रामोद्योग, हस्तशिल्प, सहकारिता और नैतिक व्यापार भारतीय अर्थव्यवस्था की आत्मा थे। आज के आत्मनिर्भर भारत और सस्टीनेबल ईकॉनमी के सिद्धांत इन्हीं परम्पराओं की पुनरावृत्ति हैं।

महिला परम्पराएँ और नारी सशक्तिकरण

मनुस्मृति (3.56) कहती है–

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।"

जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते हैं।
भारतीय परम्परा में स्त्री को 'शक्ति' और 'जननी' के रूप में आदर प्राप्त था।
गर्गी, मैत्रेयी, और अपाला जैसे नाम इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं।
आज नारी–सशक्तिकरण की नीतियों में इसी सम्मान और समानता की भावना का पुनः समावेश आवश्यक है।

त्योहार और सामूहिक चेतना

भारतीय त्योहार केवल धार्मिक अनुष्ठान या उत्सव के रूप में सीमित नहीं रहते, बल्कि ये सामाजिक और पर्यावरणीय शिक्षा के माध्यम भी हैं। हर त्योहार के पीछे गहरे प्रतीकात्मक और व्यावहारिक अर्थ छिपे होते हैं, जो समाज को नैतिक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक दृष्टि से संतुलित बनाने में सहायक होते हैं। उदाहरण के लिए, दीपावली केवल प्रकाश का पर्व नहीं है, बल्कि अज्ञान और अंधकार पर ज्ञान और चेतना की विजय का प्रतीक है। इसके साथ ही यह स्वच्छता, दान और सामाजिक सहयोग की परम्पराओं को बढ़ावा देता है। होली रंगों का उत्सव मात्र नहीं, बल्कि यह पुराने वैमनस्य, ईर्ष्या और द्वेष को समाप्त कर सामाजिक समरसता और भाईचारे को मजबूत करने का अवसर प्रदान करता है। इसी प्रकार, नवरात्रि न केवल देवी शक्ति और साधना का उत्सव है, बल्कि यह स्त्रीशक्ति के सम्मान, अनुशासन और आध्यात्मिक विकास की शिक्षा देती है। मकर संक्रांति, जो सूर्य के उत्तरायण में प्रवेश का प्रतीक है, कृषि चक्र और मौसमी बदलावों की समझ के साथ पारंपरिक ज्ञान को भी संरक्षित करती है। इन सभी त्योहारों का मूल उद्देश्य न केवल सामूहिकता और सामाजिक एकता बनाए रखना है, बल्कि पर्यावरण के प्रति जागरूकता, नैतिक पुनरुत्थान और जीवन में संतुलन की शिक्षा देना भी है।

परम्परा और आधुनिकता का समन्वय

भारत ने सदैव नई बातों का स्वागत किया। यहाँ परम्परा और आधुनिकता का विरोध नहीं, बल्कि संवाद रहा है।

- आयुर्वेद. आधुनिक चिकित्सा = समग्र स्वास्थ्य विज्ञान।
- योग. मनोविज्ञान = मानसिक संतुलन का विज्ञान।
- शिक्षा. तकनीक. मूल्य = मानवोन्मुख प्रणाली।

भारत ने सदैव नई बातों और नवाचारों का स्वागत किया है, इसलिए यहाँ परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष नहीं, बल्कि संवाद और समन्वय की परंपरा रही है। भारतीय संस्कृति ने यह सिद्ध किया है कि परम्परा और आधुनिकता विरोधी नहीं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक हो सकते हैं। उदाहरण स्वरूप, आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा का संयोजन आज समग्र स्वास्थ्य विज्ञान का आधार बन चुका है, जहाँ पारंपरिक औषधियों और प्राकृतिक उपचारों को आधुनिक विज्ञान की विधियों के साथ जोड़कर रोग निवारण और स्वास्थ्य संवर्धन को अधिक प्रभावशाली बनाया जा रहा है। इसी प्रकार, योग और मनोविज्ञान का मेल मानसिक संतुलन, तनाव प्रबंधन और मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है। शिक्षा के क्षेत्र में भी परम्परा और आधुनिक तकनीक का सम्मिलन देखा जा सकता है, जहाँ ज्ञान के पारंपरिक मूल्य और नैतिक शिक्षा को आधुनिक तकनीकी उपकरणों और डिजिटल संसाधनों के माध्यम से विद्यार्थियों तक पहुँचाया जा रहा है। इस प्रकार, भारतीय परम्पराएँ न केवल नवीनता के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं, बल्कि यह सिद्ध करती हैं कि वास्तविक प्रगति तभी संभव है जब वह अपनी जड़ों और मूल्यों के साथ जुड़े। यही कारण है कि भारत का दर्शन "परम्परा में प्रगति और प्रगति में परम्परा" का आदर्श प्रस्तुत करता है, जो आज भी जीवन और समाज के हर क्षेत्र में प्रासंगिक है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्पराएँ

आज वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्पराएँ न केवल सांस्कृतिक धरोहर के रूप में, बल्कि जीवनदर्शन, स्वास्थ्य, और मानसिक संतुलन के मार्गदर्शक के रूप में भी विश्व स्तर पर स्वीकार की जा रही हैं। योग, ध्यान, आयुर्वेद और भारतीय दर्शन आज अंतरराष्ट्रीय मंच पर विशेष महत्व प्राप्त कर चुके हैं। विश्व के लोग अपने जीवन में तनाव, असंतुलन और मानसिक दबाव के कारण शांति और स्थिरता की खोज में हैं, और इसी आवश्यकता ने उन्हें भारतीय ज्ञान परंपरा की ओर आकर्षित किया है। योग और ध्यान केवल शारीरिक व्यायाम या साधना नहीं हैं, बल्कि यह आंतरिक शांति, मानसिक स्थिरता और जीवन के उच्चतम मूल्यों की प्राप्ति का विज्ञान हैं। इसी कारण से संयुक्त राष्ट्र ने 21 जून को

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित किया, जिससे यह संदेश विश्व स्तर पर गया कि योग मानवता के लिए एक वैश्विक उपहार है। इसके अतिरिक्त, भारत की G20 अध्यक्षता में यह सूत्रवाक्य विशेष रूप से उल्लेखनीय था– "वसुधैव कुटुम्बकम् दृ वन अर्थ, वन फैमिली, वन फ्यूचर", जो वैश्विक एकता, सह–अस्तित्व और पारिस्थितिक संतुलन का संदेश देता है। यह स्पष्ट संकेत है कि भारतीय परम्पराएँ केवल भारत की सांस्कृतिक विरासत नहीं हैं, बल्कि ये पूरे विश्व के लिए मार्गदर्शक और प्रेरक सिद्ध हो रही हैं। आज भारत का दार्शनिक और सांस्कृतिक योगदान यह संदेश देता है कि प्राचीन ज्ञान और आधुनिक जीवन का समन्वय संभव है, और यही परम्पराएँ वैश्विक मानवता के लिए स्थायी मूल्य और समाधान प्रदान कर सकती हैं।

समसामयिक चुनौतियाँ और समाधान

वर्तमान युग में मानव समाज अनेक गहन और जटिल चुनौतियों का सामना कर रहा है। इनमें प्रमुख हैं पर्यावरणीय संकट, जैसे प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता का ह्रासय नैतिक पतन, जिसमें ईमानदारी, सहिष्णुता और सामाजिक जिम्मेदारी की कमी शामिल हैय मानसिक तनाव, जो तेज जीवनशैली, प्रतिस्पर्धा और व्यक्तिगत अपेक्षाओं के कारण बढ़ रहा हैय पारिवारिक विघटन, जिससे पारंपरिक सामाजिक संरचना कमजोर हो रही हैय और सामाजिक असमानता, जो आर्थिक और सामाजिक स्तर पर विभाजन पैदा कर रही है। इन सभी समस्याओं का समाधान आधुनिक विज्ञान और तकनीक केवल आंशिक रूप से कर सकती है, लेकिन भारतीय परम्पराओं में निहित योग, ध्यान, सेवा, दान, संयम और सहजीवन की भावना स्थायी समाधान प्रदान करती हैं। योग और ध्यान मानसिक संतुलन और आंतरिक शांति का मार्ग दिखाते हैं, जबकि सेवा और दान सामाजिक सहानुभूति और सामूहिक जिम्मेदारी को बढ़ावा देते हैं। संयम और सहजीवन की शिक्षा व्यक्ति को अपने जीवन को संतुलित ढंग से जीने और समाज के साथ सामंजस्य स्थापित करने में सक्षम बनाती है। इस प्रकार, भारतीय परम्पराएँ केवल आध्यात्मिक शिक्षाएँ नहीं हैं, बल्कि आधुनिक जीवन के समसामयिक संकटों के लिए व्यवहारिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन भी प्रदान करती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय परम्पराएँ अतीत की जड़ता नहीं, बल्कि जीवन की गति हैं। वे हमें सिखाती हैं कि प्रगति वही है जो संतुलन बनाए रखे कृ संतुलन व्यक्ति और समाज के बीच, मनुष्य और प्रकृति के बीच, भौतिकता और अध्यात्म के बीच। आज के युग में भारतीय परम्पराओं की प्रासंगिकता इस तथ्य में है कि वे हमें सतत् विकास, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक एकता, और आत्मिक शांति का मार्ग प्रदान करती हैं। भारत यदि अपनी परम्पराओं की आत्मा को आधुनिकता के साथ जोड़ सके, तो वह पुनः विश्वगुरु बन सकता है।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, आर. (2018). भारतीय संस्कृति और परम्परा. दिल्ली : भारतीय विद्या प्रकाशन, पृ. 45–112.
2. पाण्डेय, क. (2016). वेदों में पर्यावरण चेतना. वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज, पृ. 88–96.
3. तिवारी, एम. (2020). भारतीय शिक्षण परंपरा और आधुनिक युग. लखनऊ : ज्ञानमंदिर प्रकाशन, पृ. 101–134.
4. गौतम, एस. (2019). योग, ध्यान और भारतीय दर्शन. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 55–78.
5. राजगोपाल, एन. (2021). Indian Traditions in Global Perspective- New Delhi: Orient Blackswan, pp- 66&118-
6. सिंह, आर.के. (2022). वसुधैव कुटुम्बकम् और वैश्विक चेतना. वाराणसी : संस्कार पब्लिकेशन, पृ. 92–105.
7. मिश्रा, डी. (2017). भारत की सामाजिक परम्पराएँ और आधुनिकता. पटना : साहित्य भवन, पृ. 143–177.
8. उपाध्याय, पी. (2015). भारतीय ज्ञान परम्परा. दिल्ली : भारती विद्या भवन, पृ. 56–80.
9. आचार्य, के. (2019). Ethics and Indian Civilization- Mumbai: Jaico Publishing, pp- 22&77-
10. श्रीवास्तव, एल. (2020). भारतीय संस्कृति की मूल प्रवृत्तियाँ. भोपाल : साहित्य सागर, पृ. 33–60.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष परम्परा : एक अध्ययन

कु. आदिती जायसवाल
शोधछात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधसार

भारत में प्राचीन काल से ही यक्ष पूजा का परम्परा रहा हैं। यक्षों को धन, समृद्धि, उर्वरता एवं प्रकृति का देवता माना गया हैं। समृद्धि,स्वास्थ्य, अमरत्व एवं संरक्षण प्रदान करने के कारण लोकप्रिय देवता बन गयेद्य साहित्य एवं पुरातत्व में अनेक प्रमाणों का उल्लेख मिलता हैं। वेद,ब्राह्मण,महाकाव्य,पुराणों में भी यक्षों की उपस्थिति मिलती हैं। मौर्य काल में मथुरा,विदिशा, नोह, पटना, से यक्ष एवं यक्षिणी की अनेक मूर्तिया प्राप्त हुई हैं कश्मीर से तमिलनाडू तक तथा सौराष्ट्र से बंगाल तक आज भी अनेक क्षेत्रों में पूजा एवं यक्षों की मूर्तिया मिलती हैं।

मुख्य शब्द : यक्ष, महत, अवधपुर, बृहदवपु, यक्षसदम, चमर, नीवी, ताल, स्तूप, लोकपाल, कुबेर, पुरातत्व, प्रस्तर, चौरा, अपराजितपुरी।

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं परम्परा में यक्ष पूजा का पर्याप्त महत्व था। सर्वप्रथम ऋग्वेद में यक्ष की पूजा का उल्लेख मिलता हैं। किन्तु यहाँ वह संभ्रांत देव नहीं हैं। वरन उसे अवम की संज्ञा देते हुए अन्य देवताओ से निम्न कहा गया हैं। यक्ष पूजा को सारहीन बताकर देव भक्तों को यक्ष के प्रभाव से बचने का प्रथम उल्लेख वेद करता हैं। यक्षों के रहने वाले स्थान को ऋग्वेद में यक्षसदम कहा गया हैं। अथर्ववेद में यक्ष लोक धर्म के प्रधान देव हैं। अतः यहाँ इनके बारे अधिक जानकारी मिलती हैं। चतुर्थ वेद यक्षों के भवन को अपराजितापुरी की संज्ञा देता हैं। यक्ष को बृहदवपु अथवा महत स्वरुप कहा गया हैं। जो उनके विशाल,महाकाय शरीर का घोतक हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं। कि इस समय यक्ष लोक मान्यता और विश्वास का केंद्र बन गये थेद्य उनकी लोकप्रियता का अंदाजा इस वाक्य से लगाया जा सकता हैं। कि इंद्र, वरुण, सोम आदि प्रधान देवताओं को भी यक्ष की श्रेणी में रखा जाने लगा।

अथर्ववेद यक्षों के प्रिय राजा कुबेर का उल्लेख करता हैं। यहाँ पर कुबेर को वैश्रवण, यक्षेन्द्र, यक्षराज आदि नामों से संबोधित किया गया हैं। महाकाव्य आदिदेव ब्रह्मा द्वारा यक्षराज कुबेर को अमृतत्व,धनाधिपत्व, तथा लोकपालत्व के तीन वरदान दिये जाने का उल्लेख करते हैं। यक्ष धन, प्रकृति तथा समृद्धि के प्रतीक थे। इनका सम्बन्ध अमरता, प्राकृति शक्ति, समृद्धि, दीर्घ जीवन आदि से था इसी कारण ये अत्यधिक लोकप्रिय हुए वाल्मीकिकृत रामायण में यक्ष और अमरत्व को समान माना गया है। महाभारत में यक्ष को महाकाय तथा पर्वतोपम कहा गया हैं। यहाँ यक्षसदन को अवधयपुर (एक ऐसा स्थान जहाँ मृत्यु न पहुंच सके) की संज्ञा दी गई हैं। इसी महाकाव्य में एक प्रसंग में यक्ष और युधिष्ठिर संवाद होता हैं। जिनमे यक्ष ने पांडव से धर्म सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे थे। यह यक्ष एक तालाब का कोई रक्षक देव था। यक्षों का एक सम्बन्ध ब्रह्म से था। महाभारत में एक यक्ष महोत्सव मिलता हैं। जिसे ब्रह्मह कहा गया हैं। पुराणों में यह उल्लेख मिलता हैं। कि सबसे पहले इस लोक में यक्ष पूजा ही प्रचलित था। आगे के अनेक परम्पराओ में यक्षों

की महिमा लोकधर्मों में बहुत दिखाई देती हैं। जिसे विविध संप्रदायों और पूजा विश्वासों ने अपने अपने तरीके से आत्मसात कर लिया साहित्य के साथ–साथ पुरातत्व भी यक्ष पूजा की परम्परा तथा लोकप्रियता की ओर इंगित करता हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य साहित्य एवं पुरातत्व के आधार पर प्राचीन भारतीय लोक परम्परा में यक्ष पूजा के महतत्व को उजागर करना हैं। इतिहास के दो महत्वपूर्ण पहलू साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष का क्या स्थान प्राप्त था? क्यों वे लोक देवता बने? उनकी लोकप्रियता का क्या कारण था? उनका आकार क्या थी? आदि प्रश्नों का समाधान इस शोध पत्र के माध्यम से करने का प्रयास किया गया हैं।

साहित्यिक अध्ययन

भारत के विविध भागों से मानव की विशाल आकृतियां प्राप्त हुई हैं। जिन्हे उनकी विशेषताओं के आधार पर यक्ष प्रतिमा माना जाता हैं। यक्ष पूजा एवं उनकी मूर्तियों का क्षेत्र बहुत विशाल हैं। कुरुक्षेत्र से उड़ीसा तक, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, मगध से शूर्पारक तक तथा अनेक स्थानों से विशाल आकृति की यक्ष प्रतिमाये पुराविदों को प्राप्त हुई हैद्य जिनमे पटना, नोह, बड़ौदा, परखम, झींग, का नंगला आदि से प्राप्त ईसा पूर्व की शताब्दियों की विशालकाय यक्ष मूर्तिया विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन मूर्तियों के कुछ सामान्य व समान लक्षण हैं। जो उन्हे यक्ष मूर्तियों की श्रेणी में ला खडा करते हैं। विशाल आकार,मूर्तियों का निकला हुआ पेट भौतिक बल की प्रतीक विशिष्ट वेशभूषा व आभूषण तथा हाथ में स्थित धन की पोटली इन प्रतिमाओं की एक प्रमुख विशेषताएँ हैं। इनकी अधिकांश मूर्तियाँ बलुएं पत्थर से बनायी गई हैं। बेसनगर, झींग, का नगला तथा दीदारगंग से यक्षी की प्रतिमा मिली हैं। कुछ यक्ष की मूर्तियों पर लेख भी लिखे मिलते हैं। प्रारम्भ में तो इन मूर्तियों की पहचान करना संदिग्ध था। कुछ इतिहासकारों ने उन्हे राजा अजातशत्रु एवं नंद की मूर्ति माना बाद में इन पर लिखी लेख से स्पष्ट हुआ कि ये लोकदेवता यक्ष की मूर्तिया हैं। आरंभिक मूर्तियों पर कहीं–कहीं अव्यवस्थित, अपरिष्कृत पालिश मिली हैं। जो इस बात की ओर संकेत करती हैं। कि इनकी रचना मौर्य काल में हुई थी।

यक्ष का सामान्य संबंध ताल (तालाब) अथवा जल से स्थापित किया गया है, प्रमाण स्परुप यक्षों की कई प्रतिमाओं ताल या नदियों के किनारे से प्राप्त हुई हैं। महाभारत में उल्लेखित यक्ष तालाब का रक्षक ही था। यक्ष का संबंध वनस्पति, वृक्ष लता आदि से भी माना गया हैं। स्तूपों एवं प्रस्तर पट्टों पर उन्हे वनस्पति के इर्द–गिर्द दर्शाया गया हैं। कुछ मूर्तियों के हाथ में चमर भी दिखया गया हैं। जो उनके कुबेर का अनुचर होने का घोंतक हैं। कुछ यक्ष प्रतिमाओं के हाथ में धन की थैली नीवी जिसे नोली भी कहा जाता हैं। मिली हैं। जिससे यक्ष देवता का धनद स्वरुप स्पष्ट होता हैं। ये मूर्तियाँ पुरी बलुए पत्थर को तराषकर बनाई गई हैं। किन्तु इनमे आध्यात्मिकता का अभाव हैं। मूर्तियों का निकला हुआ पेट भारी दृभरकम शरीर, सिर पर मुरेठेदार पगड़ी कंधों पर फैला उत्तरीय उदर बंध, कानों में कुंडल गले में तिकोना हार आदि लक्षण यक्ष प्रतिमा को विशिष्ट स्वरुप प्रदान करते हैं।

शुंग काल में यक्ष प्रतिमाएं बहुलता से निर्मित हुईद्य इस समय तक न तो ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियाँ सामने आयी थी और न ही बुद्ध और तीर्थकरों की अतः ब्राह्मण, बौद्ध, एवं जैन धर्मावलंबियों के लिए यक्ष देवता के रूप में समान रूप से पूज्य थे। शुंग काल में निर्मित बौद्ध स्तूपों में भी यक्ष–यक्षिणी की मूर्तियो की प्रधानता रही हैं। ऐसा प्रतीत होता हैं कि भरहुत और सांची के स्तूप ऐसे लोगों द्वारा बनवाए गये जो यक्ष पूजा में विश्वास करते थे। स्तूपों के तोरण–द्वार तथा वेदिका स्तंभों पर यक्ष–यक्षिणी की मूर्तियों बनवाई। मथुरा की कुषाण कालीन कला में भी यक्ष प्रतिमाओं का अस्तित्व दिखाई पड़ता हैं। किन्तु यहाँ वे अपने अस्तित्व व विशाल स्वरुप में नही हैं। वे अपने परिवार देवता, सहायक आकृति अथवा भारवाही स्परुप में विघमान हैं। इस यक्षों के राजा कुबेर व उनकी पत्नी हारीति की अनेक मूर्तियाँ निर्मित हुई हैं। मथुरा व कौशांबी से ऐसी अनेक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। हारीति को बच्चों का कल्याण करने वाली देवी के रूप में पूजा गयाद्य गुप्त काल की कला एवं साहित्य में भी यक्षों के प्रमाण मिलते हैं। अजंता की गुफाओं में भी यक्षों के उदाहरण मिलते हैं। महाकवि कालिदास ने मेघदूत में यक्षराज कुबेर को अलकापुरी का राजा बताया हैं। आगे चलकर बोधिस्तव, विष्णु, और तीर्थंकर मूर्तियों को इन यक्ष मूर्तियों से ही प्रेरणा प्रदान कीद्य शरीर, आकार रूप तथा वेशभूषा के विषय में शिल्पियों ने यक्ष मूर्तियों को नमूना मानकर ही कार्य किया।

गणेश, लक्ष्मी के साथ कुबेर का अंकन कई प्रस्तर फलकों पर मिलता हैं। जो चिर समृद्धि का सूचक हैं। आबानेरी तथा ओसियों से ऐसी प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। परखम की यक्ष प्रतिमा मणिभद्र की मानी जाती हैं। ये प्रतिमा भारी – भरकम हैं तथा पत्थर को चारों ओर गोलाई में तराशकर बनाई गई हैं। इनके भुजाओं से नीचे के हाथ टूट कर लुप्त हो चुके हैं। नोह की यक्ष मूर्ति द्वितीय शती ई.पू. की प्रतीत होती हैं। घटोंदर यक्ष प्रतिमा के पेट पर उदरबंध हैं। सिर पर उनके पगड़ी, कंठाहार व बाजूबंद धारण किये हैं। पटना से प्राप्त यक्ष की मूर्तियाँ लेखयुक्त हैं। दीदारगंज से यक्षिणी की अद्‌भुत प्रतिमा प्राप्त हुई हैं। चारों ओर से गढ़ कर बनायी गयी हैं। चौकी पर स्थावर प्रतिमा हाथ में चामर पकड़े हुए हैं। सुघड़ आनुपातिक अंग कलात्मक, शिरोभूषा, आभूषण एवं अधोवस्त्र के रूप में साड़ी प्रतिमा को अद्‌भुत स्वरुप प्रदान करते हैं।

प्राचीन भारत के अनेक स्थलों से प्राप्त ये प्रतिमाये तात्कालीन लोक जीवन एवं धर्म की जीवन्त अभिव्यक्तियां हैं। यक्ष पूजा की परम्परा भारत की प्राचीनतम धार्मिक परंपराओं में से एक हैं। यह बहुत अद्‌भुत बात हैं कि बिना किसी राजकीय प्रश्रय के यह परम्परा केवल लोक आस्था, और विश्वास के साथ फलती–फूलती रही। आश्चर्य का विषय हैं कि इस समय जन शैली का अपना निजी अस्तित्व था। और इनके शुंग, कुषाण और गुप्त राजकीय कला पर गहरा प्रभाव डाला।

मंदिरों के बाहर कुबेर या यक्ष की प्रतिमा धन रक्षक के रूप में स्थापित की जाती थी। राजस्थान के प्राचीन मंदिरों के गर्भगृह के जंघा भाग पर दिक्पाल के रूप में कुबेर की मूर्तियाँ स्थापित की गई थी। मान्यता हैं कि यक्ष धन के रक्षक होते हैं। इसलिए लोग धन व समृद्धि के लिए तथा अच्छे स्वास्थय एवं दीर्घ जीवन की आकांक्षा के लिए यक्ष की प्रसन्नता की कामना करते थे। यही कारण हैं कि हर गावं में यक्ष का चौरा निर्माण कराया जाता था।

निष्कर्ष

यक्ष पूजा की परम्परा अपने विविध रूप में आज भी पायी जाती हैं। जन साधारण तरीके से आज भी इनकी पूजा होती हैं। नोह (भरतपुर) में बाइस सौ वर्षों के उपरांत भी ग्रामवासी विशालकाय प्रतिमा की यक्ष के रूप में पूजा करते हैं। आज भी अनेक गावों में बीर के नाम से यक्ष का चौरा मिलता हैं

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- ऋग्वेद 7, 61,5
- वही, 4, 3,13
- अथर्ववेद 10,2,29–30
- रामायण,11,14
- महाभारत, शांतिपर्व 71,15
- वही,वनपर्व 152,18
- गुप्त,शिवकुमार (संपा) भारतीय संस्कृति के मूल आधार,राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर पृ. 298
- अग्रवाल पी. के गुप्तकालीन कला एवं वास्तु,बुक्स एशिया,वाराणसी,पृ 46

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

समाज में जेंडर संबंधी रुढ़िवादी अन्तर्द्वन्द्व के खिलाफ बढ़ते कदम

आरती रावत
सीनियर रिसर्च फेलो, समाजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय
संदीप सैनी
सीनियर रिसर्च फेलो, समाजशास्त्र विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

सारांश

जेंडर समाज द्वारा निर्मित 'पौरुष और स्त्रीत्व' के लिए विषमता जनित विशिष्टताओं की व्याख्या करता है। जोन वालाश स्कॉट के अनुसार, जेंडर एक निरंतर प्रवाहमान प्रक्रिया है जिसमें यौनिक भिन्नताएं सामाजिक तथा सांस्कृतिक आधारों पर निर्मित अर्थ ग्रहण कर लेती हैं। जेंडर सामाजिक भूमिकाओं, व्यक्तित्त्व, लक्षण, व्यवहार, मूल्यों और सापेक्ष शक्ति के द्वारा बदलता रहता है। समाज में जेंडर संबंधी रुढ़िवादिता एक गहरी जड़ें जमाए सामाजिक समस्या है, जो न केवल व्यक्तियों की पहचान और स्वतंत्रता को सीमित करती है, बल्कि सामाजिक प्रगति में भी बाधा उत्पन्न करती है। यह शोध पत्र समाज में व्याप्त जेंडर आधारित रुढ़िवादी अन्तर्द्वन्द्व को समझने और इसके विरुद्ध उभरते आंदोलनों, पहलों एवं सामाजिक बदलावों का विश्लेषण करता है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से लेकर वर्तमान परिप्रेक्ष्य तक, यह अध्ययन दर्शाता है कि किस प्रकार पितृसत्तात्मक सोच, लिंग–भूमिकाओं की अपेक्षाएं, तथा सामाजिक–धार्मिक संरचनाएं जेंडर असमानता को बढ़ावा देती हैं। शोध में विभिन्न सामाजिक आंदोलनों, मीडिया के प्रभाव, शिक्षा प्रणाली में हुए सुधार, और कानूनी पहलों की भूमिका को रेखांकित किया गया है, जिनके माध्यम से समाज में जेंडर के प्रति सोच में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है। विशेषकर महिलाओं, ट्रांसजेंडर व्यक्तियों और एलजीबीटीक्यू + समुदाय की भूमिका को भी प्रमुखता से दर्शाया गया है, जो इन रुढ़ियों को चुनौती दे रहे हैं और समावेशी समाज की दिशा में कदम बढ़ा रहे हैं। साथ ही, शोध पत्र यह भी बताता है कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जेंडर के प्रति सोच में कैसे अंतर पाया जाता है और किस प्रकार डिजिटल मीडिया और युवा पीढ़ी इस परिवर्तन का मुख्य वाहक बन रही है। यह अध्ययन न केवल समस्याओं की पहचान करता है, बल्कि संभावित समाधान और नीति–निर्माण की दिशा में भी सुझाव प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्द– जेंडर रुढ़िवादिता, पितृसत्ता, सामाजिक परिवर्तन, ट्रांसजेंडर अधिकार, महिला सशक्तिकरण, एलजीबीटीक्यू + शिक्षा सुधार, मीडिया प्रभाव, जेंडर समानता, सामाजिक आन्दोलन।

पृष्ठभूमि

बौद्ध और जैन धर्म के पतन के साथ और 'मनुस्मृति' की रचना के साथ ही ब्राह्मणों का उत्कर्ष होना आरम्भ हो गया और सामान्यजन बालक तक ब्राह्मण का उठकर अभिनन्दन करते थे, और धोखे से भी ब्राह्मण को मारने वाला पतित समझा जाता था। इसका कारण यह भी जान पड़ता है कि वेद रक्षा का दायित्व ब्राह्मणों को सौंप दिया गया था इसलिए वेद और ब्रह्म पर्याय रूप में भी प्रचलित थे। इस प्रकार ब्राह्मण साक्षात वेदपुत्र माने जाने लगे। मनु ने 'मनुस्मृति' की

रचना कर ऐसी आचार संहिता की स्थापना की जिसमें विभिन्न वर्षों, जातियों, व्यक्तियों और विभिन्न प्रकार के काम करने वालों और उनके व्यवहार को नियमों के सांचे में ढालने का प्रयास किया गया ठीक इसी तरह स्त्रियों के लिए भी कठोर नियम बनाए गए। स्त्री की ऋग्वेदकालीन स्वतंत्रता पर पूरी तरह अंकुश लगा दिया गया था। उसके कर्तव्यों की कभी समाप्त न होने वाली सूची तैयार कर दी गई। 'मनुस्मृति' में विभिन्न जाति, धर्म, वर्ग और स्त्री के लिए कर्तव्यों एवं अधिकारों को एक कानूनी ढांचे में गढ़ने के साथ ही स्त्री के कर्तव्यों को सामाजिक नियमों व कानूनी सांचे में कस दिया गया। धर्मशास्त्र के विभिन्न स्तरों पर हमें स्त्री के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। जैसे–जैसे युग बदले वैसे–वैसे नारी की छवि भी बदली,वह हमें ऋग्वेद से लेकर 'मनुस्मृति' तक अनेक स्वरूपों में दिखाई पड़ती है। कभी वह स्वतंत्र रूप में दिखाई पड़ती है और कभी उस पर अनेक प्रकार के बंधन लगाए जाते हैं. अन्नतः वह घर की चारदीवारी में कैद होकर रह जाती है। परंतु दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दोनों के कार्य पृथक पृथक हैं। नारी के व्यक्तित्व, उसके समर्पण और सेवा की भावना की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई है। नारी के अभाव में घर या परिवार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। वह शक्ति की प्रतीक है। मनुस्मृति का प्रथम अध्याय इस बात का प्रतीक है कि ईश्वर ने अपने शरीर के दो भागों को स्त्री और पुरुष की संज्ञा दी है। इसी आधार पर दोनों समान हैं। ईश्वर ने इन्हें जन्म देकर संसार की रचना की है जिसका वर्णन श्लोक 11 में–

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः।।

वह तो यहां तक कहते हैं कि अकेला पुरुष पूर्ण नहीं है। स्त्री, स्वदेह एवं संतान ये तीन मिलकर ही पुरुष पूर्ण होता है। जो पति है, वही पत्नी है। 'मनुस्मृति' में नारी को पर्याप्त सम्मान दिया गया है, बल्कि वह परिवार की धुरी है। इसलिए मनु कहते हैं जो अपने परिवार का कल्याण चाहते हैं वे लोग अर्थात् कन्या के पिता, भाई, पति और देवर का यह उत्तरदायित्व है कि वे सदैव (विवाह के पश्चात) भी नारी का आदर–सत्कार करते रहें और वस्त्र और अलंकरणों से उसका सम्मान करें। मनु जी तो स्त्री के लिए यहां तक कहते हैं कि जिस कुल में स्त्री का हर तरह से आदर और सत्कार किया जाता है उस कुल पर देवता भी प्रसन्न होते हैं और उनका आशीर्वाद प्राप्त होता है। और जहाँ स्त्री का अपमान और अनादर किया जाता है, उस परिवार के समस्त कार्य निष्फल हो जाते हैं जिसका वर्णन श्लोक 14 में वर्णित है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।

वैदिक संस्कृति, धर्म, आदर्श, मान्यताएं अपनी जमीन से हट रही थी वहीं बौद्ध जैन धर्म की प्रगतिशील विचारधारा समाज को एक नई सोच की दिशा दे रही थी। रूढ़िवादी अन्धविश्वासों से घिरा व बना समाज विघटित हो रहा था और ब्राह्मणों का धार्मिक उपदेश और कर्म का ह्रास हो रहा था। जीव, आत्मा एवं ईश्वर की अवधारणा का खण्डन–मण्डन हो रहा था। जिससे निकल पाना किसी भी स्त्री के लिए सम्भव नहीं था। उसे तो जीवन पर्यन्त किसी न किसी पुरुष के अधीन रहकर जीवन व्यतीत करना है चाहे वह पिता हो, पति हो. या पुत्र। स्वतंत्र जीवन की वह कल्पना नहीं कर सकती थी। उसके सम्मुख धर्म के उपदेशों, आदर्शों और नियमों की अटूट श्रृंखला थी, जिसका उल्लंघन करने पर वह या तो पाप की भागी बनती थी अथवा नरक जाती थी। बाल–विधवा भी पुनर्विवाह नहीं कर सकती थी। पति के लिए छूट थी कि यदि पत्नी कन्या को जन्म देती है तो पुत्र की प्राप्ति के लिए वह दूसरा विवाह कर सकता है। इस पुरुष प्रधान, और पितृसत्तात्मक समाज में अनमेल विवाह का भी चलन था। कल्पना कीजिए कि 30 वर्ष की आयु वाला पुरुष 12 वर्ष की कन्या से विवाह कर सकता है। किसी संकट की स्थिति में 24 वर्ष का युवक 8 वर्ष की कन्या से विवाह करने का अधिकारी है। इसे हम नारी अन्याय की संज्ञा नहीं देंगे तो क्या कहेंगे। इतनी कम आयु की लड़की के साथ अन्याय, अत्याचार तथा शोषण करना कहां का धर्म है। यह तो धर्म के नाम पर कन्या के साथ बलात्कार करने जैसा है। विवाह एक परिपक्व आयु में ही किया जाता है। इस प्रकार के सामाजिक और धर्म संबंधी विधान विवाह संस्था की अवधारणा को कलंकित करते हैं। इतना तो हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि 'मनुस्मृति' में जहाँ पुरुषों के कर्तव्यों की व्याख्या की गई है, वहीं विस्तार से स्त्री के कर्तव्यों की व्याख्या भी की गई है। परिवार, समाज और पति के साथ उसका व्यवहार कैसा होगा, उसके क्या कर्तव्य और अधिकार होंगे, ये उसकी पारिवारिक व सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हैं। स्त्री को 'मनुस्मृति' में परिवार के कार्यों तक ही सीमित कर दिया है, यह कहकर कि स्त्री कोमल और भावुक होती है। उसे परिवार के कार्य करना ही उचित है। इस तरह मनु ने बड़ी चतुरता के साथ

पुरुष का वर्चस्व बनाए रखने के लिए नारी को बाह्य दुनिया से अलग–थलग रखा है। यदि वह बाह्य समाज में प्रवेश करती है तो निन्दा की पात्र बनती है। इतना ही नहीं उसे अशिक्षित बनाए रखने में ही परिवार का कल्याण था। शिक्षित स्त्री तो जागरूक होती है। अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष करती है, जैसा कि आज कर रही है। शिक्षित स्त्री आज किसी भी क्षेत्र में पुरुषों से निम्न स्थान पर नहीं है, चाहे वह प्रशासनिक क्षेत्र हो अथवा राजनीति। यह शिक्षा का फल है की धर्म–कर्म ने नारी को शिक्षा प्राप्ति से अलग रखकर परिवार और समाज दोनों का बहुत अहित किया है।

भारतीय समाज बहलतावादी संस्कृति का है अनेक भाषा, अनेक जातियां अनेक धर्म और तरह–तरह के वर्ग इस विशाल देश की विशेषता हैं। एक अरब 21 करोड़ की आबादी देश के अनेक राज्यों में निवास करती है। एक राज्य से दूसरे राज्य की विशेषताएं पृथक् हैं। जीवनशैली और कार्यशैली में अन्तर है। तीज–त्यौहारों में अन्तर है। अगर किसी चीज में अन्तर नहीं है तो नारी की स्थिति और उसके अस्तित्व में। नारी और पुरुष के सामाजिक संबंधों व अंतः क्रियाओं का यदि विश्लेषण किया जाए तो प्रत्येक स्थान पर नारी द्वितीय पायदान पर खड़ी दिखाई पड़ती है। संयुक्त परिवार स्थापित होते हैं और स्त्री वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में मानी जाने लगती है। परिवार जो हमारी व्यवस्था का शक्तिशाली आधार रहा है, वहां नारी का सबसे अधिक शोषण और उत्पीड़न हुआ है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में नारी पुरुष पर पूरी तरह आश्रित थी। नारी अस्मिता की अवधारणा को चर्चित हुए अभी लगभग दो दशक हुए हैं। इस आन्दोलन की पृष्ठभूमि में जो नारी चेतना मुखरित हुई है, वह उत्तर–औद्योगिक आन्दोलन की भूमिका और प्रेरणा है। इसके साथ वैश्वीकरण के प्रभाव ने देश में नव–आर्थिक उपनिवेशवाद की स्थापना करने के साथ ही इसने बाजारवाद की ऐसी स्थापना की है, जहाँ लिंग भेद के दायरे सिकुड़ते जा रहे हैं। इससे नारी अस्मिता को एक नई पहचान मिली है। नगर और महानगर की शिक्षित और कार्यरत महिलाएं नारी उत्पीड़न के विरुद्ध खड़ी हुई हैं। नैतिकता के उन सभी बन्धनों को उन्होंने तोड़ना आरम्भ कर दिया, जिसने उनके पैरों में बेड़ियां डाल रखी थीं। आज नारी अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कुछ भी कर सकती है। वह तमाम प्रथाओं को नकार रही है। यह नारी चेतना आधुनिक समाज की देन है। फिर भी जिस तीव्रता से आर्थिक सामाजिक बदलाव हो रहे हैं, उनमें नारी अस्मिता को अपनी पहचान मिलेगी। नारी अस्मिता और आधुनिक समाज से जन्मी चेतना का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम अपनी संस्कृति को त्याग दें और पाश्चात्य देशों की जीवनशैली को अपना लें। नारी संस्कृति की संरक्षक है। पुरुष अत्याचार और उत्पीड़न के विरुद्ध आवाज उठाना समय की मांग है। संवैधानिक स्तर पर नारी और पुरुष दोनों समान हैं, फिर असमानता क्यों है?

औद्योगिक समाज बनने से नारी अस्मिता और नारी चेतना को ऊर्जा प्राप्त हुई। नगरीय सभ्यता और संस्कृति ने स्त्री को शिक्षित होने की जहाँ प्रेरणा दी, वहीं वह स्वावलम्बी बनी और आत्मसम्मानी भी। नई आर्थिक सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री की जीवनशैली और कार्यशैली को परिवर्तित कर दिया। परम्परागत मूल्य, आदर्श, मान्यताएं, रूढ़ियां और धर्म से जुड़े अंधविश्वासों का उसने खण्डन करना आरम्भ कर दिया। तमाम दुर्बलताओं और आलोचनाओं के बावजूद वैश्वीकरण का अर्थ युग ने नारी अस्मिता को एक नई पहचान दी है। नारी चेतना ने प्रगति करने की प्रेरणा दी। समाज का सम्पूर्ण परम्परागत प्रकार्यवाद का ढांचा यांत्रिक सभ्यता और संस्कृति में दूलता नजर आ रहा है। निश्चय ही संवैधानिक और कानून की दृष्टि में लिंग भेद समाप्त हो गया है। समाज में समानता और सामाजिक न्याय की अवधारणा से नारी शक्ति को बल प्राप्त हुआ है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था अधिकांश देशों की संस्कृति में निहित पायी जाती है। लर्नर ने अपनी पुस्तक **'क्रियेशन ऑफ पैट्रियार्की'** में पितृसत्ता को पुरूष की सत्ता का संस्थाकरण कहा है और यहाँ पर महिलाओं पर पुरूषों के अधिकार का ऐसा विस्तार है जिसके द्वारा पुरूष के अधिकारों को मान्यता दी जाने लगती है। ट्रांसजेंडर– ट्रांसजेंडर पारंपरिक सांस्कृतिक लिंग भूमिकाओं से भिन्न करने की प्रवृत्ति से जुड़े व्यक्तियों, व्यवहारों और समूहों की एक किस्म के लिए लागू एक सामान्य शब्द है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति की पहचान, आत्म छवि, आत्म प्रतिबिंब और आत्म अभिव्यक्ति के रूप में की जा सकती है। ट्रांसजेंडर व्यक्ति अपनी पहचान अपने लिंग के रूप में (स्त्री या पुरुष) ना करके, भिन्न और अन्य अस्तित्त्व में करते हैं। ऐसे व्यक्ति जो स्वयं को न तो महिला अस्तित्त्व में अपना पाते हैं और न ही पुरुष रूप में। वे एक अलग अस्तित्त्व की खोज करते हैं और अपने अंदर से अलगाव महसूस करते हैं। ट्रांसजेंडर एक जटिल विषय है, आमतौर पर इसका प्रयोग लोग स्वयं की पहचान खोजने के लिए करते हैं। ट्रांसजेंडर लोगों की पहचान समलैंगिक स्त्रियां समलैंगिक पुरुष, उभयलिंगी, विपरीत लिंगी, विषम लैंगिक इत्यादि रूपों में की जाती है। इन्हें एलजीबीटी कम्युनिटी नाम से भी जाना जाता है। लिंग पहचान और ट्रांसजेंडर पहचान की अवधारणाओं के यौन अभिविन्यास में अंतर पाया

जाता है, लिंग पहचान एक व्यक्ति होने की एक व्यक्तिगत भावना है, जबकि ट्रांसजेंडर पहचान यौन अभिविन्यास की एक व्यक्ति की स्थायी शारीरिक, रोमांटिक, भावुक या आध्यात्मिक आकर्षण का वर्णन है। आज ट्रांसजेंडर समुदाय के सदस्यों को कई बार समलैंगिक स्त्रियां (लेस्बियन), और पुरुष (गे), उभयलिंगी नागरिक के रूप में बने रहने के लिए और अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। ट्रांसजेंडर लोगों की संस्कृति को विभिन्न उपमहाद्वीपों में तीसरे लिंग के नाम से जाना जाता है। और कहीं–कहीं इन्हें विभिन्न अलग–अलग नामों से जाना जाता है। जैसे थाईलैंड और लाओस में काथोइए जापान, नेपाल, इंडोनेशिया, वियतनाम, दक्षिण कोरिया, ताइवान और चीन की पीपुल्स रिपब्लिक में इसके लिए हिजरा या तीसरे लिंग के नाम से, संयुक्त राज्य अमेरिका और कनाडा में लमाना, विनकटे, और मेक्सिको में मुक्स। टी. जी. बटरफ्लाई गार्डन 2000, झो बेले जेंडर सेंटर 2007, मेलबोर्न। इसके अलावा कनाडा में ईगल, अमेरिका में समानता फ्लोरिडा, समानता मिशिगन, लिंग राइट्स मैरी लैंड, लिंग स्पेक्ट्रम मानव अधिकार अभियान, आप्रवासन समानता प्रमुख हैं। विश्व के किसी भी देश में समलैंगिकों और किन्नरों का समुदाय उतना ही पुराना है जितनी कि मानव सभ्यता का लेकिन इस समुदाय को कभी भी बराबरी का दर्जा नही दिया गया था।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत राइट टु प्राइवेसी का प्रावधान है। अनुच्छेद 14 में स्वतंत्रता का अधिकार सभी नागरिकों को दिया गया है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के अनुसार, भारत में किसी भी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, वर्ग, वर्ण या लिंग के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जाएगा। लेकिन भारत में ऐसे समुदायों में रहने वाले लोगों को इज्जत से नहीं देखा जाता। यहां तक कि सेक्स वर्करों के लिए काम करने वाले (गैर–सरकारी संगठन नाज फाउंडेशन ने 2001) में उच्च न्यायालय में दायर याचिका में समलैंगिकता को दंडनीय न मानने की अपील करते हुए केवल ऐसे समुदाय के लोगों को सम्मान के साथ जीने देने का अधिकार मांगा था। आज के समय में भारत में ट्रांसजेंडरों को शिक्षा, रोजगार, और अन्य सामाजिक क्षेत्रों में कई अवसर मिल रहे हैं, हालांकि उन्हें अभी भी भेदभाव और सामाजिक अस्वीकृति का सामना करना पड़ता है। भारत सरकार और कई स्वयंसेवी संस्थाएं उनके अधिकारों को सुनिश्चित करने और मुख्यधारा में उनका समावेश करने के लिए काम कर रही हैं। राष्ट्रीय पोर्टल ऑफ इंडिया के माध्यम से कौशल विकास और प्रशिक्षण के लिए आवेदन किया जा सकता है, जिससे रोजगार के अवसर बढ़ सकें। (शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009) के तहत ट्रांसजेंडर व्यक्ति अब स्कूलों और कॉलेजों में सभी सुविधाओं के साथ पढ़ सकते हैं। भारत में ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को कानूनी तौर पर 'तीसरे लिंग' या 'अन्य लिंग' के रूप में मान्यता प्राप्त है और उन्हें पुरुषों या महिलाओं के समान मौलिक अधिकार प्राप्त हैं। इसके साथ ही भारतीय समाज में सभी धर्मो में ट्रांसजेडर को सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा है और सभी प्रकार के मांगलिक या सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदर एवं सम्मान दिया जाता है। और इनके प्रति पुरानी रूढ़िवादी विचारधारा का खण्डन समाज में देखने को मिलता है। इसके साथ ही सरकारों के द्वारा इनके जीवनयापन के लिए विभिन्न प्रकार के आर्थिक संसाधन मुहैया करवाना एवं राजनीतिक क्षेत्र में भी आरक्षण प्रदान किया जा रहा है। भारत में महिलाओं के साथ हो रहे, हिंसा, अन्याय, आंदोलन, अनुभव, कार्यशैली, समस्या के निवारण खोजने और बेहतर जीवन स्तर उपलब्ध कराने हेतु एक प्रयास है। भारत में सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, पर्दा प्रथा, इत्यादी के खिलाफ भारतीय समाज सुधारकों ने नारीवादी आंदोलन को जन्म दिया। भारत में पहली नारीवादी लहर (1850 से 1915) तक के अंतर्गत राजाराम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानंद आदि ने समाज में महिलाओं के प्रति होने वाले सामाजिक बुराईयों, रूढ़िवादी बुराईयों, रूढ़िवादी मानसिकता और परम्पराओं को बदलने संबंधी आंदोलन का समर्थन किया और महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन संबंधी चेतना में विकास देखने को मिले। वही दूसरी नारीवादी लहर (1915 से 1947) तक के आंदोलनों में अमृत कौर, सुचेता कृपलानी, सरला देवी चौधरानी, मधुलक्ष्मी रेड्डी, सुशीला नायर, आदि ने महिलाओं को कानूनी प्रावधानों में अधिकार, एवं सामाजिक व आर्थिक समानता के साथ ही महिलाओं को शिक्षित करने संबधी कार्य का पुरजोर समर्थन किया। इसके साथ ही भारत में तीसरी नारीवादी लहर (1947 से 1990) तक एवं चौथी नारीवादी लहर 1990 से वर्तमान तक आंदोलनों में महिलाओं के प्रति लिंग समानता, घरेलू हिंसा रोकने, बाल विवाह, के अलावा महिला संगठन Self Employed women's Association (SEWA), और TheAll Indian Democratic Women's Association (AIDWA) ने महिला सशक्तिकरण, महिलाओं को रोजगार में समानता, के साथ पर्यावरण या प्रकृति के समान उनके साथ व्यवहार करने कि दिशा में कार्य किये गये। इस लहर में महिलाओं ने अपने आत्मसम्मान, व अपने अधिकारों के प्रति सजग होने के साथ विभिन्न प्रकार के आंदोलनों जैसे सुंदरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में चिपको आंदोलन, मेंधा पाटेकर के नेतृत्व में नर्मदा बचाओं आंदोलन, और महिला सशक्तिकरण के रूप में गुलाबी गैंग में महिलाओं ने अपने–अपने पतियों द्वारा उनके

प्रति दुर्व्यवहार व हिंसा से बचाने के लिए संपत पाल के नेतृत्व में अपनी अस्मिता और घरेलू हिंसा के खिलाफ आंदोलनों में प्रतिभाग किया।

उद्देश्य

प्रस्तुत शोध अध्ययन के मुख्य उद्देश्य समाज में महिलाओं के प्रति व्याप्त जेंडर आधारित रूढ़िवादिता को समझना तथा समाज में महिला रूढ़िवादिता के प्रति आए परिवर्तनों को जानने का प्रयास किया गया है।

शोध पद्धति

प्रस्तुत शोध अध्ययन में अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग किया गया है इसके साथ ही दैव निदर्शन के द्वारा इकाई का चयन किया गया, तथा प्राथमिक स्रोत इस अध्ययन में 50 उत्तरदाताओं का गूगल फॉर्म (संरचित प्रश्नावली) के माध्यम से साक्षात्कार किया गया है। द्वितीयक तथ्य संकलन में शोध पत्र,पुस्तक एवं रिपोर्ट के द्वारा तथ्यों का संकलन कर आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

परिणाम एवं चर्चा

प्रस्तुत शोध अध्ययन समाज में जेंडर संबंधी रुढ़िवादी अन्तर्द्वन्द्व के खिलाफ बढ़ते कदम हेतु उत्तरदाताओं के साक्षात्कार के परिणाम स्वरुप तथ्यों का विश्लेषण निम्नवत प्रदर्शित किया गया है।

तलिकाः–1 उत्तरदाताओं की आयु

आयु वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
15 – 20 वर्ष	1	2
21 – 30 वर्ष	34	68
31 – 40 वर्ष	13	26
41 वर्ष से अधिक	2	4
कुल	**50**	**100.00**

तलिका संख्या–1 से यह स्पष्ट हो रहा कि इस सर्वेक्षण में कुल 50 उत्तरदाताओं में से अधिकतर 21–30 आयु वर्ग के 68 प्रतिशत सर्वाधिक उत्तरदाता है, जबकि 31– 40 आयु वर्ग के उत्तरदाता 26 प्रतिशत है। वही 41 वर्ष से अधिक एवं 15–20 वर्ष आयु वर्ग के उत्तरदाताओं का क्रमशरू 4 प्रतिशत और 2 प्रतिशत न्यूनतम उत्तरदाता पाये गये है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि समाज में जेंडर संबंधी रूढ़िवादि सोच के खिलाफ आजकल के युवा आयु वर्ग के लोग जेंडर के प्रति नयी सोच एवं अवधारणा के साथ जेडर समानता हेतु अपनी भागीदारी प्रस्तुत करने व एक नवीन दिशा एवं दृष्टिकोण को इंगित करते है।

तलिकाः– 2 उत्तरदाताओं का लिंग

आयु वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
पुरूष	23	46
महिला	27	54
अन्य	0	0
अन्य	**50**	**100.00**

प्रस्तुत तलिका संख्या–2 में यह प्रदर्शित होता है कि इस अध्ययन में सम्मलित 50 उत्तरदाताओं में से महिला उत्तरदाताओं का सर्वाधिक संख्या 54 प्रतिशत एवं पुरूष उत्तरदाता की संख्या 46 प्रतिशत इंगित है। इससे स्पष्ट होता है कि अब के समाज में महिलाएं अपने अधिकारों के साथ ही समाज में अपनी भूमिका को निभाने में पुरूषों की अपेक्षा

कही अधिक सजग है।

तलिकाः– 3 जेंडर भेदभाव किन क्षेत्रों में अधिक देखने को मिलता हैः–

आयु वर्ग	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
शिक्षा	0	0
कार्यस्थल	6	12
परिवार	5	10
राजनीति	1	2
उपरोक्त सभी में	34	68
अन्य	4	8
कुल	**50**	**100.00**

प्रस्तुत तलिका संख्या–3 में यह प्रदर्शित होता है कि इस अध्ययन में सम्मलित 50 उत्तरदाताओं में जेंडर भेदभाव के आधार पर पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को कार्यस्थल पर 12 प्रतिशत, परिवार में 10 प्रतिशत, राजनीति में 2 प्रतिशत, एवं अन्य क्षेत्रों में 8 प्रतिशत सहित उपरोक्त सभी क्षेत्रों को सम्मलित करते हुए 68 प्रतिशत भेदभाव देखने को मिलता है। वही शिक्षा के क्षेत्र में महिलओं के प्रति भेदभाव देखने को नही मिला। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज के वर्तमान समाज में महिलाओं को पुरूषों की तरह पढ़ने लिखने का अवसर तो दिया जा रहा है लेकिन जब परिवार, व समाज में उनको राजनीति के क्षेत्र में, घर से बाहर आत्मनिर्भर बनने के साथ ही विभिन्न सेक्टरों में रोजगार या नौकरी आदि करने में भेदभाव आज भी देखने को मिलता है।

तलिकाः– 4 क्या आपके परिवार में निर्णय लेते समय महिलाओं की राय ली जाती हैः–

परिवार में महिलाओं की राय	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
हाँ	33	66
नही	3	6
कभी–कभी	14	28
कुल	**50**	**100.00**

प्रस्तुत तलिका संख्या–4 में यह प्रदर्शित होता है कि इस अध्ययन में सम्मलित 50 उत्तरदाताओं में से पारिवारिक निर्णयों में महिला उत्तरदाता की अधिकतर संख्या 66 प्रतिशत राय ली जाती है। वही कभी–कभी परिवारिक निर्णयों में महिलाओं की राय 28 प्रतिशत एवं 6 प्रतिशत के आधार पर महिलाओं की राय नही ली जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि महिलाओं को भी पारिवारिक निर्णयों में पुरूषों के सापेक्ष अपना राय रखने का अधिकार दिया जाने लगा है।

तलिकाः– 5 क्या आपके परिवार में महिलाएं स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त कर पाती हैंः–

परिवार में महिलाओं के स्वतंत्र विचार	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
हाँ	38	76
नही	2	4
आंशिक रूप से	10	20
कुल	**50**	**100.00**

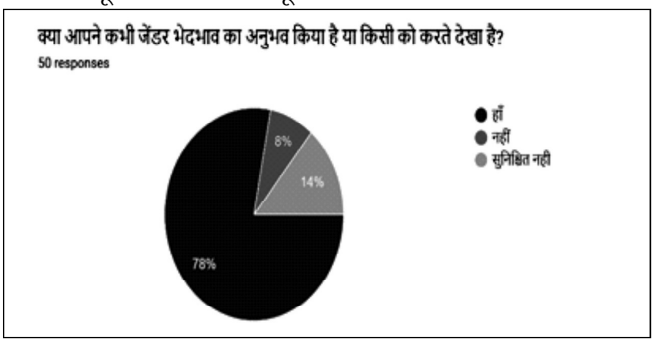
प्रस्तुत तलिका संख्या–5 में यह प्रदर्शित होता है कि इस अध्ययन में सम्मलित 50 उत्तरदाताओं में से परिवार में

महिलाएं स्वतंत्र रूप से अपने विचार व्यक्त करने में महिला उत्तरदाता की अधिकतर संख्या 76 प्रतिशत है। वही आंशिक व नही के रूप में अपने विचार व्यक्त करने में महिला उत्तरदाताओं की न्यूनतम संख्या 20 प्रतिशत एवं 4 प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज महिलाएं अपने परिवार में माता–पिता, भाई–बहन के साथ ही परिवार के अन्य सदस्यों के समक्ष अपने अधिकारों, शिक्षा ग्रहण, अपने मनपंसद रोजगार, एवं अपने ग्रहस्थ जीवन जैसे विवाह, जीवनसाथी के चुनाव आदि के लिए अपने विचार स्वतंत्र रूप से व्यक्त करती है।

तलिकाः– 6 क्या परंपरागत समाज से वर्तमान समय में महिलाओं की प्रस्थिति के प्रति रूढ़िवादी सोच में परिवर्तन आया हैः–

महिलाओं की प्रस्थिति के प्रति रूढ़िवादी सोच में परिवर्तन	उत्तरदाताओं की संख्या	प्रतिशत
हाँ	47	94
नही	3	6
कुल	**50**	**100.00**

प्रस्तुत तलिका संख्या–6 से यह प्रदर्शित होता है कि इस अध्ययन में सम्मलित 50 उत्तरदाताओं में से महिलाओं की प्रस्थिति के प्रति रूढ़िवादी सोच में परिवर्तन में पुरूष एवं महिला उत्तरदाताओं में 94 प्रतिशत ने यह माना कि पहले के परंपरागत समाज की अपेक्षा आज के आधुनिक समाज में महिलाओं की प्रस्थिति में परिवर्तन आया है। वही न्यूनतम 6 प्रतिशत लोगो ने यह माना कि महिलाओं की प्रस्थिति में कोई परिवर्तन नही आया है। लेकिन सर्वाधिक उत्तरदाताओं के प्रतिशत से यह स्पष्ट होता है कि आज के समय में महिलाओं को समाज मे समान अधिकार, न्याय, एवं परिवारिक संस्थाओं, राजनीति, आदि क्षेंत्रो में महिलाएं अपने आप को सर्वोच्च पद पर स्थापित कर रही है। भारतीय सामाजिक पितुसत्तामक ढ़ाँचे में बेटे–बेटी के रूढ़िवादी भेदभाव अब न करके दोनों को बराबर का दर्जा दिया जा रहा है। महिलाएं आज के समय में घर गृहस्थी जैसी भूमिकाओं को संभालने के साथ ही समाज में स्वालंबी, प्रशासानिक सेवाओं, हेल्थ सेक्टर, अध्यापक के रूप में अपनी भूमिकाओं को बाखूबी निभा रही है।



पाई चार्ट. 1 में यह दर्शाया गया है कि 78 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने जेंडर भेदभाव का अनुभव किया है, या फिर करते देखा है। वही 14 प्रतिशत लोगों ने सुनिश्चित नहीं और 8 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने नहीं में उत्तर दिया है। वह अपना अनुभव साझा करते हुए बताते हैं कि समाज में लैंगिक भेदभाव बहु आयामी और बहु स्तरीय क्षेत्र में फैला हुआ है यह केवल व्यक्तिगत जीवन तक ही सीमित नहीं है बल्कि परिवार, रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य, राजनीति एवं सामाजिक रूप में भी व्याप्त है। अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि शिक्षा के आधार पर परिवारों में ही माता–पिता अपने बच्चों में बेटे की शिक्षा पर अधिक जोर दिए जाने के साथ निवेश भी अधिक करते हैं वही जब बात बेटी की शिक्षा की आती है तो माता–पिता उन्हें अधिक शिक्षित करना उचित नहीं समझते हैं ग्रामीण और अर्ध शहरी क्षेत्र में अधिक देखा गया है जहाँ लड़कियों की उच्च शिक्षा को बढ़ावा न देकर कौशल एवं घर के कामों में संलग्न कर शिक्षा से वंचित किया जाता है, आज के परिदृश्य में, लैंगिक असमानता दिन–प्रतिदिन कम हो रही है, लेकिन कई पिछड़े इलाकों में भी देखी जा रही है। यह न केवल अशिक्षित समाज में, बल्कि शिक्षित समाज में भी देखी जाती है। घरों में महिलाओं को कम महत्व दिया जाता है और यहाँ तक कि उन्हें प्रताड़ित भी किया जाता है। एक उभरता हुआ मुद्दा यह है कि महिलाओं को एक वस्तु के रूप में देखा जा रहा है। महिलाओं को केवल घरेलू काम करने तक ही सीमित रखा जाता है। यह अनुचित है और मैं इससे पूरी तरह असहमत हूँ।

उपसंहार

लैंगिक भेदभाव में और सामाजिक रूढ़ियों में आए परिवर्तनों जिसमें शिक्षा, जागरूकता एवं सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन के कारण महिलाओं की स्थिति में आए परिवर्तनों का उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त किए गए व्यक्तिगत अनुभवो को साझा किया गया है। जिसमें शिक्षा को परिवर्तन का मूल कारण माना है शिक्षा के द्वारा महिलाओं की प्रगति संभव हो पाएगी शिक्षा का लैंगिक भेदभाव और रूढ़िवादिता को नष्ट करने का आधार माना है जिसमें बताते हैं कि पहले के समय में यदि महिलाओं को कोई कार्य शिक्षा विवाह जैसे फैसले लेने होते थे। वह पुरुषों पर या घर के लोगों पर छोड़ देती थी किंतु वर्तमान में ऐसा नहीं है महिलाएं अपने फैसले लेने में सक्षम हो रहे हैं, जिसमें मुख्य भूमिका शिक्षा की है जिससे महिलाओं में आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता एवं सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा मिला है, वर्तमान में महिलाएं अपनी सुरक्षा अनुसार कार्य कर सकते हैं यह इस वजह से भी हो पाया है की शिक्षा और विकास में मीडिया ने काफी रोल अदा किया है महिलाओं का शिक्षा के प्रति रुझान बड़ा है और अलग–अलग फील्ड में बेहतर प्रदर्शन परंपरागत रूढ़िवादियों को तोड़ते हुए कर रही हैं। आज परिवारों तथा अन्य जगहों पर पुरुष के साथ–साथ महिलाओं को भी प्राथमिकता दिया दी जाती है और परिवार से संबंधित निर्णय में उनका भी सुझाव लिया जाता है। वही समय और परिस्थितियों के साथ–साथ समाज के प्रत्येक पहलुओं में भी परिवर्तन आ रहा है जिसमें मुख्यता मानसिक परिवर्तन है जहाँ पहले की रीति रिवाज और रूढ़िवादी परंपराओं के चलते महिलाएं शिक्षा ग्रहण नहीं करती थी और शादी के बाद घूंघट और घर तक ही सीमित रहना जैसी परंपराओं में बंधी हुई थी जो कि वर्तमान में कम देखने को मिलती हैं।

आजकल लोग आधुनिकता को अपना रहे हैं इसी के चलते परंपरागत समाज में महिलाओं की स्थिति में रूढ़िवादी सोच में परिवर्तन आया है बदलाव बहुत अच्छा है और कहीं ना के बराबर भी है पहले घूंघट था आज मैं नहीं करती सूट भी पहनती हूँ। वर्तमान में महिलाएं शिक्षा और करियर के साथ सामाजिक मंच पर भी अपनी भूमिका भली भांति निभा रहे हैं। वहीं कुछ लोगों का मानना है कि यह केवल एक दिखावा है आज गाँवों में कई महिलाएँ स्वयं सहायता समूह चला रही हैं, स्वरोजगार कर रही हैं और निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी निभा रही हैं, जो पहले केवल पुरुषों का अधिकार माना जाता था। शिक्षा और नारीवादी विचारों के प्रसार से रूढ़िवादी विचारधारा कुछ हद तक कमजोर हुई है। जिससे हम यह कह सकते हैं कि अभी कम है परंतु सर्वव्यापी रूप से परिवर्तन नहीं आया है किंतु कानूनी और नीतिगत रूप से इसे बढ़ावा दिया जा रहा है जिसमें सरकार द्वारा कई योजनाएं चलाई गई हैं, जैसे बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, और आरक्षण नीतियां महिलाओं को कानूनी अधिकार और सुरक्षा प्रदान करती हैं जिससे महिलाएं अपने अधिकारों के लिए आवाज उठा सकती हैं साथ ही मीडिया, सोशल मीडिया और फिल्मों के द्वारा भी महिलाओं की कई समस्याओं को उजागर करते हैं जिसके कारण समाज में लिफ्ट व्याप्तियां समाज के सामने आई और लोगों ने इन पर चर्चा भी की है। जिससे समाज में जागरूकता फैली है जिसमें कुछ महिलाएं जैसे कल्पना चावला पीवी सिंधु जैसी प्रेरणादायक महिलाएं हैं जो समाज की प्रत्येक महिलाओं के साथ आने वाली नई पीढ़ी को भी प्रेरणा देंगी। लैंगिक समानता को ग्रामीण क्षेत्र की तुलना में शहरी क्षेत्र में प्रभावी रही है। ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में अभी भी लैंगिक भेदभाव देखने को मिलता है किंतु यह भी है कि महिलाएं स्वयं को आगे लाने के लिए छोटे कुटीर उद्योग और स्वयंसेवक समूह जैसे स्वरोजगार प्रदान करने वाली संस्थाओं से जुड़कर अपनी भागीदारी प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे महिलाएं आर्थिक रूप से अपने परिवार को पारिवारिक देखभाल के साथ आर्थिक सहायता भी प्रदान कर रही हैं तथा जिस परिवार एवं समाज में महिलाओं को समान शिक्षा और समान अवसर प्रदान किए गए हैं, वहां पर महिलाओं ने एक प्रतिष्ठित भूमिका बनाई है इससे स्पष्ट है, कि महिलाओं को पुरुषों के समान यदि शिक्षा और अवसर प्रदान किए जाएं तो समाज में लैंगिक भेदभाव को कम किया जा सकता है शिक्षा और महिला सशक्तिकरण के द्वारा महिलाओं को उत्तम बनाने के साथ ही सामाजिक सोच में भी परिवर्तन लाना आवश्यक है हालांकि परिवर्तन की प्रक्रिया समाज में जारी है तथा समय के साथ लैंगिक असमानता में भी समाज में परिवर्तन आना संभव है। वही परिवार और सामाजिक जीवन के आधार पर जेंडर भेदभाव अधिक देखने को मिलता है यदि हम परिवार मे बच्चों के जन्म को देखें, तो अधिकतर परिवारों में बेटे के जन्म की इच्छा जताई गई जिसमें बेटे के जन्म पर उत्सव और बेटी के जन्म पर दुख माना है, तथा घर के कार्यों को लेकर भी समाज में एक भ्रांति फैली है, की घर के कार्यों को करना तो यह एक महिला या लड़की का ही काम है, जिसमें पुरुषों की कोई भागीदारी नहीं है। वहीं पारिवारिक या सामाजिक निर्णय में भी महिलाओं को दरकिनार किया जाता है जिसमें महिलाओं के निर्णय को अस्वीकार कर पुरुषों के निर्णय को प्राथमिकता दी गई है जिससे समाज एवं परिवार

में पूर्ण रूप से भेदभाव दिखाई देता है। समाज एवं परिवार की मानसिकता में यह है की लड़कियां शिक्षा लेकर क्या करेंगी अंततः घरेलू कार्य ही करने हैं बच्चों और परिवार की देखभाल ही करनी है कई बार तो यह लैंगिक भेदभाव स्वयं महिलाओं का महिलाओं के प्रति देखने को मिला है इस प्रकार लैंगिक भेदभाव केवल पुरुष प्रधान दृष्टिकोण का परिणाम नहीं बल्कि या एक समाजीकरण की भी उपज है। क्योंकि वह महिला है सिर्फ इतनी सी बात पर जेंडर भेदभाव हो जाता है, उन्हें नीची नजरों से देखा जाता है यह मैंने वकालत की प्रैक्टिस करते टाइम अनुभव किया है। कुछ महिलाओं का मानना होता है, जब हम शादी के बाद गृहिणी हैं तो उनकी लड़कियां भी ग्रह कार्य ही करेंगी जिससे भेदभाव बढ़ता है।

जेंडर भेदभाव को आर्थिक और रोजगार के क्षेत्र में भी अधिक देखा गया है जहाँ पर महिलाओं को पुरुषों के समान कार्य और वेतन प्रदान नहीं किया जाता है। कार्यों में भी महिलाओं को भावनात्मक श्रम और पुरुषों को भौतिक श्रम प्रदान किए जाते हैं जिसकी बात **अर्ली हॉकचाइल्ड** अपनी पुस्तक डी मैनेज्ड हार्ट कर्मशलाइजेशन ऑफ ह्यूमन फिलिंग्स में प्रस्तुत करती हैं जिसमें वह फ्लाइट अटेंडेंट और रिसेप्शनिस्ट जैसे कार्यों का उदाहरण देती हैं वही अवधारणा हमें प्रत्येक क्षेत्र में देखने को मिलती है तथा तीसरे जेंडर को समाज में नकारात्मकता की दृष्टि से देखा जाता है लैंगिक असमानता केवल भारत में ही नहीं यह वैश्विक स्तर पर विद्यमान है, जहाँ महिला पुरुष एवं अन्य जेंडर को समानता का अधिकार नहीं मिलता है इससे यह स्पष्ट होता है की लैंगिक भेदभाव यह केवल व्यक्तिगत अनुभव नहीं बल्कि यह समाज के प्रत्येक पहलू में है जो की संरचनात्मक और संस्थागत समस्या है जिसने परिवार शिक्षा समाज के प्रत्येक पहलुओं को प्रभावित किया है यदि समय के साथ इस प्रकार के रूढ़िवादी परंपराओं में परिवर्तन नहीं किया जाएगा तो समाज में अव्यवस्था बनी रहेगी, इसको दूर करने के लिए लोगों में जागरुकता, शिक्षा में समान अवसर और सामाजिक और नीतिगत हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

सुझाव

समाज में आने वाली नई पीढ़ी को रूढ़िवादी परंपराओं से निकलकर और लैंगिक असमानता को आगे हस्तांतरित होने से रोकने के लिए उत्तरदाताओं द्वारा कई सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं–

1. जिसमें शिक्षा को मुख्य बिंदु माना है शिक्षा ही जेंडर समानता लाने का मुख्य साधन है। विद्यालयों में बच्चों को सामान और मूल्य आधारित शिक्षा देना आवश्यक बताया है।

2. परिवार को प्रथम विद्यालय बताते हैं उसके अनुसार से बेटा बेटी (बच्चों) को माता–पिता के द्वारा समान माना जाए, उन्हें समान अवसर और कार्य प्रदान किया जाए।

3. कई लोगों का मानना है, कि समाजीकरण मुख्य भूमिका निभाता है। जिसमें समान अवसर और लड़के लड़कियों एवं थर्ड जेंडर के विचारों को और उन्हें समावेशी बनाया जाए।

4. जनसंचार में मीडिया और सोशल मीडिया के द्वारा लैंगिक समानता को बढ़ावा दिया जा सकता है। फिल्मों और समाचारों द्वारा लोगों को जागरूक किया जाए।

5. व्यवहारिक शिक्षा भी लैंगिक समानता लाने में प्रभावी है। जब बच्चों को परिवार विद्यालयों एवं समाज में लड़के लड़कियों को सामान नजरिए से देखा जाएगा। तो उनके व्यवहार में भी समानता का भाव उत्पन्न होगा।

6. लैंगिक समानता के लिए विद्यालयों एवं समाज में समय–समय पर कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिसमें लैंगिक असमानता को समाप्त करने जैसे बिंदुओं को लिया जाए।

सन्दर्भ सूची

1. सरस्वती, मिश्रा. 1996. भारतीय स्त्रियों की प्रस्थिति, शारदा पब्लिशिंग हाऊस. दिल्ली.
2. परमार, शुभ्रा. 2017. नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार. ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड : हैदराबाद. पृ. 1–126
3. मनुस्मृति, 7–133.
4. सिंह, वी. एन. एवं जनमेजय, सिंह. 2024. नारीवादी. रावत पब्लिकेशन. जयपुर.
5. श्रीवास्तव, परमानन्द. आजाद औरत कितनी आजाद. सामयिक प्रकाशन. नई दिल्ली.
6. होचशील्ड, ए. आर. (1983). "द मैनेज्ड हार्ट : कमर्शियलाइजेशन ऑफ ह्यूमन फीलिंग". यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
7. वर्मा, एस. (2020). "कॉर्पोरेट क्षेत्र में महिलाओं के कार्यस्थल उत्पीड़न का समाजशास्त्रीय विश्लेषण (अप्रकाशित डॉक्टोरल शोधप्रबंध)". दिल्ली विश्वविद्यालय

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

सुशीला टाकभौरे के उपन्यास 'वह लड़की' में अभिव्यक्त घरेलू हिंसा का स्वरूप

वंदना माथुर
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
अश्वनी कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मोतीलाल नेहरू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

सामाजिक समरसता और समता के अधिकार के लिए स्त्रियों ने ना जाने कितने हजार वर्षों का संघर्ष किया है और आज भी वह अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता, सम्मान के लिए निरंतर प्रयास कर रही है। आधुनिक युग की स्त्री किसी भी प्रकार से कम नहीं है। वह समाज के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। साथ ही आज की आधुनिक स्त्री घर और दफ्तर दोनों में बड़ी शानदारी से अपनी भूमिका निभा रही है। सुशीला टाकभौरे का 'वह लड़की' उपन्यास आधुनिक युग की स्त्री समस्याओं पर खरा उतरता है। उपन्यास में घरेलू हिंसा जैसे गंभीर मुद्दे से लेकर लेखिका ने स्त्री की आजादी, शिक्षा, सामाजिक समरसता, लैंगिक समानता आदि पर विस्तार से अपनी बात उपन्यास के माध्यम से रखी है।

बीज शब्द – घरेलू हिंसा, लैंगिक असमानता, यौन शोषण, दहेज प्रथा, स्त्री शिक्षा, वर्ण भेद, जाति भेद, स्त्री चेतना।

संसार की धुरी स्त्री तथा पुरुष दोनों के सहयोग से चलती है। स्त्री को पुरुष का अनुगामी माना गया है, परन्तु यह सोच हमें बस पुस्तकों तक ही सीमित होती हुई नजर आती है। इस पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष स्त्री को अपनी सहचरी के रूप में ही स्वीकार करना पसंद करते हैं, वह बस इतना ही ज्ञान अर्जित करे कि उनकी सेवा कर अपनी संतान का अच्छे से पालन–पोषण कर सके तथा जिस घर में वह व्याह कर आयी है उस घर के लिए वह अपनी खुशियों को भूलकर अपना सारा जीवन बलिदान कर दे। समाज में स्त्रियों को देवी का दर्जा दिया गया वहीं दूसरी तरफ उसे त्याग और ममता की मूर्ति जैसे उपमान देकर उसका दोहरा शोषण किया गया। लेकिन आज की स्त्री पितृसत्तात्मक व्यवस्था को समझने लगी है वह इन उपमानों की पीछे छुपे शोषण को पहचानने लगी है यही कारण है कि जो स्त्रियां अपनी स्वतंत्रता, समता, समानता तथा अपने अधिकारों की बात करती है, समाज ऐसी स्त्रियों को अच्छी नजर से नहीं देखता है। प्राचीन समय से स्त्रियां पुरुषों की 'दासी' बनकर रही हैं, 'पति ही देवता है' जैसे ध्येय वाक्यों के साथ ही पिता के घर से बेटी की डोली तथा पति के घर से ही उसकी अर्थी उठनी चाहिए जैसी सामाजिक रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण समाज और परिवार ही लड़की के जीवन की दिशा को निर्धारित करता है। देश को आजाद हुए 77 वर्ष हो गए परन्तु क्या स्त्रियां वास्तविक रूप से आजाद हुई हैं, वे आज भी इस समाज में पितृसत्तात्मक सोच रखने वाले लोगों के लिए अच्छी गृहणी तथा एक पुरुष के लिए भोग्या है साथ वह किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा का शिकार हैं। घरेलू दायरे में हिंसा को घरेलू हिंसा कहा जाता है। किसी स्त्री का शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, मौखिक, मनोवैज्ञानिक या यौन शौषण किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाना जिसके साथ स्त्री के पारिवारिक संबंध हैं, घरेलू हिंसा में शामिल हैं।

प्रस्तुत उपन्यास 'वह लड़की' हिन्दी दलित साहित्य की प्रसिद्ध रचनाकार सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित है। मुख्यतः उपन्यास को दो स्तरों पर बांटकर देखा जा सकता है, पहला– स्त्री चेतना का स्वर, दूसरा– स्त्रियों पर होने वाली घरेलू हिंसा। उपन्यास स्त्रियों पर होने वाली घरेलू हिंसा से उनके जीवन में आए परिवर्तन और चेतना के साथ स्त्री अस्मिता के सवालों को उजागर करता है। भारतीय समाज की रुपरेखा ही कुछ ऐसी गढ़ी गई है जिसमें स्त्रियों को हमेशा पुरुषों से दोयम दर्जे का माना गया है। जहाँ एक तरफ स्त्री को 'यत्र नारी पूज्यंते रमंते तत्र देवता', 'अर्द्धनारीश्वर' कहकर महिमा मंडित किया गया इसके विपरीत उसे माया का प्रतीक बताकर उस पर तमाम तरह के प्रतिबंध लगाए गए तथा इन्हीं लगाए गए प्रतिबंधों के कारण वह घर की वस्तु बनकर रह गई जिसके कारण वह घरेलू हिंसा का शिकार पहले भी थी और आज भी लगातार हो रही हैं।

'घरेलू हिंसा के विरुद्ध महिला अधिनियम की धारा–2005' घरेलू हिंसा को परिभाषित किया गया है– "प्रतिवादी का कोई बर्ताव भूल या किसी और को काम करने के लिए नियुक्त करना, घरेलू हिंसा में जाना जाएगा"।[1]

- क्षति पहुंचाना–पीड़ित व्यक्ति को स्वास्थ्य, जीवन, अंगों व शारीरिक तौर पर खतरे में डालना।
- दहेज/संपत्ति की अवैध मांग को पूरा करने के लिए महिला या उसके रिश्तेदारों को मजबूर करने के लिए यातना देना, नुकसान पहुंचाना।

उपरोक्त पंक्तियों में घरेलू हिंसा के विरुद्ध महिला संरक्षण अधिनियम को परिभाषित किया गया है, यह परिभाषा 'वह लड़की' उपन्यास पर बिल्कुल सटीक बैठती है। उपन्यास की अधिकांश स्त्री पात्र किसी न किसी रूप में घरेलू हिंसा का शिकार हैं। स्त्रियां आज भी तमाम तरह के वंचित वर्गों की श्रेणी में तो हैं ही, साथ ही लैंगिक भेदभाव, रूढ़ियों, अंधविश्वास, असमानताओं व अत्याचार से मुक्त नहीं हो सकी हैं। इस संदर्भ में फ्रांसीसी लेखका 'सीमोन द बोउवार' का यह कथन उल्लेखनीय है कि दृ "दरअसल स्त्रियों के साथ सबसे बड़ी त्रासदी उनका स्त्री होना है। नई सामाजिक व्यवस्था में उनका अस्तित्व एक ऐसी स्त्री के रूप में प्रचलित हुआ कि उन्हें अपने आपको 'अन्यनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ' मान लेने के लिए बाध्य होना पड़ा।"[2]

आज भी इक्कीसवीं सदी में भी खास परिवर्तन नहीं हुआ है अपितु आज भी एक स्त्री को वस्तुनिष्ठ या भोगवादी नजरिए से ही देखा जाता है। यह बात अलग है कि आज दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श के साथ–साथ स्त्री विमर्श सबसे पहले केंद्र में आया, जिसकी वजह से स्त्री मुद्दों पर पहले की अपेक्षा अब ज्यादा गौर किया जा रहा है। आधी आबादी के इन्हीं ज्वलंत मुद्दों की परिधि को दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे जी ने अपना विषय बनाया है। उनका यह उपन्यास 'वह लड़की' वर्तमान औपनिवेशिक मानसिकता वाले समाज में स्वयं को स्त्री का भाग्यविधाता तथा निर्यता मानने वाली वर्चस्ववादी सोच से टकराती हुई मुक्तकामी चेतना से परिपूर्ण एक नये युग का आह्वान करने वाली परिवर्तनकारी सोच का वाहक है। अम्बेडकरवादी विचारों की पृष्ठभूमि में रचित तथा दलित परिवेश से उपजे इस उपन्यास के सारे पात्र (मुख्यतः स्त्री पात्र) संघर्षमयी ऊर्जा के आलोक में, स्त्री प्रश्नों को पूरी प्रखरता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

इस उपन्यास का आरम्भ 'शम्मा' नाम की स्त्री पात्र से होता है। शैला इस उपन्यास की मुख्य पात्र है। उसका का विवाह मात्र 15 वर्ष की अवस्था में ही कर दिया जाता है। शादी के बाद ही वह अपने सास और पति द्वारा हिंसा का शिकार होती हैं। उसे शारीरिक और मानसिक प्रताड़ना दी जाती है जिसके कारण वह अंदर तक टूट जाती है। शम्मा पर उसके ससुराल में अनेक अत्याचार किए जाते हैं। वह अपनी ममेरी बहन शैला को बताती है कि–

जीजी मेरी सास बड़ी जल्लाद है। हर दिन किसी न किसी बात पर मुझे मारती–पीटती है। जब उसे बहुत गुस्सा आता है, तब अपने बेटे से कहती है– इसके हाथ पैर बांध दें और और इसको खूब पीट... कई बार मेरी सास मेरे हाथ पकड़ के रखती है और मेरे भरतार मुझे लात घूसों से मारते हैं।"[3]

शम्मा की सास और पति उसे तरह तरह की यातनाएं देते हैं जिससे गर्भावस्था में लगातार बीमार रहने के कारण अंततः उसकी मृत्यु हो जाती है।

कहा जाता है कि एक स्त्री ही एक स्त्री का दर्द समझती है। परन्तु यहां पर यह पंक्ति यथासंभव विपरीत होती हुई नजर आती है अपितु इसके उल्टा ही देखने को मिलता है– स्त्री ही एक स्त्री की सबसे बड़ी दुश्मन है, वह उसके पथ में कांटे बिछाकर उसकी सफलता में अवरोधक बन उसको पीछे ढकेलने का भरसक प्रयास करती है। उसकी आंखों में बसे सभी ख्वाबों को इक पल में ही तोड़ दिया जाता हैं।

मध्यप्रदेश के छोटे से गांव भमेड़ी के भीमपुरा मोहल्ले की दलित बस्ती में जन्मी शैला इस उपन्यास की कथावस्तु

के केंद्र में है। उनके इर्द– गिर्द अन्य स्त्री पात्र श्यामा, नमिता, ममता, निशा, रेणुका, मोनी, बबली, प्रिया, निम्मी, और आभा इस रचना को विस्तार देते हैं। मुख्य पात्र शैला जो स्वयं अपने पति के अत्याचारों से पीड़ित है, वह बारी–बारी से बाकी सभी स्त्री पात्रों से कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में जुड़ी हैं। शैला स्वयं यातनाओं का दंश झेल रही अपनी सहजात स्त्री चरित्रों की एकमात्र प्रवक्ता है। वह स्वयं अपने पति के अन्यायपूर्ण व्यवहार व अत्याचारों से कहीं न कहीं घरेलू हिंसा का शिकार है। लेकिन एक समय ऐसा भी आता है जब वह अपना मुख्य विरोध दर्ज कराती है तथा पुरुष की निरंकुशता पर करारा जबाब देती हुई कहती है–

"आज से मैं स्वतंत्र हूं। तुमसे मेरा कोई संबंध नहीं है। मैं क्यूं सुनूं तुम्हारी ऐसी बातें। क्यों सहूं तुम्हारा आतंक? अब मुझे तुम्हारे साथ नहीं रहना है। आज ही सब बात का फैसला होगा।"[4] वास्तव में शैला इस पूरे उपन्यास की सबसे प्रगतिशील जुझारू शिक्षित तथा आत्मचेतस पात्र है।

वहीं दूसरी ओर नमिता के द्वारा लेखिका ने नव– विवाहित जीवन में एक स्त्री के मन में उठने वाली उमंग तथा अपने जीवनसाथी से प्रेम तथा एक–दूसरे के प्रति मन में आदर व सम्मान की चाह रखती है परन्तु विवाह की प्रथम रात्रि को ही नमिता को सब कुछ साफ–साफ नजर आ जाता है। नमिता का पति नमिता से पूछता है–

"हाँ तो मुझे सच–सच बताओ, गांव में तुम्हारी किस–किस से यारी थी? कितने यार हैं गांव में तेरे? और वह तेरा जीजा?... जीजा के साथ कब से है तू?"[5]

क्यों? हर बार एक स्त्री को ही अपनी पवित्रता की सफाई देनी पड़ती है? क्यों ये समाज उसे पवित्रता की तराजू में नाप–तोल कर देखता है। यहां तक कि भगवान राम ने भी माता सीता की अग्नि परीक्षा ली उसके बाद भी उन्हें स्वीकार नहीं किया। ये परीक्षा है कि थमने का नाम ही नहीं ले रही आज भी यह समाज एक स्त्री की समय–समय पर परीक्षा लेता रहता है कहीं उसके चरित्र पर सवाल उठाए जाते हैं, तो कहीं एक लड़की को शिक्षा देने से रोक दिया जाता है ये बोलकर कि ज्यादा पढ़ जाएगी तो सवाल करेगी, गलत होने पर विरोध करेगी। इस पितृसत्तात्मक तथा ब्राह्मणवादी व्यवस्था वाले समाज की जड़े बहुत गहरी तक जमी हुई हैं जिसे उखाड़ने के लिए हम सभी को साथ मिलकर संघर्ष करना होगा। यह दोगला समाज एक लड़की का बलात्कार तो स्वीकार कर सकता है उसमें भी स्थिति ये है कि उसे लड़की में ही दोष नजर आएगा, लड़के में नहीं। भारतीय समाज में पुरुष चाहे दस विवाह कर ले तब भी उस पर कोई आपत्ति नहीं उठाता वहीं पितृसत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ जाकर अगर कोई स्त्री अपनी पसंद के साथी से अंतर्जातीय विवाह कर लेती है या दूसरा विवाह करती है तो यह पितृसत्तात्मक समाजिक व्यवस्था उसे कभी स्वीकार नहीं करती। स्त्री का उसके समाज से बहिष्कार कर दिया जाता है, यहां तक कि इस दोगले समाज तथा दकियानूसी सोच रखने वाले लोगों के डर से मां–बाप तक अपनी बेटी का साथ छोड़ देते हैं। शैला इसी पुरूषवादी सोच का विरोध करती हुई कहती है–

"बस–बस रहने दो। ये कौन से न्याय की बात है? आदमी दस विवाह कर सकता है,औरत क्यूं नहीं कर सकती है? पति दुष्ट अत्याचारी है तो उसे छोड़ना पाप की बात कैसे होगी? साथ ही वह तथा धर्म में निहित रूढ़िवादी परंपराओं का भी विरोध करती है और कहती है–"परम्परा?कौन सी परम्परा?कौन सा धर्म?"[6]

एक स्त्री रूढ़िवादी परंपराओं से इतना ग्रसित हो जाती है वह न चाहकर भी धर्म, अंधविश्वास, परंपराओं में विश्वास करने लगती है उसे अपने दुःख में भी सुख दिखाई देता है। शम्मा के 5 बेटियों को जन्म देने के बाद भी वह पुत्र–प्राप्ति की चाह न चाहकर भी रखती है।

"अभी तो वे कहते हैं– लड़कियां ही लड़कियां पैदा की हैं हमें बेटा चाहिए 'अब मैं बेटा कहां से ला दूं'? इसलिए इतनी मारपीट करते हैं। अगली बार बेटा हो जायेगा, तो शायद मेरा जीवन सुधर जाए।" [7]

एक स्त्री को अपने ससुराल में हो रही घरेलू हिंसा के कारण कई बार उसे अपने प्राणों तक को न्यौछावर करना पड़ता हैं, और शैला घर के वारिस के चक्कर में बीमार पड़ जाती है जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। शैला जैसी न जाने कितनी ही स्त्रियां होगी जिन्हें अपने प्राणों की आहुति इस कारण देनी पड़ती है और तब यह सामाजिक–व्यवस्था रूढ़िवादी परंपराओं का सहारा लिये मूक हो जाता है और उस स्त्री के भाग्य में यहीं लिखा था कहकर जैसे कुछ हुआ ही नहीं सब कुछ सामान्य हो जाता है। इस प्रसंग में चौथीराम यादव जी का यह कथन उचित प्रतीत होता है, जहाँ वे कहते हैं– "विवाह नारी पराधीनता का अमोघ बंधन है और कर्तव्य बोझ से दबी अधिकार वंचित नारी, यौन शुचिता और पतिव्रता के नाम पर बार–बार छली जाती रही है।"[8]

उपन्यास में रेणुका के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि किस तरह महिलाओं का अपने ही घर में

शारीरिक शोषण किया जाता है। आधुनिकता के इस दौर में आज भी कितनी ही स्त्रियां अपने ही घर में अपने परिचितों व आस–पड़ोस के पुरुषों द्वारा शारीरिक व यौन हिंसा का शिकार होती हैं। रेणुका का ससुर तथा जेठ ही उस पर कुदृष्टि डालते हैं व उसका शारीरिक शोषण करने का प्रयास करते हैं। न जाने कितनी ही रेणुका जैसी स्त्रियाँ आज भी अपने ही घर या काम करने वाले दफ्तर में अपने बॉस के द्वारा शारीरिक व मानसिक शोषण का शिकार होती होंगी। ये स्त्रियों जब विरोध करती हैं तो उनकी आवाज को वहीं दवा दिया जाता है तथा उनको भयादोहन (भय दिखाकर किसी से अनुचित लाभ प्राप्त करना, किया जाता है।

उपन्यास के तथ्यों को जोड़ते हुए भारत में घरेलू हिंसा के आंकड़े क्या कहते हैं, इस पर एक नजर

भारत में National Family Health Survey (NFHS) – रिपोर्ट के अनुसार 1.30 प्रतिशत महिलाएं ही घरेलू हिंसा का शिकार हुई हैं। "नेशनल फेमिली हैल्थ सर्वे (NFHS–5) में कई चौंकाने वाले खुलासे सामने आएं हैं सर्वे के मुताबिक 18 से 49 साल की लगभग 30 फीसदी महिलाएं ऐसी हैं, जिन्हें 15 साल की उम्र के बाद शारीरिक हिंसा का सामना किसी न किसी रूप में करना पड़ा है। 6 फीसदी महिलाओं को जिंदगी में कभी न कभी यौन हिंसा झेलनी पड़ी। लेकिन महज 14 फीसदी महिलाएं ही ऐसी रहीं हैं, जिन्होंने अपने साथ हुई शारीरिक या यौन हिंसा के बारे में बताया है। वहीं 18 से 49 की साल 32 फीसदी शादीशुदा महिलाओं को अपने पति की तरफ से शारीरिक, मानसिक या यौन हिंसा का शिकार होना पड़ता है, जबकि 4:पुरुष ही ऐसे रहें हैं, जिन्होंने कभी न कभी घरेलू हिंसा का सामना किया हो। सर्वे के मुताबिक कभी स्कूल न जाने वाली 40 फीसदी महिलाओं को शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ता है।"[9]

वहीं कुछ लोग समाज सेवा तथा स्त्री विमर्श पर चर्चा तो करते हैं परन्तु वे अपने ही घर में अपनी बहू–बेटियों पर तमाम तरह के प्रतिबंध लगाकर उनका शोषण तथा उन पर अत्याचार करने से बाज तक नहीं आते। इस समाज को पितृसत्तात्मक व ब्राह्मणवादी व्यवस्था की कठोरता, विषमता तथा रूढ़िवादी परंपराओं को नष्ट कर, नारी जाति के उत्थान के बारे में सोचने का विषय है। शैला जब भी स्त्रियों को शोषित होते हुए देखती है तो उसका हृदय आक्रोश से भर जाता है। वह नारी मुक्ति आंदोलनों के द्वारा स्त्री शोषण तथा उन पर हो रहे अत्याचार का विरोध कर नारी जाग्रति का संदेश देती है। वह अपने भाषण में महिलाओं का हौंसला बढ़ाने के लिए यह बात आवेश के साथ कहती है–"हम भारत देश की नारी हैं हम फूल नहीं चिंगारी हैं।"[10]

शैला और निशा अखिल भारतीय महिला जाग्रति नामक संस्था जुड़ी हुई हैं। इस संस्था के द्वारा वे अखिल भारतीय स्तर पर काम करती हैं और देश के सभी प्रांतों की दलित पिछड़ी महिलाओं को अपनी संस्था से जोड़कर लाभान्वित करती हैं। अभावग्रस्त, मजदूर, गरीब, अछूत परिवार की बेटियों को कितनी यातनाएं सहनी पड़ती है। इन सारी जटिल समस्याओं का दस्तावेज यह उपन्यास है। इस उपन्यास की ज्यादातर पात्र दोहरा दंश झेलतीं हैं पहला यह कि वह एक स्त्री है, दूसरा यह कि सभी दलित स्त्रियां हैं। निशा दलित, शोषित, पीड़ित हर महिला की सहायता के लिए हमेशा तत्पर रहती है, वह पीड़ित महिलाओं को अपनी संस्था में कोई न कोई काम दिलाने का प्रयास अवश्य करती है। समाज में एक स्त्री के लिए उसकी स्वतंत्रता के साथ–साथ उसकी आर्थिक स्वतंत्रता उसके जीवन को एक नया मोड़ देती है। जब वह स्वतंत्र होगी तो अपने सही–गलत का निर्णय स्वयं ले सकेगी। इस सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए स्त्री को स्वयं बदलना होगा, वे बदलेगी तभी इस पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता तथा रूढ़िवादी परंपरा जैसे ढकोसलों से लड़ कर अपनी सत्ता (स्त्री अस्मिता) पर विजय पा सकेंगी। जहाँ एक स्त्री की जीत बाकी सभी स्त्रियों के लिए प्रेरणा बनेंगी। "जागरुक नारी ही, नारी का कल्याण सफल रूप में कर सकती है।"[11] मेरा यही कहना है कि हर स्त्री स्वावलंबी व आत्मनिर्भर हो, उसे अपनी अस्मिता की पहचान हो ताकि वह अपनी जिंदगी के फैंसले खुद कर एक खूबसूरत जिंदगी जीने की अधिकारी बने।

निष्कर्ष

समग्रतः उपन्यास के सभी पन्नों पर नजर डालते हुए कहा जा सकता है कि 'वह लड़की' उपन्यास नये मुद्दों को उठाता है। स्त्री शोषण पहले भी होता था आज भी हो रहा है, परंतु आज का समय बदल चुका है। अब नयी पीढ़ी की लड़कियां शिक्षित होकर स्वावलंबी बन रही हैं और समाज के मुँह पर तमाचा मार उनसे कह रही हैं कि हम किसी से कम नहीं हैं, मोनी, निम्मी, बबली, प्रिया इक्कीसवीं सदी की जाग्रत युवा पीढ़ी की लड़कियां हैं, वे स्त्री–पुरुष असमानता तथा लिंग भेद को समाप्त करने का कदम उठाती हैं। ममता की बेटी प्रिया डॉक्टर बनने के बाद शोषित पीड़ित महिलाओं

की मदद करके समाज–सेवा का कार्य करना चाहती है। ममता की बेटी निम्मी विवाह के बाद पति के साथ अपने माता–पिता के घर में रहने की शर्त रखकर सामजिक परंपराओं को बदलने की बात कहती है। शम्मा की बेटी बबली 'गुप्ता परिवार' के विष्णु गुप्ता के साथ विवाह करके, अंनर्जातीय विवाह के द्वारा वर्ण–भेद, जातिभेद, पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देती है। शैला की बेटी मोनी स्वयं माँ बनने की अपेक्षा, स्लम बस्ती की गरीब और उपेक्षित बच्ची को दत्तक पुत्री के रूप में लेकर उसका उत्तम भविष्य बनाने का कार्य करती है। प्रस्तुत उपन्यास स्त्री प्रश्नों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में तटस्थ दृष्टि से नये दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत करता है। आज की दलित स्त्री अब शिक्षित स्वावलंबी होकर नया समाज गढ़ना चाहती है। वह पुराने मूल्यों से संघर्ष कर, समता के आधार पर स्त्री–पुरुष के भेद को मिटाकर अम्बेडकरवादी विचारधारा से पूर्ण सम्यक समाज का सपना देखती हैं। यह केवल स्त्री की दृष्टि से ही नहीं बल्कि लोकतांत्रिक राष्ट्र के लिए समृद्ध करने वाला विचार है। इसी विचार का विस्तार प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है।

संदर्भ ग्रंथ

1. विकिपीडिया, घरेलू हिंसा महिला संरक्षण अधिनियम (2005)
2. सीमोन द बोउवार, स्त्री उपेक्षिता, प्रस्तुत : डॉ प्रभा खेतान, हिन्दी पाकेट बुक्स
3. सुशीला टाकभौरे, वह लड़की, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या–25
4. सुशीला टाकभौरे, वह लड़की, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017,पृष्ठ संख्या–18
5. सुशीला टाकभौरे,वह लड़की, वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली, 2017, पृष्ठ संख्या –37
6. वही, पृष्ठ संख्या –24
7. वही, पृषठ संख्या –26
8. चौथीराम यादव, आलेख, प्रदीप कुमार ठाकुर, पत्रिका, कविकुंभ।
9. डीएनए हिन्दी बेव डेस्क, घरेलू हिंसा के आंकड़े, 8 डंल 2022, 10:18
10. वही, पृष्ठ संख्या–42
11. वही, पृष्ठ संख्या–45

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

दिल्ली में क्लब संस्कृति का इतिहास : औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक पहचान तक

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी,
इतिहास विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

यह शोध लेख भारत में क्लब संस्कृति के विकास, उसकी सामाजिक–सांस्कृतिक भूमिका और औपनिवेशिक सत्ता संरचना में उसकी स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। ब्रिटिश शासनकाल में स्थापित क्लब जैसे दिल्ली जिमखाना क्लब, रोशनआरा क्लब और बंगाली क्लब, ब्रिटिश समाज के सामाजिक जीवन के केंद्र थे, जहाँ "श्वेत संस्कृति" को सुरक्षित रखा गया और भारतीय समाज से दूरी बनाए रखी गई। इन क्लबों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी मानसिकता, नस्लीय भेदभाव और वर्गीय श्रेष्ठता की भावना को पुष्ट किया। परंतु स्वतंत्रता के बाद यही क्लब भारतीय अभिजात्य और मध्यमवर्ग के सांस्कृतिक, खेलकूद और सामाजिक मेलजोल के केंद्र बन गए। इस लेख में क्लबों के स्थापत्य, सदस्यता, गतिविधियों और उनके सांस्कृतिक प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन दर्शाता है कि औपनिवेशिक क्लब केवल मनोरंजन स्थल नहीं थे, बल्कि वे सत्ता, वर्ग और संस्कृति के जटिल संबंधों के प्रतीक थे– जो बाद में भारतीय समाज के सांस्कृतिक संस्थानों में परिवर्तित हो गए।

मुख्य शब्द – ब्रिटिश भारत, क्लब संस्कृति, औपनिवेशिकता, दिल्ली जिमखाना क्लब, रोशनआरा क्लब, बंगाली क्लब, खेल संस्कृति, अभिजात्य समाज, औपनिवेशिक सार्वजनिक क्षेत्र, स्वतंत्रता–उत्तर भारत।

ब्रिटिश कालीन भारत में क्लब केवल मनोरंजन स्थल नहीं थेय वे सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक शक्ति–संरचना का प्रतिबिंब थे। क्लब, कॉफी हाउस, गोल्फ कोर्स, पार्क और अन्य सामाजिक स्थलों के माध्यम से ब्रिटिश अधिकारी अपने यूरोपीय जीवनशैली को औपनिवेशिक भारत में पुनर्स्थापित करते थे। इन क्लबों ने न केवल ब्रिटिश समुदाय के लिए एक 'घर–जैसा' वातावरण प्रदान किया, बल्कि भारतीय समाज से दूरी बनाए रखने का साधन भी बन गए।

औपनिवेशिक क्लबों की पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक स्रोतों से यह ज्ञात होता है कि ब्रिटिश समाज में क्लब जीवन का अत्यधिक महत्त्व था। लियोनार्ड वूल्फ ने क्लब को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का प्रतीक बताया कृ उसकी विशिष्टता, श्रेष्ठता और पृथकता का केंद्र। जॉर्ज ऑरवेल ने ठनतउमेम क्ंले में लिखा कि यूरोपीय क्लब किसी भी भारतीय नगर में ब्रिटिश सत्ता का वास्तविक गढ़ थे। वैलेन्टाइन चिरोल के अनुसार, बीसवीं शताब्दी के आरंभ में 'भारतीय असंतोष' के दौर में क्लबों की नस्लीय विशिष्टता ने यह प्रश्न खड़ा किया कि औपनिवेशिक नियंत्रण में ये यूरोपीय संस्थाएँ कैसे कार्य करती थीं। क्लबों की संरचना यूरोपीय "बुर्जुआ सार्वजनिक क्षेत्र" (Bourgeois Public Sphere) से भिन्न थी। दक्षिण एशियाई इतिहासलेख के अनुसार, ये क्लब औपनिवेशिक समाज में "अर्द्ध–सार्वजनिक" क्षेत्र का निर्माण करते थे– जहाँ यूरोपीय समाज स्वयं को स्थानीय जनता से अलग रखते हुए भी सामाजिकता का प्रदर्शन करता था।

क्लब संस्कृति और सामाजिक संरचना

'ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी' के अनुसार, क्लब एक ऐसा संगठन है जो मुख्यतः सामाजिक उद्देश्यों के लिए गठित किया जाता है और जिसके लिए सदस्यों हेतु एक इमारत या निर्धारित स्थान होता है। ब्रिटिश क्लब संस्कृति की उत्पत्ति सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय कॉफी हाउसों से मानी जाती है। भारत में ब्रिटिश अधिकारियों ने अपने लिए ऐसे ही स्थान बनाए जहाँ वे यूरोपीय संस्कृति, खेलकूद और सामाजिक मेलजोल के माध्यम से अपनेपन का अनुभव कर सकें। क्लबों में स्त्रियों की उपस्थिति प्रारंभ में वर्जित थी, पर उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक कुछ क्लबों ने सदस्यों की पत्नियों को प्रवेश देना आरंभ किया। क्लबों ने न केवल ब्रिटिशों के पारिवारिक जीवन को "स्वदेशी" जीवन से अलग बनाए रखा, बल्कि एक विशिष्ट "एंग्लो–इंडियन" समुदाय की रचना में भी भूमिका निभाई।

दिल्ली जिमखाना क्लब : औपनिवेशिक अभिजात्य का प्रतीक

1913 में इम्पीरियल दिल्ली जिमखाना क्लब की स्थापना शिमला में हुई। इसके पहले अध्यक्ष सर हार्कोर्ट बटलर थे और वायसरॉय लॉर्ड हार्डिंग इसके संरक्षक बने। क्लब का निर्माण सिविल लाइंस क्षेत्र में किया गया, जहाँ ब्रिटिश अधिकारियों और सैन्य अधिकारियों के लिए खेल, भोजन और मनोरंजन की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। "जिमखाना" शब्द एक एंग्लो–इंडियन शब्द था, जिसका अर्थ था–कौशल–आधारित प्रतियोगिता का स्थल। यहाँ केवल श्वेत लोगों को सदस्यता दी जाती थी। भारतीयों में से केवल दो वर्गों को प्रवेश था– (1) सेवक वर्ग (वेटर, सफाईकर्मी, चालक आदि), और (2) राजाओं, रियासतों और जमींदारों को, जिन्होंने आर्थिक रूप से योगदान दिया। क्लब के भवन का निर्माण रॉबर्ट टी. रसेल ने किया, जो कनॉट प्लेस और टीनमूर्ति भवन के वास्तुकार भी थे। क्लब की डिजाइन सादगी और वैभव का मिश्रण थी– विशाल हरियाली, टेनिस कोर्ट, डाइनिंग हॉल और बाद में बना "लेडी विलिंगडन स्विमिंग बाथ" इसका हिस्सा बने। 1928 में महाराजा बीकानेर, महाराजा रतलाम और न्यायमूर्ति एस.आर. दास पहले भारतीय सदस्य बने। क्लब का वातावरण ब्रिटिशों की श्रेष्ठता की भावना से ओतप्रोत था। स्वतंत्रता से पूर्व तक भारतीय अधिकारियों को भी बराबरी का दर्जा नहीं मिलता था। 1947 के बाद क्लब का नाम "दिल्ली जिमखाना क्लब" रखा गया और सर उषा नाथ सेन इसके पहले भारतीय अध्यक्ष बने। इसके साथ ही नस्लीय भेदभाव और औपनिवेशिक अहंकार का अंत हुआ।

रोशनआरा क्लब : खेल और संस्कृति का केंद्र

रोशनआरा क्लब की स्थापना 15 अगस्त 1922 को मुगल सम्राट शाहजहाँ की पुत्री बेगम रोशनआरा की स्मृति में की गई। उत्तर दिल्ली का यह क्लब 22 एकड़ में फैला हुआ था और इसकी सुंदरता, हरियाली तथा स्थापत्य के कारण यह ब्रिटिश और भारतीय दोनों अभिजात वर्ग का प्रिय स्थान बन गया। यहाँ खेल, संगीत और सामाजिक कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित होते थे। यही वह स्थान था जहाँ भारतीय क्रिकेट नियंत्रण बोर्ड (BCCI) की नींव रखी गई। ब्रिटिश और भारतीय क्रिकेट प्रेमियों ने मिलकर राष्ट्रीय क्रिकेट संगठन की स्थापना का निर्णय यहीं लिया। स्वतंत्रता–उत्तर काल में, जवाहरलाल नेहरू, डॉ. राजेंद्र प्रसाद और वी.वी. गिरि जैसे नेता यहाँ आते थे। क्लब ने धीरे–धीरे अपने दरवाजे भारतीय समाज के सभी तबकों के लिए खोले और यह दिल्ली का प्रतिष्ठित सामाजिक स्थल बन गया।

बंगाली क्लब : सांस्कृतिक पुनर्जागरण का मंच

राजधानी बनने के बाद बड़ी संख्या में बंगाली अधिकारी, शिक्षक, कलाकार और चिकित्सक दिल्ली आए। उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए 29 मई 1925 को बंगाली क्लब की स्थापना की गई। यह क्लब बंगाली साहित्य, संगीत और नाट्यकला का केंद्र बना। रवींद्रनाथ ठाकुर की नाट्य रचनाएँ बाल्मीकि–प्रतिभा और फाल्गुनी यहाँ प्रस्तुत की गईं। स्वयं ठाकुर ने क्लब का दौरा किया और बंगाली समुदाय को आशीर्वाद दिया। क्लब ने दुर्गापूजा उत्सव को दिल्ली की सांस्कृतिक पहचान बनाया। नेताजी सुभाषचंद्र बोस 1935 में यहाँ के मुख्य अतिथि रहे। बाद में क्लब ने साहित्यिक गोष्ठियों, पुस्तकालय और कला प्रदर्शनी जैसे कार्य आरंभ किए।

खेल क्लब और खेल संस्कृति का विकास

ब्रिटिश शासनकाल में आधुनिक खेलों का प्रसार हुआ। क्रिकेट, हॉकी, फुटबॉल, टेनिस और गोल्फ औपनिवेशिक अभिजात वर्ग के मनोरंजन का माध्यम बने। परन्तु धीरे–धीरे भारतीयों ने भी इन खेलों में अपनी जगह बनाई। 1920 और

1930 के दशकों में दिल्ली में दिल्ली एथलेटिक क्लब, दिल्ली महिला हॉकी क्लब, दिल्ली बोट क्लब और दिल्ली गोल्फ क्लब जैसे संस्थान स्थापित हुए। खेल प्रतियोगिताएँ और टूर्नामेंट सामाजिक आयोजनों का अंग बन गए। भारतीय हॉकी ने 1928 से 1956 तक लगातार छह ओलंपिक स्वर्ण पदक जीतकर विश्व में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। इस सफलता के पीछे क्लबों की खेल–संस्कृति का बड़ा योगदान था।

स्वतंत्रता के बाद का परिवर्तन

1947 के बाद जब भारत स्वतंत्र हुआ, तब क्लबों की प्रकृति भी बदली। अब वे केवल यूरोपीय या अभिजात वर्ग के केंद्र नहीं रहे, बल्कि भारतीय समाज के विविध वर्गों के लिए खुले। नस्लीय भेदभाव समाप्त हुआ, सदस्यता बढ़ाई गई और भारतीय अधिकारियों को समान दर्जा मिला। दिल्ली जिमखाना क्लब, रोशनआरा क्लब और बंगाली क्लब आज भी अपने ऐतिहासिक गौरव और सांस्कृतिक विविधता के कारण महत्वपूर्ण हैं। इन संस्थाओं ने औपनिवेशिक अतीत को आधुनिक भारत की लोकतांत्रिक चेतना से जोड़ने का कार्य किया है।

निष्कर्ष

ब्रिटिश कालीन क्लब भारत में सामाजिक विभाजन, सत्ता और संस्कृति की अभिव्यक्ति थे। वे यूरोपीय जीवनशैली के प्रतीक बने, पर स्वतंत्रता के बाद वही संस्थाएँ भारतीय आधुनिकता की संवाहक बन गईं।आज ये क्लब इतिहास, संस्कृति और खेल के ऐसे केंद्र हैं जो हमें स्मरण कराते हैं कि औपनिवेशिक विरासत को केवल आलोचना से नहीं, बल्कि पुनर्परिभाषा और समावेश से ही सार्थक बनाया जा सकता है। ब्रिटिश कालीन क्लब भारत में सत्ता, नस्ल और संस्कृति के अंतर्संबंधों का मूर्त रूप थे। उन्होंने ब्रिटिश समाज को औपनिवेशिक वातावरण में अपनी पहचान बनाए रखने का साधन दिया, किंतु भारतीयों के लिए यह स्थान सामाजिक अलगाव और असमानता का प्रतीक बने रहे। स्वतंत्रता के बाद इन क्लबों ने अपने स्वरूप को बदला– अब वे भारतीय सामाजिक जीवन के अंग हैं, जहाँ परंपरा और आधुनिकता का संगम दिखाई देता है। क्लब अब केवल मनोरंजन का स्थल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक संवाद, खेल और सामुदायिक जुड़ाव के केंद्र बन गए हैं। इस लेख के माध्यम से स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश भारत के क्लब केवल ऐतिहासिक अवशेष नहीं, बल्कि वे ऐसे जीवंत सामाजिक स्थल हैं जिन्होंने सत्ता, संस्कृति और वर्गीय संरचना के बदलते रूपों को साक्ष्य के रूप में सहेजा है। आज वे भारतीय समाज की बहुलता, सांस्कृतिक संवाद और खेल भावना के प्रतीक बन चुके हैं।

संदर्भ सूची

1. वूल्फ, लियोनार्ड. जंगल में गाँव और अन्य रचनाएँ. लंदन : हॉगार्थ प्रेस, 1913.
2. ऑरवेल, जॉर्ज. बर्मा के दिन. लंदन : विक्टर गोलांज, 1934.
3. चिरोल, वैलेंटाइन. भारतीय अशांति. लंदन : मैकमिलन, 1910.
4. हैबरमास, युर्गन. सार्वजनिक क्षेत्र का संरचनात्मक रूपांतरण. कैम्ब्रिज : पॉलिटी प्रेस, 1989.
5. सिन्हा, मृणालिनी. औपनिवेशिक पौरुष : 'पुरुषत्ववान अंग्रेज' और 'स्त्रैण बंगाली' उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में. मैनचेस्टर : मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस, 1995.
6. गुहा, रामचंद्र. एक विदेशी मैदान का कोना : एक ब्रिटिश खेल का भारतीय इतिहास. नई दिल्ली : पिकाडोर इंडिया, 2002.
7. रोजेक, क्रिस. अवकाश सिद्धांतः सिद्धांत और व्यवहार. बेसिंगस्टोक : पेलग्रेव मैकमिलन, 2005.
8. दिल्ली जिमखाना क्लब अभिलेख. संविधान ज्ञापन और क्लब के अभिलेख (1913–1947).
9. रोशनारा क्लब अभिलेख, दिल्ली अभिलेखागार (1922–1947).
10. बंगाली क्लब, दिल्ली. स्थापना की 50वीं वर्षगांठ पर स्मारक स्मृति–संग्रह (1925–1975).
11. भारतीय ओलंपिक संघ. भारत के खेलों और क्रीड़ाओं का इतिहास. नई दिल्ली : आईओए पब्लिकेशंस, 1960.

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

तकनीक डिजिटल युग और मानव मूल्य

कु. अंजली राजकुमार गुप्ता
(शोधार्थी), समाजशास्त्र विभाग,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश

आधुनिक समय में आधुनिकता व पश्चिमीकरण के प्रभाव के कारण वर्तमान समाज के परिदृश्य में परिवर्तन आए है। जहाँ गैजेट्स ने मानवीय जीवन को सुलभता प्रदान की है वही इन्हीं गैजेट्स के कारणवश साइबर क्राइम, अपराधों की गतिविधियाँ बढ़ी है। किन्तु वर्तमान कानून में इन अपराधों से संबंधित नए नियमों, प्रावधानों के कारण अपराध सम्बंधी आंकड़ों में गिरावट आयी है। वर्तमान समाज में अपने मूल्यों के साथ आधुनिकता का संगम उचित है। बिना मूल्य के समाज की कल्पना वंचित है।

मुख्य शब्द : साइबर अपराध, नैतिकता, पश्चिमीकरण, समाजिक मूल्य।

प्रस्तावना

वर्तमान युग में बदलता मानवीय जीवन समय के साथ आधुनिकता की गहरायी में समावेशित होता जा रहा है। आज मानवीय मूल्यों को संरक्षित करके संतुलन बनाना एक महत्वपूर्ण चुनौती हैं। जिसके कारण अलगाव, निर्भरता, संबंधों में बदलाव, मानसिक व समाजिक समस्यायें जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो रही है।

देखा जाए तो तकनीक व डिजिटल युग एक–दूसरे के पूरक है। जहाँ एक मशीन व प्रक्रियाओं की क्रियाकलाप विधि है तो वही दूसरी डिजिटल जाल का समावेश है। दोनों ही प्रणाली में व्यक्ति व समाज को लाभ व हानि के दायरे में रहना पड़ता है। यह विकास व व्यवसाय के नए मॉडल प्रस्तुत डिजिटल प्रणाली क्रिया इंटरनेट और सूचना का विशाल समावेश है। यह बाइनरी कोड 0 व 1 पर कार्य करता है। यह पारम्परिक मीडिया के विपरीत तीव्र गति से सेवा व सूचना का समावेशित संग्रह है। वही अगर देखा जाए तो तकनीक व डिजिटल युग बाहरी दुनिया है तो वही मानव मूल्य समाज को नैतिकता, शिष्टता का बोध कराती है। इसके बिना व्यक्ति और समाज अर्थहीन है। मानवीय जीवन में एक सुनिश्चित व सुलभ डिजिटल युग जागरूकता व नियमों की प्रणाली से संभव है।

आज डिजिटल युग व तकनीक हमारे आधुनिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। स्मार्टफोन, लैपटाप, ए. आई. से लेकर सोशल मीडिया और ऑनलाइन शिक्षा व व्यवसाय, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, आटोमेशन, बिग डेटा जैसी तकनीकी सुविधा मानवीय जीवन में प्रत्यक्ष रूप से हस्तक्षेप कर रही है। आज व्यक्ति के जीवन में समाजिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है। डिजिटल दुनिया संचार हेतु वैश्विक संपर्क स्थापित कर रहा है। वास्तविकता में यह व्यक्तिगत रूप से एक–दूसरे को दूर भी कर रहा हैं। जिससे आज लोगों में भावनात्मक जुडाव कम हो रहा है। तकनीकी व डिजिटल प्लेटफार्म समाजिक व्यवस्था स्थितियों में गिरावट आ रही है। जो समाज को विभाजन व तनाव की ओर ले जा रहा है।

आज समाज में साइबर सुरक्षा, डिजिटल साक्षरता, डिजिटल लेनदेन तथा मानसिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूक करने की आवश्यकता है जिससे तकनीक के नैतिक उपयोग को सुनिश्चित किया जा सकें।

हाल में ही ब्राजील में हुई बीआरआईसीएस संस्कृति मंत्रियों की बैठक में भारत ने नैतिक एआई का मुद्दा उठाया।

तकनीक को सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों से जोड़ने की मांग की। भारत ऐसा सांस्कृतिक इकोसिस्टम बनाने की अपील की जो विविधता मानवता और साझा मूल्यों को प्राथमिकता दें।

दुनिया को अब नैतिक एआई की ओर बढ़ना होगा जो सिर्फ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नहीं बल्कि सांस्कृतिक और मानवीय मूल्यों के नजरिये से भी काम कर सकें।

उद्देश्य

1. मानवीय संबंधों का मजबूत बनाना।
2. शारीरिक स्वास्थ्य व मानसिक स्थिति।
3. पारदर्शिता और जिम्मेदारी वातावरण।
4. नैतिक स्तर पर विकास।
5. समाज को सशक्त बनाना।
6. सामुदायिक वातावरण बनाना।
7. शिक्षा और सेवाओं तक पहुंच।
8. समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और व्यावसायिक गतिविधियां।
9. तकनीकी सुविधा मानवता की सेवा में अग्रसर।

तकनीक, डिजिटल युग और मानव मूल्य का महत्व

1. नवाचार व प्रगति को बढावा।
2. मानवीय मूल्यों को बनाए रखना।
3. संस्कृति व सभ्यता में योगदान।
4. डिजिटल साक्षरता और मानवीय कौशल को विकसित करना।
5. नैतिक व समाजिक आचरण को निर्देशित करना।
6. भौगोलिक व समाजिक दूरी सीमित करना।
7. शारीरिक व मानसिक कल्याण में योगदान।
8. वैश्विक पैमाने पर सहयोग।
9. देशभर में संचार और कनेक्टीविटी में सुधार।
10. डिजिटल दुनिया में मानवीय संबंधों को मजबूत करना।

तकनीकी डिजिटल युग और मानव मूल्य पर नकारात्मक प्रभाव

1. मानवीय संबंधों पर असर।
2. एकाकीपन, अलगाव, तनाव जैसी समस्यायें।
3. साइबर अपराध और फर्जी न्यूज।
4. समाजिक व भावनात्मक जुडाव में कमी।
5. समाजिक स्थितियों में गिरावट।
6. रोजगार की गुणवत्ता पर असर।
7. आधुनिक बाजारों के नया आकार।
8. मानवीय मूल्यों का ह्रास।
9. पीढ़ीगत विचारों पर प्रभाव।
10. संविदात्मक स्थिरता कार्य में कमी।

तकनीक, डिजिटल युग और मानव मूल्य की बढ़ती चुनौतियाँ

मानव ने आधुनिकता व पश्चिमीकरण के प्रभाव व देखा–देखी में हमने इसे व्यक्तिगत रूप से अपने जीवन में शामिल तो कर लिया पर हम यह भूल गये है कि इसका दुष्प्रभाव व दुरूप्रयोग कैसे हमारे जीवन को प्रभावित कर रहा है। जहाँ

एक ओर टेक्नोलॉजी ने व्यक्ति व समाज को नया आयाम व भविष्य दिया है, वहीं इनका दुरूप्रयोग कर मानव ने साइबर अपराध, सूचना व्यक्ति व समुदाय में जागरूकता का आभाव पाया जा रहा है। व्यक्तिगत सूचना का इंटरनेट व अपराधिक शैली पर दुरूप्रयोग हो रहा है।

आज आईटी विभाग को यह सुनिश्चित करना होगा कि आपका व्यक्तिगत डाटा सुरक्षित है। इसके लिए संविधान में नियम, कानूनों का प्रावधान है। सामाजिक परिवेश में मोबाइल, लैपटॉप के डाटा का दुरूप्रयोग कर सामाजिक मूल्यों का हनन किया जा रहा है। निजी जीवन में हस्तक्षेप कर अपराधिक प्रवृत्ति बढ़ रही है। डिजिटल मार्केटिंग में उत्पाद व सेवा में उच्च प्रतिस्पर्द्धा, डेटा, गोपनीयता के हनन से सामाजिक मूल्यों का हस्तक्षेप किया जा रहा है।

तकनीक, डिजिटल युग और मानव मूल्य से सम्बंधित समाधान

तकनीकी प्रगति सामाजिक मूल्यों के मध्य संतुलन व समाधान सम्बंधित प्रणाली होना आवश्यक है। डिजिटल युग में नैतिकता व जिम्मेदारी को प्राथमिकता देना जरूरी है। इन नकारात्मक प्रभावों को कम करके सचेत प्रयास करना आवश्यक है। इन समाधान में नैतिक शिक्षा, समुदाय, समाज भागीदारी, कार्य जीवन संतुलन, मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता, सीमा निर्धारण, नई साक्षरता विकसित करना इत्यादि शामिल है। इन सभी समाधानों के माध्यम से हम एक जिम्मेदार डिजिटल भविष्य का निर्माण कर सकते है।

निष्कर्ष

आज समाज में तकनीक डिजिटल युग और मानव मूल्य का प्रभाव समाज में इतना बढ़ गया है कि मानवीय मूल्यों का हनन कर समाजिक वातावरण को प्रभावित कर रहा है। डिजिटल दुनिया आज व्यक्ति के जीवन का अभिन्न अंग बन गयी है। तकनीकी प्रगति ने जहाँ जीवन को सुगम बनाया वही मानवीय मूल्यों के समक्ष नई चुनौतियां भी खड़ी की है। व्यक्ति व समाज के महत्व अलगाव, ईर्ष्या, भेदभाव जैसी भावना एक–दूसरे से दूर कर रही है। इसके उपयोग की सीमाओं को निर्धारित करना आवश्यक है। डिजिटल तकनीको को आज मानवता का हनन करने हेतु प्रयोग किया जा रहा है। आधुनिक युग में डिजिटलीकरण के कारण मनुष्यों में तनाव, चिंता, अलगाव, मानसिक स्वास्थ्य आदि लक्षण समाजिक युवाओं को विघटित प्रवृत्ति की ओर ले जा रही है। जिसके कारण लोगो में बातचीत व लगाव की कमी आ रही है। आज समाज में गोपनीयता का दुष्प्रभाव होने के कारण समाज और व्यक्ति के मध्य चिंताए जैसी प्रवृत्ति देखने को मिल रही है। हमें आधुनिक साधनों का प्रयोग ऐसे प्रयोग करना चाहिए जिससे लोगो की निजता व नियम का समाजिक परिवेश में उल्लंघन न हो। वैश्विक संदर्भ में भी डिजिटलीकरण व मूल्यों के समावेशिता का महत्व समझना होगा जिससे मानवीयता की सीमा को बरकरार रखा जा सकें।

सुझाव

1. डिजिटल युग में मानवीय मूल्यों व भावनात्मक विश्वास को संरक्षित करना।
2. डिजिटल साक्षरता या मानवीय कौशलता को बड़े पैमाने पर विकसित करना।
3. तकनीकी प्रवृत्ति ने भौगोलिक दूरी व समय को सीमित किया है।
4. समाजिक पैमाने पर मानवीय मूल्यों के महत्व के कारण मानवीय संबंधों में प्रभावी समझ परिलक्षित हुआ है।
5. डिजिटलीकरण दुनिया में समग्र कल्याण बनाए रखने हेतु आवश्यक हैं।
6. आधुनिक युग में मानवीय मूल्य प्रौद्योगिकी के युग में मानवीय आचरण का प्रबंधन व नियंत्रण हेतु सहायक तत्व हैं।
7. आज मानव तकनीकी प्रणाली का उपयोग मानवता की भलाई के लिए करना आवश्यक माना हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. सत्यनारायण स्नेही व डॉ. वीरेन्द्र सिंह, (2021), 'तकनीकी युग में भाषा और साहित्य', प्रकाशन : प्रकाशन संस्थान, दिल्ली।
2. के.एल. शर्मा (2015) 'विज्ञान, तकनीकी एवं मूल्य', प्रकाशन : रचना प्रकाशन, जयपुर।

3. एस.के. मंगल व उमामंगल (2009), 'शिक्षा तकनीकी', प्रकाशन : प्रेन्टाइस इंण्डिया लर्निंग प्राइवेट प्रकाशन, दिल्ली।
4. एम.के. कौशल (2011), 'डिजिटल इंडिया महत्व जरूरत और मूल्य', प्रकाशन : एन बी प्रकाशन, दिल्ली।
5. डॉ. दीपक शिकारपुर (2024), 'डिजिटल युग (ए.आई. 2025 ++)', प्रकाशन : न्यू इरा प्रकाशन, पुणे।
6. नितिन सेठ (2023), 'डिजिटल युग में सफलता', प्रकाशन : मंजुल प्रकाशन हाउस, भोपाल।
7. रमा शर्मा व वी.पी. शर्मा (2015), 'मूल्य शिक्षा', प्रकाशन : अर्जुन प्रकाशन हाउस, दिल्ली।
8. डॉ. बसंती बहन सी, मकवाणा (2020), 'मूल्य शिक्षण', प्रकाशन : पैराडाइज प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. प्रो. रमेश प्रसाद पाठक (2020), 'मूल्य शिक्षा', प्रकाशन : कनिष्का प्रकाशन, दिल्ली।
10. डॉ. नोदनाथ मिश्र (2018), 'मूल्यपरक शिक्षा', प्रकाशन : अभ्युदय प्रकाशन, दिल्ली।
11. Jagran.com

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मुगलकालीन संगीत का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

डॉ. लक्ष्मी कुमारी
इतिहास विभाग
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

सारांश

संगीत एक कला है, जो मानव की मानसिक भावनाओं को जागृत करती है अथवा व्यक्त करती है। मुगल शासन की स्थापना के पहले स्थानीय शासकों ने संगीत के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मुगलकाल के अधिकांश शासक कला प्रेमी थे। उन्होनें अन्य कलाओं के साथ–साथ संगीत कला को भी आश्रय दिया एवं उसके विकास में अपना योगदान दिया।

मुख्य शब्द :– मुगलकालीन, संगीत, गायन, संस्कृति, कला।

प्रस्तावना

मुगल काल के आरंभ के समय ऐसा रहा कि वे अपना अस्तित्व सुदृढ़ नहीं रख पाए। हिंदुस्तान के कुछ हिस्सो में बाबर की विजय हुई और यह वंश लगातार भारतीय सत्ता को हस्तगत करता चला गया। संगीत व संस्कृति भी इसी प्रकार अपनी सफलता के बढ़ते हुए कदम के साथ लगातार प्रचलित होती चली गई।

साहित्यिक समीक्षा एवं विधि

इस शोध–पत्र में मुगलकालीन संगीत में कलाओं के साथ–साथ संगीत को भी आश्रय दिया गया है। यह शोध–पत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत पर आधारित होगा।

विचार-विमर्श

बाबर

मुगलकाल में बाबर एक संगीत प्रेमी थे और उनके दरबार में कई गायक और वादक उपस्थित थे। बाबर के काल में कल्लिनाथ प्रसिद्ध संगीतज्ञ हुए जिन्होनें सारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर की विस्तृत टीका लिखी।

बाबर ने गायन कला पर एक पुस्तक लिखी– बाबर संगीत कला का बड़ा प्रेमी था।[1]

हुमायूँ

बाबर का पुत्र हुमायूँ भी संगीत प्रेमी था। इनके दरबार में अनेक गायक एवं वादक हुए। हुमायूँ को संगीत का आध्यात्मिक रूप पंसद था। संगीत के माध्यम से नए उत्साह प्राप्त करते थे। एक युद्ध के दौरान बैजू बावरा हुमायूँ के आश्रय में पहुँचे, बैजू बावरा के गायन से प्रभावित होकर हुमायूँ ने युद्ध रूकवा दिया, बाद में बैजू बावरा फिर बहादुर शाह जफर की सेवा में चले गए थे, इससे हुमायूँ को काफी दुःख हुआ।[2]

हुमायूँ के काल में नए–नए भजन निर्मित हुए। इन भजनों के द्वारा एक ओर संगीत का प्रचार–प्रसार हुआ, तो दूसरी

ओर आध्यात्मिक ज्ञान भी प्रसारित हुआ। हुमायूँ के शासनकाल में कर्नाटक के रामामात्य जी ने प्रसिद्ध ग्रंथ स्वरमेल कलानिधि की रचना की। हुमायूँ ने संगीतकारों को संरक्षण व सहायता देकर प्रोत्साहित किया।[3]

अकबर

अकबर के संगीत के प्रति रुचि और संरक्षण से गायन और वादन की बड़ी उन्नति हुई। उसके दरबार में हिंदू और मुस्लिम संगीत पद्धतियों का खुले रूप से मिश्रण हुआ और अंत में दोनों एक दूसरे से इतने घुल–मिल गये कि उनको अलग–अलग पहचानना कठिन हो गया। भारतीय संगीत की दृष्टि से अकबर के काल को स्वर्ण युग कह सकते हैं। अकबर के काल में भारतीय संगीत की लगभग सभी प्रवृत्तियों का विकास सुचारू ढंग से हुआ। अनेक संगीतज्ञ जैसे– तानसेन, बैजू बावरा, कबीर, तुलसी, मीरा और सूर आदि पैदा हुये, जिन्होनें अपनी गौरवशाली कृतियों से इस काल को समृद्धिशाली बनाया। इस काल की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि भारतीय संगीत का फैलाव देश के कोने–कोने में हुआ और इसके साथ संगीत का स्तर भी गिरने नहीं पाया। संगीत की जो पवित्रता, जो उज्जवलता थी, वह स्थिर रही। संगीत के शिल्पक एवं आत्मिक तथा कलात्मक ज्ञान की अभिवृद्धि अपनी पराकाष्ठा की प्रशस्त सीमा को स्पर्श कर रही थी। अतएव् हम कह सकते हैं कि यह युग भारतीय संगीत का स्वर्णयुग था।

अकबर का संगीत के प्रति असीम झुकाव था। अकबरनामा में जिक्र है कि अकबर स्वयं नगाड़ा बजाता था, अकबर ने अपने दरबार में गायकों एवं संगीतकारों को रखा था। अकबर संगीत का श्रोता एवं संरक्षक दोनों रूपो में प्रख्यात था। अकबरनामा में जिक्र है कि– संगीत के रागों के रहस्यों का पारखी एवं ज्ञाता बनेगा। अबुल फजल ने बताया है कि अकबर ने अपने जन्मदिवस पर फारसी गेय ओर वाद्य संगीत का आयोजन करवाया था। अकबरनामा तथा उसके कुछ चित्रों एवं तारीख–ए–खानदाने तैमूरिया के एक चित्र भी इस बात की पुष्टि करते हैं।[4]

अकबर की दिलचस्पी केवल हिंदवी एवं फारसी संगीत में ही नहीं वरन् यूरोपीय संगीत में भी थी। इसकी पुष्टि करते हए बदायूँनी बताते हैं कि 1581 में फतेहपुर सीकरी में प्रदर्शित यूरोपीय वाद्ययंत्र ऑर्गन में बादशाह ने उत्सुकता दिखायी थी।[5]

सम्राट अकबर ने संगीत पर विशेष ध्यान दिया और उसने सभी संगीतकारों को संरक्षण तथा प्रश्रय प्रदान किया।[6] उसके दरबार में अनेक हिंदू, तुरानी, ईरानी, कश्मीरी स्त्री तथा पुरुष संगीतज्ञों को राज्याश्रय मिला था। उसने संगीतकारों को सात वर्गो में विभक्त करके प्रत्येक वर्ग के लिए एक–एक दिन निर्धारित कर दिया था।[7] बादशाह ने स्वयं वाद्य संगीत में दक्षता प्राप्त की थी। दरबार के संगीतकारों में तानसेन को विशिष्ट स्थान प्राप्त था।[8] 1556 में रीवा के राजा ने तानसेन का परिचय अकबर से कराया था। अबुल फजल ने तानसेन की प्रशंसा में लिखा है कि गत एक हजार वर्षो में ऐसा संगीतकार भारतवर्ष में नहीं हुआ था।[9] उसने संगीत से यमुना के प्रवाह को रोक दिया था।[10] तानसेन की ख्याति आज भी भारत में है।[11] संगीत के माध्यम से अकबर के तत्वावधान में हिंदू–मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय अपने चरम पर पहुँचा। अकबर के काल में सांस्कृतिक सहिष्णुता ऐसी ऊँचाइयों तक पहुँच चुकी थी, जिसकी तुलना भारतीय इतिहास में अन्यत्र दुर्लभ है।

जहाँगीर

जहाँगीर का संगीत संबंधी प्रेम उतना अधिक नहीं था, जितना कि पिता अकबर का, परंतु फिर भी उसके शासनकाल में वही परंपरा कायम रही। उसकी लिखी हुई यादों तथा इकबालनामा–ए–जहाँगीरी में कुछ संगीतज्ञ के नाम पाये जाते हैं। अपने शासनकाल के ग्यारहवें वर्ष उसने एक शैली को 'आनंद खाँ' की उपाधि दी, जो हिंदी और फारसी गीत इस प्रकार गाता था जिसमें हृदय की सारी कटुता खत्म हो जाती थी।[12]

जहाँगीर के संगीत प्रेम की सत्यता इस बात से जाहिर होती है कि वह इब्राहिम आदिल शाह के लिखे गीत सुना करता था और उन्हें सराहता था। ये गीत बख्तर खान कलावंत द्वारा गाये जाते थे।

शाहजहाँ

शाहजहाँ भी एक महान संगीत प्रेमी था। रात को सोने से पहले वह सबसे अच्छे संगीतकारों को सुनता था और बहुत बड़ी संख्या में संगीतकार रहते थे। सर जदुनाथ सरकार ने बताया कि शाहजहाँ का मधुर राग इतना प्रभावकारी था कि बहुत से संगीत प्रेमी, सूफी संत स्तब्ध रह जाते थे। दीवान–ए–खास में रोजाना रात्रि में संगीत का कार्यक्रम होता था।[13]

ट्रेवनियर ने लिखा है कि दीवान–ए–खास में आयोजित संगीत की मधुर ध्वनि अमीरों के कार्यो में गतिरोध नहीं पैदा करती थी।[14]

शाहजहाँ के दरबार में कई दरबारी संगीतकारों में जगन्नाथ, रामदास, महापात्र, सुखसेन, बुरंग खाँ, लाल खाँ, मिर्जा जुलफरबेन का नाम उल्लेखनीय है।[15]

शाहजहाँ के दरबार में संगीत समारोह हुआ करते थे। शाही दरबार में मधुर स्वर में कनीजें (दासियाँ) शाहजादों और शहजादियों के मनोरंजन के लिए गाया करती थीं। ताजपोशी, नौरोज, ईद, बकरीद, सालगिरह, विजय के लिए जो समारोह किए जाते थे उनमें नाच–गाने की सभाओं का आयोजन होता था। दुल्हन की तरह दरबार को सजाया जाता था। संगीत के निपुण कलाकार उपस्थित होते थे, जिससे कि उनके मधुर संगीत से दरबारी होश खो देते थे।[16]

औरंगजेब

औरंगजेब ने अपने शासन के प्रारंभिक वर्षो में संगीत समारोहों पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया थ। दरबार में चलने वाले संगीत समारोह परंपरागत रूप से पूर्ववत् प्रचलित रहे। दरबारी संगीतज्ञ केवल दरबार के वार्षिक उत्सव के समय ही अपनी कला का प्रदर्शन नहीं करते थे, बल्कि बादशाह के जन्मदिन, शाहजादों के जन्मदिन, विवाह एवं अन्य खुशियों के अवसर पर भी संगीत समारोह का आयोजन करते थे।[17]

निष्कर्ष

अंत में, यह कह सकते हैं कि मुगलकाल में संगीत हिंदू और मुस्लिम के दिलों को एकजुट करने का स्रोत बन गया। भारतीय संस्कृति में जो उच्च स्थान संगीत को प्राप्त था, मुगल शासकों ने इसे बनाए रखा और भारतीय संस्कृति का एक नया आयाम स्थापित किया। सूफी इस तथ्य को जानते थे कि संगीत का बहुत गहरा संबंध है इसलिए उन्होनें मुस्लिम के बीच संगीत को लोकप्रिय बनाया।[18] इस्लाम धर्म को मानते हुए भी एक नई संस्कृति की नींव डाली, जो केवल भातीय संस्कृति कही जा सकती थी। उन्होनें भारतीय संगीत को क्षति नही पहुंचायी वरन् उसके अंदर नये गुणों का समावेश किया। भारत की इस कला को मुगलों ने अपनाया तथा इस समावेशिकता से समाज को एक उत्कृष्ट कला का उपयोग कराया। इस साझी संस्कृति ने एक मिश्रित समाज को उत्साहित किया, जो आज के समाज में भी परिलक्षित दिखाई देता है।

संदर्भ

1. नरेंद्र नाथ लॉ, प्रमोशन ऑफ लर्निंग इन इंडिया, लोगमान ग्रीन एंड सीओ. मद्रास, चतुर्थ संस्करण, पृ.– 122.
2. भारती गुप्त, कत्थक और अध्यात्म, पृ.–66.
3. एडवर्ड एंड गैरेट, मुगल रूल इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस लंदन, 1930, पृ.सं.–133.
4. अबुल फजल, अकबरनामा, अंग्रेजी अनुवादक हेनरी बेबेराज, भाग–1, पृ.सं.– 30.
5. इरफान हबीब, अकबर एण्ड इज इण्डिया, पृ.सं.– 188,189.
6. अबुल फजल, 'आइन–ए–अकबरी', एच. ब्लाकमैन, भाग–1, कलकत्ता, पृ. 381.
7. गैरेट, 'लिगेसी ऑफ इंडिया', ऑक्सफोर्ड, पृ. 334.
8. आशीर्वादी लाल, श्रीवास्तव, 'मेडिवल इण्डियन कल्चर', पृ. 246.
9. आशीर्वादी लाल, श्रीवास्तव, 'मेडिवल इण्डियन कल्चर', पृ. 246.
10. आशीर्वादी लाल, श्रीवास्तव, 'मेडिवल इण्डियन कल्चर', पृ. 246.
11. अबुल फजल, 'आइन–ए–अकबरी', भाग–1, पृ.–406.
12. एलेक्जेंडर रॉजर्स, तुजुक–ए–जहाँगीरी (अनु.), दिल्ली, रिप्रिन्ट, 1968, पृ0. 331.
13. एम.एल. भागी, मेडिवल इण्डिया कल्चर एण्ड थॉट, अमबाला, 1965, पृ. 260.
14. यदुनाथ सरकार, स्टडीज इन मुगल इण्डिया, पृ.– 12–13.
15. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, पृ. 247.
16. रामफल सिंह, हिन्दू–मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का इतिहास, भाग–2, दिल्ली, 1961, पृ. सं.– 227–29.
17. सुमित्रा कुमारी एण्ड बृहस्पति, संगीत चिन्तामणि, संगीत कार्यालय, प्रथम संस्करण, 1966. पृ.सं. 329.
18. के. टी. शाह, द स्प्लेंडर देट वज इंडिया, 1939, पृ. सं.–250.51

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

मराठा राजनीति में ताराबाई की राजनीतिक उपलब्धियों का अध्ययन

डॉ. शमा अंजुम
इतिहास विभाग
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

शोध सार : यह शोध पत्र 'मराठा राजनीति में ताराबाई की राजनीतिक उपलब्धियों का अध्ययन' मराठा राजनीति की गौरवपूर्ण गाथा की एक महिला राजनीतिज्ञ ताराबाई का विस्तृत अध्ययन पर आधारित है। इस शोध का उद्देश्य नारीवादी अवधारणाओं के स्वरुप को ताराबाई से जोड़ते हुए देखना है साथ ही उनकी राजनीतिक छमताओं को उजागर करना है। भारत के एक महान राजा तथा रणनीतिकार महान राजा छत्रपति शिवजी राजे भोसले द्वारा संजोए गए मराठा साम्राज्य का विस्तार होना भारत के इतिहास की एक अविश्मरणीय घटना है। अपनी अनुशासित सेना तथा सुसंगठित प्रशासनिक इकाइयों द्वारा शिवजी ने जो, सुसंगठित साम्राज्य की नीव रखी उनकी मृत्यु के पश्चात् संजोने का श्रेह ताराबाई को जाता है। ताराबाई ने कठिन समय में मराठा साम्राज्य को खंडित होने से बचाया।

प्रमुख बिंदु : शिवजी, राजाराम, ताराबाई, मराठा अधिकारी, राजनीतिक उपलब्धि, शाहू, पेशवा राजनीतिक महत्वाकांक्षा।

रानी ताराबाई (1675 ई॰ -1761 ई॰) : ताराबाई एक मराठा रानी थी जिन्हें औरंगज़ेब के मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य को तोड़ने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने मराठा संघ को तब बिखरने से बचाया जब यह अपने सबसे निचले स्तर पर था। जब उनके लगभग सभी किले मुग़लों के अधीन थे। छत्रपति शिवाजी के द्वारा संजोए गए मराठा साम्राज्य एक विकट स्थित में था और मुगल सम्राट औरंगज़ेब व्यक्तिगत रूप से इसके विरूद्ध अभियानों का निर्देशन कर रहा था। इस विकट स्थिति में वह न केवल मुगल आक्रमणों से बची बल्कि मुगल क्षेत्रों में युद्ध भी किए। पहले उस पर छापा मार और फिर स्थाई चौकियाँ बनाई, इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में मराठा अधिपत्य की नींव रखी गई। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजों द्वारा विस्थापित होने तक मराठों के अर्ध शताब्दी तक मुग़लों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित किया था। ख़फ़ी ख़ान, मुंतखब-उल-लुबान में उल्लेखित करते हैं, "मुग़लों को लगा कि दो छोटे बच्चों और एक असहाय महिला पर नियंत्रित करना कठिन नहीं होगा। वे अपने शत्रु को निर्बल, तुच्छ और असहाय समझते थे, लेकिन ताराबाई राजा राम की पत्नी ने कमान एवं शासन की महान शक्तियाँ दिखाई और प्रतिदिन युद्ध फैलता गया एवं मराठों की शक्ति बढ़ती गई"।

17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सम्राट औरंगज़ेब के शासन में पूरे भारत में लाखों विद्रोह हुए विशेष रूप से मराठों के द्वारा महान शिवाजी के नेतृत्व में, जो दक्कन में एक महत्वपूर्ण शक्ति गया एवं मराठों की शक्ति बढ़ती गई।

ख़फ़ी ख़ान का विवरण उपरोक्त तथ्य को प्रमाणित करता है कि, ताराबाई एक दृढ़ शक्ति की परिचायक थीं।

1675 ई॰ में जन्मी ताराबाई शिवाजी के सेनापति हंबीर राव मोहिते की पुत्री थीं। आठ वर्ष की आयु में उनका विवाह शिवाजी के छोटे पुत्र राजाराम से दूसरी पत्नी के रूप में हुआ। 1680 ई॰ में अपने स्वतंत्र मराठा साम्राज्य के शासक का ताज पहनने के तुरंत बाद शिवाजी की मृत्यु हो गई थी।

ताराबाई अपने जीवन के प्रारंभिक दौर अर्थात् राजाराम के जीवन काल के दौरान भी राजनीतिक भूमिका निभाती आई थीं। जिस प्रकार ख़फ़ी ख़ान उल्लेखित करते हैं "प्रमुखों ने, फिर मुख्य पत्नी और एक पुत्र की माता, ताराबाई को शासक बनाया। वह एक चतुर, बुद्धिमान महिला थीं, और उन्होंने अपने पति के जीवनकाल के दौरान ही नागरिक एवं सैन्य मामलों के ज्ञान के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त की थीं"।

ख़फ़ी ख़ान अपने दावे में सकारात्मक प्रतीत होते हैं कि उन्होंने यह प्रतिष्ठा अपने पति के जीवनकाल के दौरान प्राप्त की थी, और इसलिए इस टिप्पणी का उनके पति के मृत्यु के पश्चात् मार्च 1689 ई॰ और मार्च 1700 ई॰ के मध्य की अवधि से संबंधित है। इस अवधि के दौरान वह पहले महाराष्ट्र फिर जिंजी और फिर महाराष्ट्र मे थी। यह प्रतिष्ठा मुगल शिविर में ख़फ़ी ख़ान तक पहुँचने तथा प्रशासन में उनकी भागीदारी को दर्शाने से पहले काफी व्यापक रही होगी।

जदुनाथ सरकार भी उल्लेखित करते हैं, "पहले से ही अपने पति के जीवनकाल में उन्होंने मर्दाना ऊर्जा और बुद्धिमत्ता का प्रदर्शन किया था तथा प्रशासन के सूत्र अपने अधीन करना आरम्भ कर दिया था"।

बावड़ा दफ्तर, खंड के दस्तावेज़ से भी प्रमाणित होता है कि, "ताराबाई को 1690 ई॰ में प्रशासन में कुछ भाग प्राप्त था, जब वह रामचंद्र नील कंठ के साथ महाराष्ट्र में थीं"।

राजाराम फेफडों के रोग से पीड़ित थे एवं युद्ध अभियानों के अधिक प्रयासों ने उनके निर्बल शरीर सहन नहीं कर पाया एवं 2 मार्च 1700 ई॰ को 30 वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हो गई। बृजकिशोर अपनी पुस्तक में उल्लेखित करते हैं कि, "कर्तव्यनिष्ठ राम चन्द्र नील कंठ उनकी मृत्यु शय्या के पास थे और राजाराम ने उन्हें अपनी अंतिम इच्छा शाह की मुक्ति एवं मातृभूमि की मुक्ति की अभिलाषा बताई।" उनकी एक पत्नी, अम्बिका बाई सती हो गई। परन्तु अन्य दो पत्नियाँ, ताराबाई एवं राजस बाई अपने पति की तुलना में अपने-अपने पुत्रों के भविष्य में अधिक रूचि रखती थीं। वे महाराष्ट्र की भविष्य की राजनीति में अपनी भूमिका निभाने के लिए लंबे समय तक जीवित रहीं। राजाराम को अपने जीवन काल में ज़रा बराबर भी संदेह नहीं रहा होगा कि इतिहास उन्हें शिवाजी के पुत्र के बजाय ताराबाई के पति के रूप में अधिक याद रखेगा।

इस कठिन समय में राजाराम की असामयिक मृत्यु ने कुछ अत्यंत जटिल समस्याओं को जन्म दिया। शत्रु महाराष्ट्र के नए महानगर सतारा के समीप ताक लगाए खड़ा था। युद्ध के प्रयासों को प्रेरित करने एवं मराठा नेताओं की विभाजनकारी प्रवृत्ति नियंत्रित करने की आवश्यकता थी। मराठा सरदारों में एकजुटता नहीं थी इस पर 1697 ई॰ में भीमसेन सक्सेना ने टिप्पणी करते हुए कहा, "संताजी का रक्त पक्षपात पूर्ण मराठा नेताओं की प्यास बुझाने में विफल रहा था। उनकी मृत्यु पर उनके पुत्रों रानूजी एवं भाई बहिरजी को धन्नाजी के साथ सशस्त्र संघर्ष में सम्मिलित किया गया।" भीमसेन आगे भी उल्लेखित करते हैं, "धन्नाजी ने अंततः फिरोजाबाद के पास रानूजी का दौरा किया। अपना झगड़ा सुलझाया और भविष्य के लिए एक गठबंधन बनाया"। राजाराम द्वारा पूर्ण रूप से समर्थित राम चन्द्र नील कंठ बेहर चातुर्य के साथ लोगों के बीच शांति बनाए रखने में सफल रहे, परन्तु रामचंद्र नील कंठ को वह सम्मान नहीं मिल सका जो, राजाराम के समय था। जो, भी हो अब मराठा साम्राज्य के उत्तराधिकार का प्रश्न खड़ा हो गया। ध्सा प्रतीत होता है कि धन्नाजी एवं उनके सहयोगी ताराबाई के दबंगता से परिचित थे तभी वह ताराबाई एवं उनके अल्पव्यस्क पुत्र को उत्तराधिकारी नहीं बनाना चाहते थे। राजाराम के एक और पुत्र कर्ण की मृत्यु तीन सप्ताह के पश्चात् ही चेचक से हो गई। मराठी स्रोतों में राजाराम कर्ण के उत्तराधिकार का कोई संदर्भ प्राप्त नहीं होता परन्तु फारसी स्रोतों का कहना है, "राजाराम का उत्तराधिकारी उनके पुत्र शिवाजी थे जिनकी मृत्यु चेचक से हो गई थी"। परन्तु वह शिवाजी नहीं थे भीम सेन उनका नाम कर्ण बताते हैं, अन्य लोग उन्हें शिवाजी कहते हैं। उत्तराधिकार के मुद्दे पर विचार करने हेतु जब रामचंद्र नील कंठ ताराबाई एवं राजस बाई से मिलने पहुँचे तो, ताराबाई ने सुझाव दिया कि उनके युवा पुत्र शिवाजी तृतीय का पवित्र धागा समारोह एवं राज्याभिषेक बिना देरी के किया जाए। उस पर नील कंठ जी ने उत्तर दिया, "शाहू को सम्राट का ताज पहनाया जाएगा एवं युवा शिवाजी उत्तराधिकारी होंगे राज्याभिषेक की आवश्यकता नहीं राजाराम का स्वयं कोई राज्याभिषेक नहीं हुआ था और वह शाह के दावे के सम्मान में सिंहासन पर कभी नहीं बैठे। सरदेसाई उल्लेखित करते हैं, "इस न्यायी उत्तर ने महत्वाकांक्षी रानी को क्रोधित कर दिया, जिन्हें संदेह था कि रामचंद्र नील कंठ मुग़लों के साथ मिले हुए हैं"।

1700 ई॰ से 1707 ई॰ तक की सात वर्षों की अवधि में, ताराबाई ने अकेले ही औरंगज़ेब की सेना के विरूद्ध मराठा रक्षा का निर्देशन किया। उन्होंने स्वयं आक्रमणों का नेतृत्व किया, संसाधन जुटाए और अपने सेनापतियों एवं अधिकारियों को प्रेरित किया। उनहोंने अपनी नारीवादी अग्नि से सबको प्रेरित किया नारी शक्ति की प्रतीक बन गई।

मुगल अधिकारी भीमसेन ने अपनी पुस्तक तारीख ए दिलकुशा में कहा कि, "ताराबाई, अपने पति से अधिक शक्तिशाली शासक थीं"। वह आगे भी उल्लेखित करते हैं, "ताराबाई सर्वस्व बन गई और चीजों को इतनी अच्छी तरह से नियंत्रित किया कि एक भी मराठा नेता ने उनके आदेश के बिना कार्य नहीं किया"।

ख़फ़ी ख़ान भी ताराबाई के बारे में कहते हुए सहमत हैं कि, "उसने अपने अधिकारियों का दिल जीत लिया, और औरंगज़ेब के शासन के अंत तक सभी संघर्षों, योजनाओं, अभियानों और घेराबंदी के कारण, मराठों की शक्ति दिन प्रति दिन बढ़ती गई"।

जबकि राजाराम की मृत्यु का समाचार 5 मार्च 1700 ई॰ को शाही शिविर में पहुँची। ख़फ़ी ख़ान के अनुसार, "सम्राट ने खुशी

के ढोल बजाने का आदेश दिया, और सैनिकों ने एक दूसरे को बधाई दी और कहा कि संघर्ष में एक प्रेरक हट गया है, दो छोटे बच्चों और एक असहाय महिला पर काबू पाना कठिन नहीं होगा"। औरंगज़ेब ने परिस्थिति का लाभ उठाते हुए अपने प्रयासों को दोगुना कर दिया। परन्तु मुग़लों को किंचित भर भी संदेश नहीं रहा होगा कि जिन्हें वह असहाय महिला समझ रहे थे वह एक सशक्त महिला है, तो अपनी नारीवादी अग्नि में सब भस्म करने की शक्ति रखती है।

परिस्थिति का लाभ उठाते हुए 21 अप्रैल 1700 ई॰ को राजाराम की मृत्यु के डेढ़ माह पश्चात् सतारा पर मुग़लों का कब्ज़ा हो गया और उसका नाम बदलकर 'आजमतारा' कर दिया गया।

ताराबाई ने अब तक अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी एवं अपने पति की मृत्यु से उत्पन्न शून्य को अपनी गरिमा एवं क्षमता से भरने के लिए अग्रणी थी। औरंगज़ेब को लगा था कि, राजाराम की विधवाएँ एवं नवजात पुत्र शीघ्र ही घुटने टेक देंगे परन्तु भाग्य ने उसके विरूद्ध एक ऐसी महिला को खड़ा कर दिया जो, महान शिवाजी की मृत्यु के पश्चात अब तक मराठों द्वारा लड़े गए किसी भी पुरूष से अधिक कुशल थीं।

ताराबाई ने युद्ध और राज्य प्रशासन का संचालन इतनी कुशलता से किया कि, शत्रुतापूर्ण मुस्लिम इतिहासकार ख़फ़ी ख़ान को भी उसकी प्रशंसा में कई शब्द कहने पड़े जिनके अनुसार, "वह एक चतुर एवं बुद्धिमान महिला थीं जिन्होंने सरकार की कमान संभाले महान शक्तियाँ दिखाई"।

जबकि, वह नव निर्मित मराठा राज्य की अखंडता और स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए दृढ़ थी, परन्तु आरम्भ में राष्ट्रीय प्रतिक्रिया प्राप्त करने हेतु शांति के लिए बातचीत करना प्रारंभ किया। उसने अपने पुत्र शिवाजी तृतीय के लिए सात हजारी मनसब एवं दक्कन पर देशमुखी अधिकार माँगा और बदले में दक्कन के शाही वायसराय के अधीन सेवा के लिए पाँच हजार पुरूषों की एक टुकड़ी की आपूर्ति करने एवं सात किले सौंपने का प्रस्ताव रखा। परन्तु औरंगज़ेब मराठा शक्ति को कम आंकते हुए बिना शर्त आत्म समर्पण पर ज़ोर देने लगा।

अतः युद्ध का निर्णय होने के पश्चात् आत्मरक्षा में सेनापति हंबीर राव मोहिते की प्रतिभाशाली पुत्री अपनी आत्मा एवं मन इसमें झोंक दी। किनकैड एवं पारसनिस के शब्दों में, "मराठा रानी एक शिविर से दूसरे शिविर और एक किले से दूसरे किले तक उड़ान भरती रही, एक सैनिक की कठिनाइयों को साझा करते हुए सूरत की गर्मी में, धरती पर उपस्थित रहती थीं। अपने अधिकारियों को प्रोत्साहित करती थीं और व्यापक मोर्चे पर अभियानों की योजना बनाती थीं। उनकी दृष्टि इतनी स्पष्ट थी, उनका निर्णय इतना त्रुटि रहित था कि युद्ध के मैदान में उनका समान रूप से स्वागत किया जाता था। कुछ ही समय में मराठों का उत्तरदायी आक्रमण जो, पहले रुका हुआ था प्रभावी एवं खतरनाक रूप धारण कर लिया और मुगल साम्राज्य को खतरे में डालना आरंभ कर दिया"।

ताराबाई ने सैनिकों का मनोबल अपने संगठन और संचालन की शक्ति से बहुत ऊँचा उठा दिया था। उसने राजनैतिक एवं सैनिक दृष्टिकोण को बहुत प्रभावित किया था। मनुक्की के अनुसार, "अब मराठा सैनिक केवल लूटने वाले नहीं थे, अपितु अब मराठा सेना नायक एवं उनके सैनिक मुगल सेना का साहस से मुकाबला करते थे। वे मुगल सेनाओं के समान ही युद्ध सामग्री से सुसज्जित होकर युद्ध के लिए बढ़ते मुगल सेनाओं से किंचित भी। भयभीत हुए बिना वे विजेताओं और आक्रांताओं के समान युद्ध के लिए आगे बढ़ते थे"।

औरंगज़ेब अब कूटनीतिक चालें चलने लगा। उसने मराठों की सामरिक एकता और संगठन को तोड़ने का प्रयास किया। उसने मराठा सरदारों को अपने पक्ष में करने हेतु रामचंद्र नीलकंठ एवं परशुराम 'यम्बक क को धन एवं पद प्रलोभन देते हुए पत्र लिखे एवं ऐसी व्यवस्था की कि दोनों को एक दूसरे के पत्र प्राप्त हुए। इससे कुछ समय के लिए दोनों एक दूसरे के अविश्वासी हो गए। जदुनाथ सरकार के अनुसार, "पर्ली दुर्ग पर मुग़लों का अधिकार हो जाने के पश्चात् परशुराम त्रयंबक और बाद में राणोजी घोटपड़े, धन्नाजी जाधव ने मुग़लों के पक्ष में जाने का प्रयास किया।" मनुक्की के अनुसार, "मराठों के व्यापक और बढ़ते हुए प्रत्याक्रमणों व संघर्ष का सामना करने में असमर्थ होने पर औरंगज़ेब ने अपनी कूटनीतिक चाल से शाहू को मुक्त कर उसे दक्षिण की चौथ प्रदान कर मराठों में गृह युद्ध के बीच बोने के प्रयास किए"। वह शाहू को मुक्त कर उसकी चाची ताराबाई के लिए कठिनाइयाँ उत्पन्न करना चाहता था क्योंकि शाहू अपने पैतृक अधिकार की माँग कर सकता था एवं गृह युद्ध संभव था।

औरंगज़ेब ने मराठों से संधि करने के लिए 70 मराठा सरदारों को शाही शिविर में आमंत्रित किया। आगामी कार्यवाही के लिए जब सामन्त अपने अनुचरों के साथ धन्नाजी के शिविर में एकत्र होने लगे तो, संदेह शील प्रवृत्ति औरंगज़ेब की जागृत होने लगी। ख़फ़ी ख़ान के अनुसार "औरंगज़ेब को यह आशंका हुई कि चालीस-पचास हजार मराठे अश्वरोही शाही शिविर के समीप एकत्र होकर कहीं राजा शाहू एवं शाहजादा कामबख्श को दुर्गम पर्वत श्रेणी में न ले भागे। अतः औरंगज़ेब ने प्रस्तावित संधि को भंग कर दिया"।

1704 ई॰ के पश्चात् से स्वयं युद्ध से औरंगज़ेब थक गया था। उसका मनोबल टूटने लगा था। उसकी आशा जो, महाराष्ट्र

जीतने की थी वह भंग हो चुकी थी। अन्त में 1707 ई॰ में मराठा-मुगल संघर्ष के मध्य ही उसकी मृत्यु हो गयी। अपनी स्थिति को स्थिर करने के पश्चात् शाहू ने ताराबाई को एक संदेश भेजा जिसमें उन्होंने अपने गृह देश में आगमन की घोषणा की और शासन करने की अनुमति माँगीद्य उन्होंने यह भी कहा कि उनके दावे को मुगल सम्राट की मंजूरी प्राप्त थी। हालाँकि उन्होंने ताराबाई को आश्वासन दिया कि वह शाही घराने के आदरणीय अभिभावक के पद का सम्मान करेंगे एवं आशीर्वाद माँगते उनके व्यापक अनुभव का उपयोग करके लाभान्वित होंगे।

शाहू के उपरोक्त अनुरोध पर ताराबाई का उत्तर था कि वह उसे एक धोखेबाज़ के अलावा कुछ नहीं मानती थी और अन्य धोखेबाजों की भाँति उनका भी वही अन्त होना था। परन्तु ताराबाई का यह तथ्य अन्य सरदारों को पसंद नहीं आया।

ताराबाई ने सभी मराठा अधिकारियों और जमींदारों को पत्र के द्वारा शाह के सिंहासन के दावे को इस आधार पर खारिज कर दिया कि, "शंभुजी ने यह राज्य खो दिया था जिसे शिवाजी ने अपने उद्यम के माध्यम से बनाया था, और राजाराम ने अपने परिश्रम से शंभुजी द्वारा बोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया था। .....शिवाजी भी शंभुजी के मनमौजी आचरण से क्रोधित थे एवं राजा राम को ही उत्तराधिकारी मानते थे। अतः जब शंभुजी ही उत्तराधिकारी नहीं थे तो शाहू कैसे हो सकते हैं"। 17 दिसंबर 1707 ई० को लिखा गया एक घ्सा ही पत्र, जो सेना नायक देसाई को संबोधित था, शाहू के प्रति मराठा सरदारों के रवैये को दर्शाता है। इन पत्रों ने मराठा सरदारों को उनके पास आने वाले शाहू के दूतों को बंदी बनाने एवं दरबार में भेजने को उकसाया।

अपने पुत्र के लिए समर्थन जुटाने के लिए ताराबाई ने अपने सभी प्रमुख अधिकारियों की सभा बुलाई एवं समझाया कि कैसे शाहू ने मुग़लों के अधीनता स्वीकार करके शिवाजी के कार्य को विफल कर दिया था, और अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए राष्ट्रीय स्वतंत्रता का सौदा किया था। इस प्रकार पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान मराठों ने जो, बलिदान दिया वह व्यर्थ चला गया। ताराबाई अत्यधिक बुद्धिमान थी। उन्होनें मुग़लों पर शाहू की निर्भरता की ओर इंगित करते हुए उनके समीप सम्मान का मुद्दा रखकर अपना तुरूप का पत्ता खेला। घ्सा करके उन्होंने वास्तव में मराठा चरित्र में एक कोमल स्थान पा लिया। उनमें से कुछ के मन में यह बात आ गई की इतने बलिदान के पश्चात् भी इसका नतीजा यह न हो जाए कि, मराठा क्षत्रपति केवल मुग़लों का एक जागीरदार रह जाए।

शाहू को अक्टूबर, 1707 ई० में समाचार प्राप्त हुआ कि ताराबाई की सेना तैयार है उनके विरूद्ध युद्ध के लिए। विवश होकर शाहू भी आगे बढ़े। भीमा नदी की दूसरी तट पर ताराबाई की सेना खड़ी थी। जिसकी भव्यता ने शाहू के शरीर में सिहरन पैदा कर दी। ताराबाई के सेनापति धन्नाजी जाधव, परशुराम त्रयंबक जैसे प्रतिनिधि विद्यमान थे। तो दूसरी ओर शाहू की सेना एक विषम जन समूह जिसका नेतृत्व के लिए सक्षम नेता न था। परन्तु शाहू ने कुटनीतिज्ञ चाल पहले ही चल दी थी, काव्या इतिहास के अनुसार, "खंडों बल्लाल, बालाजी विश्वनाथ, नारो राम एवं धन्नाजी के सभी क़रीबी सहायक पहले ही गुप्त रूप से शाहू के साथ थे। युद्ध का परिणाम धन्नाजी के रवैये पर निर्भर था। धन्नाजी एवं शाहू के बीच बैठक हुई, शाहू के मिलनसार व्यवहार ने धन्नाजी को पूरी तरह अपने पक्ष में कर लिया। उन्होंने शाहू से वादा किया कि वह दिखावटी लड़ाई लड़ेंगे एवं सुविधाजनक समय पर शाहू के साथ हो जाएँगे।

परशुराम त्रयंबक, ताराबाई के प्रति समर्पित थे, अगले दिन, सम्भवतः 12 अक्टूबर 1707 ई० को, भीमा की उत्तरी तट पर खेड़ के मैदान में दोनों सेनाएँ भिड़ गई। शाहू ने व्यक्तिगत रूप से अपनी सेना का नेतृत्व किया और बहादुरी दिखाई दृढ़ निश्चय से युद्ध किया। ताराबाई की ओर से भी प्रतिनिधि ने बहादुरी दिखाई परन्तु सेनापति धन्नाजी जाधव तटस्थ खड़े रहे तो वह क्या करते। अतः उनके बहुत आदमी मारे गए बाकी जान बचा कर भाग खड़े हुए।

12 जनवरी, 1708 ई॰ को शाहू ने बड़े धूमधाम से सतारा में अपना राज्याभिषेक किया एवं नए मंत्रियों की नियुक्तियाँ की। हालाँकि खेड़ एवं सतारा की पराजय के पश्चात् अभी ताराबाई पूरी तरह से कुचली नहीं गई थी। घरेलू कलह को समाप्त करने हेतु ताराबाई के समक्ष शाहू ने उदार शर्तें रखी जिसके अनुसार, "वार्ना नदी के दक्षिण का क्षेत्र अपने चचेरे भाई शिवाजी तृतीय के अन्तर्गत कब्ज़े में रहेंगे, जिसे नाम मात्र आज्ञाकारिता का भुगतान करते हुए मराठा छत्रपति का अधीनस्थ राज कुमार को रहना होगा"।

शाहू का शासन काल मराठा साम्राज्य के लिए महान विस्तार का काल था। हालांकि सत्ता पेशवा के हाथों चली गई थी। साथ ही पेशवा पद वंशानुगत हो गया था। बालाजी विश्वनाथ (1713 ई॰) तथा योद्धा पुत्र बाजीराव प्रथम (1720-40 ई॰) सुदृढ़ उत्तर में अब निर्विवाद शासक बन गए।

1748 ई॰ में जब शाहू बीमार पड़ गए तो, उत्तराधिकार की समस्या उत्पन्न हुई। ताराबाई, जो इतने समय से सक्रिय राजनीति से दूर थीं एवं वापसी के लिए प्रयत्नरत थीं। उसने शाहू को संदेश भेजकर आश्च्र्य चकित कर दिया कि गोद लेने के लिए किसी की तलाश करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उसका अपना पोता उपस्थित है। ताराबाई ने स्पष्ट किया कि पन्हाला जेल में उसका

जन्म उसके पुत्र की मृत्यु के पश्चात हुआ था एवं प्रतिद्वंदी राजसबाई से बचाने हेतु उसने गाँव के एक ब्राह्मण जोड़े को पालने के लिए दे दिया था। बाद में बच्चे को बावड़ा में भगवंत राव के छोटे भाई शिवराम की पत्नी दुर्गाबाई के द्वारा गुप्त रूप से उसका पालन पोषण किया गया। राजवाड़े एवं पेशवा दफ्तर के दस्तावेज़ों के अनुसार, "बाद में शाहू के द्वारा दुर्गावती को उसकी सेवा के लिए करहद में सरदेशमुखी उगाही के लिए वेतन दिया गया था"।

महाराष्ट्र में, ताराबाई को एक षडयंत्रकर्ता के रूप में जाना जाता था। अतः सुनिश्चित करने हेतु ताराबाई से कहा। ताराबाई ने भगवंत राव राम चन्द्र का संदर्भ देते हुए कहा कि उन्हें राय राजा के गुप्त पालन-पोषण की जानकारी थी। राम चन्द्र ने भी इसकी पुष्टि कर दी।

हालाँकि, शाहू की बड़ी रानी सकवर बाई आश्वस्त होने में विफल रही एवं इसे रामराजा के नाम पर सत्ता पर फिर से कब्ज़ा करने हेतु बेहद चतुर ताराबाई की एक चालाक उक्ति के रूप में निंदा की।

शाहू ने रामराजा को अपनी उत्तराधिकारी बनाने का मन बना लिया था। शाहू के द्वारा प्रति लेख संख्या 2 में आदेश दिया गया है, "बालाजी पंडित प्रधान, हमें विश्वास है कि आप राज्य का उत्तरदायित्व निभाएंगे। आपको मेरा आशीर्वाद है, जो भी छत्रपति बनकर आएगा, वह आपको मंत्री पद पर बनाए रखेगा। सत्ता पर कब्ज़ा करने का प्रयास करें। राज्य को सुरक्षित रखें, मैं और क्या लिख सकता हूँ। आप स्वयं बुद्धिमान हैं"।

यह राज्य दस्तावेज़ के अविस्मरणीय है, क्योंकि इसने पेशवा की स्थिति को अजय बना दिया एवं सत्ता का सार पेशवा के हाथों स्थांतरित हो गया।

4 जनवरी 1750 ई॰ में शाहू के मृत्यु के 13 दिनों के पश्चात् प्रमुख मराठा सरदारों एवं उच्च राज्य गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में रामराजा सिंहासन पर बैठे।

रामराजा को भलि भाँति यह ज्ञात हो गया था कि, उनकी दादी ताराबाई ने अपना हित साधने के लिए उन्हें गद्दी पर बैठाया है। रामराजा मानसिक रूप से इतने निर्बल नहीं थे जितने उनके पिता।

ताराबाई अब रामराजा के नाम पर आदेश जारी करना प्रारंभ कर दिया एवं दादोबा प्रतिनिधि एवं उनके अधिकारी यामाजी शिवदेत की सहायता से शासन की बागडोर अपने हाथों में लेने के लिए सक्रिय कदम उठाए।

ताराबाई के इस उदंड कृत्य से सभी अप्रसन्न थे एवं वह चौंकाने वाली समाचार पूरे देश में फैल गई। सावनूर के त्रयंबक गिरमाजी ताराबाई की गतिविधियों के प्राप्त प्रतिवेदन का संदर्भ देते हैं। कारणतः पड़ोसी शक्तियाँ और अधीनस्थ सहयोगियों के साथ मराठा संबंधों पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया व्यक्त हुई। ताराबाई एवं पेशवा के मध्य दरार देखते हुए सावनर के नवाब ने मराठों को श्रद्धांजलि देना रोक दिया।

इस प्रकार ताराबाई अपनी मृत्यु तक महाराष्ट्र की राजनीति में एक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व बनी रहीं वह स्वयं को हर मामले से सूचित रखती थी। राज्य के महत्वपूर्ण मामले पर ताराबाई को इतिहास नारीवादी स्वरूप के राजनीतिक शक्ति के रूप में हमेशा याद रखेगा। 1701 ई॰ में अगर वह नहीं होती तो, संभव था कि औरंगज़ेब पूरी तरह मराठा शासन को समाप्त कर दिया होता एवं भारत का इतिहास काफी अलग होता। इतिहासकार जदुनाथ सरकार के अनुसार, "उस भयानक संकट ने उनके चरित्र और ताकत ने देश को बचाया"।

निष्कर्ष

ताराबाई ने अपनी उतार चढ़ाव वाली भरे लम्बे जीवन में अपने राष्ट्र के इतिहास को समेटा। पचपन में उनहोंने शिवजी के वैभव को चरम पर देखा। किशोरावस्था से पूर्व ही उनके घर में पुत्रवधु बन कर आयी। शिवजी की मृत्यु के पश्चात् मराठा साम्राज्य को संजोया। निःसंदेह ताराबाई इतिहास की एक उल्लेखनीय महिला थीं। स्वाभाविक रूप से यह जानने की जिज्ञासा होती है की ताराबाई अपनी सफलताओं के बावजूद चाँद बीबी तथा दुर्गावती जैसी प्रशंसनीय किउ नहीं रही। मराठा गणमान्यों का अनैतिक स्वार्थ, जिनसे उन्हें निपटना पड़ा। पृष्ठों के विरुद्ध अपनी रक्षा की एक हताश प्रयास।

ताराबाई एक राजनीतिक महत्वाकांक्षा वाली महिला थीं। एक ऐसी महिला जिसका शासन करने का जूनून राष्ट्री हिट पर भरी पड़ता है। एक ऐसी माता नैतिक तथा राजनीतिक किसी भी मूल्य पर अपने पुत्र की हितों की रक्षा के बारे में सोचतीं हैं। अपनी तमाम क्षमताओं के बावजूद, वह सवैधानिक रूप से व्यक्तिगत तथा पारिवारिक हितों से ऊपर उठने में असफल थीं। राजनीति के आरम्भिक दौर में किय गए मराठा राज्य के प्रति उनके समर्पण को उनकी सत्ता के प्रति स्वार्थपूर्ण जनून तथा गलत दिशा में उनकी हठ ने धूमिल कर दिया।

संदर्भ

1 ख़फ़ी खान, मुन्तख़ब -उल-लुबाब, अनुवादक एच. एम्. एल्लिओटॅड जॉन डॉसन, त्रुब्नेर एंड कम्प. 60, पटेरनोसटेरन रौ, लंदन, 1869, वॉल. II, पृ. 468

2 वही

3 अर्चना गडोरिया, वीमेन हू रुलड इंडिया, हचित्ते बुक पब्लिशिंग इंडिया, पृ० 179

4 ख़फ़ी खान, वॉल. II. पृ०.468

5 जदुनाथ सरकार, हिस्ट्री ऑफ़ औरंज़ेब, एम.सी. सरकार एंड संस, कलकत्ता, 1952, Vol. IV, पृ. 200

6 बावडा दफ्तर वॉल., डॉक्यूमेंट न. 23

7 भीमसेन सक्सेना, नुष्का -ए -दिलकुशा , अनुवादक - जदुनाथ सर्कार , सरकार एंड संस, कलकत्ता, वॉल. II पृ०.122.

8 भीमसेन, वही, वॉल II पृ. 1306

9 वही

10 भीमसेन, वही, वॉल. प्प पृ०1306; अखबारात, एंड 4 अप्रैल 1400 के अनुसार कर्ण की मृत्यु चचाक से हो जाती है मार्च 24, 1700; मास्सिर -ए -आलमगीरी , पृ. 420.

11 वही.

12 सी. ए. किनकैड एंड डी. बी. परनिस, ए हिस्ट्री ऑफ़ दी मराठा पीपल, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1925, वॉल. III, पृ०. 159.

13 जी. एस. सरदेसाई, राजाराम, लोकप्रिय प्रकाशन, पूना, 2010, पृ. 107.

14 भीमसेन, उपरोक्त, पृ०.133

15 भीमसेन, उपरोक्त, पृ०.133

16 ख़फ़ी खान, उपरोक्त, वॉल. II पृ. 468

17 सकी मुस्तैद खान, मासिर -ए -आलमगीरी, अनुवादक सर जदुनाथ सरकार

18 ख़फ़ी खान, वॉल., पृ. 468., 1922.

19 सर जदुनाथ सरकार, 1922.

20 ख़फ़ी खान., वॉल., पृ. 468

21 दी टर्म्स वेर आफ्रेड : रूहुल्ला खान, अनादर कंडीशन वास् दी मराठा किंग वास् टु बे एक्सेम्पटेड फ्रॉम पर्सनल अटेंडेंस एम्परर अकॉर्डिंग टु अखबारत ऑफ़ 12 मार्च, 1700.

22 किनकैड एंड पारसनिस , उपरोक्त, पृ. 180; भारतवर्ष, न. 5, वर्ष I, पृ. 39.

23 मनुक्की, वॉल. III, पृ०.505.

24 साक़ी मुस्तैद खान, मासिर -ए -आलमगीरी ; ए हिस्ट्री ऑफ़ एम्परर औरंगज़ेब आलमगीरी, अनु. सर जदुनाथ सरकार, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल, 1947,पृ०.448-457; सरदेसाई, राजाराम, पृ. 118.

25 सरकार, औरंगज़ेब. वॉल. V, पृ. 203.

26 मनुक्की, वॉल. III, पृ०.499.

27 ख़फ़ी खान, पृ. 510

28 सरदेसाई, बालाजी विश्वनाथ पेशवा, च.34; ब्रिज किशोर, तारा बाई एंड हर टाइम्स, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1963, पृ०.100-101.

29 ब्रिज किशोर.,पृ०.101-102.

30 यह पत्र विविध झयन विस्तार में फरवरी 1924 में दिया गया है नीलकंठ नरेश्वर प्रधान और परशुराम त्रिम्बक प्रतिनिधि के सील के साथ.

31 काव्य इतिहास संग्रह पट्टनयदि, डॉक्यूमेंट न. 495.

32 गोपाल दाजीबा दलवी, मराठा कुलांचे इतिहास, इंदु पारेख पब्लिकेशन, मुंबई, 1912, वॉल. I, पृ. 66

33 ब्रिज किशोर, पृ. 115

34 रजवाड़े, वॉल. II, न व.282, जो तारीख जनवरी 16,1708; इतिहास संग्राहतील प्राचीन मराठा सरदारस . पृ. 10-12

35 Brijkishore, op-cit., p.168

36 रजवाड़े, वॉल- VIII, no. 170 - 171; पेशवा दफ्तर, no. 26 - 40.29.

37 ऐतिहासिक संग्रह पेशवा दफ्तरातील माहिती , नव. 44;

38 पेशवा दफ्तर no. 6.5

39 ऐतिहासिक स्फुटिक लेख, 4.5
40 इतिहास संग्रह पेशवा दफातील माहिती, न व. 4.
41 पेशवा दफ्तर में, 26.132,140 भगवंत : रामचंद्र अमात्य मैक्स सम रिफ्लेक्शन अबाउट थे कम्पेटेन्सी ऑफ़ दी रामराजा
42 पेशवा दफ्तर, 26, 105.
43 वही, 26, 159
44 पेशवा दफ्तर, 28. 82.
45 सर जदुनाथ सरकार., वॉल. IV पृ. 200

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

बुंदेलखंड के स्वराज नायक : महाराजा छत्रसाल बुंदेला

शिवानी साहू
इतिहास विभाग
महाराजा छत्रासाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

सारांश

भारत की गौरवशाली इतिहास में देश के अनेक वीर सपूतों ने अपनी वीरता एवं शौर्य के बलबूते पर इतिहास में अपना नाम दर्ज करवाया है जो आज भी हम भारतीयों के हृदय में अजर अमर है। अपनी स्वतंत्रता की अस्तित्व हेतु संघर्षो में बहुत लोगों को उपयोगी संसाधन मिल गए जबकि कुछ लोगों के हिस्सों में केवल शत्रु और संघर्ष ही आए ऐसे ही कुछ चुनिंदा शूरवीरों में नाम आता है वीर प्रताप बुंदेलखंड केसरी महाराजा छत्रसाल बुंदेला का। महाराज छत्रसाल बुंदेलखंड के इतिहास में स्वाधीनता स्वाभिमान एवं वीरता के प्रतीक माने जाते हैं उन्होंने न केवल मुगल सत्ता के अत्याचारों का विरोध किया बल्कि एक स्वतंत्र बुंदेला राज की स्थापना करके भारतीय स्वराज की अवधारणा को मूर्त रूप दिया। उनके संघर्ष ने मुगल पराधीनता से मातृभूमि को स्वतंत्र करने हेतु बुंदेलखंड क्षेत्र में स्वराज की ज्योति प्रज्वलित की। उस समय भारत मुगल साम्राज्य के अधीन था और औरंगज़ेब की नीतियाँ धार्मिक असहिष्णुता, कर-वृद्धि और अत्याचार का प्रतीक बन चुकी थीं। ऐसे समय में छत्रसाल ने न केवल हथियार उठाए, बल्कि "स्वराज्य" की अवधारणा को स्थानीय स्तर पर साकार किया। इस संघर्ष में उनका मार्ग एवं पथ प्रदर्शन करने वाले महापुरुष और कोई नहीं उसे समय दक्षिण भारत में स्वराज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी महाराज थे। छत्रपति शिवाजी और बुंदेलखंड के कुंवर महाराज छत्रसाल की भी इतिहास की एक अनुपम घटना थी जिसने बुंदेलखंड के इतिहास में एक स्वर्णिम पन्ना जोड़ दिया। शिवाजी के द्वारा दिए गए स्वराज स्थापना के मूल मंत्र ने छत्रसाल को स्वतंत्र बुंदेलखंड राज्य की स्थापना हेतु प्रेरित किया। परिणाम स्वरुप अपनी आत्मविश्वास, वीरता एवं पराक्रम से महाराजा छत्रसाल ने बुंदेलखंड को मुगलों के चंगुल से स्वतंत्र कराया।

परिचय

देश के उन राष्ट्र सपूतों को कृतज्ञ देशवासी कभी विस्मृत नहीं कर सकते जिन्होंने शत्रुओ से अपने राष्ट्र गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए संघर्ष किया और अपनी प्राणों की आहुतियां दी। चाहे महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी हो या राजस्थान में महाराणा प्रताप, चाहे पंजाब में गुरु गुरु गोविंद सिंह हो या देश के हृदय प्रदेश बुंदेलखंड को बचाने वाले महान महाराजा छत्रसाल हो। छत्रसाल विशेष इस मायने में है क्योंकि उन को किसी राजओं की भांति उत्तराधिकार में राज्य संसाधन या सुख सुविधा नहीं मिली थी,मिले थे तो केवल पैतृक शत्रु।

छत्रसाल ने शून्य से यात्रा प्रारंभ कर अपनी शौर्य से शिखर प्राप्त किया था और अत्यंत गंभीर विषमताओं में केवल अपनी तलवार से समग्र बुंदेलखंड की मेड बनाई थी तब सारा देश का उठा था—

'इत जमुना, उत नर्मदा, इत चंबल, उत टोंस छत्रासाल से लरन की, रही ना काहू होस।'

आल्हा ऊदल की अद्भुत शौर्य परंपरा भूमि पर जन्मे छत्रसाल अपनी तरह के पहले और अप्रियतम बुंदेला ध्वजवाहक थे। वीरो एवं हीरो की धरती पर अपनी तलवार की आग से इतिहास रचने वाले छत्रसाल महान ने जो यशस्वी शौर्य गाथाएं गड़ी वे बेमिसाल थी। छत्रसाल का जन्म ही रणभूमि में तलवारों की खनखनाहट के बीच में ककर कचनाएं ग्राम की मोर पहाड़ियों (वर्तमान टीकमगढ़ मध्य प्रदेश) में चंपत राय की वीरांगना रानी माता लाल कुबरी के गर्भ से 1649 ई. हुआ था। पिता बुंदेलखंड मे ओरछा राज्य के कस्बे महेबा के सामान्य जागीरदार थे। उनके पिता जो उसे वक्त मुगलों से संघर्षरत थे उस समय राज्य की स्थिति दयनीय थी।

जो कि इस दोहे के माध्यम से व्यक्त की गई है-

'प्रलय पयोधि उमंग में ल्यो गोकुंल जदूराय, त्यों बूढत बुंदेल कुल राख्यो चंपत राय।'

जब छत्रसाल 12 वर्ष के थे तभी 1661 ईस्वी में पिता और माता को दुश्मनों ने घेरकर आत्मा आहुति को बात किया था। उस असहाय बोध बालक की आप कल्पना कीजिए जिसके बचपन में मां-बाप नहीं रहे जिसके पास ना धन था ना सेना न राज न काज संगी न साथी, था तो केवल बुंदेला स्वाभिमान और और बुंदेला बांकापन। इसलिए वह टूटा नहीं, झुका नहीं, रुका नहीं, चल पड़ा अकेले ही मात्र कुछ जन समर्थन के बल पर अपने स्वराज प्राप्ति के लक्ष्य पर।

महाराजा छत्रसाल का संघर्ष

माता-पिता की वीरगति को प्राप्त हो जाने के पश्चात छत्रसाल कुछ समय तक उन्होंने अपने ननिहाल में समय व्यतीत किया और स्वयं को शस्त्र विद्या में निपुण किया। किंतु निरंतर उनके हृदय मुगलों से प्रतिशोध लेने हेतु उद्वेलित था परंतु उचित सहायता एवं शक्ति के अभाव में मुगलों या अपने ही शत्रु से लोहा लेने की क्षमता उनमें अभी न थी। संघर्षों के बीच उन्होंने उनका विवाह पवार वशी कन्या देव कुवँर से हो गया। मुगलों के विरुद्ध विद्रोह करने हेतु चंपत राय के पुत्र को बुंदेलखंड से कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। अतः निराश होकर छत्रसाल ने मुगल सेवा में ही नौकरी करने का निश्चय किया और राजा जयसिंह की सेवा में भती होकर छत्रसाल ने विभिन्न युद्धो में अभूतपूर्ण शौर्य और वीरता का परिचय दिया। किंतु उन्होंने अनुभव किया कि उनकी सेवाओं को यतीश रूप से पुरस्कृत नहीं किया गया है, छत्रसाल वैसे भी मुगलों से असंतुष्ट थे किंतु इन सभी कार्यों से उनकी असंतुष्टता और अधिक बढ़ गई।

छत्रसाल और शिवाजी की भेंट

उस समय दक्षिण भारत में मुगलों से संघर्ष लेने वाले छत्रपति शिवाजी महाराज करती संपूर्ण भारतवर्ष में फैल रही थी। शिवाजी की वीरता के किस सुनकर छत्रसाल भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित और आकर्षित हुए तथा मुगलों की ओर से शिवाजी के विरूद्ध युद्ध करना उन्हें लज्जा जनक प्रतीत हो रहा था। अतः महाराज छत्रसाल एक दिन शिकार के बहाने मुगल सेवा से भाग निकले और शिवाजी से भेंट करने दक्षिण की ओर चल पड़े, जंगली तथा पहाड़ी दुर्गम मार्गो से होते हुए भीमा नदी पार की। छत्रसाल के आने की सूचना शिवाजी को पहले ही प्राप्त हो गई थी। शिवाजी ने प्रेमपूर्वक उनका स्वागत किया। इस प्रकार शिवाजी और छत्रसाल जैसे दो महान शूरवीरों का का यह मिलन क्षण इतिहास के पन्नों पर दर्ज हो गया। छत्रपति शिवाजी ने छत्रसाल से कुशलक्षेम पूछा और वीर चंपत राय को श्रद्धांजलि दी। छत्रसाल कुछ समय तक छत्रपति शिवाजी के सानिध्य में रहे और पुणे में रहकर उन्होंने युद्ध कौशल, कूटनीति एवं शासन संगठन के संबंध में बहुत सी जानकारियां प्राप्त की जिनका उपयोग बाद में उन्होंने सफलतापूर्वक बुंदेलखंड में किया। छत्रसाल दक्षिण में ही रहकर शिवाजी के स्वराज में सहायता करना चाहते थे, किंतु शिवाजी ने उन्हें बुंदेलखंड में जाकर अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता हेतु संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। शिवाजी ने छत्रसाल की बातों का उत्तर छत्र प्रकाश में वर्णित दोहे के रूप में दिया—

'शिवा किसा सुनी कैकही तुम्ही छत्री सिराताज आई जीत अपनी भूमि को, करो देश को राज, आई करो देश को राज छतोरे, हम तुम तें कबहुं नहीं न्यारे, दौरि देस मुगलन को मारो दबाति दिल्ली के दल संहारों। अर्थात छत्रसाल तुम क्षत्रियों के मुकुटमाणी के समान हो तुम्हें लड़ना चाहिए, अपनी जमीन वापस जीतनी चाहिये और उन पर शासन करना चाहिए। मैं तुमसे अलग नहीं हूं। मुगलों से लड़ो और उन्हें हराओ।'

इस प्रकार शिवाजी से भावभीनी विदाई लेकर महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड की ओर प्रस्थान किये।

छत्रसाल का बुंदेलखंड में स्वराज संघर्ष का आरंभ

शिवाजी द्वारा प्रेरित होकर छत्रसाल पुनः उत्तरी भारत लौट आए। इस समय भी छत्रसाल का भविष्य अंधकार में था उनके पास ना तो साधन थी ना ही सैनिक। तभी एक अप्रत्याशित घटना जिसने बुंदेलखंड का वातावरण छत्रसाल के पक्ष में परिवर्तित कर दिया था वह थी औरंगजेब की धार्मिक नीति। इस घटना ने बुंदेलखंड में मुगल विरोधी लहर पैदा की। और ओरछा के सुजान सिंह छत्रसाल का सहयोग करने को तैयार हो गये। छत्रसाल ने अपनी मां के कुछ गहनों को बेचकर एक छोटी सी सेना एकत्र कर मुगलों के विरुद्ध स्वाधीनता संघर्ष का शंखनाद किया। 1672 में उन्होंने धमौनी के फौजदार खालिक को रानगीर में परास्त किया। वासा के जमींदार को हरा के सागर पर अधिकार कर लिया तथा 1775 में पन्ना के गोंड शासक को परास्त कर पन्ना पर अधिकार कर लिया और उसे अपनी राजधानी बनाया। शीघ्र ही छत्रसाल की शक्ति इतनी बढ़ गई की बहादुरी का डंका पूरे उत्तर

भारत में बजने लगा। 1 जनवरी 1707 ई को औरंगजेब ने छत्रसाल को राजा की उपाधि एवं 4000 का मनसव दिया।

निष्कर्ष

महाराजा छत्रसाल बुंदेला भारतीय इतिहास की उन नायक में से हैं जिन्होंने स्थानीय स्तर पर स्वतंत्रता की चेतना जगाई। उनका जीवन यह प्रमाणित करता है कि स्वराज केवल राजनीतिक सत्ता नहीं बल्कि जनता के स्वाभिमान की अभिव्यक्ति है। उन्होंने न केवल मुगल शासन का प्रतिरोध किया बल्कि अन्याय के विरुद्ध लोगों को संघर्ष करने का आदर्श प्रस्तुत किया। संसाधनों की कमी होने के बाद भी उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी बल्कि और अधिक दृढ़ निश्चायी हुए और अंत में समस्त कठिनाइयों पर विजय पाई। उन्होंने शिवाजी की प्रेरणा से जिस प्रकार औरंगज़ेब की धार्मिक नीति का विरोध किया,जिसमें उन्हें हिंदू प्रजा का भी सहयोग मिला।उन्होंने राजनीति के जो गुण शिवाजी के समीप रहकर सीखे थे उसमे वो सफल भी रहे। बुंदेलखंड की जनसाधारण की हृदय में छत्रसाल की प्रतियोगिता गहरी श्रद्धा है जो उनके कार्यों के मूल्यांकन की सही कसौटी है जो सदा लोगों की हृदय में जीवित रहेगी।

संदर्भ

1. बुंदेलखंड का इतिहास - गोरेलाल तिवारी
2. बुंदेलखंड का इतिहास - बी.के. श्रीवास्तव
3. बुंदेलखंड केसरी महाराजा छत्रसाल बुंदेला - डॉ. भगवान दास गुप्त
4. हिस्ट्री ऑफ़ द मराठस - ग्रैंड डफ
5. न्यू हिस्ट्री ऑफ़ द मराठा - डॉ. गोविंद सखाराम देशमुख

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

राष्ट्रवाद के संवाहक के रूप में संस्कृति, भाषा और साहित्य : भारत के संदर्भ में

दुर्गेश नंदिनी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, म. म. महिला कॉलेज, आरा
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार
डॉ. सुधा निकेतन रंजनी
शोध निर्देशिका एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
म. म. महिला कॉलेज, आरा
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

शोध सार

संस्कृति, भाषा और साहित्य ये तीनों न केवल एक राष्ट्र की पहचान को गढ़ते हैं, बल्कि राष्ट्रवाद के विचार को भी जन्म देते हैं। भारत जैसे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश में, इन तत्वों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। संस्कृति राष्ट्र का प्रमुख तत्व है जो राष्ट्र निर्माण और पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सांस्कृतिक एकता के अभाव में राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा एकता और राष्ट्रीय पहचान का माध्यम है। भारत के संदर्भ में हिंदी को संपर्क भाषा के रूप में उभारा गया जिससे एकता और राष्ट्रवाद को बल मिला। साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे राष्ट्रवाद को सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर मजबूती मिली। संस्कृति, भाषा और साहित्य राष्ट्रवाद के स्थायी स्तंभ हैं। वे न केवल अतीत की स्मृतियों को जीवित रखते हैं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी राष्ट्र की आत्मा को पोषित करते हैं। आज के वैश्वीकरण के दौर में इन तीनों तत्वों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो गई है, ताकि राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान सुरक्षित रह सके। सांस्कृतिक विविधता के बीच एकता का सूत्र बनाए रखना आज की आवश्यकता है। प्रस्तुत आलेख संस्कृति की अभिव्यक्ति, भाषा की भूमिका और साहित्यिक रचनाओं को राष्ट्रवाद की अवधारणा को जोड़ता है तथा राष्ट्रवाद के संवाहक के रूप में इनकी भूमिका का विश्लेषण करता है। यह शोध–पत्र वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। इस आलेख के लिए प्राथमिक स्रोत (मूल ग्रंथ, दस्तावेज, भाषण आदि) और द्वितीयक स्रोत (पुस्तकें, शोध पत्र, समाचार पत्र आदि) का अध्ययन किया गया है।

बीज शब्द :– संस्कृति, भाषा, साहित्य, राष्ट्र, राष्ट्रवाद।

मनुष्य के क्रमिक विकास के इतिहास में संस्कृति, भाषा और साहित्य का उल्लेखनीय महत्व है। ये तीनों ही मानव जीवन की अभिव्यक्ति के प्रमुख माध्यम हैं। जब मनुष्य ने समाज में रहना आरंभ किया तब उसके आचार–विचार, रहन–सहन, रीति रिवाज, विश्वास और जीवन पद्धति ने एक नया रूप लिया जिसे संस्कृति कहा गया। तदुपरांत धीरे–धीरे मनुष्यों ने विचारों के आदान–प्रदान के लिए एक माध्यम की आवश्यकता महसूस की। उन्होंने विचार विनिमय के लिए ध्वनियों, संकेतों और प्रतीकों का प्रयोग किया जिसके कारण आगे चलकर भाषा का निर्माण हुआ। भाषा न केवल विचारों के आदान–प्रदान का माध्यम बनी बल्कि संस्कृति के प्रसार का भी माध्यम बनी। भाषा जब पुष्पित–पल्लवित हुई तब मनुष्यों ने अपने अनुभवों, विचारों और अपनी भावनाओं को कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करना शुरू किया।

फलस्वरूप साहित्य का जन्म हुआ। साहित्य ने भाषा के माध्यम से संस्कृति को बढ़ाने और संरक्षित करने का कार्य किया।

संस्कृति किसी राष्ट्र की आत्मा और पहचान का मूल आधार होती है। यह राष्ट्र की जीवन–शैली, परंपराओं, नैतिक मूल्यों, कला, आस्था और सामाजिक व्यवहारों का समुच्चय है। राष्ट्र के निर्माण में संस्कृति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यही वह शक्ति है जो नागरिकों में एकता, अनुशासन और साझा पहचान की भावना उत्पन्न करती है। संस्कृति समाज को नैतिक दिशा देती है और विविधताओं के बीच समरसता स्थापित करती है। शिक्षा, कला, त्योहार और परंपराओं के माध्यम से संस्कृति नई पीढ़ी में राष्ट्रप्रेम और कर्तव्यबोध का संचार करती है। संस्कृति राष्ट्रनिर्माण की वह प्रेरक शक्ति है जो न केवल भूतकाल की गौरवशाली परंपराओं को सुरक्षित रखती है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के निर्माण की दिशा भी निर्धारित करती है। इसके अतिरिक्त भाषा केवल संचार का माध्यम नहीं है, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय एकता को बढ़ाने का एक प्रमुख माध्यम भी है। राष्ट्र के निर्माण में भाषा की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण होती है, क्योंकि भाषा नागरिकों को एक साझा पहचान से जोड़ती है। भारत जैसे बहुभाषी देश में भाषाई विविधता राष्ट्र की सांस्कृतिक शक्ति का प्रतीक है, जो संवाद, सह–अस्तित्व और समन्वय की भावना को सुदृढ़ करती है। भाषा न केवल अभिव्यक्ति का उपकरण है, बल्कि राष्ट्र की एकता, प्रगति और पहचान की आधारशिला भी है। जब हम साहित्य की बात करते हैं तब यह पाते हैं कि साहित्य समाज की भावनाओं, विचारों और संघर्षों को अभिव्यक्त करता है साथ ही राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने और राष्ट्रनिर्माण की प्रक्रिया को दिशा देने का भी कार्य करता है। यह राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक पुनर्निर्माण का सशक्त उपकरण है। साहित्यकार अपने रचनात्मक लेखन के माध्यम से जनता में देशभक्ति, एकता, सामाजिक न्याय और नैतिक मूल्यों का संचार करते हैं।

राष्ट्र और राष्ट्रवाद एक–दूसरे के पूरक तथा अविभाज्य तत्व हैं। 'राष्ट्र' केवल भौगोलिक सीमा या राजनीतिक इकाई नहीं होता, बल्कि यह साझा इतिहास, संस्कृति, भाषा, परंपरा और भावनात्मक एकता से निर्मित एक जीवंत इकाई है। वहीं 'राष्ट्रवाद' वह भावना है जो नागरिकों में अपने राष्ट्र के प्रति गर्व, निष्ठा और एकता की चेतना उत्पन्न करती है। राष्ट्रवाद वह वैचारिक शक्ति है जो समाज के विविध वर्गों को एक सूत्र में बाँधती है और राष्ट्र की स्वतंत्रता, अखंडता तथा प्रगति के लिए प्रेरित करती है। इतिहास साक्षी है कि भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवाद ने जन–जन में जागृति लाई और सांस्कृतिक एकता की भावना को सशक्त किया। आधुनिक युग में भी राष्ट्रवाद राष्ट्र के विकास, स्वाभिमान और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा के लिए आवश्यक है।

संस्कृति जीवनशैली है। इसे केवल कला और दर्शन तक सीमित कर देना इसके अर्थ को संकुचित कर देना है। धर्म, भाषा, साहित्य, कला, वेशभूषा, रहन–सहन, आचार–विचार सब संस्कृति का अंग है। "संस्कृति वह तत्व है, जो राष्ट्र रूपी वृक्ष के निर्माण में उर्वरक का काम करती है। संस्कृति ही राष्ट्र का सांस्कृतिक स्वरूप तैयार करके उसे महत्ता प्रदान करती है।"[1] संस्कृति ही राष्ट्र बनने की इच्छा को जन्म देती है। सांस्कृतिक एकता के अभाव में राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। यही कारण है कि इसे राष्ट्र की आत्मा भी कहा गया है।

संस्कृति एक राष्ट्र के निर्माण और उसकी पहचान में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल लोगों की जीवन शैली और परंपराओं का प्रतिनिधित्व करती है, बल्कि राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता और सामूहिक पहचान को भी मजबूती प्रदान करती है। संस्कृति एक राष्ट्र की सामूहिक पहचान और विरासत को संजोती और संप्रेषित करती है। इसमें ऐतिहासिक घटनाएँ, साहित्य, कला, संगीत, नृत्य और लोककथाएँ शामिल होती हैं।

संस्कृति राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। साझा सांस्कृतिक मूल्यों, मान्यताओं और परंपराओं के माध्यम से लोग एक दूसरे से जुड़ते हैं और एक सामूहिक पहचान का निर्माण होता है। यह राष्ट्र की एकता और अखंडता को मजबूत करता है। संस्कृति सामाजिक समूहों के बीच संवाद, सहयोग और सहिष्णुता को बढ़ावा देती है। विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम, त्योहार और सामाजिक अनुष्ठान समाज में आपसी समझ और समरसता को प्रोत्साहित करते हैं, जिससे सामाजिक स्थिरता और शांति सुनिश्चित होती है। संस्कृति समाज के नैतिक और मानव मूल्यों को परिभाषित और प्रोत्साहित करती है। यह लोगों को सही और गलत की समझ देती है और नैतिकता के आधार पर सामाजिक व्यवहार को मार्गदर्शित करती है। संस्कृति शिक्षा और ज्ञान का आधार है। परंपरागत ज्ञान, लोककथाएँ और सांस्कृतिक अनुष्ठान शिक्षा के माध्यम से पीढ़ी दर पीढ़ी संप्रेषित होते हैं। यह शैक्षिक प्रणाली को समृद्ध बनाता है और लोगों को अपनी जड़ों और पहचान से जोड़ता है।

संस्कृति आर्थिक गतिविधियों को भी प्रभावित करती है। सांस्कृतिक पर्यटन, हस्तशिल्प, और पारंपरिक उद्योग राष्ट्र की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। यह न केवल आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है, बल्कि सांस्कृतिक

धरोहर को भी संरक्षित करता है। संस्कृति एक राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय पहचान और छवि को भी प्रभावित करती है। यह राष्ट्र को वैश्विक मंच पर एक विशिष्ट पहचान और प्रतिष्ठा प्रदान करती है। अंतर्राष्ट्रीय सांस्कृतिक कार्यक्रम और आदान–प्रदान वैश्विक स्तर पर राष्ट्र की संस्कृति को प्रस्तुत करने का माध्यम होते हैं।

भारत एक विविधतापूर्ण संस्कृति का धनी राष्ट्र है। यहाँ विभिन्न भाषाएँ, धर्म, त्योहार और परंपराएँ मिलकर भारतीय संस्कृति को समृद्ध बनाते हैं। भारतीय संस्कृति ने राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता और अंतर्राष्ट्रीय पहचान को मजबूत किया है। योग, आयुर्वेद, भारतीय संगीत, नृत्य और कला की अंतर्राष्ट्रीय पहचान ने भारत को वैश्विक मंच पर प्रतिष्ठा दिलाई है। संस्कृति राष्ट्र निर्माण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह न केवल एक राष्ट्र की सामूहिक पहचान और विरासत को संजोती है, बल्कि राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता और आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहित करती है। संस्कृति की शक्ति एक राष्ट्र को आंतरिक और बाहरी दोनों स्तरों पर मजबूत बनाती है, जिससे उसका समग्र विकास और स्थिरता सुनिश्चित होती है।

भाषा ने लोगों को एकसाथ जोड़ने का काम किया। यह एकसूत्रता कायम करने का सशक्त माध्यम बनी। भाषा से ही सांस्कृतिक मूल्य जीवित रहते हैं। आधुनिक राष्ट्र के निर्माण में भाषा की भूमिका को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों के उपरांत यूरोप और संसार के अन्य भागों में राष्ट्रों का निर्माण व्यापार, बाजार और समान भाषा के विकास से हुआ। वर्तमान में ऐसे कई राष्ट्र हैं जो भाषा के आधार पर निर्मित हुए हैं। परंतु यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि राष्ट्र के अस्तित्व के लिए यह आवश्यक नहीं कि एक ही भाषा का व्यवहार हो। इसीलिए राष्ट्र को रूपायित करने वाले तत्वों में से भाषा को एक अनिवार्य तत्व नहीं माना जा सकता। अर्नेस्ट रेनन ने भी कहा है "भाषा लोगों को एक बनाने का निमंत्रण देती है, लेकिन इस के लिए मजबूर नहीं करती है।"[2]

भाषा राष्ट्र को निर्मित करने वाले महत्वपूर्ण तत्वों में से एक है। यह न केवल संचार का माध्यम है, बल्कि सांस्कृतिक पहचान, एकता और सामाजिक समरसता का भी प्रतीक है। भाषा एक राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान और विरासत को संरक्षित और संप्रेषित करने का माध्यम होती है। यह साहित्य, लोककथाओं, गीतों और परंपराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ाने में सहायक होती है। भाषा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक साझा भाषा लोगों के बीच संवाद और समझ को आसान बनाती है, जिससे सामाजिक समरसता और सामूहिक पहचान मजबूत होती है। भाषा सामाजिक समूहों के बीच संवाद और संपर्क को बढ़ावा देती है, जिससे सामाजिक समरसता और आपसी समझ बढ़ती है। यह विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक समूहों के बीच पुल का काम करती है। भाषा एक राष्ट्र की अंतर्राष्ट्रीय पहचान को भी प्रभावित करती है। एक मान्यता प्राप्त और व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा राष्ट्र की वैश्विक पहचान और प्रभाव को बढ़ाती है।

बहुभाषी समाजों में विभिन्न भाषाएँ सांस्कृतिक विविधता और समृद्धि को बढ़ावा देती हैं, जिससे राष्ट्रीय संस्कृति और पहचान अधिक समृद्ध होती है। भारत में, हिंदी और अंग्रेजी प्रमुख आधिकारिक भाषाएँ हैं, लेकिन संविधान द्वारा 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है। यह भाषाई विविधता भारतीय समाज की सांस्कृतिक विविधता को दर्शाती है। हिंदी भाषा ने राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भाषा एक राष्ट्र को बनाने और राष्ट्रवाद की अवधारणा को संजोने का एक महत्वपूर्ण तत्व है। यह संचार, शिक्षा, प्रशासन और सांस्कृतिक पहचान के माध्यम से एक राष्ट्र की एकता स्थिरता और विकास को सुनिश्चित करती है। भाषा की शक्ति न केवल व्यक्तिगत स्तर पर, बल्कि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी महत्वपूर्ण है।

साहित्य ने राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। गद्य साहित्य– विशेषकर कथात्मक गद्य (उपन्यास, कहानी) और कथेतर गद्य (निबंध, भाषण, पत्र–पत्रिका, यात्रा–वृतांत, आत्मकथा आदि) ने राष्ट्रवादी आंदोलन में जनचेतना के निर्माण में अपनी सार्थक भूमिका अदा की। कथात्मक गद्य ने भावनात्मक दृष्टि से राष्ट्र की चेतना उभारा तथा कथेतर गद्य ने तर्क, विचार और वैचारिक स्तर पर राष्ट्रवाद की अवधारणा को मजबूत करने का काम किया। भारत के संदर्भ में इन दोनों गद्य–रूपों ने राष्ट्र और राष्ट्रवाद की अवधारणा को जन–जन तक पहुँचाया।

उन्नीसवीं सदी में जब अंग्रेजी शासन के विरोध में राष्ट्रीय एकता की भावना को प्रबल करने की आवश्यकता पड़ी तब भारतीय उपन्यासकारों एवं कहानीकारों ने अपने लेखन के माध्यम से सामाजिक विषमता और राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी। तत्कालीन प्रमुख रचनाकारों में बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद आदि प्रमुख थे जिन्होंने भावनात्मक तथा प्रतीकात्मक रचनाओं के माध्यम से जनता में राष्ट्रीय चेतना और भावनात्मक एकता उत्पन्न की। इसके अतिरिक्त विभिन्न साहित्यकारों एवं विचारकों, जैसे राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर, पंडित

जवाहरलाल नेहरू, डॉ. भीम राव अम्बेडकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी, भारतेन्दु हरिश्चंद्र, राधामोहन गोकुल, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि, द्वारा रचित निबंध, लेख, आत्मकथाएँ, संस्मरण, भाषण, यात्रा–वृत्तान्त, पत्र–पत्रिकाओं ने राष्ट्रवाद को वैचारिक आधार दिया। दोनों गद्य रूपों ने मिलकर भारतीय राष्ट्रवाद को भावनात्मक एवं बौद्धिक स्तरों पर पोषित किया। प्रेमचंद ने साहित्य को जीवन के यथार्थ चित्रण और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से जोड़कर इसे मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं का वर्णन माना। उनके अनुसार साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक यथार्थ और मानवीय संवेदनाएँ प्रमुख होती हैं। उन्होंने कहा कि साहित्य केवल मनोरंजन नहीं बल्कि सामाजिक सुधार और मानवीय चेतना का माध्यम है।[3] इस प्रकार राष्ट्रवाद के संवाहक के रूप में साहित्य का योगदान अतुलनीय है।

"अंधकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं
मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं ।।"[4]

फलस्वरूप साहित्य केवल सौंदर्यबोध का विषय नहीं, वह राष्ट्र की आत्मा को आकार देने वाला माध्यम है। स्वतंत्रता संग्राम से लेकर आधुनिक युग तक साहित्य ने भारत में राष्ट्रवाद के भाव को जीवित रखा है। यह कहना उचित होगा कि साहित्य राष्ट्रवाद का संवाहक ही नहीं, प्रेरक भी है। राष्ट्रवाद केवल एक राजनीतिक अवधारणा नहीं, बल्कि यह एक सांस्कृतिक चेतना है जो नागरिकों को उनकी साझी स्मृतियों, मूल्यों और प्रतीकों के माध्यम से एक सूत्र में बाँधती है।

निष्कर्ष :– संस्कृति, भाषा और साहित्य न केवल राष्ट्रवाद के संवाहक हैं, बल्कि राष्ट्र निर्माण के आधार स्तंभ भी हैं। ये तीनों तत्व व्यक्ति को राष्ट्र से जोड़ते हैं, उसमें गौरव की भावना भरते हैं और राष्ट्रवादी चेतना को आकार देने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ स्रोत

1. श्रीवास्तव, जितेंद्र, भारतीय समाज, राष्ट्रवाद और प्रेमचंद, सामयिक प्रकाशन, 2017, पृ– 16
2. रेनन, अर्नेस्ट, 'व्हाट इज नेशन', पृ–16
3. प्रेमचंद, कुछ विचार, लोकभारती प्रकाशन, 2013, पृ– 22
4. समाचार पत्र– 'आज', 3 फरवरी 2000, गुरुवार, लेखक– रामजी सिंह (शीर्षक– स्वराज्य की अपूर्ण यात्रा)
5. https://www.iasbook.com/hindi/hindi-katha-sahitya/
6. गांधी, महात्मा, हिन्द स्वराज, प्रभात प्रकाशन, 2019
7. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, 2011
8. नेहरू, जवाहरलाल, हिन्दी अनुवाद व संपादक– श्री रामचन्द्र टंडन, हिंदुस्तान की कहानी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 2020
9. प्रेमचंद, प्रेमचंद के विचार (भाग–1), प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008
10. शर्मा, रामविलास, भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
11. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2014

www.bohalsm.blogspot.com
Impact Factor : 8.642
Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ नागपूर जिल्हा)

देवानंद एन. कांबळे
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग
संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती
डॉ. किशोर ऊ. राऊत
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग
संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

गोषवारा :-

वरिल संशोधन पत्रात महाराष्ट्रातील नागपूर जिल्हयातील औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन या परिणाम काय झाला हे तपासले आहे. ग्रामीण भागात औद्यागिकीकरणा मूळे ग्रामीण समाजात सामाजिक, आर्थिक, व सांस्कृतीक या घटकांचे विश्लेषण करूण निष्कर्षा पर्यंत पोहचलो आहे त्या मध्ये असे दिसुन येते की औद्योगिक विकास हा प्रामुख्याने औद्योगिक क्षेत्र, मिहान, बुटिबोरि, हिंगणा एमआयडिसी, कळमेश्वर, कामठी, आणि सावनेर अशा ही ग्रामीण समुदायासाठी महत्वपुर्ण संधी आणि आव्हानांचा एक जटील व तेवढाच महत्वाचा मैलाचा दगड ठरला आहे. असे म्हणावे लागेल. या भागात रोजगार निर्मीती आणि तेथे पायाभुत सुविधांचा आढावा आपणास विकासा दरम्यान घेता येतो. औद्योगिकीकरणामुळे एकाच वेळी "ातीचे क्षेत्र कमी होणे ग्रामीण भागात रोजगार तर निर्माण झाला पण स्थानीक पातळी वरील रोजगाराचे प्रमाण हे नगण्य दिसते. औद्योगिकीकरण हा आधुनिकतेचा एक मुलभुत घटक असुन तो ग्रामीण समुदायावर विविध घटकांवर परिणाम झालेला आहे. विशेशतः ग्रामीण समुदायात औद्योगिकीकरणामुळे केवळ आर्थिकच नव्हे तर सामाजिक, सांस्कृतिक आणि पर्यावरणीय स्तरावरही मोठया प्रमाणात परिवर्तन झाले आहे. या संशोधनाचा उद्देश नागपूर जिल्हयातील ग्रामीण भागांमध्ये औद्योगिकीकरणामुळे झालेल्या सामाजिक परिवर्तनांचा समाजशास्त्रीय दृष्टीकोन अभ्यासने हा आहे.

नागपूर जिल्ह्यतील औद्योगिक विकासामुळे शेतीवर आधारित पारंपारीक जीवनशैलीत फार मोठा बदल झाला आहे. रोजगाराच्या नव्या संधी उपलब्ध झाल्यामुळे अनेक ग्रामीण तरूण कारखान्यामध्ये काम करण्यासाठी स्थलांतरित झाले आहेत. यामुळे कुटुंबव्यवस्थेचे स्वरूप बदलले असून संयुक्त कुटुंबाऐवजी विभक्त कुटुंबपध्दती वाढिस लागली आहे. शिक्षणाची गरज, स्त्रियांची आर्थिक सहभागिता आणि नव्या जीवनशैलीचा अंगीकार यामुळे ग्रामीण समुदाय अधिक गतिमान झाला आहे. असे म्हणता येईल. औद्योगिकीकरणामूळे सामाजिक जाळयामध्ये सुद्धा संबंधामध्ये फरक पडला आहे. परंपरागत जाती व्यवस्थेतचा प्रभाव कमी होत असुन आर्थिक क्षमतेनुसार प्रतिश्ठा ठरवली जात आहे. तथापी, या सर्व सकारात्मक बदलांसोबत काही नकारात्मक परिणामही दिसुन येतात.

कीवर्ड :– औद्योगिकीकरण, ग्रामीण समुदाय, सामाजिक परिवर्तन, स्थलांतर, कुटुंबव्यवस्था, शिक्षण, स्त्री सहभाग, पारंपारिक व्यवसाय, पर्यावरणीय असंतुलन, सामाजिक समावेशकता,

प्रस्तावना : भारत हा प्राचीन काळापासुन कृषिप्रधान देश मानला जातो. भारतातील ग्रामीण भाग हा पारंपारिक शैती, कृषी आधारित व्यवसाय आणि सांस्कृतीक परंपरावर आधारित जीवनशैलीसाठी प्रसिद्ध आहे. परंतु एकोनिसाव्या

शतकात ब्रिटिश सत्तेच्या आगमनानंतर आणि विशेशतः स्वातंत्र्योनंतर भारतात औद्योगिकीकरणाची प्रक्रिया वेगाने घडु लागली. औद्योगिकीकरणाचा प्रभाव केवळ शहरांपुरता मर्यादित न राहता तो ग्रामीण भागांपर्यंत पोहचला आहे या प्रक्रियेमुळे ग्रामीण जीवनशैलीत, सामाजिक रचनेत, आर्थिक घडामोडिंमध्ये आणि साांस्कृतीक मुल्यांमध्ये विविध पातळयांवर बदल घडुन आले आहेत. औद्योगिकीकरण म्हणजे उत्पादनाच्या पारंपारीक पद्धतींपासुन यांत्रिक व तांत्रिक प्रक्रियांकडे झालेला झुकाव. ही प्रक्रिया विशेषतः उत्पादन क्षेत्रात यंत्रांचा वापर वाढवते, उद्योगधंद्यांना चालना देते आणि रोजगाराच्या नव्या संधी निर्माण करते. परंतु त्याच वेळी यामुळे ग्रामीण समाजाच्या पारंपारिक रचनेत अनेक मुलभुत बदलही होताना दिसतात. यामध्ये सामाजिक मुल्यव्यस्था, नातेसंबंध, स्त्री – पुरूष भूमिका, कुटुंबसंस्था, धार्मिक व सांस्कृतीक जीवनशैली यांचा समावेश होतो.

नागपूर जिल्ह्याचा विचार केला तर हा जिल्हा महाराष्ट्रातील विदर्भ विभागात येतो आणि औद्योगिक दृष्टीकोणातुन हा एक महत्वाचा भाग मानला जातो. येथील काही ठिकाणी मोठे औद्योगिक प्रकल्प, एमआयडिसी परिसर, कोळसा खाणी, वीज निर्मीती केंद्रे आणि विविध प्रकारचे उत्पादन उद्योग कार्यरत आहेत. यामुळे येथिल ग्रामीण समाजावर औद्योगिकीकरणाचा परिणाम लक्षणीय स्वरूपाचा झाला आहे. पारंपारिक "ेतीवर अवलंबुन असलेले ग्रामीण कुटुंब आता उद्योगक्षेत्राशी जोडले गेले आहेत. युवकांना रोजगाराच्या शोधात गावातुन "हरांकडे स्थलांतरित होत आहेत. महिलाही आता आर्थिक उपार्जनाच्या प्रक्रियेत सहभागी होत आहेत. औद्योगिकीकरणामुळे समाजात नविन तंत्रज्ञान, "हरि जीवनशैली, शिक्षण आणि आरोग्य विशयक सुविधा यांचा प्रसार वाढत आहे. त्यामुळे ग्रामीण भागातील जनतेचे जीवनमान सुधारण्यास मदत झाली आहे. परंतु या प्रक्रियेला नकारात्मक पैलुसुद्धा आहेत. उदाहरणार्थ, जमिनींचे अधिग्रहण, शेतकश्यांच्या समस्या, प्रदुषण, सामाजिक ताण–तणाव, पारंपारिक व्यवसायाचे लोप होण, सांस्कृतीक मुल्यांचा ऱ्हास आणि सामाजिक विषमतेत वाढ अशा विविध समस्या औद्योगिकीकरणासोबत वाढत आहेत.

समाजशास्त्रीय दृष्टीकोनातुन पाहता, ग्रामीण समुदाय हे एक सजीव व चालु असलेले रचनात्मक घटक आहे. या समाजात जेव्हा कोणताही मोठा बदल होतो. जसे की औद्योगिकीकरण तेव्हा समाजातिल विविध घटकांवर त्याचा थेट व अप्रत्यक्ष परिणाम होतो ग्रामीण समाजातिल पारंपारिक रचना – जसे की जातीव्यवस्था, संयुक्त कुटुंबपद्धती, धार्मीक परंपरा या सर्वांमध्ये बदल घडुन येतो. काही ठिकाणी याचे स्वागत होत असले तरी काही ठिकाणी हे परिवर्तन अस्वस्थता निर्माण करणारे ठरते. औद्योगिकीकरण आणि ग्रामीण समुदातील बदल यांचा परस्परसंबंध समजुन घेण्यासाठी नागपूर जिल्हा हे एक योग्य क्षेत्र मानले जाते. या जिल्ह्यात एकीकडे शहराचा विकास आणि औद्योगिक विस्तार दिसुन येतो, तर दुसरिकडे पारंपारीक ग्रामीण जीवनशैलीदेखील अजुन टिकुन आहे. या दोघांमधील संघर्ष, समायोजन आणि परिणाम यांचा अभ्यास करण्यासाठी समाजशास्त्रीय दृष्टीकोन आवश्यक ठरतो.

या संशोधनात नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण भागात झालेल्या सामाजिक, आर्थिक, आणि सांस्कृतीक बदलांचा अभ्यास करण्यात आला. विशेषतः औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण लोकांच्या जीवनशैलीत कोणते बदल घडुन आले आहेत. , कुटुबसंस्था व नातेसंबंध कसे प्रभावित झाले आहेत. शिक्षण व आरोग्य यामध्ये काय सुधारणा झाल्या आहेत. आणि स्त्री–पुरूष भुमिकांमध्ये कसे बदल झाले आहेत यांचा तपशीलवार अभ्यास केला गेला आहे. या अभ्यासाचा उद्देश केवळ औद्योगिकीकरणाचे फायदे व तोटे सांगण्यापुरता मर्यादित नाही, तर ग्रामीण समाजाच्या गरजांनुसार औद्योगिक धोरणांची आखणी कशी व्हावी, हे दाखवुन देणे हा देखिल महत्वाचा भाग आहे. त्यामुळे हा संशोधन प्रबंध केवळ शैक्षणिक अभ्यासापुरता मर्यादित नसुन धोरणनिर्मात्यांना व प्रशासनाला ग्रामीण विकासाच्या दृष्टीने उपयुक्त ठरू शकतो. शेवटी, औद्योगिकीकरण ही अपरिहार्य प्रक्रिया असुन ती समाजात बदल घडवतेच. परंतु हा बदल सकारात्मक, सर्वसमावेशक व टिकावु असावा यासाठी समाजशास्त्रीय अभ्यास, जनतेची मानसिकता आणि धोरणकर्त्यांचा समतोल दृष्टीकोन आवश्यक आहे. या प्रस्तावनेच्या माध्यमातुन या सेशोधनाचे स्वरूप, उद्देश, महत्व आणि अभ्यासाची सामाजिक गरज स्पष्ट होते.

विकसनशील देशामध्ये आर्थिक विकास आणि सामाजिक संरचनात्मक बदलांचा महत्वाचा घटक म्हणुन फार अगोदर पासून औद्योगिकीकरणाला ओळखले जाते. नागपूर हे विशिष्ट धोरणात्मक भौगोलीक स्थानामूळे आणि मजबुत पायाभूत सुविधामुळे ओळखले जाते. महत्वपुर्ण बाब अशी आहे की, नागपूर हे शहर संत्रा साठी म्हणुन जगप्रसिद्ध आहे. मध्ये भारतातील एक मुख्य शहर म्हणुन सुद्धा औद्योगिक केंद्रं म्हणुन प्रसिद्ध आहे. नागपूर हे औद्योगिकदृश्टया बरेच पुढे गेलेले आहे. बुटीबोरी क्षेत्र तसेच मिहान हे सुद्धा उद्योगाचे केंद्र बनले आहे.

नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण समुदायावर औद्योगिकीकरणामुळे झालेल्या सामाजिक, आर्थिक, आणि सांस्कृतिक

परिवर्तनाचा सखोल समाजशास्त्रीय अभ्यास करणे हा या संशोधनाचा मुख्य हेतु आहे. या हेतुच्या अनुसंगाने खालील विशिष्ट उद्दिष्टे निश्चित केली आहेत.

उद्दीष्टये :

१) ग्रामीण समुदायावर सामाजिक जीवनशैलीतील बदलांचे विश्लेषण करणेः
२) ग्रामीण समुदायावर झालेल्या आर्थिक व सांस्कृतिक बदलांचे विश्लेषण करणे.
३) ग्रामीण समुदायावर झालेल्या कुटुंबसंस्था व सामाजिक संबंधावरिल परिणामांचा अभ्यास करणे.
४) ग्रामीण समुदायावर झालेल्या शैक्षणिक व इतर घटकांचा परिणाम अभ्यासणे

औद्योगिकीकरणाची प्रक्रिया समजावुन घेणे व नागपूर जिल्ह्यातील औद्योगिकीरणाचा इतिहास स्वरूप व विकासक्रम यांचा अभ्यास करून त्याचा ग्रामीण भागावर काय परिणाम होतो हे समजावणे आणि ग्रामीण समुदायात ग्रामस्थाच्या रोजच्या जीवनशैलीत राहणीमानात व उपजिवीकेच्या साधनांमध्ये काय व कसे बदल झाले याचे सविस्तर विश्लेषण करणे. ग्रामीण भागात फार मोठया प्रमाणात संयुक्त कुटुंबसंस्था ही प्रचलीत होती कारण त्यामुळे मानसिक ताणतणावाचे प्रमाण हे अत्यल्प होते विवाहाच्या पद्धती स्त्री पुरूष संबंध, वृद्ध व तरूण यांचे परस्पर संबंध या घटकांवर कसे परिणाम झाले हे यामध्ये अभ्यासले आहे स्त्रि शिक्षण आरोग्य, याची गती व सुविधा व महिलांच्या सामाजिक आर्थिक सहभागात काय बदल झाले याचे सुद्धा मुल्यमापन, परंपरागत व्यवसाय व त्याचा सांस्कृतीक जीवनावर परिणाम हे "ेती संबंधीत व हस्तकला या सारख्या पारंपारीक व्यवसायावर व स्थानीक सांस्कृतीक चालीरीतीवर औद्योगिकीकरणाचा प्रभाव कसा झाला याचा सुद्धा अभ्यास यामध्ये प्रकर्शाने जाणवतो. ग्रामीण भागातील नागरिक औद्योगिकीकरणाकडे कशा दृष्टीने पाहतात, त्यांचे अनुभव, अपेक्षा व अडचणी काय आहेत याचा अभ्यास करणे सकारात्मक व नकारात्मक परिणामांचे तुलनात्मक विश्लेषण करणे. औद्योगिकीकरणामुळे निर्माण झालेल्या संधी व अडचणी यांची तुलना करूण, त्यांचा समतोल विचार मांडणे. ग्रामीण भागातील संतुलीत औद्योगिक विकास घडवुन आणण्यासाठी समाजशास्त्रीय दृष्टीने उपयुक्त अशा शिफारशी व उपाययोजना सुचवणे.

गृहितकृत्ये :-

वरिल संशोधनात खालील प्राथमिक गृहितकांच्या आधारे अभ्यास केला गेला. या गृहितकृत्याद्वारे सत्यासत्यतेची पडताळणी प्रत्यक्ष आकडेवारी व क्षेत्रीय अभ्यासाद्वारे करण्यात आली आहे.

१) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण भागातील पारंपारीक जीवनशैलीत लक्षणीय बदल झाला आहे.
२) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण भागातील कुटुंबसंस्था व सामाजिक नातेसंबंधामध्ये बदल झाले आहेत.
३) औद्योगिकीकरणामुळे महिलांचा आर्थिक व सामाजिक सहभाग वाढला आहे.
४) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण तरूणांचे मोठया प्रमाणात "हरी स्थलांतर व "हरीकरणाची प्रवृत्ती वाढली.
५) औद्योगिकीकरणामुळे पारंपारीक व्यवसायामध्ये घट झालेली आहे.
६) औद्योगिकीकरणामुळे ग्रामीण भागातील सामाजिक विशमता कमी झाली आहे.
७) औद्योगिकीकरणामुळे पर्यावरणीय असंतुलन व नैसर्गिक संसाधनांची हानी झाली आहे.

पद्धतीशास्त्र :-

या समाजशास्त्रीय अध्ययनासाठी संशोधन प्रक्रियेत वैज्ञानिक दृष्टीकोन आणि पद्धतीचा वापर करून, विश्वसनिय व वस्तुनिष्ठ माहिती गोळा करण्याचा प्रयत्न करण्यात आला आहे. या संशोधनात्मक अभ्यासाचा मुख्य उद्देश नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण भागांमध्ये औद्योगिकीकरणामुळे झालेल्या सामाजिक बदलांचा अभ्यास करणे असल्यामुळे समकालीन पद्धतीचा उपयोग करण्यात आला आहे.

वर्णनात्मक व विश्लेषणात्मक संशोधन पद्धती वापरण्यात आली आहे. सर्वेक्षणाधारित संशोधन करण्यात आले आहे.

संशोधनाचे क्षेत्र :-

महाराष्ट्र राज्यातील नागपूर जिल्हा जिल्ह्यातील औद्योगिक प्रभाव असलेल्या निवडक ग्रामीण भागांमध्ये अभ्यास केंद्रित केला गेला. उदा. नागपूर ग्रामीण, हिंगणा, कळमेश्वर, सावनेर, आणि कामठी आदि तालुके घेतले आहेत.

नमुन्याचे स्वरूप :-

नमुना निवड हे उद्देश पुर्ण पद्धतीने घेतले आहे. म्हणजे एका तालुक्यातील शंभर याप्रमाणे प्रत्येक तालुक्यातुन दहा गांवे निवडली आहेत. आणि एका गावातून दहा अशा स्वरूपात घेतले आहे. शेतकरी, कारखान्यातील कामगार, स्त्रिया, युवक आणि स्नानिक व्यावसायीक

डेटा संकलनाची साधने :-

अ) प्राथमिक माहिती :–

संवाद व मुलाखती :

अर्धसंरचित प्रश्नावलीच्या आधारे स्थानीक नागरिकांशी प्रत्यक्ष संवाद

अनुसूचि व प्रश्नावली : वस्तुनिष्ठ व व्यक्तिनिष्ठ स्वरूपाची अनुसूचि वापरून माहिती संकलन

निरीक्षण :–

गावातील बदल, राहणीमान, व्यवहार यांचे थेट निरीक्षण, समुह चर्चा ग्रामीण समुहांशी सामुहीक संवाद

ब) दुय्यम माहिती :–

सरकारी अहवाल व आकडेवारी– जिल्हा आर्थिक सर्वेक्षण, सेन्सस डेटा

शोध प्रबंध व शैक्षणिक लेख – विद्यापीठ, ग्रंथालय संशोधन संस्था व जर्नल्स. इंटरनेट स्त्रोत, एनजीओ अहवाल, आणि माहितीपत्रके इत्यादी स्वरूपात माहिती गोळा केली.

मर्यादा :–

अभ्यासाचे क्षेत्र फक्त नागपूर जिल्ह्यापुरते मर्यादित ग्रामीण लोकांच्या अनुभवांवर आधारित माहिती ही मुख्यतः व्यक्तीनिष्ठ स्वरूपाची काही ठिकाणी प्रतिक्रिया देण्यास अनिच्छुकपणा किंवा माहितीचा अभाव

पाच तहसीलमधिल औद्योगिक विकासाचे निवडक नमुने :-

नागपूर शहर व ग्रामीण :–

औद्योगिक विकासाचे केंद्र म्हणुन नागपूर जिल्हा ओळखला जातो किंवा उदयास आला असे म्हणता येईल. या जिल्ह्यात उद्योगाच्या दृश्टीन पायाभुत सुविधा पुरविण्यात येत आहे. नागपूर जिल्ह्यात उत्पादन, खाणकाम, आणि विज क्षेत्राचा समावेश असलेले विविध औद्योगिक क्षेत्र आहे. या बदलांचा मुख्य चालक म्हणजे आपणास मिहान ला महत्व देता येईल. मिहान मध्ये मल्टी मॉडल इंटरनॅशनल कार्गो हब आणि विमानतळ व दक्षिणेकडिल विमानतळ उपलब्ध आहे. मोठ मोठे प्रकल्प या भागात प्रामुख्याने उत्पादन व लॉजिस्टिकमध्ये वाढ केली आहे आयटी, क्षेत्रात सुद्धा वाढ झालेली पाहावयास मिळते. याचा स्थानीक ग्रामीण समुदायावर परिणाम मोठया प्रमाणावर झाल्याशिवाय राहणार नाही.

कामठी :-

कामठी या तहसीलमध्ये उद्योगाचे क्षेत्र हे लहान मध्यम आकाराच्या विविध युनिटस् ने भरलेले आहे. त्यातील काही उद्योग समुहाचे घटक खालीलप्रमाणे सांगता येतील.

1. ग्रोवेल पॉलीमर्स इंडस्ट्रीज : ऑटोमोटिव्ह पार्ट्स आणि इलेक्ट्रॉनीक्ससाठी प्लस्टिक मोल्डेड घटकांचे उत्पादन
2. नविन प्रीतम एजन्सीः बोअरवेल सबमर्सीबल पंप आणि कृषी पंप पुरविणे
3. टेक्नो सेल्स : हॅन्ड टुल्स, कटिंग टुल्स, आणि मशिन टुल्समध्ये व्यापार

सावनेर :–

सावनेर चे औद्योगिक क्षेत्र हे लहान उद्योगांचे केंद्र बिंदु आहे असे म्हणता येते कारण येथे विशेषतः अन्न आणि पेय, औशधी निर्माण व सौदर्य प्रसाधने या सारख्या क्षेत्रात छोटे छोटे इमल्शन प्लॉन्ट हे या भागात सेवा देत आहेत.

1. सौदर्यप्रसाधने आणि वैयक्तीक काळजी उत्पादने
2. अन्न आणि पेय प्रक्रिया
3. औषधनिर्माण

कळमेश्वर :–

जेएसडब्ल्यू या प्लॉन्टच्या माध्यमातून कळमेश्वर तालुक्याच्या विकासात भर पडली. म्हणजे औद्योगिक विकासास

चालना मिळाली. येथील महत्वाचा प्लॉन्ट ठरला आहे. नागपूर पासुन हे फक्त तीस कीलो मिटर अंतरावर आहे. या ठिकाणचे क्षेत्र हे 3,44, 344 चौरस मिटर एवढे व्यापले आहे. त्यामुळे ते एमआयडीसी क्षेत्रातील सर्वात मोठया उद्योगापैकी एक आहे. या प्लॉन्टला गुणवत्ता आणि उर्जा संवर्धनासाठी मान्यता मिळाली आहे. ज्यामध्ये रामकृश्ण बजाज राष्ट्रीय गुणवत्ता पुरस्कार आणि उर्जा संवर्धनासाठी एम. ई डी. ए. कडून मान्यता मिळाली आहे.

हिंगणा :-

हिंगणा हे औद्योगिक क्षेत्र नागपूर जिल्ह्यातील एक महत्वाचे क्षेत्र म्हणुन विकसित झालेले आहे. या ठिकाणी औद्योगिक विकासाला 1970 च्या दशकात सुरूवात झाली. जेंव्हा महाराष्ट्र औद्योगिक महामंडळाने औद्योगिक विकासासाठी एक संभाव्य ठिकाण म्हणुन हे क्षेत्र ओळखले जाते. ते एक भरभराटीचे उद्योगाचे क्षेत्र बनले आहे. हिंगणा हे औद्योगिक क्षेत्र इतर घटकांचा सहभागीता वाढविण्यास जास्त प्रमाणात रस घेतो आहे. याठिकाणी त्याची भुमिका महत्वाची आहे.

1. या ठिकाणी ऑटोमोटिव्ह आणि अभियांत्रीकी : महिंद्रा ॲन्ड महिंद्रा या भागात ट्रॅक्टर उत्पादन कारखाना चालवते. याची निर्मीती या ठिकाणी केल्या जाते.
2. स्टिल आणि धातु : नेको लिमीटेड, संविजय ग्रृप जे स्टिल चे उत्पादन करते.
3. कॅन्डीकोने याचा उद्योग मिठाई क्षेत्रातील मोठे नाव त्यांनी या ठिकाणी उत्पादन वाढविले आहे.
4. बजाज ची ऑटोमोटिव्ह उद्योग समुह या ठिकाणी नांव रूपास आला आहे.

या उद्योगाने विविध भागात एक संतुलीत आर्थिक परिसंस्था निर्माण केलेली आहे. जिथे विविध क्षेत्रे एकमेकांना पुरक आहेत. ज्यामुळे या परिसरातील उद्योगाला मजबुत अशा प्रकारची चालना मिळाली आहे.

ग्रामीण समुदायावर सामाजिक, आर्थिक परिणाम :-

जीवन जगण्यामधिल बदलः रोजगार निर्मीती या पाचही तालुक्यामध्ये काही प्रमाणात का होईना रोजगारच्या संधीला चालना मिळाली असे म्हणता येईल. विविध उद्योग सुरू झाल्याने बेराजगारांना आशेचा किरण बनली आहे हे उद्योग क्षेत्र जसे महिंद्रा ॲन्ड महिद्रा, विविध प्रकारचे स्टिल चे प्लॉन्ट अन्न प्रक्रियेवर आधारीत उद्योग समुह उत्पनाचे परिणाम हंगामी "ेतीच्या तुलनेत औद्योगिक रोजगार सामान्यता कमी अधिक प्रमाणात उत्पन्न देतात. परंतु फायदे हे असमान पणे विस्तारीत केलेले दिसतात. जेएसडब्ल्यु सारख्या प्रमुख उद्योगामध्ये कुशलपदे मिळविणाऱ्यांना उत्पन्नात लक्षनिय सुधारणा झाल्याची शक्यता आहे.समुदाय रचना आणि सामाजिक गतिशिलता. औद्योगिकीकरणामुळे या पाचही तालुक्यामध्ये ग्रामीण समुदायामध्ये सामाजिक संरचनेमध्ये बदल झालेला दिसुन येतो. सामाजिक संशोधनातुन या पैलुसंबंधी अधिक माहीती मिळु शकते. तरी हिंगणा या औद्योगिक क्षेत्रात एमआयडिसी इंडस्ट्रिज असोसिएशन एमआयए. सारख्या औद्योगिक संघटनांची स्थापना औद्योगोकि उपक्रमाभोवती केंद्रित असलेल्या नविन संघटना आणि नेटवर्क याला सुचित करते. शेती समुदायाशी संबंधीत असलेल्या अनेक प्रकारच्या कामगार वर्गाने स्थलांतर केल्याचे दिसते यामुळे सुद्धा ग्रामीण भागात परिवर्तनाची गती कमी अधिक प्रमाणात निर्माण होते.

पर्यावरणीय परिणाम :-

वरील अभासीत तालुक्यामध्ये पर्यावरणाचा असमातोल या औद्योगिक क्षेत्रामुळे झाला म्हणण्यास वावगे ठरणार नाही. हवा व पाण्याची गुणवत्ता जर तपासली तर कळमेश्वर मधिल जेएसडब्ल्यु हा स्टिल प्रकल्प आणि हिंगण्यातील युनिटस् आणि सांडपाण्याद्वारे स्थानीक हवा आणि पाण्याच्या गुणवत्तेवर परिणाम निश्चित पणे होण्याची शक्यता नाकारता येत नाही. याचाच परिणाम म्हणुन जवळ पासचा जो परिसर आहे त्यावर परिणाम होण्याची "ाक्यता आहे.

निष्कर्ष :-

नागपूर जिल्ह्यातील ग्रामीण समुदायावर औद्योगिकीकरणाचा प्रभाव हा अनेक पातळयांवर स्पश्टपणे जाणवतो आहे. या अभ्यासातुन पुढिल काही महत्वाचे निश्कर्श पाहता येतील.

1. औद्योगिकीकरणामुळे पारंपारीक शेतीव्यवस्था ही मागे पडत आहे. व ग्रामीण जनता रोजगारांच्या नवनिवन संधी शोधन्यासाठी तो शहरांकडिल औद्योगिक क्षेत्राकडे वळलेला दिसतो आहे.
2. कुटुंबसंस्थेचा जर विचार केला तर संयुक्त कुटुंबा ऐवजी आता विभक्त कुटुंब पद्धती रूढ होत आहे. त्यामुळे

सामाजिक जडणघडण ही बदलत आहे.

3. स्त्रियांचा आर्थिक सहभाग वाढत आहे. जो त्यांच्या सामाजिक सशक्तीकरणाचा सकारात्मक संकेत आहे. मात्र अजुनही अनेक स्त्रिया अशा बदलांसाठी अनुकुल वातावरणाच्या प्रतिक्षेत आहेत.

4. शिक्षण आणि आरोग्य सेवा सुधारल असल्यातरी त्याचा लाभ सगळयांपर्यंत पोहलेला नाही. ग्रामीण भागात उच्च शिक्षणाची गरज अजुनही प्रकर्शाने जाणवते.

5. स्थानीक प्रकारची संस्कृती, चालीरीती, आणि जीवनशैलीमध्ये बदल झाला असुन, पिढयानपिढया चालत आलेल्या सामाजिक मुल्यांवर त्याचा प्रभाव पडत आहे.

संदर्भसूची :-

1. एसईझेड धोरणातील पुरावे जर्नल ऑफ डेव्हलपमेंट , 143, 102429 https://doi.org/10.1016/kz.kzdeveco.2019.102429
2. असोसिएशन फॉर इंडस्ट्रियल डेव्हलपमेंट नागपूर (2024).नागपूर जिल्हा. https://aidnagpur.in/nagpur-district/
3. देशपांडे, सी. जी.(2018). भारतीय ग्रामीण समाज. पुणेः प्रगती प्रकाशन.
4. मोहिते, एन. व्ही. (2016). औद्योगिकीकरण आणि सामाजिक परिवर्तन. नागपूर युनिटी पब्लिकेशन्स
5. जोशी, एम. एस. (2015). ग्रामीण समाजशास्त्र मुंबईः विद्यार्थी ग्रंथ भवन
6. काकडे, बी. आर. (2019), भारताचा ग्रामीण विकास. पुणे : शांताई प्रकाशन.
7. देशमुख, पी. एस. (2022) विदर्भातील औद्योगिक विकास आणि ग्रामीण स्थलांतराचा अभ्यास. समाजविज्ञान संवाद, 8(2), 54–62.
8. शिंदे ए. आर. (2021), ''ग्रामीण स्त्रियांचा औद्योगिक क्षेत्रातील सहभाग : एक समाजशास्त्रीय विश्लेशण''. योजना मासिक, जुलै अंक, पृष्ठ क्रमांक 35–39
9- https://aidnagpur.in/nagpur-district/
10- https://www.kzswsteel.in/kalmeshwar-works
11- https://www.vkmachines.com/product/emulsion-plant-in-saoner
12- https://in.linkedin.com/in/midc-industries-association-hingna-nagpur

❐❐❐

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Anand Kumar
Research Scholar
Department of History, Panjab University Chandigarh

for the paper titled

RECONSTRUCTION AND DECONSTRUCTION OF IDENTITY: SWAMI ACCHUTANAND AND THE DEBATE ON HARIJAN TERMINOLOGY

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Anwith G Kumar
Research Scholar
Department of Postgraduate Studies and Research in Political Science
Mangalore University, Mangalagangothri, Konaje

for the paper titled

ETHNIC IDENTITY AND FOREIGN POLICY: TAMIL NADU'S INFLUENCE ON INDIA'S SRI LANKA POLICY

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Ayushi Yadav
Research Scholar, Textile Design, Banasthali Vidyapeeth
Dr. Isha Bhatt
Assistant Professor, Design Department
Banasthali Vidyapeeth

for the paper titled

THE CRADLE OF FAITH: EXPLORING DEVOTIONAL CONTINUITY AND CULTURAL SIGNIFICANCE OF ALOPI DEVI TEMPLE IN PRAYAGRAJ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Aashish Kumar
Research Scholar, Department of Medieval and Modern History
University of Lucknow

for the paper titled

SOVEREIGNTY, SUCCESSION, AND SUPPRESSION OF THE BHAR TRIBE: POWER DYNAMICS AND SOCIO-POLITICAL DECLINE UNDER CHANDELA, AND TURKIC HEGEMONIES IN ALLAHABAD & BUNDELKHAND REGION (C. 900–1500 CE)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Mitha Lal Meena
Research Scholar Department of History, Panjab University, Chandigarh
Dr. Prashant Gaurav
Associate Professor, History
Post Graduate Government College, Sector-46, Chandigarh

for the paper titled

WOMEN'S LIVES, BELIEFS AND PRACTICES AS REFLECTED IN THE GUPTA SCULPTURES AND INSCRIPTIONS

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Heera Lal Chopra
Research scholar, English Department, Apex University, Jaipur
Dr. Priyanka Mishra
Assistant professor
Apex University, Jaipur

for the paper titled

HUMAN EMOTIONS IN ANIMAL NARRATION : A STUDY OF SUDHA MURTHY'S GOPI DIARIES

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Indra Daman Tiwari
Assistant Professor, School of Law
Raffles University

for the paper titled

TRADEMARK LAW AND ARTIFICIAL INTELLIGENCE (AI): CONVERGENCES AND REPERCUSSIONS

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Ayesha Khatoon
Visva Bharati University

for the paper titled

KNOWLEDGE, TECHNOLOGY, AND SOCIETAL NORMS: EPIGRAPHY AS A DIALOGUE BETWEEN PAST AND DIGITAL FUTURES

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Shefali
Research Scholar, Department of Western History
University of Lucknow

for the paper titled

FROM GIFT TO BURDEN: EVOLUTION OF DOWRY SYSTEM IN INDIA

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Snehlata Jaiswal
Research Scholar, Department of Social Work
University of Lucknow

for the paper titled

GENDER DISCRIMINATION AMONGST HEALTH CARE PROVIDERS IN RURAL AREAS OF LUCKNOW DISTRICT

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Dev Brat Mishra
Assistant Professor
Gramyanchal Vidhi Mahavidyalay, Haidergarh, Barabanki

for the paper titled

HISTORY, TRADITIONS AND MODERN PERSPECTIVES: A MULTIDISCIPLINARY DIALOGUES THROUGH KNOWLEDGE, TECHNOLOGY AND SOCIETAL NORMS

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Nirmal Kumar Nirmohi
Junior Research Fellow
Department of Sociology, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar
Prof. (Dr.) Sudhir Kumar Singh
Principal & H.O.D.
Rohtas Mahila College, Veer Kunwar Singh University, Ara, Bihar

for the paper titled

OLD ROOTS, NEW ROUTES: ICT, YOUTH ASPIRATIONS AND THE GENERATIONAL GAP IN RURAL AREAS OF BIHAR

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Rakesh Singh
Associate Professor, Department of Economics, Himachal Pradesh University
Hemant Sharma
Research Scholar
Himachal Pradesh University

for the paper titled

IMPACT OF DEEN DAYAL UPADHYAYA GRAMEEN KAUSHALYA YOJANA (DDU-GKY) ON SOCIO-ECONOMIC DEVELOPMENT OF RURAL YOUTH IN HIMACHAL PRADESH

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Kajal Singh
Department of Textile Design, Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan
Kavita Choudary
Department of Textile Design, Banasthali Vidyapith, Jaipur, Rajasthan
M.S Parmar
Northern India Textile Research Association (NITRA),
Ghaziabad, Uttar Pradesh

for the paper titled

SUSTAINABLE VALORISATION OF RICE STRAW INTO TEXTILE-GRADE FIBRES FOR FASHION AND TEXTILES

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Prof.(Dr). Ranjana Rawat
Head- Deptt. of History
D.A.V. (P.G.) College- Dehradun
Affiliated – H.N.B.G.C. University,Srinagar,Uttrakhand

for the paper titled

RELEVANCE OF PURUSHARTHAS IN UNDERSTANDING VALUES AND MOTIVATIONS OF PROFESSIONALS IN TODAY'S WORLD

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Abhijna
Research Scholar, Kannada University, Hampi
Assistant Professor, Department of History
SDM College(Autonomous), Ujire

for the paper titled

ROYAL HERITAGE OF KARNATAKA: WOMEN IN POWER

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Aniket Singh
Research Scholar
Ancient Indian History And Archaeology
Lucknow University, Lucknow

for the paper titled

A HISTORY OF HARSHAVARDHANA: THE LAST GREAT MONARCH OF ANCIENT INDIA

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Sangeeta Sharma
Research Scholar
Department of Home Science
Ranchi University, Ranchi

for the paper titled

PROMOTING SKILLS OF THE FEMALES OF JHARKHAND ON SOCIAL MEDIA

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Dr. Durga S. Patkar
Assistant Professor
Ramnarain Ruia Autonomous College, Mumbai

for the paper titled

SATELLITE REMOTE SENSING FOR ECOSYSTEM AND HABITAT MONITORING

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Sushmita Singh
Ph.D (Research Scholar), Department of Design, Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India
Dr. Shikha Verma
Assistant Professor, Department of Design, Banasthali Vidyapith, Rajasthan, India

for the paper titled

THE HISTORICAL DEVELOPMENT OF SANJHI ART: FROM DEVOTIONAL TRADITION TO CONTEMPORARY CRAFT

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Tanu Astha
PhD Scholar, Heritage Studies
Ambedkar University Delhi

for the paper titled

TIMELESS DEVOTION: SCULPTURAL HERITAGE AND ONGOING WORSHIP IN ANTICHAK, BHAGALPUR

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Bijay Kumar Behera
Ph.D. Scholar, Department of History and Archeology
F.M. University, Balasore, Odisha

for the paper titled

COMPREHENDING THE SHIFTING DYNAMICS FROM SOCIAL TO NEO-SOCIAL MOVEMENTS: *A THEORETICAL DISCOURSE*

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Ankur Majumdar
Research Scholar, Department of East Asian studies
University of Delhi, Delhi

for the paper titled

UNSUNG WARRIORS OF ANGLO MANIPUR WAR AT KALA PANI

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Naveen
Guest Faculty, History
Vivekananda College, University of Delhi

for the paper titled

FROM TEXT TO ART: THE ARTISTIC REPRESENTATION OF THE JÂTAKA STORIES IN EARLY INDIAN ARCHITECTURE. CASE STUDY OF BHARHUT, SANCHI AND AMARAVATI

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Mansi Sharma
Ph.D.Scholar, Department of Political Science
University of Lucknow, Lucknow, Uttar Pradesh

for the paper titled

RECALIBRATING INDIA'S GLOBAL POSTURE: A STUDY OF FOREIGN POLICY TRANSFORMATION UNDER THE MODI ERA (2014–PRESENT)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

Shrishti S. Bhadoria
M.A (Sociology)
Jiwaji University, Gwalior

for the paper titled

WEAVING PRIDE: AHILYA BAI HOLKAR'S EMPOWERMENT OF WOMEN THROUGH MAHESHWAR SAREES

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

अनूप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्त्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

सारनाथ का ऐतिहासिक महत्त्व और बौद्ध धर्म के विकास में इसकी भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

अविनाश कुमार पासवान

शोधार्थी, यू0जी0सी0–नेट

बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. मो. इस्माईल

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, वैशाली महिला कॉलेज, हाजीपुर

for the paper titled

पूर्व मुगलकालीन बिहार में समाज एवं संस्कृति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

अंशु देवी
शोधार्थी, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर
महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय,बरेली,(उ0प्र0)
डॉ0 शशिप्रभा
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर (उ0प्र0)

for the paper titled

शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में प्रगतिवादी चेतना

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. बिहारी लाल द्विवेदी
प्राचार्य, मेकलसुता महाविद्यालय डिण्डौरी

for the paper titled

ग्रामीण जीवन के अनुसूचित जातियों की सामाजिक स्थिति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

समीना नाज

शोध छात्र, इतिहास विभाग
तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

for the paper titled

बौद्ध और जैन धर्म का शूद्रों पर प्रभाव : एक अवलोकन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रज्ञा तिवारी

शोधछात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

प्राचीन कौशाम्बी : एक महानगर के रूप में आर्थिक समृद्धि और व्यापारिक गतिविधियों का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. रजिंदर कौर

एसोसिएट प्रोफेसर
माता सुंदरी कॉलेज फॉर वुमैन,
दिल्ली विश्वविघालय

for the paper titled

अंधेर नगरी : तत्कालीन सामाजिक परिवेश तथा राजनीतिक व्यवस्था का दर्पण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

ज्योति श्री

शोधार्थिनी, पीएच.डी. (इतिहास), डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला

विभागाध्यक्ष, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

for the paper titled

भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं धर्म-दर्शन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

ललन कुमार सिंह

व्याख्याता, भूगोल विभाग
पी0एम0एस0 कॉलेज, बिहारशरीफ

for the paper titled

भगवान बुद्ध का अस्थि स्तूप एवं धातुनिधान, राजगृह
(एक ऐतिहासिक एवं भौगोलिक परिचय)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

सोनिया सैनी
शोधार्थी, वस्त्र आकल्पन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
डॉ. कविता चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर, वस्त्र आकल्पन विभाग, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

for the paper titled

पट्कू बुनाई भारतीय परिधान संस्कृति की पहचान और लोकपरंपरा का एक विशिष्ट अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

पूर्वा दीक्षित
शोधार्थिनी, पीएच.डी. (इतिहास), डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा (उ0प्र0)
प्रो. बृजेश्वर दत्त शुक्ला
विभागाध्यक्ष, डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा (उ0प्र0)

for the paper titled

20वीं शताब्दी में राष्ट्र सेविका समिति का सामाजिक योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

पूजा पोरस

पीएच0डी0, शोधार्थी, इतिहास एवं संस्कृति विभाग, डॉ0 भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

प्रो. सुगम आनन्द

इतिहास एवं संस्कृति विभाग, डॉ0 भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय,आगरा

for the paper titled

प्राचीन भारत में धर्म के क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

सतेन्द्र कुमार

शोधार्थी, इतिहास एवं संस्कृति विभाग
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

for the paper titled

मध्यकालीन भारत में चौहान शासक और धार्मिक सहिष्णुता

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

सत्यम सिंह राजावत
श्री अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, इंदौर (मध्य प्रदेश)

for the paper titled

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में महिलाओं की स्थिति का संक्षिप्त अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

बबीता देवी
शोध छात्र, संस्कृत, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

for the paper titled

भारतीय दर्शन संस्कृति और शिक्षा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

मयंक त्रिपाठी

शोधार्थी, प्राचीन इतिहास विभाग, के एन पी जी कॉलेज ज्ञानपुर भदोही
सम्बद्ध– महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

डॉ. प्रीतम कुमार

सहायक प्राध्यापक, प्राचीन इतिहास विभाग, के एन पी जी कॉलेज ज्ञानपुर भदोही
सम्बद्ध– महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

for the paper titled

ताड़पत्र से भोजपत्र तक : चिकित्सा ज्ञान परंपरा के लेखन एवं संरक्षण का भौतिक आयाम

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

मंजू सुयाल
शोध छात्रा, संस्कृत विभाग
राजकीय महाविद्यालय बनबसा, चम्पावत (उत्तराखंड)

for the paper titled

प्रकृति का साहित्यिक चित्रण : वाल्मीकि रामायण के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

कु. विनीता

पी० एच० डी० शोधर्थिनी, समाजशास्त्र विभाग

राधेहरी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर उधम सिंह नगर (उत्तराखंड)

डॉ. कल्पनाथ सिंह यादव

प्रोफेसर, राधेहरी राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर उधम सिंह नगर (उत्तराखंड)

for the paper titled

शिक्षा से सम्बंधित सरकारी कल्याणकारी योजनाओं का अनुसूचित जाति की छात्राओं पर पड़ने वाले प्रभावों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सोहद्रा दीवान

अतिथि सहायक प्राध्यापक
नवीन शासकीय महाविद्यालय, लोहण्डीगुड़ा, बस्तर (छ.ग.)

for the paper titled

भारतीय दर्शन, संस्कृति और शिक्षा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

सोहन लाल

शोधार्थी, इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

नारायण सिंह

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, श्री खुशालदास विश्वविद्यालय पीलीबंगा, हनुमानगढ़

for the paper titled

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद : समकालीन भारत के लिए एक वैकल्पिक विकास मॉडल

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

प्रीति भारती

शोधार्थिनी, कवयित्री
बनस्थली विद्यापीठ, जयपुर

for the paper titled

वैदिक काल में स्त्री की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. शोभा मिश्रा
सहायक आचार्य इतिहास, सांध्यकालीन अध्ययन विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला
यदुनंदन
शोधकर्ता, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला

for the paper titled

एकात्म मानव दर्शन और डिजिटल युग में भारतीय सांस्कृतिक मूल्य, शिक्षा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण : पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का बहुआयामी विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

अविनाश बनर्जी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

आदिवासी साहित्य का समाज दर्शन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

शिवानी

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर, पिथौरागढ़

for the paper titled

उत्तराखंड की राजनीति में महिलाओं की भूमिका

(विधान सभा निर्वाचन के सन्दर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

अमन कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर, परिसर पिथौरागढ़

for the paper titled

सामाजिक-सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक धरोहर के रूप में मां हाट कालिका शक्ति पीठ

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. सविता

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
माता सुन्दरी कॉलेज फॉर वूमैन,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

for the paper titled

काली आंधी उपन्यास में पारिवारिक विघटन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

शुभम कुमार
शोधार्थी
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

for the paper titled

कुषाण साम्राज्य, रेशम मार्ग और सांस्कृतिक परिदृश्य

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

बबीता बोहरा

शोधार्थिनी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़

for the paper titled

चंदकालीन ऐतिहासिक धरोहर : बालेश्वर मंदिर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

मुकुंद शर्मा
असिस्टेंट प्रोफेसर, ए. एस. पी. जी. कॉलेज, मवाना
डॉ. कोमल देवी
असिस्टेंट प्रोफेसर, ए. एस. पी. जी. कॉलेज, मवाना

for the paper titled

प्रेमचंद के साहित्य में तात्कालिक समाज का समाजशास्त्रीय एवं साहित्यिक अवलोकन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

आस्था तिवारी

शोधार्थी

प्रो. राजेन्द्र सिंह (रज्जू भय्या) विश्वविद्यालय, प्रयागराज

for the paper titled

प्रौद्योगिकी का कल्याणकारी योजनाओं पर प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

दिनेश कुमार पटेल
शोधार्थी, इतिहास विभाग
मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर, राज.,
अध्यापक –रा. उ. मा. वि. गोरण, झाड़ोल (फ.) जि. उदयपुर,राजस्थान

for the paper titled

भारतीय संस्कृति में स्त्री-पुरुष समानता की अवधारणा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

लवकुश कुमार मिश्रा

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

गांधार तथा मथुरा मूर्तिकला पर महायान बौद्ध दर्शन का प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

सत्यवीर खनका

शोधार्थी, इतिहास विभाग
लक्ष्मण सिंह महर परिसर पिथौरागढ़

for the paper titled

भारत एवं नेपाल की साझी संस्कृति को संजोता चैतोला मेला

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

देवेन्द्र कुमार
शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

भारतीय चिंतन में सामाजिक न्याय का विचार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor
8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. दीक्षिता अजवानी

सहायक आचार्या, इतिहास
केंद्रीय संस्कृत विश्व विद्यालय, जयपुर परिसर

for the paper titled

भारतीय परम्पराओं की वर्तमान प्रासंगिकता : एक दार्शनिक, सामाजिक एवं व्यावहारिक विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

कु. आदिती जायसवाल
शोधछात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

for the paper titled

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं पुरातत्व में यक्ष परम्परा : एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

आरती रावत
सीनियर रिसर्च फेलो, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय
संदीप सैनी
सीनियर रिसर्च फेलो, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

for the paper titled

समाज में जेंडर संबंधी रुढ़िवादी अन्तर्द्वन्द्व के खिलाफ बढ़ते कदम

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

वंदना माथुर
शोधार्थी, दिल्ली विश्वविद्यालय
अश्वनी कुमार
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मोतीलाल नेहरू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

सुशीला टाकभौरे के उपन्यास 'वह लड़की' में अभिव्यक्त घरेलू हिंसा का स्वरूप

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

हर्ष वार्ष्णेय
शोधार्थी,
इतिहास विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

for the paper titled

दिल्ली में क्लब संस्कृति का इतिहास : औपनिवेशिक विरासत से आधुनिक पहचान तक

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

कु. अंजली राजकुमार गुप्ता
(शोधार्थी), समाजशास्त्र विभाग,
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

for the paper titled

तकनीक डिजिटल युग और मानव मूल्य

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. लक्ष्मी कुमारी
इतिहास विभाग
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

for the paper titled

मुगलकालीन संगीत का ऐतिहासिक परिपेक्ष्य

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115



Impact Factor
8.642

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

डॉ. शमा अंजुम
इतिहास विभाग
कोल्हान विश्वविद्यालय, चाईबासा, झारखण्ड

for the paper titled

मराठा राजनीति में ताराबाई की राजनीतिक उपलब्धियों का अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)



Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

शिवानी साहू
इतिहास विभाग
महाराजा छत्रासाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र.)

for the paper titled

बुंदेलखंड के स्वराज नायक : महाराजा छत्रसाल बुंदेला

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

दुर्गेश नंदिनी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, म. म. महिला कॉलेज, आरा, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

डॉ. सुधा निकेतन रंजनी

शोध निर्देशिका एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, म. म. महिला कॉलेज, आरा
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, बिहार

for the paper titled

राष्ट्रवाद के संवाहक के रूप में संस्कृति, भाषा और साहित्य : भारत के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication*

is awarded to

देवानंद एन. कांबळे
शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती
डॉ. किशोर ऊ. राऊत
प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती

for the paper titled

औद्योगिकीकरणाचा ग्रामीण समुदायावर झालेल्या परिवर्तनाचे समाजशास्त्रीय अध्ययन (विशेष संदर्भ नागपूर जिल्हा)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115

October 2025, Vol. 22, Issue-4(2)

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib.& Information Science,
DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152